CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

12.4

रूपककार हस्तिमल्ल एक समीक्षात्मक अध्ययन

ले० डा० कन्छेदीलाल जैन

३५६८

922

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३४६८

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
नरिया, (का. हि. वि. वि.) वाराणसी-५

श्री गणेश वर्णी शोध
संस्थान वाराणसी
को भेंट

कन्हैयालाल जैन
१६-८-८५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत जैन शोध-संस्थान ग्रन्थमाला संख्या—१६

प्रधान सम्पादक
डा० नागेन्द्र प्रसाद, एम० ए०, डी० लिट्०
निदेशक, प्राकृत, जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली

रूपककार हस्तिमल्ल
एक समीक्षात्मक अध्ययन

लेखक
डा० कन्छेदीलाल जैन शास्त्री
एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी) साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न, पी० एच० डी०
प्राध्यापक संस्कृत विभाग, शासकीय महाविद्यालय,
शहडोल (म० प्र०)

प्राकृत विद्यापीठ वैशाली

प्रकाशक
निदेशक प्राकृत जैन-शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान
वैशाली, (बिहार)

प्रथम संस्करण मार्च १९८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1980

All Rights Reserved

Price Rs 39/-

Published on behalf of the Research Institute of Prakrit, Jainology & Ahimsa, Vaishali (BIHAR) by Dr Nagendra Prasad, M. A., D. Litt., Director, Printed in India at the Ratna Printing Co., B 21/42 A, Kamachha Varanasi.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

The Government of Bihar established the Research Institute of Prakrit, Jainology and Ahimsa at Vaishali in 1955 with the object inter-alia to promote advanced study and research in Prakrit and Jainology, and to publish works of permanent value to scholars. This Institute is one of the six Research Institute being run by the Government of Bihar. The other five are : (i) Mithila Institute of Post-graduate Studies and Research in Sanskrit Learning at Darbhanga, (2) Kashi Prasad Jayasawal Research Institute for research in ancient, medieval and modern Indian History at Patna, (3) Bihar Rashtrabhasha Parishad for research and advanced studies in Hindi at Patna, (4) Nava Nalanda Mahavihar for research and post-graduate Studies in Buddhist Learning and Pali at Nalanda and (5) Institute of Post-graduate Studies and Research in Arabie and Persian Learning at Patna.

As part of this programme of rehabilitating and re-orientating ancient learning and scholarship this is the Research Volume No. 19 which is a study on the Jain play-wright Hasti-malla by Dr. Kanchhedilal Jain. The Government of Bihar hope to continue to sponsor such project and trust that this humble service to the world of scholarship and learning would bear fruit in the fulness of time.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२८८

समर्पण

छः वर्ष की वय में ही पिता का संरक्षण सदा के लिए छूट जाने पर ममतामयी जननी राजरानी जैन ने मेरा लालन पालन किया और साधनों के अभाव में भी अधिकाधिक श्रम से मुझे और मेरे दो अनुजों को योग्य बनाया। उस स्नेह मूर्ति स्व० जननी के प्रति यह ग्रन्थ श्रद्धा सुमन के रुप में समर्पित करता हूँ।

कन्छेदीलाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रधान सम्पादकीय

संस्कृत साहित्य के निर्माण में जैन विद्वानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी मूलग्रन्थ प्राकृत में हैं। किन्तु, अधिकांश ग्रन्थों पर संस्कृत में टीकाएँ लिखी गई हैं। पुनः जैन विद्वानों ने संस्कृत में महाकाव्य, गद्यकाव्य, आख्यान, स्तोत्र, चम्पू, नाटक आदि साहित्यिक विधाओं को भी अपनी रचनाओं से समृद्ध किया है। इतना ही नहीं, संस्कृत के व्याकरण, छंद, अलंकार और कोशग्रन्थ भी जैन विद्वानों द्वारा लिखे गए।

नाटकों के विकास क्रम का विवेचन करते हुए विद्वानों ने जैन साहित्य से ऐसे अनेक प्रमाण दिए हैं जिनसे भारतीय नाट्य-साहित्य की प्राचीनता एवं समृद्धि की पुष्टि होती है। जैन साहित्य के सूत्र एवं अंग ग्रन्थों से भी नाटकों के विकास के सम्बन्ध में कतिपय तथ्य उपलब्ध होते हैं। समवायां एवं रायपसेणीय सूत्र में 72 कलाओं में चतुर्थी नाट्यकला का उल्लेख है। रायपसेणीय सूत्र में चार प्रकार के अभिनयों, 32 प्रकार की नाट्य विधियों तथा प्रेक्षागृहों का वर्णन है। औपपातिक में चम्पानगरी के वर्णन के प्रसंग में नट तथा नर्तक का उल्लेख है। स्थानांग सूत्र में अंचित इत्यादि चार प्रकार के नाट्यों का वर्णन मिलता है। आचारांग में नाट्य, गीत इत्यादि विनोदों का उल्लेख है तथा निशीथ में नट-नर्त्तकों का वर्णन हुआ है।

जैन वाङ्मय के इन प्रमाणों से विदित होता है कि जैनागमों के निर्माण-काल में रूपकों का प्रचार-प्रसार था।

नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में भरत के नाट्यशास्त्र और धनञ्जय के दशरूपक के अतिरिक्त जैन शास्त्रकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र की संयुक्त कृति नाट्यदर्पण का महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

जैन साहित्यकारों द्वारा लिखे गए नाटकों के ऐतिहासिक क्रम में शीलांकाचार्य का 'बिबुधानन्द' नाटक, देवचन्द मुनि का 'चन्द्रलेखाविजय' प्रकरण, महाकवि रामचन्द्र द्वारा लिखित 'नलविलास', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'निर्भय भीम'व्यायोग, 'कौमुदी–मित्रानन्द', 'रघुविलास', 'यदुविलास', 'मल्लिका-मकरन्द' प्रकरण, 'रोहिणी-मृगांक', 'वनमाला' नाटिका और 'यादवाभ्युदय'—जिनमें कुछ अभीतक अनुपलब्ध हैं, प्रमुख स्थान रखते हैं।

हस्तिमल्ल ने नाटकों की मृतप्राय परम्परा को पुनर्जीवित किया। उन्होंने 'विक्रान्त कौरव', 'अंजनापवनंजय', 'मैथिली-कल्याण'—ये तीन नाटक तथा 'सुभद्रा' नामक नाटिका संस्कृत में लिखी है।

'विक्रान्त कौरव' नाटक छः अंकों में पूरा हुआ है। इसमें कौरवेश्वर जयकुमार का विवाह काशी नरेश अकम्पन की पुत्री सुलोचना के साथ स्वयंवर-विधि से सम्पन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने की सरस कथा है। जैन परम्परा के अनुसार यह प्रथम स्वयंवर था। स्वयंवरों को लेकर प्रायः क्षत्रियों में युद्ध होते रहे हैं। 'विक्रान्त कौरव' नाटक में भी चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति और सेनापति जय कुमार के बीच युद्ध होता है।

'अंजना-पवनंजय' नाटक में पवनंजय के साथ अंजना के विवाह, पवनंजय के युद्ध में व्यस्त होने, गर्भवती अंजना के निर्वासिन, जंगलों में भटकने, हनुमान के जन्म और अन्त में अंजना-पवनंजय के मिलन की सरस एवं शिक्षाप्रद कथावस्तु है।

'मैथिली-कल्याण' नाटक में राम-सीता के परस्पर अनुराग एवं विवाह से सम्बद्ध कथा है।

'सुभद्रा' नाटिका में कनिष्ठा नायिका सुभद्रा के प्रति चक्रवर्ती राजा भरत के अनुराग का वर्णन है। इन सभी नाटकों की विवेचना प्रस्तुत ग्रंथ में है। इसके अतिरिक्त लेखक ने नाटककार हस्तिमल्ल का काल-निर्धारण अनेक युक्तियों एवं प्रमाणों के आधार पर करने का प्रयत्न किया है।

माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से प्रकाशित 'अंजना-पवनंजय' नाटक की भूमिका में सम्पादक श्री वासुदेव पटवर्धन ने नाटक की कथावस्तु का स्रोत विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' को माना है। किन्तु, प्रस्तुत ग्रन्थ में रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण को इसका स्रोत सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

हस्तिमल्ल के नाटकों में पौराणिक जैन कथाओं का परिवेश है तथा उनमें युगीन समस्याओं का गुम्फन कर समाधान प्रस्तुत किया गया है। पौराणिक कथा-वस्तु में नाटकीयता उत्पन्न करने के अतिरिक्त नाटककार का प्रमुख लक्ष्य है धार्मिक परम्परा को स्थायित्व प्रदान करना, जिसके लिए लोक जीवन की समृद्धि और सातत्य आवश्यक है। नाटक के भरत वाक्य में निःश्रेयस और धर्म के साथ सन्तानोत्पादन हेतु काम का भी महत्त्व स्वीकार किया गया है।

हस्तिमल्ल के पात्रों में श्रृंगार के प्रति आकर्षण और वीर रस का उत्साह है। किन्तु अन्ततः वे शान्त रस के अनुयायी हो जाते हैं। वे निष्फल काम-भोग को गर्हित मानते हैं तथा जीवन का अन्त आत्महित में करते हैं। परिणामस्वरूप, जीवन की निराशा भी आशा में परिणत हो जाती है। विवाह, युद्ध एवं अन्य जीवन-संघर्षों में सफलता पाने के अनन्तर वे आत्मोत्थान हेतु जैनधर्म की दीक्षा ले लेते हैं। इस तरह नाटक का उद्देश्य शिष्ट-अनुग्रह और दुष्ट-निग्रह न होकर दुःखनिवृत्ति है। व्यक्तिगत और समाजगत हित में इतनी एकता है कि व्यक्तिहित समाजहित हो गया है।

यद्यपि कवि और नाटककार दोनों कवि हैं, फिर भी, कवि की जितनी निष्ठा भविष्य के प्रति होती है उतनी वर्त्तमान के प्रति नहीं। दूसरी ओर नाटककार के समक्ष भविष्य की अपेक्षा वर्त्तमान का तकाजा अधिक होता है। काव्य और समाज-कल्याण का पारस्परिक सम्बन्ध नाटक में सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है। इसलिए श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य या रूपक का महत्त्व और भी अधिक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन-वाङ्मय में हस्तिमल्ल के पूर्व स्वतन्त्र नाट्य रचनाएँ नहीं थीं। उन्हें यह अभाव खला और उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध कथावस्तु के आधार पर नाटकों की रचना करके इस कमी को पूरा किया। इनके नाटक अभिनय के योग्य हैं जबकि संस्कृत के कुछ नाटक विस्तार और पद्यों की भरमार के कारण अभिनय के उतने योग्य नहीं हैं। सरसता और सरलता के कारण हस्तिमल्ल के नाटक दृश्यकाव्य की विधा के अनुरूप हैं। अतः संस्कृत के नाटककारों में हस्तिमल्ल का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ऐसे नाटककार और उनके कृतित्व का मूल्यांकन प्रस्तुत ग्रन्थ में करके लेखक ने उन्हें प्रकाश में लाने का समुचित और सफल प्रयास किया है। यह पुस्तक विद्वत्समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी मेरी आशा है। प्रारम्भ में लेखक ने संस्कृत-प्राकृत के प्रख्यात विद्वान् डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के मार्गदर्शन में हस्तिमल्ल के नाटकों का अध्ययन करते हुए एक शोध-प्रबन्ध तैयार किया था। जिसपर उन्हें पी-एच. डी. की उपाधि से अलंकृत किया जा चुका है। उसी शोध-प्रबन्ध में आवश्यक संशोधन-परिवर्धन करके उन्होंने यह पुस्तक तैयार की है जिसका प्रकाशन हम कर रहे हैं। शोध-प्रबन्ध को पुस्तकाकार रूप देने में जैन वाङ्मय के मूर्धन्य विद्वान् पंडित कैलाश चन्द्र जी शास्त्री ने जो योगदान दिया है उसके लिए हम उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की सुन्दर और आकर्षक छपाई का श्रेय रत्ना प्रिंटिंग कम्पनी, कमच्छा, वाराणसी के व्यवस्थापकों को है जिन्होंने बड़े उत्साह और कार्य-कौशल के साथ यह कार्य सम्पन्न किया है। इस प्रकार की पुस्तकों के प्रकाशन कार्य में उन्होंने एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

नागेन्द्र प्रसाद
निदेशक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-निवेदन

भारतीय संस्कृति के विकास में संस्कृत, प्राकृत एवं पालि भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतीय संस्कृति को वैदिक, बौद्ध और जैन संस्कृतियों की त्रिवेणी का संगम माना जाता है। बिहार प्रान्त में तीनों संस्कृतियों के शिक्षा केन्द्र स्थापित हैं जो संस्कृति एवं प्राचीन भाषाओं के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। दरभंगा में वैदिक संस्कृति और संस्कृत साहित्य, वैशाली में जैन संस्कृति एवं प्राकृत साहित्य तथा नालन्दा में बौद्ध संस्कृति और पालिसाहित्य के अध्ययन, अध्यापन और शोध की समुचित व्यवस्था है। बिहार शासन का वैदिक, जैन और बौद्ध विद्याओं के प्रचार-प्रसार के लिए यह प्रशंसनीय कार्य है।

वैशाली में जैन विद्या, अहिंसा एवं प्राकृत भाषा से वाङ्मय के अध्ययन, अध्यापन, शोध तथा प्रकाशन का कार्य होता है। इस हेतु यहाँ स्नातकों को शासन की ओर से सुविधायें तथा छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं। इस संस्थान की स्थापना में स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा प्रदत्त योगदान अविस्मरणीय है। स्व० माथुर जी की प्रेरणा से संस्कृत-प्राकृत के मूर्धन्य विद्वान, स्व० डा० हीरालाल जैन ने इस संस्थान का निदेशक पद स्वीकार किया था और इस संस्थान को विकसित किया था।

डा० हीरालाल जैन के उपरान्त डा० गुलाबचन्द्र चौधरी इस संस्था के निदेशक पद पर नियुक्त हुए थे। डा० चौधरी को प्राच्य विद्या साधकों की कठिनाइयों का साक्षात् अनुभव था। उन्होंने अनेक शोधकों को शोधकार्य के लिए प्रोत्साहित किया और जैन विद्या से सम्बन्धित शोध-प्रबन्धों के प्रकाशन में सहयोग दिया था। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मैंने अपने शोध प्रबन्ध के प्रकाशन हेतु उनसे अनुरोध किया था। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मेरा शोध प्रबन्ध डा० चौधरी के सामने प्रकाशित रूप में नहीं आ सका।

इस शोध प्रबन्ध के निर्माण में मेरे परम सहायक, संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभाशाली विद्वान स्व० डा० नेमिचन्द्र शास्त्री एम० ए० (संस्कृत प्राकृत, हिन्दी) ज्योतिषाचार्य, पी० एच० डी०, डी० लिट्० का महत्वपूर्ण योगदान रहा। यह शोध प्रबन्ध उनके ही निर्देशन में तैयार कर मगध विश्वविद्यालय, बोधगया में पी० एच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था। डा० शास्त्री मेरे परम हितैषी थे, उनके उपकार को मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकता हूँ।

परम सन्तोष की बात यह है कि स्व० डा० गुलाबचन्द चौधरी के उत्तराधिकारी संस्थान के वर्तमान निदेशक डा० नागेन्द्र प्रसाद एम० ए०, डी० लिट्० ने इस शोध प्रबन्ध के प्रकाशन में पूरी तत्परता दिखाई एवं रुचि के साथ इसका प्रकाशन किया, इसलिए मैं उनका चिर ऋणी रहूँगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाविद्यालय के शिक्षक पद पर नियुक्त होने के उपरान्त मेरे मन में शोध कार्य करने की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हुई थी। मध्यप्रदेश की शासकीय सेवा में होने के कारण, समय समय पर स्थानान्तरण होते रहते थे. ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालयों के नियमों के अनुसार, जैन विद्या सम्बन्धी-सुयोग्य निर्देशक के अभाव में शोध कार्य हेतु पंजीयन नहीं हो सका था। एक बार सागर में भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् की बैठक थी. मैं भी वहाँ गया था, वहाँ विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के सामने मैंने अपनी निर्देशक सम्बन्धी समस्या प्रस्तुत की। डा० शास्त्री ने निर्देशक होना तो स्वीकार कर लिया था परन्तु विश्वविद्यालय के नियमानुसार एक निर्देशक के निर्देशन में जितने छात्र शोध कार्य कर सकते हैं, उतने छात्र उनके निर्देशन में पहले से पंजीबद्ध थे और कार्य कर रहे थे। अतः उन्होंने आश्वासन दिया था कि जब किसी एक शोधकर्ता का शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हो चुकेगा, तभी मेरा पंजीयन होगा। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के इस आश्वासन के आधार पर मैं शोधकार्य में जुट गया, मैंने जैन सिद्धान्त भवन, आरा से रूपककार हस्तिमल्ल के नाटकों की उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त कीं। जैन साहित्य सदन दिल्ली, शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर आदि के समृद्ध ग्रन्थागारों के अनेक ग्रन्थों का अवलोकन आवश्यकतानुरूप किया, इस प्रकार शोध कार्य में गति आ गई। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री अध्यक्ष, संस्कृत प्राकृत विभाग, एच० डी० जैन कालेज, आरा का निर्देशन पाने के लिए कई बार आरा गया, अपने घर पर ही उन्होने मुझे समस्त प्रकार की सुविधाएं जुटाईं, उनके निर्देशन में यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हुआ और पी० एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। डा० शास्त्री का जितना अनुग्रह माना जाय, कम है। उन्होंने मेरे शोध प्रबन्ध को स्वयं ही कहीं से प्रकाशित कराने का आश्वासन दिया था, दुर्भाग्य से जनवरी १९७४ में उनके दिवंगत हो जाने से, इसका प्रकाशन नहीं हो पाया था।

रूपककार हस्तिमल्ल संस्कृत, प्राकृत एवं कन्नड़ भाषा के विद्वान थे। उनकी प्रतिभा नाटकों के प्रणयन में प्रस्फुटित हुई। उन्होंने दि० जैन शास्त्रों के कथानकों के आधार पर संस्कृत के छः नाटक, उदयन-राजकाव्य, श्रीपुराण, प्रतिष्ठाविधान तथा कन्नड भाषा में आदिपुराण आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी।

जैन ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर संस्कृत-नाटकों की रचना करने के कारण तेरहवीं शताब्दी के इस सशक्त नाटककार का संस्कृत-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। भास और कालिदास के नाटकों का सरलता और सरसता के कारण संस्कृत साहित्य में विशेष स्थान है। हर्षवर्धन के नाटकों में भी सरसता, सरलता के दर्शन होते हैं परन्तु उनके बाद के संस्कृत नाटकों में सरसता, सरलता कम होती गई तथा विस्तार बढ़ता गया जिनसे नाटक दृश्य के स्थान में पाठ्य नाटक बनते गए। संस्कृत नाटकों के प्रणयन में सरलता, सरसता तथा अभिनेयता की दृष्टिसे हस्तिमल्ल को तेरहवीं शताब्दी का सर्वाधिक प्रतिभाशाली नाटककार माना गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस प्रकार महाकवि अश्वघोष ने बौद्धधर्म के सिद्धान्तों के आधार पर बुद्धचरित सौन्दरनन्द महाकाव्य तथा शारिपुत्र प्रकरण नामक रूपक लिखे थे उसी प्रकार हस्तिमल्ल ने जैनधर्म संबंधी सिद्धान्तों के आधार पर संस्कृत नाटक लिखे हैं।

संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखक विद्वानों ने संस्कृत नाटकों का विवेचन करते हुए नाटककार हस्तिमल्ल तथा उनके नाटकों का नामोल्लेख मात्र किया है। एक दो विद्वानों ने नाटकों की कथा के संबंध में दो चार पंक्तियाँ भी लिखी हैं। इस नाटककार का समय नवमी शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक विद्वानों ने अपनी अपनी दृष्टि से माना है। मैंने अनेक उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उक्त नाटककार का समय बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के बीच निर्धारित किया है।

महाकवि हस्तिमल्ल के संस्कृत नाटकों की विस्तृत समीक्षा लिखकर तथा प्रकाशित करके शोध समीक्षा की अछूती भूमि को स्पर्श किया गया है। यद्यपि माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित अंजना पवनंजय नाटक की भूमिका में सम्पादक श्री पटवर्धन ने हस्तिमल्ल और उनके नाटकों के संबंध में कुछ प्रकाश डाला था, परन्तु प्रस्तुत समीक्षात्मक अध्ययन में अनेक प्रमाणों के आधार पर भ्रमपूर्ण मान्यताओं का निराकरण करके, नवीन उद्‌भावनायें की गई हैं।

श्री पटवर्धन ने अंजना पवनंजय नाटक की कथावस्तु का मूलस्रोत विमलसूरि के पउमचरियं को माना है, जबकि अनेक तथ्यों के आधार पर मैंने यह निश्चित किया है कि—अंजना पवनंजय नाटक की कथावस्तु का मूलस्रोत रविषेणाचार्य का पद्मपुराण है, विमलसूरि का पउमचरियं नहीं है। नीचे दिए गए पात्रों के नामों की भिन्नता से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है।

विमलसूरि के पउमचरियं के पात्रों के नाम	अंजना पवनंजय नाटक के पात्रों के नाम	रविषेणाचार्य के पद्मपुराण के पात्रों के नाम
अंजना की माता-हृदयसुन्दरी	मनोवेगा	मनोवेगा
नायक-पवनवेग, वायुवेग	पवनंजय	पवनंजय
गन्धर्व की पत्नी-चित्रमाला	रत्नचूडा	रत्नचूडा
रावण का पुत्र-मेघवाहन	मेघनाद	मेघनाद

रूपकों की समीक्षा प्रमुख रुप से भारतीय काव्य शास्त्र के समीक्षा के सिद्धान्तों के आधार पर की गई है परन्तु यथास्थान पाश्चात्य समीक्षा के सिद्धान्तों को भी ध्यान में रखकर समीक्षा की गई है।

विश्वास है कि इस शोध प्रबन्ध से न केवल संस्कृत के नाटकों पर शोध करने वाले छात्रों के लिए मार्गदर्शन मिलेगा बल्कि संस्कृत के महाकाव्य, गद्यकाव्यों पर भी शोध करने वालों को भी सहायता मिलेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुद्रण हेतु कतिपय सीमाओं को ध्यान में रखकर शोध प्रबन्ध को संक्षिप्त करना पड़ा। ५०० पृष्ठों का प्रबन्ध ३०० पृष्ठों में किया गया। संस्कृत नाटकों के क्रम की रूपरेखा में, संस्कृत नाटकों का विकास दर्शाते हुए, जैन नाटककारों के विशेष योंगदान का उल्लेख करके हस्तिमल्ल का स्थान निर्धारित किया गया था। उस अध्याय को छोड़ना पड़ा। इसके अतिरिक्त समीक्ष्य नाटकों में उल्लिखित प्राचीन स्थानों के वर्तमान सन्दर्भ में परिचय, जैनदर्शन संबंधी पारिभाषिक शब्दों के अर्थ, प्रासंगिक कथाएँ, प्रकृति चित्रण आदि अनेक अध्यायों को प्रेस कापी तैयार करते समय छोड़ना पड़ा है और लगभग सभी अध्यायों को संक्षिप्त किया गया है।

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री मेरे गुरु हैं। उनकी छत्रच्छाया मेरे ऊपर रहती है। उन्होंने मुझे जैन सन्देश साप्ताहिक के सहायक सम्पादक का मानद पद प्रदान किया है। प्रेस कापी तैयार करने में वे मेरे मार्गदर्शक रहे हैं। डा० पन्नालाल साहित्याचार्य और पं० अमृतलालजी शास्त्री दर्शनाचार्य, साहित्याचार्य भी मेरे गुरु हैं उन्होंने संबंधित नाटकों के अशुद्धि के कारण दुरूह अंशों को बोधगम्य कराया था। डा० गोकुलचंद्र जैन की शोधपरक दृष्टि है और परिमार्जित भाषा है। उन्होंने भी उचित परामर्श देकर मेरे कार्य को सुगम बनाया। मैं उपर्युक्त विद्वानों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हुआ उनका आभार स्वीकार करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मुद्रण फरवरी माह में हुआ। उन्ही दिनों मेरा स्थानान्तरण जांजगीर; जिला बिलासपुर के शासकीय महाविद्यालय में हो गया था। छात्रों के हित और अपने दायित्व को ध्यान में रखते हुए, मैं प्रकाशन के समय वाराणसी उपस्थित नहीं हो सका। इसलिए मुद्रण में अधिक अशुद्धियां हुई। विवश होकर अशुद्धि संशोधन पत्र संलग्न करना पड़ा। अशुद्धि संशोधन पत्र तथा सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थों की सूची के प्रूफ संशोधन का कार्य हमारे मित्र डा० फूलचन्द्र प्रेमी ने किया है। इसके अतिरिक्त मैं अपने चाचा स्व० धर्मदास जैन, अनुज श्री कपूरचन्द जैन एम० ए० एवं धर्मपत्नी श्रीमती क्रान्ति जैन का भी उल्लेख कर देना उचित समझता हूं जिनके सहयोग से निश्चिन्तता पूर्वक इस ग्रन्थ के लेखन का कार्य पूरा कर सका और सफलता मिली।

कन्छेदीलाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

रूपककार हस्तिमल्ल का समय, जीवन एवं कृतित्व १—३६

हस्तिमल्ल का समय १, जन्म एवं कार्यस्थान ९, वंश परम्परा १४, जीवन २०, रूपककार की बहुमुखी प्रतिभा २४, रचनाएँ ३२ और प्राप्त नाटकों का लेखनक्रम ३५।

द्वितीय अध्याय

विक्रान्त कौरव नाटक की समीक्षा ३७—९०

वस्तु समीक्षा—कथावस्तु ३७, कथा का मूलस्रोत ४१, वस्तु विवेचन ४४ अर्थ-प्रकृतियां—पताका ४४ प्रकरी ४५, बीज, विन्दु ४५ कार्य ४६ अवस्थाएँ—आरंभ ४६ यत्न ४६ प्राप्त्याशा ४६, नियताप्ति ४७ फलागम ४७ सन्धियां—मुख सन्धि ४७ प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श सन्धि ४८ निर्वहण सन्धि ४८ भारतीवृत्ति ४९, नाटक का नामकरण ५०।

पात्रों का शील निरूपण—कौरवेश्वर जयकुमार ५१ नन्द्यावर्त ५३ विशारद ५४ महाराज अकम्पन ५५ सौघातकि ५५, विट आर्यभद्रिलक ५५ प्रतीहार महेन्द्रदत्त ५७ रत्नमाली ५७, सुलोचना ५८ नवमालिका ६०।

भाव सौन्दर्य तथा कला सौन्दर्य ६०, रस ६१ गुण ६३ वस्तु व्यंजना ६५ अलंकार व्यंजना ६५ शाब्दो व्यंजना ६६ लक्षणा ६६ अलंकार ६७ छन्द ६९ सुभाषित ७१ संवाद एवं भाषा ७१।

संस्कृति संबंधी संकेत—युद्ध एवं युद्ध सामग्री—७४ वाद्य ७७ वास्तुकला ७७, वेशभूषा, प्रसाधन, अलंकरण एवं विनोद साधन ७९, अन्य रीति-रिवाज ८२।

तुलना ८५–८८

उद्देश्य-उपसंहार ८८–९०

तृतीय अध्याय

अंजना-पवनंजय नाटक की समीक्षा ९१–१५५

कथावस्तु और उसकी समीक्षा—कथासार ९१ आधिकारिक कथा ९५ प्रासंगिक कथा-पताका, प्रकरी ९५ अर्थप्रकृतियां—बीज ९६ विन्दु, कार्य ९७ अवस्थाएँ—प्रारंभ, यत्न, प्राप्त्याशा ९८, नियताप्ति ९९ फलागम १०० सन्धियां—मुखसन्धि १०० प्रतिमुख सन्धि, गर्भसन्धि विमर्शसन्धि १०१ निर्वहणसन्धि १०२ पताकास्थानक, भारतीवृत्ति, प्ररोचना १०२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पात्रपरिचय रूपरंग तथा रेखाएँ—नायक पवनंजय १०३ प्रहसित (विदूषक) १०७, प्रतिसूर्य १०८ मणिचूड गन्धर्व १०९ चमूरक वनेचर ११० चेट १११ लब्धभूति १११ हनुमान ११२ अंजना ११२ वसन्तमाला; ११४ रत्नचूडा युक्तिमति ११६।

भावपक्ष एवं कलापक्ष—रस ११७ गुण १२२ अलंकार १२२ छन्द १२४।

संवाद योजना एवं भाषा प्रयोग १२६-१३०।

संस्कृति और सभ्यता-वास्तुकला १३० वेशभूषा १३३ रीतिरिवाज १३४ विनोद साधन १३८ खाद्य, वाद्य १३९ प्रसाधन और अलंकार १३९ युद्ध सामग्री १४०।

अन्य नाटकों से तुलना १४१ उत्तर रामचरित से १४२ विक्रमोर्वशीय से १४४ मालती माधव से १४९ कादम्बरी की शैली से १५०।

अभिनेयत्व, उद्देश्य एवं उपसंहार १५१-१५५।

चतुर्थ अध्याय

मैथिलीकल्याण नाटक की समीक्षा १५६-१८५

कथावस्तु और उसका विवेचन—कथावस्तु १५६ वस्तुत्व की समीक्षा १६० अर्थ-प्रकृतियाँ—बीज, बिन्दु, पताका १६० प्रकरी, कार्य १६१ अवस्थाएँ—आरंभ, यत्न १६२ प्राप्त्याशा, नियताप्ति १६३ फलागम १६४ पताकास्थानक १६४ सन्धियाँ—मुख, प्रतिमुख, गर्भ १६४ विमर्श, निर्वहण १६५ नाटक का नाम-करण १६५।

पात्रों का परिचय और उनका चरित्रांकन—राम १६६ लक्ष्मण १६८ जनक १६८ विदूषक गार्ग्यायण १६८ सीता, विनीता १६९ कौमुदिका, सुकुमारिका १७०।

रसाभिव्यंजना एवं शब्द सौन्दर्य-रस १७० अलंकार सौन्दर्य १७३ छन्द १७५ सुभाषित १७६।

संवाद योजना एवं भाषा १७७-१७९।

सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अवस्थाओं की झलक—सामाजिक प्रथाएँ १७९ वेशभूषा, प्रसाधान, अलंकरण १८१ वास्तु निर्माण १८२ आर्थिक स्थिति १८३ धार्मिक तथा अन्य विचारधारा १८३।

अभिनेयत्व, उपसंहार १८४-१८५।

पंचम अध्याय

सुभद्रा नाटिका की समीक्षा १८६-२७५

कथावस्तु उसका स्रोत और समीक्षा—कथावस्तु १८६ कथावस्तु का स्रोत १८९ नाटिका का स्वरूप और सुभद्रा का नाटिकात्व १९० कथावस्तु का गठन और उसकी शास्त्रीय समीक्षा १९८ अर्थप्रकृतियां—बीज, बिन्दु, २०० पताका प्रकरी, कार्य २०० अवस्थाएँ—आरंभ २०१, यत्न, प्राप्त्याशा २०१ नियताप्ति, फलागम २०२,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्धियां—मुख, प्रतिमुख २०२, गर्भ २०३, विमर्श २०४ निर्वहण२०५ पताका-स्थानक २०५ नान्दीपाठ, आमुख २०७।

पात्रों का शीलनिरूपण—राजा भरत २०७, विद्याधरराज नमि २१७ सेनापति अयोध्य २१९ तार्क्ष्यदत्त २२० कंचुकी २२० विदूषक २२१ स्त्रीपात्र-सुभद्रा २२६ देवी वैलाती २२९ मन्दारिका २३१ रतिषेणा २३२, मंजरिका २३३ तरंगिका २३३ नाटकीय पात्रों के नाम २३३।

कथोपकथन एवं भाषा २३४ संबोधन २३५ कथोपकथन चरित्रानुकूल २३६, घटनानुकूल २३७।

रसाभिव्यंजना तथा काव्य सौन्दर्य—शृंगार रस २३९ भावोदय, भावशान्ति २४६ भावसन्धि २४६ भावशबलता २४७ अलंकार—शब्दालंकार २४९ अनुप्रास २५० यमक २५१ अर्थालंकार—उपमा २५१, अपह्नुति, समासोक्ति २५३ विरोधाभास २५३, रूपक २५४, आक्षेप २५४ सहोक्ति, अर्थान्तरन्यास, तुल्ययोगिता, अतिशयोक्ति २५५ सुभाषित प्रयोग २५५ छन्द २५७।

नाटिका में प्रतिपादित संस्कृति-राज्य व्यवस्था २५९ सामाजिक व्यवस्था, स्थिति तथा रीतिरिवाज २६२, अलंकार-परिधान २६७ धार्मिक स्थिति तथा अन्य समृद्धि २६८। सुभद्रा नाटिका की रत्नावली नाटिका से तुलना २६९–२७४।

एको हि दोषो गुण सन्निपाते २७४।

उपसंहार २७६।

षष्ठ अध्याय

उपसंहार २७७–२८२

परिशिष्ट-सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं की तालिका २८३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम अध्याय

रूपककार हस्तिमल्ल का समय, जीवन एवं कृतित्व

संस्कृत के अन्य रूपककारों की भाँति हस्तिमल्ल का समय, स्थान एवं अन्य जीवन वृत्त उपलब्ध नहीं होता है, इसलिए इनका निश्चय उनके उपलब्ध साहित्य तथा अन्य सामग्री के आधार पर करना होगा। उसे सामान्यतया दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) अन्तः-साक्ष्य—अर्थात् हस्तिमल्ल द्वारा रचित ग्रन्थों की पुष्पिकाएं एवं प्रशस्तियाँ।

(२) बाह्य-साक्ष्य—अर्थात् परवर्ती साहित्यकारों द्वारा हस्तिमल्ल के उल्लेख तथा अन्य साक्ष्य। इनके आधार पर यहाँ क्रमशः हस्तिमल्ल के समय, जीवन एवं कृतित्व पर विचार किया जायगा।

रूपककार हस्तिमल्ल का समय

हस्तिमल्ल के समय को अधिकतम निचली सीमा ९वीं शती में ले जाने वाले श्री एम० कृष्णमाचार्यर हैं।[1] इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई हेतु नहीं दिया है। इस सीमा का आधार यह हो सकता है कि हस्तिमल्ल ने अपने नाटक का स्रोत जिनसेन के आदि पुराण से ग्रहण किया है। जिनसेन राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष के संरक्षण में थे। अमोघवर्ष का समय ८१५-८७८ है।[2] जिनसेन के समय से इतनी बात सिद्ध होती है कि हस्तिमल्ल का समय इससे पूर्व नहीं जा सकता है।

हस्तिमल्ल की अगली सीमा १४वीं शताब्दी है। इस सीमा का आधार यह है कि अय्यपार्य ने अपना जिनेन्द्र-कल्याणाभ्युदय शक् सम्वत् १२४१ (वि० सं० १३७६) में पूर्ण किया था। उसमें हस्तिमल्ल का उल्लेख है।[3] इसी आधार पर

---

१. Hastimalla probably lived in the 9th Century A. D. (History of Classical Sanskrit Literature, page 641-668).

२. दक्षिण भारत में जैन धर्म, पृष्ठ ९०

३. वीराचार्य सुपूज्यपाद जिनसेनाचार्य संभाषितो
यः पूर्वः गुणभद्र सूरि वसुनन्दीन्द्रादि नन्यूर्जितः
यश्चाशाधरहस्तिमल्ल कथितो यश्चैकसन्धिस्ततः
तेभ्यः स्वाहृत्यसारमध्य रचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः
.......अय्यपार्यविदुपा विनिर्मिताकृतवरप्रसादतः
शाकाब्दे विधुवार्धिनेत्र हिमगो (१२४१) सिद्धार्थ संवत्सरे
जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की प्रारंभिक तथा अन्तिम प्रशस्ति
(जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह, भाग १)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्व० मुख्तार सा० ने हस्तिमल्ल को चौदहवीं शती का विद्वान् माना था।[1] स्व० नाथूराम 'प्रेमी' का तर्क यह है कि मुख्तार सा० ने ब्रह्मसूरि को १५वीं शती का विद्वान माना है, ब्रह्म सूरि हस्तिमल्ल के पौत्र के पौत्र थे। ब्रह्मसूरि हस्तिमल्ल के १०० वर्ष बाद हुए होंगे, इसलिए हस्तिमल्ल १४वीं शती में हुए हैं।[2] कर्नाटक कवि चरित्र के कर्ता आर० नरसिंहाचार्य ने हस्तिमल्ल का समय १२९० (वि० सं० १३४७) निश्चित किया है; इसी मत को विंटरनिट्ज ने अपने इतिहास में उद्धृत किया है।[3] अन्य विद्वानों ने भी इसी समय को प्रामाणिक मानकर उल्लेख किया है।[4] डा० ज्योतिप्रसाद ने हस्तिमल्ल का समय १२५० स्वीकार किया है।[5] समय की इस पूर्व सीमा नवमी शती और उत्तरी सीमा १४वीं शती को १२वीं सदी के उत्तरार्द्ध और १३वीं शती के प्रारंभ में लाया जा सकता है। इसके साक्ष्य निम्न प्रकार हैं।

(१) प्रभेन्दु मुनि का साक्ष्य

हस्तिमल्ल द्वारा रचित अंजना पवनंजय नाटक की एक हस्तलिखित प्रति में नाटक की समाप्ति के पश्चात् प्रभेन्दु मुनि को नमस्कार किया गया है।[6] इसी प्रकार सुभद्रा नाटिका की दो पाण्डु-लिपियों की प्रशस्ति में प्रभेन्दु मुनि का उल्लेख वर्तमान काल की लट् लकार में है।[7] इस उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि उस समय प्रभेन्दु मुनि विद्यमान थे।

प्रभेन्दु मुनि के प्रति प्रशंसात्मक विशेषण यह अभिव्यञ्जना कराते हैं कि उस समय उनकी विशेष ख्याति थी और ख्याति का कारण उस समय की उनके धर्म के प्रति महान् सेवा और उनका प्रभाव रहा होगा। मुनि प्रभेन्दु का एक विशेषण 'मारप्रमोदापहः' है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये आजन्म ब्रह्मचारी रहे हों और बचपन से ही धर्म-सेवा में तल्लीन रहे हों। संयमी व्यक्ति की आयु भी अधिक हुई होगी। सौ वर्ष तक की आयु प्राप्त करना योगी के लिए कठिन नहीं है। प्रभाचन्द गुरु का नाम इतिहास में होयसल नरेश विष्णुवर्धन के समय में मिलता है। ये मेघचन्द त्रैविधदेव के शिष्य थे, विष्णुवर्धन राजा की पत्नी शान्तला जैन धर्म की बड़ी

---

१. जैन साहित्य के इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ १५९
२. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ २६५
३. Hastimall Pupil of Govind Bhatta wrote in about 1290 A.D. in the South India several Dramas (A History of Indian Literature, Vol. II, Page 546)
४. जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार, पृष्ठ ३६
५. The Jain Sources of the History of Ancient India, Page 228.
६. समाप्तं चेदम् अंजनापवनंजय नाटकम्। कृतिरियं हस्तिमल्लस्य, श्रीमत्प्रभेन्दुमुनये नमः (अंजनापवनंजय, पृष्ठ ११९)
७. बाभाति प्रबलप्रभेन्दुमुनियः, श्री जैनयोगी भुवि। (सुभद्रा, ९१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्त थी।[1] शान्तला के पिता पेरग्गडेमारसिंगय्य कट्टर शैव थे और माता मचिकव्वे परम जैन थीं। रानी ने श्रवण वेलगोला में शान्ति जिनेन्द्र की मूर्ति भी स्थापित करायी थी। सन् ११३१ में शान्तला ने बेंगलूर से ३० मील दूर शिवगंगे में जो समाधिमरण धारण किया था, उस समय प्रभाचन्द उपस्थित थे।[2] यह हो सकता है कि उस समय प्रभाचन्द की आयु बहुत अधिक न हो और उनके गुरु त्रैविधदेव की आयु कुछ अधिक हो। दूसरा उल्लेख मिलता है कि कुलशेखर अलुपेन्द्र देव प्रथम (११७६ से १२०० ई०) के समय में तुलु देश में जैन धर्म को राजकीय सहायता प्राप्त थी; उस समय प्रभाचन्द आदि जैन गुरुओं का सम्मान किया गया था।[3] यही प्रसिद्ध प्रभाचन्द गुरु ही प्रभेन्दु मुनि थे, क्योंकि कई स्थानों पर मुनि प्रभाचन्द के नाम से इनका उल्लेख आया है। अब प्रश्न यह है इनका नाम प्रभाचन्द है और हस्तिमल्ल ने प्रभेन्दु नाम से उल्लेख किया है, उसका कारण यह हो सकता है कि हस्तिमल्ल ने चन्द का पर्यायवाची इन्दु शब्द उनके नाम में जोड़ दिया हो। हम नाटकों के अनुशीलन में देखेंगे कि पुराणों में इस प्रकार के पर्यायवाची नाम मिलते हैं, जैसे सोमवंशी को चन्द्रवंशी, पवनञ्जय को पवनवेग, वायुकुमार, मनोवगा को हृदयवेगा आदि। दूसरी बात यह है कि मुनि की दीक्षा लेते समय नाम के एक देश में परिवर्तन करके और भी अधिक सौन्दर्य ला दिया जाता है। यह प्रथा आज तक चली आ रही है। इस तरह उनका प्रभाचन्द नाम अन्त में प्रभेन्दु हो गया होगा। कविगण प्रायः नामों में भी पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग कर दिया करते हैं, ऐसे कई दृष्टांत हैं। यह बात निश्चित है कि हस्तिमल्ल के नाटक रचने के समय लगभग ११९० ई० के आस-पास वे वृद्ध हो गये होंगे और इसलिए हस्तिमल्ल ने उन्हें योगीराट् शब्द का व्यवहार किया है।

इस दृष्टि से हस्तिमल्ल के नाटकों का रचनाकाल ईसा की १२ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग होना चाहिए। यह बात हो सकती है कि उस समय हस्तिमल्ल की अवस्था कम हो, एक तो श्रृङ्गार रस के नाटकों का प्रणयन कम अवस्था का द्योतक है, युवा व्यक्ति ही श्रृङ्गार रस की रचना की ओर प्रवृत्त होता है। धर्म-प्रेमी साहित्यकार अधिक आयु होने पर धार्मिक ग्रन्थों की कथा को श्रृंगार रस के नाटक का आधार न बना कर शान्त रस का आधार बनाता है। इस प्रकार इनके नाटकों की रचना का काल सन् ११८५ से १२०० ई० के बीच होना चाहिए। उस समय उनकी आयु २५ वर्ष से ३५ वर्ष के बीच हो सकती है। इस दृष्टि से उनका जन्म सन् ११६० के आस-पास होना चाहिए।

---

१. अनेकान्त पत्रिका, फरवरी १९६५ में होयसल नरेश विष्णुवर्धन और जैन धर्म पर के० भुजबली शास्त्री का लेख

२. वही

३. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृष्ठ ३३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) ऐतिहासिक राजा भीम का आधार

विक्रान्तकौरव नाटक में स्वयंवर में पहुँचने वाले अनेक देशों के राजाओं में भीषण चेष्टा वाले भीम का उल्लेख भी है।[१] उसी नाटक के युद्ध प्रसंग में भी सौराष्ट्र के राजा भीम का उल्लेख है, जो हाथी पर चढ़ कर युद्ध करता था।[२] गुजरात के इतिहास में अजयपाल के अनुज भीम (द्वितीय) का वर्णन मिलता है, जो सन् ११७९ में गद्दी पर आसीन हुआ था। वह भीम भी स्वभावतः भीषण चेष्टा वाला था।[३] विक्रान्तकौरव के अनुसार भीम सोमेश्वर जयकुमार के विपक्ष में युद्ध करता था। ऐतिहासिक भीम ने भी सांभर सोमेश्वर के साथ युद्ध किया था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि हस्तिमल्ल ने विक्रान्तकौरव में तत्कालीन राजा भीम का उल्लेख किया है। इस उल्लेख से हस्तिमल्ल को १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानने की पुष्टि होती है।

(३) नरसिंहाचार्य के कथन का आधार

कर्नाटक कवि चरित्र के कर्ता आर० नरसिंहाचार्य ने यद्यपि हस्तिमल्ल का समय १२९० माना है, किन्तु उन्होंने पार्श्वपण्डित का समय एक स्थान पर १२०५ और दूसरे स्थान पर १२२२ माना है। पार्श्वपण्डित हस्तिमल्ल का एकमात्र पुत्र था, जो हस्तिमल्ल की प्रौढ़ अवस्था में हुआ होगा। इस आधार पर हस्तिमल्ल का समय उनके पुत्र पार्श्वपण्डित के समय से पूर्व १२ वीं सदी का उत्तरार्ध होना चाहिए।

(४) भारत के प्रदेशों की स्थिति का साक्ष्य

विक्रान्तकौरव में गुज्जरात्र, केरल, पाण्ड्य, चोल, काश्मीर और दशार्ण देशों का उल्लेख आया है। कवि ने स्वयंवर की भीड़-भाड़ तथा महिमा बताने के लिए अनेक देशों के राजाओं के पहुँचने का उल्लेख किया है, और लिखते समय वर्तमान के समय के देशों का उल्लेख हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। इस दृष्टि से ईसा की १२ वीं शताब्दी के अन्त का समय संगत जान पड़ता है, क्योंकि उस समय उपर्युक्त सभी राज्य अस्तित्व में थे। चौदहवीं शताब्दी का समय मानते हैं, तो उस समय उनमें से कई राज्यों का अस्तित्व मिट चुका था। केरल और पाण्ड्य १३ वीं सदी में, चोल बारहवीं सदी में अपना रूप खो चुके थे। काश्मीर में भी १४ वीं शताब्दी में मुस्लिम राज्य हो गया था। इसके अतिरिक्त यदि विक्रान्तकौरव नाटक की संस्कृति को देखें, तो वह भी १२ वीं शताब्दी के अन्त और तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ के अनुरूप है। वाराणसी की विलासिता का तथा संस्कृति का वर्णन गुज्जरात्र के डाढ़ी वाले सैनिकों का वर्णन उक्त मान्यता के विपरीत नहीं जाता है।

---

१. निसर्गभीषणचेष्टितः सौराष्ट्रो भीमः ससंरंभमवोचत्।
विक्रान्तकौरव (चौखम्बा) पृष्ठ १२९

२. वही, पृष्ठ १६०

३. गुजरात का इतिहास (प्रथम भाग, उत्तरार्ध) पृष्ठ २२७-२४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) आशाधर के समकालीन होने का अनुमान

अय्यपार्य नामक विद्वान ने जो प्रतिष्ठा पाठ शक सम्वत् १२४१ (सन् १३२०) में लिखा था, उन्होंने उसकी आरम्भिक प्रशस्ति में पं० आशाधर और हस्तिमल्ल के नाम का उल्लेख किया है। उस प्रशस्ति में यद्यपि आशाधर का उल्लेख पहिले और हस्तिमल्ल का उल्लेख आशाधर के नाम के बाद में है, किन्तु इससे केवल यही समझना ठीक नहीं है कि आशाधर हस्तिमल्ल से पहिले हो चुके थे। उससे यह भी समझा जा सकता है कि आशाधर और हस्तिमल्ल समकालीन विद्वान थे, क्योंकि दोनों का उल्लेख एक ही वाक्य में किया गया है।[1] अब प्रश्न यह है कि यदि दोनों समकालीन विद्वान थे, तो आशाधर का नाम पहिले क्यों आया ? इसके दो समाधान हैं। एक तो दोनों का नाम एक साथ नहीं लिखा जा सकता है, इसलिए किसी एक का नाम पहिले लिखना ही पड़ता। दूसरी बात यह है कि व्याकरण की दृष्टि से द्वन्द्व समास में स्वर से आरम्भ होने वाला पद पहिले रखा जाता है और वह पद भी पहिले रखा जाता है जिसमें कम मात्राएँ (स्वर) होती हैं।[2] एक बात यह भी हो सकती है कि पं० आशाधर ने सागार-धर्मामृत और अनगार-धर्मामृत जैसे चरणानुयोग के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं, जिनके कारण वे धार्मिक आचार्य की दृष्टि से विशेष मान्य हैं; इसलिए भी उनका नाम समकालीन होने पर पहिले आया होगा।[3]

इस दृष्टि से मेरी समझ में हस्तिमल्ल पं० आशाधर के समकालीन हैं। पं० आशाधर जी ने अपनी प्रशस्ति में धारा-नरेश विन्ध्यवर्मा का उल्लेख किया है।[4] इनका समय वि० सम्वत् १२१७ से १२३७ (सन् ११६१ से ११८१) तक माना गया

---

१. यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो
आरम्भिक प्रशस्ति जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय—ले० अय्यपार्य

२. (क) अल्पाच तरम् २।२।३४, पृष्ठ ५२३ सिद्धान्त कौमुदी तथा १।३।१००
जैनेन्द्र व्याकरणम्, पृष्ठ ६४
(ख) अजाद्यदन्तम २।२।३३, पृष्ठ ५२२ सिद्धान्त कौमुदी

३. (क) अभ्यर्हितं च वार्तिक सिद्धान्त कौमुदी
(ख) यच्चार्चितं द्वयोः कातंत्र २।५।१३, पृ० १०८

४. (अ) आशाधर त्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौंदर्यमजर्यमार्य
सरस्वतीपुत्रतया यदैतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपञ्चः
इत्युपश्लोकितो विद्वद् विल्हेणकवीशिना
श्रीविन्ध्य भूपतिमहासान्धिविग्रहिकेण यः (सागार धर्मामृत भूमिका, पृ० ७)
(ब) म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति
त्रासाद्विन्ध्यनरेन्द्र दोः परिमलस्फूर्जत्रिवर्गौजसि
प्राप्तो मालवमण्डले बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमिति वाक्वशास्त्रे महावीरतः।
(अनगार धर्मामृत, अन्त्य प्रशस्ति, पृष्ठ ६८७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। विद्वानों का अनुमान है कि पं० आशाधर मांडलगढ़ (अजमेर) छोड़ कर विन्ध्यवर्मा के समय में धारा नगरी में आये थे। यदि पं० आशाधर का जन्म ईसा की १२ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग भी माना जाय, तब भी हस्तिमल्ल का समय वही बैठता है जो कि मैंने माना है। पं० आशाधर का अन्तिम ग्रन्थ अनगार-धर्मामृत है, जो सम्वत् १३०० (सन् १२४४) में समाप्त हुआ था।[१]

(६) जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की प्रशस्ति का आधार

अय्यपार्य ने जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की अन्त्य प्रशस्ति में अपनी परम्परा दी है। इसमें पिता पुत्र की वंश परम्परा न मान कर गुरु शिष्य परम्परा मानना अधिक उपयुक्त है। अय्यपार्य ने यह ग्रन्थ सन् १३२० में पूर्ण किया था। उसमें अय्यपार्य ने अपने लिए विद्वान विशेषण भी लगाया है। उस समय उनकी आयु प्रौढ़ विद्वान होने की दृष्टि से लगभग ३५ वर्ष मानें, तो उनका जन्म सन् १२८५ के आस-पास होना चाहिए। अय्यपार्य हस्तिमल्ल की शिष्य परम्परा में पाँचवीं पीढ़ी में हैं। एक-एक पीढ़ी में २०, २० या २५, २५ वर्ष का समय मानें, तब भी हस्तिमल्ल का समय ईसा की १२ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और १३ वीं शताब्दी के मध्य तक माना जा सकता है। उनका जन्म तो १२वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही मानना होगा। प्रशस्ति के अनुसार हस्तिमल्ल के कुल (विद्याकुल) में गुणवीर सूरि, गुणवीर सूरि के शिष्य श्री पुष्पसेन, पुष्पसेन के शिष्य श्री करुणाकर थे। यही करुणाकर अय्यपार्य के पिता थे।[२]

---

१. नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत्
विक्रमाब्दशतेष्वेषा त्रयोदशसु कार्तिका,
(अनगार धर्मामृत की अंतिम प्रशस्ति, पृष्ठ ६९१)

२. जीयादशेषकविराज चक्रवर्ती श्री हस्तिमल्ल इतिविश्रुतपुण्यमूर्तिः
तस्यान्वये वरगुणो गुणवीर सूरिः साक्षात् तपोबलविनिर्जितशम्बरारिः
आसीत् तत्प्रियशिष्यः कामक्रोधादि दोष रिपु विजयी
श्री पुष्पसेन नामा कोविदेक गुरुः·······
तदीय शिष्योऽजनि दाक्षिणात्यः
श्रीमान् द्विजन्मा भिषजां वरिष्ठः
जिनेन्द्रपादाम्बुरुहेक भक्तः
सागारधर्मः करुणापरारथः
तस्यैव पत्नी·······यदर्कमाम्बा·······
तयोरासित सूनुस्सदमलगुणाढ्यः
स्याद्वयपार्य इति काश्यपगोत्रवर्यो
अय्यपार्य विदुषा विनिर्मिता कृतवरप्रसादतः
शाब्दे विधुवार्धिनेत्र हिमगौ (१२४१ शक) सिद्धार्थ संवत्सरे माघे मासि—इत्यादि।
जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, प्रथम भाग, पृष्ठ ११२-११५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७) ब्रह्मसूरि का प्रतिष्ठासारोद्धार

हस्तिमल्ल के वंशज ब्रह्मसूरि का समय १५वीं शताब्दी असंदिग्ध प्रमाणों पर आधारित नहीं है, जैसा कि अय्यपार्य का समय १४वीं शताब्दी बिल्कुल प्रमाणित है। मेरी समझ में ब्रह्मसूरि का समय भी १४वीं शताब्दी है। हस्तिमल्ल से ब्रह्मसूरि को विद्वान चौथी पीढ़ी में मानते हैं, परन्तु ब्रह्मसूरि हस्तिमल्ल की पाँचवी पीढ़ी में हुए हैं। विद्वानों की पीढ़ी में साधारण गृहस्थी की भाँति २५, २५ वर्ष का ही अन्तर न मानकर अधिक अन्तर भी माना जा सकता है, क्योंकि उनके विवाह विद्याध्ययन के बाद अधिक अवस्था में भी हुए हों ऐसा हो सकता है; दूसरी बात यह भी है कि जैसे हस्तिमल्ल के एक ही पुत्र था, हो सकता है कि वह उनको ४० वर्ष की आयु के बाद हुआ हो। कई लोगों के यहाँ देखा है कि प्रारंभ में कोई सन्तान नहीं होती और बाद में एक-दो सन्तानें ढलती अवस्था में होती हैं। हस्तिमल्ल के पिता को प्रारंभ में सन्तानें नहीं थीं, उन्हें स्वर्णयक्षी की आराधना के बाद सन्तानें प्राप्त हुई थीं। इसी प्रकार हस्तिमल्ल के पौत्र चन्दप का एक ही पुत्र विजय था और उसका पुत्र इन्द्रविजय भी अकेला था और ब्रह्मसूरि भी उनके इकलौते पुत्र रहे हों। इस प्रकार एक-एक सन्तानवाली पीढ़ी में २५ वर्ष का ही नहीं ३५, ३५ वर्ष का भी अन्तर मानें तो ब्रह्मसूरि से पाँचवीं पीढ़ी पूर्व में होने वाले हस्तिमल्ल[१] का समय ईसा की १२वीं शताब्दी के अन्त तक जा सकता है।

(८) सत्यवाक्य नाम का साक्ष्य

प्रभाचन्द का अस्तित्व ईसा की पूरी १२वीं शताब्दी भर मिलता है। प्रभाचन्द के शिष्य वीर कोंगाल्देव राजा ने एक सत्य वाक्य जिनालय का निर्माण कराया था। पुत्रों का नामकरण करने में अनुकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है।[२] गोविन्द भट्ट ने संभवतः इसी मन्दिर के नाम के आधार पर अपने द्वितीय पुत्र का नाम सत्यवाक्य रखा है। सत्यवाक्य अपने छह भाइयों में द्वितीय और हस्तिमल्ल

---

१. तद्धस्तिमल्लतनुजो भुवि सुप्रसिद्धः सद्धर्मपालकमहोज्वलकीर्तिनाथः
तद्धर्मवर्धयितुमप्यखिलाणमज्ञः श्रीपार्श्वपण्डितबुधोऽविशदन्यराजकम्
तत्सूनवश्चन्दपचन्द्रनाथवैजय्यजोयाश्च क्रमाद् बभुवुः
सद्वर्तनानुचरितोज्वल चन्दपार्यसूनुः सुशास्त्रविदभूद् विजयोद्विजोत्तमः
तत्संभवः सकलशास्त्र कलाधिनाथो—
—नाम्नेन्द्रविजयो जिनयायजूकः
शास्त्राम्भोजातमास्वज्जिनपदनखसच्चन्द्रिका चकोरं
विजयेन्द्रः सुषुवे हि तत्प्रणयिनी श्रीनामधेया च यम्
सद्धर्माब्धिसुपूर्णचन्द्रममलं सम्यक्त्वरत्नाकरम्
तत्पुत्रं खलु ब्रह्मसूरिणमिति प्रख्यातभाग्योदयम्
प्रतिष्ठासारोद्धार की हस्तलिखित प्रति—अन्त्य प्रशस्ति, पृष्ठ ११२

२. अभिधान अनुशीलन, पृष्ठ ३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाँचवें थे। यह कल्पना हस्तिमल्ल को प्रभाचन्द के समय १२वीं सदी में सिद्ध करती है।

(९) नाट्य भवन का साक्ष्य

सन् ११९५ में श्रवणवेलगोला के पार्श्वनाथ मन्दिर में राजा वल्लाल (११७३-१२२०) के जैन मंत्री नागदेव ने एक नाट्य भवन बनवाया था। पार्श्वनाथ जैन मन्दिर में नाट्य भवन बनवाने का औचित्य तभी है, जबकि उसमें किसी जैन नाटक का अभिनय कराना अभीष्ट हो। उस समय तक दि० जैन नाटकों के प्रणयन का उल्लेख नहीं मिलता है। हस्तिमल्ल ही ऐसे सशक्त नाटककार हुए हैं, जिनके नाटकों के अभिनय के लिए उक्त नाट्य भवन बनवाया गया है। अंजनापवनंजय और मैथिली कल्याण नाटक की पुष्पिकाओं में अभिनीत होने के संकेत हैं।

(१०) कृतियों में ऐतिहासिक स्वयंवर का प्रभाव

हस्तिमल्ल ने स्वयंवर प्रथा की बहुत प्रशंसा की है और अपने दो नाटकों में स्वयंवर की घटनाओं का निवेश किया है। विक्रान्त कौरव की कथा तो स्वयंवर से संबंधित थी, किन्तु अंजनापवनंजय नाटक में भी स्वयंवर के अभिनय की कल्पना और अंजना के स्वयंवर का उल्लेख मूल कथा के अनुसार नहीं है। स्वयंवर की विशेष घटना के कारण हस्तिमल्ल का ध्यान स्वयंवर से संबंधित नाटकों के लिखने की ओर गया होना चाहिए। भारतीय इतिहास में जयचन्द की पुत्री संयोगिता के स्वयंवर की घटना बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। उस समय की यह घटना देश भर में चर्चा का विषय भी रही होगी, क्योंकि एक तो स्वयंवर की रीति के कारण महत्त्वपूर्ण घटना थी, उसके कारण जयचन्द और पृथ्वीराज में युद्ध हुआ था और उनके परस्पर के वैमनस्य के कारण शहाबुद्दीन गोरी को भारत पर आक्रमण करने का अवसर मिला था। हस्तिमल्ल ने स्वयंवर और उसके बाद युद्ध का उल्लेख अपने विक्रान्तकौरव नाटक में किया है। कवि के मस्तिष्क पर तत्कालीन परिस्थिति और समाज की घटनाओं का प्रभाव होता है और उन्हें वह किसी न किसी रूप में अपने साहित्य में व्यक्त भी कर देता है। इस दृष्टि से उस स्वयंवर की घटना का प्रभाव नाटककार के मस्तिष्क में रहा होगा। स्वयंवर के बाद युद्ध भी हुआ था, उस यथार्थता को ध्यान में रखते हुए अंजनापवनंजय में पवनंजय की प्रशंसा इसीलिए की गयी है कि स्वयंबर के दिन किसी ने प्रतिकूलता नहीं अपनायी।[1]

राजा जयचन्द की पुत्री संयोगिता के स्वयंवर की घटना सन् ११९० से पूर्व की है। उसी समय यह घटना देश में चर्चा का विषय बनी होगी। जयचन्द सन् ११७० में कन्नौज की गद्दी पर बैठा था।[2] इससे प्रतीत होता है कि हस्तिमल्ल ने विक्रान्त कौरव नाटक सन् ११९० के आसपास लिखा होगा।

१. अंजना-पवनंजय, पृष्ठ २१

२. भारत का प्राचीन इतिहास (१२०० ई० तक) सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ ६३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हस्तिमल्ल का समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध मानना चाहिए। उनके स्वस्थ होने के संकेतों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे १३वीं शताब्दी के मध्य तक रहे होंगे।

हस्तिमल्ल का जन्म एवं कार्यस्थान

हस्तिमल्ल ने जिस प्रकार अपने साहित्य में अपने समय के विषय में कोई स्पष्ट सूचना नहीं दी, उसी प्रकार अपने जन्म एवं निवास-स्थान के संबंध में भी विवरण नहीं दिया है। उपलब्ध साक्ष्यों एवं युक्तियों के आधार पर विचार करना होगा।

प्रतिष्ठासारोद्धार की प्रशस्ति का साक्ष्य

ब्रह्मसूरि के प्रतिष्ठासारोद्धार की प्रशस्ति में हस्तिमल्ल का परिचय दिया गया है। यद्यपि यह प्रशस्ति उनके वंशज द्वारा लिखी होने से स्थान के निर्णय में सहायक है। प्रशस्ति पढ़ने से ज्ञात होता है कि हस्तिमल्ल का मूल निवास तीर्थहल्लि के समीप का हुम्मच होना चाहिए। इस प्रशस्ति से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं।

(क) प्रशस्ति में गुडिपत्तन के देश को नदी-मातृक और देव-मातृक बताया गया है।[1] हुम्मच के पास तुंगभद्रा नदी है, इसलिए उसे नदी-मातृक और समुद्र से अधिक दूरी न होने तथा पहाड़ी होने से वर्षा भी अच्छी होने के कारण देवमातृक कहना उचित है।

(ख) प्रशस्ति के अनुसार वहाँ वृषभेश्वर का मन्दिर था।[2] हुम्मच में वीर सान्तर या सान्तर वंशी राजाओं द्वारा ११वीं शती के अनेक मन्दिर हैं। उनमें जैन मठ के समीप का आदिनाथ (वृषभेश्वर) का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।[3]

(ग) प्रशस्ति में गुडिपत्त द्वीप नाम से उस स्थान का उल्लेख आया है।[4] हस्तिमल्ल द्वारा लिखित विक्रान्तकौरव की एक प्रति की प्रशस्ति में भी वृषभनाथ को द्वीपंगुडीश बताया गया है।[5] नाथूराम 'प्रेमी' ने तंजौर जिले के द्वीपनगुंडी को गुडीपत्तन माना है।[6] परन्तु इसे तंजौर जिले का द्वीपनगुंडी मानना उपयुक्त नहीं है। एक तो वहाँ वृषभनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर नहीं है और वहाँ जैन धर्म के प्रति राज्य की उदारता के उल्लेख नहीं मिलते हैं, जबकि हुम्मच में सान्तर उग्रवंशी क्षत्रिय

१. देशेपु सर्वेष्वधिकं सुपाण्ड्यदेशो नदीमातृकः देवमातृकः
२. तत्रास्ति सद्रत्नस्वर्ण तुंग चैत्यालये श्रीवृषभेश्वरो जिनः
प्रतिष्ठासारोद्धार प्रशस्ति, पृष्ठ ११२
३. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ३२२
४. द्वीपं गुडीपत्तं (न) मस्ति तस्मिन्……प्रतिष्ठासारोद्धार, पृष्ठ ११२
५. श्रीमद्द्वीपंगुडीशः कुशलवरचित स्थान पूज्यो वृषेशः (जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ २६५)
६. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ २६५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शासक तथा जैन धर्म के परम् भक्त जिनदत्तराय (लगभग ८०० ई०) से लेकर १३ वीं शताब्दी तक सान्तरों की राजधानी रही है और राज्य की ओर से जैन धर्म के प्रति उदारता के कार्य किये गये हैं। जिनदत्त के पुत्र अथवा पौत्र तोलपुरुष विक्रम सान्तर ने हुम्मच में एक वसदि बनवायी थी, उसमें बाहुबलि की मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी। उस वसदि का नाम गुड्ड (या गुडइ) था।[१] तीर्थ हल्लि से अगुम्बे की ओर जाने वाले मार्ग पर तीन हजार से अधिक फुट ऊँची एक पहाड़ी है, उसका नाम गुड्ड है। वहाँ अनेक ध्वंसावशेष हैं, जो उस स्थान को प्राचीन जैन तीर्थ सिद्ध करते हैं।[२] मेरी समझ में गुड्ड के नाम के कारण इसी स्थान का नाम गुडिपत्तन हो गया होगा। अथवा नदी किनारे की पहाड़ी पर स्थित होने से इसे द्वीप-गुड्डि कहा जाता होगा।

अंजनापवनंजय की प्रशस्ति का आधार

(घ) अंजनापवनञ्जय नाटक की प्रशस्ति में लिखा गया है कि हस्तिमल्ल कर्णाटक की भूमि में संतरगम में रहते थे और वह सन्तरगम जैनागारों से युक्त था।[३] हुम्मच में आदिनाथ, पार्श्वनाथ और चन्द्रनाथ के मन्दिर के अतिरिक्त पंचकूट वसदि नामक मन्दिर हैं और ये मन्दिर वीर सान्तर अथवा सान्तर वंशीय राजाओं द्वारा बनवाये गये थे।[४] तथा हुम्मच में सान्तरों की राजधानी भी थी; इसलिए उस नगरी का नाम सान्तर ग्राम (सन्तरगम) हो जाना संभव है। यहाँ बड़ी-बड़ी गुफाएँ और प्रतिमाएँ भी हैं।[५] इससे इसे जैनागार समेत सान्तर ग्राम कहा जा सकता था।

(ङ) प्रशस्ति में गुडिपत्तन में सरोवर तथा अनेक हरे-भरे एवं फल वाले वृक्षों आदि का उल्लेख आया है, जिनके कारण उस नगरी की शोभा थी।[६] हुम्मच के साथ इस विवरण का साम्य मिलता है। पल्लव महारानी चट्टल देवी ने अपनी बहिन सान्तर रानी वीरल देवी की सन्तान का संरक्षण किया था तथा वहाँ पंचकूट वसदि, ताल सरोवर कूप बाड़ी तथा जिन मन्दिर आदि का निर्माण (१०७७ ई०) कराया था।[७] प्रशस्ति का वर्णन उस नगर की उपजाऊ भूमि की व्यंजना कराता है। इतिहास से भी इसकी पुष्टि होती है।[८]

---

१. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि—पृष्ठ ३०५ और ३२३

२. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृष्ठ ३२३

३. कर्णाटावनि मण्डलं............स्वबंधुनिवहै विंद्वद्भिरासैः समं जैनागार-समेतसन्तरगंमे श्री हस्तिमल्लोऽवसत्............अंजनापवनंजय, पृष्ठ ११९

४. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृष्ठ ३२२ और ३२३

५. सन्मति सन्देश, तीर्थांक, पृष्ठ ७६

६. नानाविधैर्वर्धितधान्यवर्गैर्वृक्षैरशेषैः फलदैः सुयोग्यैः बभातिसद्पद्म सरोवरैश्च—श्री राजहंस विहंगै नरैश्च। -प्रतिष्ठासारोद्धार, पृ० ११२

७. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृष्ठ ३२३

८. Of greater vitality than either of these (Changalvand Kongalva Kingdoms) was the Santara family, which was about to be led out of its forest for trees of Pombulchha or Hummach for the fertile lands to the north-west..........—The Hoysals, page 13.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(च) वीर सान्तर राजा का विरुद जिनपादभ्रमर था, इसकी राजधानी हुम्मच थी और उसका समय १२ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग था।[1] हस्तिमल्ल के लड़के का भी जिनपाद-सरोज-भ्रमर शब्द से अभिहित किया गया है।[2] राजा की उपाधि की सार्थकता के अनुकरण पर हस्तिमल्ल के लड़के को भी उसी गुण के कारण जिनपाद-सरोजभ्रमर कहा गया होगा।

(छ। हस्तिमल्ल मूलतः हुम्मच के थे, बाद में वे होयसल राजाओं के राज्य में चले गये थे। १३वीं शताब्दी में सान्तर राजाओं पर लिंगायत मत का प्रभाव हो चला था। सान्तरों को भी अपनी राजधानी बदल कर हुम्मच नामक स्थान से कलश नामक स्थान में ले जानी पड़ी थी।[3] कल्याणी में ११५१ ई० में विज्जल नामक राजा था, वह वीर योद्धा होने के साथ जैन धर्म का भक्त था। विज्जल का प्रधान सहायक महामात्य और प्रधान सेनापति रेचिमय्य था। वह भी जैन धर्म का परम भक्त था। विज्जल के एक अन्य मंत्री बलदेव का जामाता वासव था। श्वसुर की मृत्यु के बाद मंत्री का पद प्राप्त होने पर वासव ने लिंगायत मत की स्थापना की; क्योंकि वह संयम नियम से घबड़ाता था। वासव ने अतीत सुन्दरी अपनी बहिन पद्मावती का विवाह विज्जल के साथ कर दिया, जिससे राजा राजकाज में असावधान हो गया था और वासव को अपने मत-प्रचार का अवसर मिल गया था। वासव के अनुयायियों ने लिंगायत का विभिन्न स्थानों पर प्रचार किया और जहाँ भी अवसर मिला जैन धर्म पर अत्याचार किये, क्योंकि लिंगायत के प्रसार में इसी धर्म के कारण सर्वाधिक बाधा हुई थी। विज्जल के पुत्र सोमेश्वर (११६७ से ११७५) ने लिंगायत के संस्थापक वासव को धर्म और राज्य का शत्रु घोषित कर दिया था। विज्जल के महामात्य रेचिमय्य को भी यहाँ से जाना पड़ा था और वह होयसल राजा वल्लाल (११७३-१२२०) के यहाँ चला गया था।[4] उसी समय लिंगायत के प्रचार के अत्याचार से बचने के लिए हस्तिमल्ल के पुत्र भी हुम्मच से होयसल राजाओं के राज्य में गये होंगे,[5] क्योंकि जैन धर्म के उपासक महामात्य रेचिमय्य भी होयसलों के राज्य में पहुँचा था।

---

१. वही—पृष्ठ ३२४ (भारतीय इतिहासः एक दृष्टि)

२. तच्चन्द्रनाथ जिनपाद सरोजभृंगस्तां पार्श्वपण्डितबुधौप्यविशत सबन्धुः—प्रतिष्ठासारोद्धार, पृष्ठ ११२

३ भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृष्ठ ३२४

४. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृष्ठ ३२० एवं ३५४

५. तद्धस्तिमल्लतनुजो भुवि सुप्रसिद्धः ....
श्रीपार्श्वपण्डितबुधौ विशदन्यराजकम्
एकैकस्मात् कारणात् तां पुरीं तद्धित्वा ....
चागात् हैशलास्थं प्रतीति .... (प्रतिष्ठासारोद्धार, पृष्ठ ११२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विक्रान्तकौरव की प्रशस्ति का आधार

(ज) विक्रान्तकौरव की प्रशस्ति में लिखा है कि गोविन्द भट्ट के यहाँ श्री कुमार हस्तिमल्लादि पुत्र स्वर्णयक्षी के प्रसाद से उत्पन्न हुए थे।[१] पोम्बच्चपुर का ही दूसरा नाम हुम्मच था। यहाँ सान्तलिंगे आदि जिलों (स्थानों) के सामन्त जिनदत्तराय थे। वे हुम्मच की जैनयक्षी पद्मावती के भक्त थे। उस देवी की साधना से उन्हें अद्भुत मंत्र-सिद्धि हुई थी।[२] उसी देवी के अतिशय के कारण इस क्षेत्र का नाम पद्मावती अतिशय क्षेत्र होना चाहिए।[३] यहाँ के एक स्तम्भमय मण्डप में जैन देवियाँ और यक्षिणियाँ अब भी स्थापित हैं।[४] ऐसा आभास होता है कि जिस यक्षी के कारण जिनदत्तराय की सिद्धि हुई थी, उसी की भक्ति का पुत्र-प्राप्ति रूप फल गोविन्द भट्ट ने माना हो। जैनियों में स्वर्णयक्षी नामक देवी का उल्लेख नहीं मिलता है। पद्मावती को ही गौरवर्ण के कारण अथवा स्वर्ण (धनादि) की प्राप्ति के अतिशय के कारण स्वर्णयक्षी के नाम से निर्दिष्ट किया गया हो।

(प) जिस प्रकार होयसल नरेश विष्णुवर्धन ने अपनी राजधानी द्वार समुद्र में जैनदण्डाधिप के द्वारा बनवाये गये विजय पार्श्वदेव जिन मन्दिर के नाम पर अपने पुत्र का नाम विजय रखा था,[५] उसी प्रकार विष्णुवर्धन के पौत्र, बल्लाल के मंत्री शम्भूदेव के पुत्र चन्द्रमौलि की पत्नी आंचल देवी द्वारा ११८२ में श्रवणवेलगोल में बनवाये गये पार्श्वनाथ मन्दिर[६] के नाम के अनुकरण पर हस्तिमल्ल ने अपने पुत्र का नाम पार्श्व रखा हो। इनके पुत्र पार्श्व का समय तेरहवीं शताब्दी का आरम्भ माना जाता है। उस लड़के ने अपने नामकरण के आधार वाले पार्श्वनाथ भगवान के सम्बन्ध में पार्श्व पुराण नामक ग्रन्थ मनोरंजक ढंग से लिखा था, जिसमें मरुभूति और कमठ की कहानी है।[७]

(फ) सन् १२०० में बल्लाल के प्रसिद्ध सेनानी रेचिमय्य ने शान्तिनाथ वसदि बनवायी थी। शान्तिनाथ की प्रतिमा के लेख नं० ३८० से ज्ञात होता है कि यह मंदिर निर्माण करा कर गुरु सागरनन्दि को दान दिया गया था। उस प्रदेश के जैन मंदिरों

---

१. नन्दनास्तस्य संजाता बर्द्धिताखिल कोविदाः, दक्षिणात्या जयन्त्यत्र स्वर्णयी प्रसादतः (विक्रान्तकौरव, पृष्ठ १६४)

२. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृष्ठ ३२२

३. सन्मति सन्देश, तीर्थांक, पृष्ठ ६६

४. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, ३२३

५. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृष्ठ ३४४

६. वही, पृष्ठ ३५४

७. Parshva Pandit 1205 A. D. was a writer of same quality. His Parshvanath Puran depicted the story of Parshva. The story of Marubhuti and Kamath is narrated in interesting way—Karnatak Darshan—Page 108.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में यह वसदि सर्वाधिक अलंकृत है।[1] जैसाकि मैंने हस्तिमल्ल की रचनाओं के लेखनक्रम में बताया है, सुभद्रा अन्तिम कृति है और वह इसी समय के आसपास लिखी गयी होगी, इसीलिए उसके अन्त में नाटिका समाप्ति के बाद शान्तिनाथाय नमः लिखा है; क्योंकि इस नवीन शान्तिनाथ वसदि के आधार पर शान्तिनाथ को नमस्कार लिखना स्वाभाविक है।

(ब) नेमिचन्द के प्रतिष्ठा तिलक में हस्तिमल्ल के वंश में सबसे पहले परवादि-मल्ल का उल्लेख है।[2] सम्भव है परवादि रूपी हाथियों में मल्ल होने से हस्तिमल्ल या परवादिमल्ल इनका ही उपनाम हो, अथवा शास्त्रार्थ की विद्या में कोई इनका चतुर शिष्य हो, जिनका नाम परवादिमल्ल हो। सन् १२०० ई० में श्रवणवेलगोला में राज्य के एक सर्वाधिकारी कम्मट माचय्य ने अपने श्वसुर वल्लय्य के साथ परिवादि-मल्ल नामक जिनालय के लिए प्रदेश की समस्त तेलमिलों का कर प्रदान किया था।[3] उस समय हस्तिमल्ल वहाँ होंगे तथा परवादिमल्ल नामक मन्दिर या व्यक्ति (एक कोई) दूसरे के नामकरण में कारण रहा होगा।

(भ) वम्मदेव का पुत्र जो नागदेव नामक जैन मंत्री था, उसने ११९५ ई० में पार्श्व मन्दिर में नाट्य भवन बनवाया था[4], जो इनके द्वारा रचित नाटक के अभिनय के लिए बनाया गया होगा।

(म) हस्तिमल्ल की रचनाएँ श्रवणवेलगोला के शास्त्र भण्डार में मिलती हैं। इन अनेक प्रमाणों से हस्तिमल्ल की स्थिति श्रवणवेलगोला में सूचित होती है। अब एक बात यह रह जाती है कि प्रतिष्ठासारोद्धार की प्रशस्ति में छत्र (त्रय) पुरी की ओर पार्श्व पंडित के पहुँचने का उल्लेख है।[5] सुभद्रा नाटिका की समाप्ति के बाद भी छत्रपुर के चन्द्रनाथ का उल्लेख है।[6] छत्रपुरी या छत्रत्रयपुरी से मूडविद्री अर्थ लेना चाहिए। एक तो उस पुरी में चन्द्रनाथ या चन्द्रप्रभ स्वामी का उल्लेख है। मूडविद्री में चन्द्रनाथ का मन्दिर कला की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है।[7] यद्यपि इस मन्दिर का निर्माण कुछ बाद का माना जाता है, किन्तु इतना निश्चित है कि वहाँ

---

१. विश्वतीर्थ श्रवणवेलगोला, पृष्ठ ५५

२. प्रवादिहस्तिनांमल्लो हस्तिमल्लैसमुद्भवः
   गृहाश्रमी बभूवार्हच्छासनादिप्रभावकः
   प्रवादि विजये मल्लः परवाथादि मल्लवाक् (प्रतिष्ठा तिलक, पृ० ८०२)

३. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृष्ठ ३५५

४. वही

५. सदाचारनिष्ठो देशं चागात् ह्वैशलाख्यं प्रतीति
   पृथ्वी तले ह्योयसल देशनाम्नि छत्रत्रयाभिख्या पुरी च
   तस्यां संराजते चाष्टमतीर्थनाथः (प्रतिष्ठासारोद्धार, पृष्ठ ११२)

६. पायाच्छत्रपुरेश्वरः स्थिरतरं वश्चन्द्रनाथः सदा (सुभद्रा नाटिका, पृष्ठ ९१)

७. कल्याण, तीर्थांक, पृष्ठ ३३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रनाथ का कोई महत्त्वपूर्ण मन्दिर पहले से था, जिसके स्थान पर विशेष रूप देकर मन्दिर बनवाया गया होगा। उस मन्दिर के नामकरण के आधार पर ही पार्श्व पण्डित ने अपने प्रारम्भ के दो पुत्रों के नाम क्रमशः चन्दप और चन्द्रनाथ रखे थे।[१] यह स्थान हुम्मच से अधिक दूर भी नहीं है।

मूडविद्री का नाम छत्रत्रयपुरी होने का एक कारण तो यह हो सकता है कि मूडविद्री के चन्द्रनाथ मन्दिर में तीन मण्डप शालाएँ हैं, जिनमें होकर गर्भगृह में प्रवेश होता है। एक का नाम तीर्थंकर मण्डप, दूसरे का गद्दी मण्डप और तीसरे का चित्र मण्डप है।[२] तीनों मण्डपों में लगे छत्रों के आधार पर छत्रत्रयपुरी नाम संभव है।

दूसरा कारण यह हो सकता है कि होयसलों ने तुंगभद्रा पर स्थित पहाड़ी किलेबंदियों को नष्ट कर यादवों पर विजय पायी थी, पाण्ड्यों को भी उच्छंगी के पास हराया था। यह घटना वल्लाल के समय (११७२-१२१९ ई०) की है। इस विजय के कारण ये राजा छत्रधारी कहलाते थे।[३] इन्होंने विजय के उपलक्ष्य में मन्दिर में छत्रदान किया होगा, तब भी इसे छत्रपुरी कहा जा सकता है। ये राजा प्रसन्नता के अवसरों पर इस प्रकार के दान किया भी करते थे। मूडविद्री के जैन मठ में हस्तिमल्ल के ग्रन्थ भी मिले हैं।

पार्श्व पण्डित के लड़कों का हेमाचल में स्थित होने का उल्लेख प्रतिष्ठासारोद्धार में है; उससे होन्नूरु अर्थ भी लिया जा सकता है, जैसा कि स्व० प्रेमीजी ने लिखा है।[४] अथवा होन्नावर भी हो सकता, है जो हुम्मच से पश्चिम में है और पर्वतीय (अचल) क्षेत्र भी है।

हस्तिमल्ल की वंश परम्परा

विक्रान्तकौरव के अन्त में हस्तिमल्ल ने जो प्रशस्ति लिखी है, उसमें मुख्य रूप से गुरु-शिष्य परम्परा का उल्लेख समझना चाहिए। विक्रान्तकौरव की प्रशस्ति का ज्यों का त्यों अनुकरण ब्रह्मसूरि के प्रतिष्ठासारोद्धार[५] और अय्यपार्य के जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय[६] की प्रशस्ति में मिलता है। इस प्रकार हस्तिमल्ल का अनुकरण इन दोनों ने किया है। चूँकि हस्तिमल्ल के पिता गोविन्दभट्ट वत्स गोत्री ब्राह्मण थे[७] और वे स्वामी

---

१. तत्सूनवश्चन्दप चन्द्रनाथ वैजय्य जीयाश्च क्रमाद् बभूवुः (प्रतिष्ठासारोद्धार, पृ० ११२)

२. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ ३२५

३. प्राचीन भारत—लेखक, गोरखनाथ चौबे, पृष्ठ ३७७

४. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ २६२

५. प्रतिष्ठासारोद्धार की हस्तलिखित प्रति, पृष्ठ ११२

६. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, भाग प्रथम, पृष्ठ ११२

७. श्रीवत्सगोत्र जनभूषण गोपभट्ट, प्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात् नाना कलाम्बुनिधिपाण्ड्य महेश्वरेण श्लोकः शतः सदसि सत्कृतवान् बभूव।
(विक्रान्तकौरव २०-४०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समन्तभद्र के देवागम सूत्र को सुनकर जैन धर्म के प्रति श्रद्धावान हो गये थे।[1] देवागम सूत्र का दूसरा नाम आप्तमीमांसा है।[2] इसलिए गोविन्द भट्ट को आचार्य समन्तभद्र की परम्परा में दिखाया है और आचार्य समन्तभद्र का सर्वोपरि उल्लेख है। इसी प्रकार कवि हस्तिमल्ल और उनके पिता गोविन्द भट्ट ने आचार्य जिनसेन के आदिपुराण एवं गुणभद्र के उत्तरपुराण का अध्ययन कर साक्षात ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिए हस्तिमल्ल ने अपने पिता की श्रद्धा के मूल कारण देवागमस्तोत्र के रचयिता समन्तभद्र को गुरु परम्परा में प्रथम स्थान एवं जैनागम के अध्ययन में सर्वाधिक सहायक महापुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र का अन्त में उल्लेख किया है। गुणभद्र के बाद की शिष्य परम्परा का उल्लेख प्रशस्ति में नहीं है, जबकि गुणभद्र के अनेक शिष्यों के होने के बाद गोविन्द भट्ट हुए हैं।[3] उसका कारण यही है कि कवि और कवि के पिता की ज्ञान-प्राप्ति में उनके शिष्यों की रचनाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं रहा होगा। विक्रान्तकौरव की प्रशस्ति के अनुसार यह गुरु शिष्य परम्परा निम्न प्रकार है :—

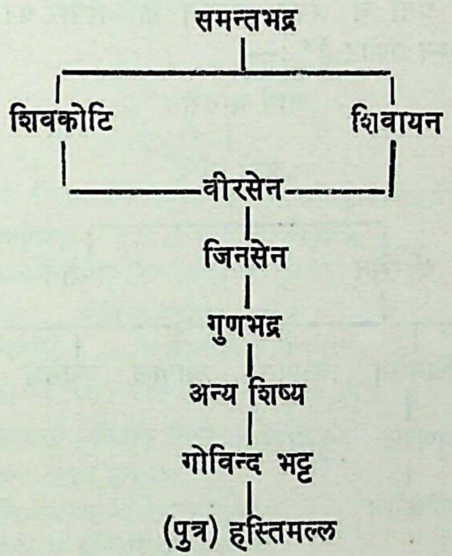

यद्यपि विद्वान् समन्तभद्र को शिवकोटि का गुरु नहीं मानते हैं, क्योंकि शिवकोटि ने कहीं उनका उल्लेख नहीं किया है। इसी तरह शिवायन का उल्लेख भी विवाद का विषय है, शिवायण पद के कारण शिवायन का उल्लेख हो जाने की संभावना की गयी है।[4] आचार्य समन्तभद्र भस्मक व्याधि से परेशान होकर राजा शिवकोटि के शिवालय में गये थे और वहाँ पूजन सामग्री को यह कह कर खा जाते

१. विक्रान्तकौरव, जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय और प्रतिष्ठासारोद्धार की प्रशस्तियां देखो
२. जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ २५८
३. तच्छिष्यानुक्रमायाते संख्येये विश्रुतो भुवि
गोविन्दभट्ट इत्यासीद् विद्वान् मिथ्यात्ववर्जितः (विक्रान्तकौरव प्रशस्ति)
४. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ २६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे कि मैं पूजन की समस्त सामग्री का भोग भगवान को लगा देता हूँ। राजा यह समझता था कि यह साधु चमत्कारी है, जो पूजन की सामग्री को भगवान के उदरस्थ करा देता है। इसलिए अधिकाधिक पूजन सामग्री भगवान के भोग के लिए दी जाने लगी। जब समन्तभद्र की भस्मक व्याधि शान्त हो गयी, तब यह रहस्य पूजन की सामग्री की बचत से खुल गया था, किन्तु समन्तभद्र ने स्वयंभू स्तोत्र के पाठ से अपने योगबल और भक्ति का चमत्कार दिखाया था। उसी चमत्कार के प्रभाव से शिवकोटि राजा ने आचार्य समन्तभद्र की शिष्यता स्वीकार की। शिवकोटि का छोटा भाई शिवायन भी शिवकोटि के अनुकरण पर समन्तभद्र का शिष्य बना होगा, इसीलिए इन दोनों का उल्लेख प्रशस्ति में एक साथ है। शिवायन कौन होंगे? जैन साहित्य और इतिहास में इस बात की शंका की गयी है। शिवार्य शब्द के स्थान में ही शिवायन हो जाने की[1] और शिवकोटि को ही शिवायन समझने की कल्पना की गयी प्रतीत होती है।[2] शिवकोटि के छोटे भाई शिवायन थे[3]—इस जानकारी से अब कोई शंका नहीं रह जाती है।

स्व० नाथूराम 'प्रेमी' ने अपने अध्ययन के आधार पर गुणभद्र की जो गुरु परम्परा दी है, वह निम्न प्रकार है[4] :—

- आर्य चन्द्रसेन
  - आर्य नन्दि
    - वीरसेन
      - दशरथ गुरु
      - जिनसेन
        - गुणभद्र
          - लोकसेन
      - विनयसेन
        - कुमारसेन
      - श्रीपाल
      - पद्मसेन
      - देवसेन
    - जयसेन

इस तरह हस्तिमल्ल द्वारा दी गयी परम्परा का हेतु वही है, जो मैंने प्रारम्भ में लिखा है, क्योंकि वास्तविक परम्परा में भेद दिखाई देता है।

हस्तिमल्ल के बाद की परम्परा के सम्बन्ध में तीन जगह उल्लेख मिलते हैं। हस्तिमल्ल ने अपने भाइयों का उल्लेख किया ही है कि वे छह भाई थे—(१) श्री कुमार कवि, (२) सत्यवाक्य, (३) देवरवल्लभ, (४) उद्यदभूषण, (५) हस्तिमल्ल और

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २६
२. आदिपुराण प्रथम भाग के नामों की सूची (पुराण के अन्त में)
३. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृष्ठ २४०
४. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ५०१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६) वर्धमान। ये सभी विद्वान् और कवि थे।[१] सत्यवाक्य को हस्तिमल्ल ने श्रीमती कल्याण आदि कृतियों का कर्ता बताया है।[२] सबसे छोटे भाई के साथ कवि शब्द का प्रयोग किया गया है।[३]

ब्रह्मसूरि ने प्रतिष्ठासारोद्धार में जो वंश-परम्परा दी है, वह गुरु-शिष्य परम्परा न होकर पिता-पुत्र की परम्परा है। इसे गोत्र परम्परा समझना चाहिए।[४]

गोविन्द भट्ट (५)

(६) श्रीकुमार कवि | सत्यवाक्य | देवरवल्लभ | उद्यद्भूषण | हस्तिमल्ल | वर्धमान

(हस्तिमल्ल →) (७) पार्श्वपण्डित

(पार्श्वपण्डित →) (८) चन्दप | चन्द्रनाथ | वैजय्य | जीय

(चन्दप →) (९) विजय

(१०) इन्द्रविजय (विजयेन्द्र)

(११) ब्रह्मसूरि

---

१. विक्रान्तकौरव, जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय और प्रतिष्ठासारोद्धार की अन्तिम प्रशस्तियां

२. श्रीमतीकल्याणप्रभृतीनां कृतीनां कर्ता सत्यवाक्येन........
कनीयानप्युपश्लोक्तिः। मैथिलोकल्याण, पृष्ठ २

३. कवेर्वर्धमानस्य........मैथिलीकल्याण, पृष्ठ २
वर्धमान कविश्चेति........विक्रान्तकौरव प्रशस्ति

४. प्रतिष्ठासारोद्धार (आरा) की हस्तलिखित प्रति, पृष्ठ ११२

५. गोविन्दभट्ट इत्यासीद् विद्वान् मिथ्यात्व वर्जितः।

६. .... नन्दना स्तस्य संजाताः ....
श्री कुमारकविः सत्यवाचो देवरवल्लभः
उद्यद्भूषणनामा च हस्तिमल्लाभिधानकः
वर्धमान कविश्चेति षडभूवन् कवीश्वराः
....
श्लोकेनागत हस्तिमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः

७. तद्धस्तिमल्लतनुजो भुवि सुप्रसिद्धः श्रीपार्श्वपण्डितबुधोऽविशदन्यराजकम्

८. तत्र नवश्चन्दपचन्द्रनाथ वैजय्यजीयाश्च क्रमाद् बभूवुः
चन्द्रनाथसुताद्याश्च सर्वे हेमाचले स्थिताः
तस्यानुजौ यथा योग्यदेशे वा संगतौ च तौ

९. सद्वर्तनानुचरितोज्ज्वलचन्दपार्यसूनुः सुशास्त्रविदभूद् विजयद्विजोत्तमः

१०. तत्संभवः सकलशास्त्रकलाधिनाथो नाम्नेन्द्रविजयो जिनयायजूकः

११. विजयेन्द्रः सुषुवे हि तत्प्रणयिनी श्रीनामधेया च यम्
.... ब्रह्मसूरिणमिति प्रख्यातभाग्योदयम्।
(प्रतिष्ठासारोद्धार (आरा) की हस्तलिखित प्रति, पृ० ११२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मसूरि निश्चित रूप से हस्तिमल्ल के वंशज हैं। एक तो इन्होंने अपने पूर्वज हस्तिमल्ल के विक्रान्तकौरव की प्रशस्ति को अपने प्रतिष्ठासारोद्धार में उद्धृत किया है और हस्तिमल्ल के नाटक लिखने की परम्परा डाली थी, उससे प्रेरणा लेकर ब्रह्मसूरि ने भी नाटक लिखा था। जैन विद्वान पं० पद्मराज के द्वारा बंगलोर से निकाली गयी काव्याम्बुधि पत्रिका में ब्रह्मसूरि के ज्योतिःप्रभाकल्याण नाटक के दो तीन अंक स्व० नाथूराम 'प्रेमी' ने देखे थे। यह नाटक सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ के पूर्वभव सम्बन्धी अमित तेज विद्याधर तथा ज्योतिः प्रभा के कथानक के आधार पर है।[1] हस्तिमल्ल ने प्रतिष्ठातिलक ग्रन्थ रचा था और इन्होंने भी प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रन्थ की रचना की थी।

गोविन्द भट्ट के पूर्व को जो परम्परा दी गयी है, वह गोत्र-परम्परा नहीं, गुरु-परम्परा है; इसी कारण हस्तिमल्ल को भी गोविन्द भट्ट का शिष्य समझने की भ्रान्ति हुई है।[2]

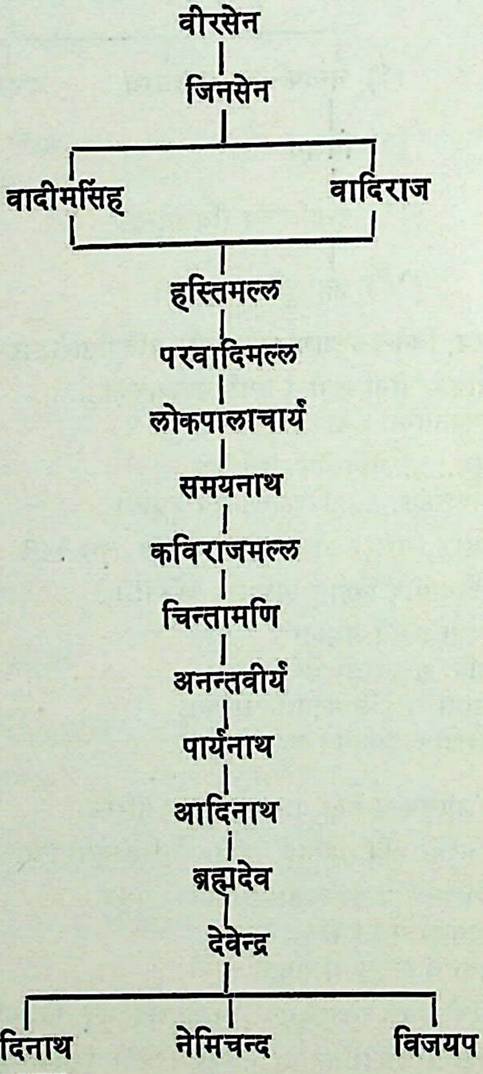

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ४९६
२. मुनि जिनविजय ने इन्हें (हस्तिमल्ल को) गोविन्दभट्ट का शिष्य बतलाया है। A History of Sanskrit Literature, Classical Period, Vol. I, S. N. Das Gupta, Page 467.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिचन्द देव ने प्रतिष्ठातिलक में जो वंश-परम्परा दी है, वह इससे भिन्न प्रकार की है।

इस परम्परा में देवेन्द्र की पत्नी आदिदेवी के चन्दपार्य, ब्रह्मसूरि और पार्श्वनाथ इन तीन भाइयों का उल्लेख आया है।[1]

यह वंश-परम्परा उन्हीं हस्तिमल्ल की है, यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता है। इस परम्परा में उनका नाम है, जो शास्त्रार्थ कुशल विद्वान थे। यदि इसे भी हस्तिमल्ल की परम्परा माना जाय तो हस्तिमल्ल के दो पुत्र मानना चाहिए, जिसमें एक पुत्र पार्श्वपण्डित कारणवश नगरी छोड़ कर अन्यत्र चला गया था और दूसरा पुत्र परवादिमल्ल हो जो अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से वहीं रहा हो। पार्श्वपण्डित की परम्परा में ब्रह्मसूरि और परवादिमल्ल की परम्परा में नेमिचन्द माने जा सकेंगे।

अय्यपार्य द्वारा जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय में जो वंश-परम्परा दी है, वह गुरु-शिष्य परम्परा है। हस्तिमल्ल के पूर्व की तो वही परम्परा है, जो हस्तिमल्ल और ब्रह्मसूरि द्वारा दी गयी है। अय्यपार्य द्वारा दी गयी हस्तिमल्ल के बाद की परम्परा भी गुरु-शिष्य की परम्परा है।

(२) हस्तिमल्ल
|
(३) गुणवीर सूरि
|
(४) पुष्पसेन
|
(५) करुणाकर
|
(६) (पुत्र) अय्यपार्य

---

१. प्रतिष्ठा तिलक श्रीमन्नेमिचन्ददेव, १८वां परिच्छेद, पृष्ठ ८०२

२. जीयादशेषकविराजकचक्रवर्ती श्रीहस्तिमल्ल इतिविश्रुतपुण्यमूर्तिः

३. तस्यान्वये वरगुणो गुणवीरसूरिः ?

४. आसीत् तत्प्रियशिष्यः कामक्रोधादि दोषरिपुविजयी
श्रीपुष्पसेननामा मुनीश्वरः कोविदैकगुरुः

५. तदीयशिष्योऽजनि दाक्षिणात्यः
श्रीमान् द्विजन्मा भिषजां वरिष्ठः
जिनेन्द्र पादाम्बुरुहैकभक्तः
सागारधर्मः करुणाकराख्यः

६. तस्यैव पत्नी कुलदेवतेव पतिव्रतालंकृतपुण्यलक्ष्मीः
यदर्कमाम्बा जगति प्रतीता चारित्रमूर्ति जिनशासनोल्का
तयोरासीत् सुनुस्सदमलगुणाढ्यः सविनयो
....
स्याद्ययपार्य इति काश्यप गोत्र वर्यो
जैनालपाकवरवंश समुद्रचन्द्रः। (जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की अन्तिम प्रशस्ति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हस्तिमल्ल का जीवन

हस्तिमल्ल के जीवन के सम्बन्ध में अधिकतर उनके नाटक के संकेतों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। हस्तिमल्ल के साहित्य में उनके मानव जीवन सम्बन्धी संकेत-सूत्र प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर उनकी रुचि, प्रकृति और प्रवृत्ति की जानकारी मिलती है।

नाम—हस्तिमल्ल के चारों नाटकों में इनका यही नाम मिलता है, किन्तु कतिपय अन्य साक्ष्य यह बताते हैं कि उनका नाम पहिले मल्लषेण था। आपर्ट ने दक्षिण के ग्रन्थागारों के ग्रन्थों की जो सूची (केटेलाग्ज केटलागोरम) बनायी थी, उसमें मल्लषेण और हस्तिमल्ल दोनों नाम मिलते हैं। मल्लषेण नाम सेनगणीय आचार्यों की परम्परा में अपने को सम्मिलित करने का सूचक है, क्योंकि दक्षिण में उन दिनों सेन गणीय आचार्यों (जिनसेन, वीरसेन आदि) की बड़ी प्रतिष्ठा थी।[१] बाद में मत्त हस्ती अथवा परवादी रूपी हस्तियों को वश में करने के कारण हस्तिमल्ल उपाधि ही उनकी संज्ञा हो गयी। मत्त हाथी को वश में करने के संकेत प्रथम नाटक विक्रान्तकौरव में मिलते हैं।[२] इसके बाद बनने वाले अंजना पवनंजय नाटक में केवल एक स्थान पर यह निर्देश मिलता है।[३]

हस्तिमल्ल केला-प्रिय थे, उन्होंने अपने वचनों से मोचाफल के रस को विजित करने का वर्णन किया है।[४] इनके निवास के स्थान कर्नाटक में केले बहुत मात्रा में पैदा भी होते हैं। जो व्यक्ति अच्छे स्वस्थ होते हैं, उनके लिए केला अत्यन्त उपकारी और सुखाद्य है।[५] केला[६]शीत[७], गुरु[८], शुक्रवर्धक[९], दीप्ताग्नि में सुखद[१०] और

---

१. प्रशस्ति संग्रह, के० भुजवली शास्त्री, पृष्ठ १०५

२. तिर्यक् पश्यति, पृष्ठतो प्रसरति स्तब्ध करोति श्रुती।
शिक्षां न क्षमते शिरोविधुनुते घंटास्वनायेर्ष्यते।
सन्देग्धि प्रतिहस्तिनं प्रकुपितो दानाम्बुगन्धं निजम्।
क्ष्मामाहन्ति करेण याति न वशां क्रोधोद्धुरः सिन्धुरः। (विक्रान्तकौरव ६।१२)
यही श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की प्रशस्ति में है।

३. उन्नमति विधोर्बिम्बं रदमुखमिव हस्तिमल्लस्य
निहतरिपुहस्तिमस्तक सरुधिर मस्तिष्कपाटलितम् (अंजनापवनंजय ४०।३)

४. कवीन्द्रो यं वाचा विजितनवमोचाफलरसः। (विक्रान्तकौरव ३।६)

५. फल उनके गुण तथा उपयोग, पृष्ठ १४६

६. मोचा फलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफनुद् गुरु (भावप्रकाश निघण्टु, फलादिवर्ग ३२, पृष्ठ ३०५)

७. मोचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम्
रक्तपित्तहरं वृष्यं रूच्यं श्लेष्मकरं गुरु (सुश्रुतसंहिता ४६।१८१, १८२, पृ० १९७)

८-९, १०. रम्भापक्वफलं........सद्यशुक्रविवृद्धिदं क्लमहरं तृष्णापहं कान्तिदम्
दीप्ताग्नौ सुखदं कफाभयकरं सतर्पणं दुर्जरम्। —राजनिघण्टु (धन्वतरीय) पृष्ठ १४९, ४।१०९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मांसलकारक[1] आदि गुणवाला होता है, इससे प्रतीत होता है कि हस्तिमल्ल की प्रकृति गर्म, तेज जठराग्नि और शरीर मांसल होना चाहिए। इसी प्रकार विक्रान्तकौरव के पंचम अंक में पनस फल की बहुत प्रशंसा की गयी है। यह फल भी दक्षिण में होता है। वह भी स्वस्थ प्रकृति के लिए अनुकूल होता है। ये दोनों फल उनको प्रिय थे। इनके गुणों के अनुसार वे स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहे होंगे। मत्त हाथी को वश में करने की घटना से भी उनके हृष्ट-पुष्ट होने की पुष्टि होती है।

हस्तिमल्ल अपनी युवावस्था में उद्धत और अभिमानी भी थे। विक्रान्तकौरव की प्रस्तावना इसकी अभिव्यंजक है।[2] वे अपने को सरस्वती द्वारा स्वयंवृत पति समझते हैं।[3]

जबकि हरिचन्द जैसे महाकवि ने भी महाकाव्य धर्मशर्माभ्युदय में अपने को सरस्वती का पुत्र माना है।[4] बाद में उनका स्वभाव कुछ नम्र होता गया है। विक्रान्तकौरव की रचना-शैली एवं युद्ध-वर्णन का औद्धत्य बाद के नाटकों में नहीं है। ऐसी शैली को कवि ने मानियों की शैली ही बताया है।[5]

धर्म—हस्तिमल्ल जैन धर्म के उपासक थे। नाटकों में इस बात के अनेक प्रमाण हैं। जैन धर्म के प्रति उनका विशिष्ट अनुराग था। इस धर्म के उपासक होने के कारण पहिले इन्हें राज्य का कोपभाजन बनना पड़ा, किन्तु जब इन्होंने धर्म के अचल श्रद्धान में अपने ऊपर छोड़े गये एक मत्त हाथी को वशीभूत कर लिया, तब से इनका सम्मान राज्य द्वारा होने लगा। ये विद्वान थे, उद्धत स्वभाव के भी थे, इसलिए शास्त्रार्थ के लिए तत्पर रहते थे। इन्होने शास्त्रार्थ द्वारा विजय प्राप्त करने के उपरान्त 'हस्तिमल्ल' यह उपाधि प्राप्त की हो अथवा किसी कपटवेशधारी व्यक्ति को शास्त्रार्थ द्वारा जीता हो, यह भी सम्भव है।[6]

---

१. मोचं पक्वं स्वादु पाके सकषायं हिमं गुरु, मांसले श्लेष्मलम् इत्यादि, द्रव्यगुण-विज्ञान, पृ० ३८८

२. अस्मदीयां नाट्यविद्यावैशद्योल्लसितां कीर्तिमपहर्तुमुपाध्यायभरताचार्यपुत्रस्सन्त-ततन्तन्यभानासूयानिवासपदै नटापसदैः प्रतिवोधितः स्पर्धामाटीकते, तां निर्मूलयितुं च अनित दुस्साध्यरूपकाभिनयारम्भसंरंभ इति।

३. अस्तिकिल सरस्वती स्वयंवरवल्लभेन महाकवितल्लजेन विरचितं विक्रान्तकौरवं नाम नाटकम् (विक्रान्तकौरव, पृष्ठ ३)

४. वाग्देवतायाः समवेदि सम्यैर्यः पश्चिमोऽपि प्रथमः तनूजः धर्मशर्माभ्युदय, पृष्ठ १७९ (प्रशस्ति)

५. शैलीयं मानशालिनाम् विक्रांतकौरव, पृष्ठ ७५

६. सम्यक्त्वंसुपरीक्षितुं मदणजे मुक्ते सरण्यापुरे।
चास्याः पाण्ड्यमहीश्वरेण कपटाद्धन्तुं स्वयंमभ्यागते।
शैलूषं जिनमुद्रधारिणमपास्याऽसौ मदध्वंसिता।
श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः।
जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की अंतिम प्रशस्ति एवं इसीसे मिलता-जुलता छन्द प्रतिष्ठासारोद्धार की प्रशस्ति में है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रारम्भ में इनके नाटक का अभिनय नहीं हुआ, उसके लिए इन्हें प्रार्थना भी करनी पड़ी। इस बात की व्यंजना विक्रान्तकौरव की प्रस्तावना से होती है।

ये भ्रमणप्रिय थे। हो सकता है शास्त्रार्थ के कारण अथवा राजनैतिक स्थिति के कारण भ्रमण किया हो, किन्तु सुभद्रा नाटिका में भ्रमण को इन्होंने पुरुषों का सुख माना है।[1]

पिता की आज्ञा को ये अलंघ्य मानते थे।[2] पिता गोविन्द भट्ट ब्राह्मण थे और बाद में जैन धर्म के उपासक हुए थे।[3] हस्तिमल्ल ने उनके अंगीकृत धर्म का पालन ही नहीं किया, तत्सम्बन्धी साहित्य का निर्माण कर उसे स्थायित्व प्रदान किया।

रुचि—अपने प्रारम्भिक जीवन में कीर्ति के अभिलाषी थे।[4] उन्होंने जीवन में कीर्ति प्राप्त भी की थी।[5] तन्द्रारहित और श्रमपूर्वक सरस्वती की उपासना करके सुन्दर शब्दार्थ के सामंजस्य द्वारा काव्य-रचना करने वाले को कीर्ति-लाभ होना ही चाहिए।[6]

हस्तिमल्ल को नाटकों से बड़ा स्नेह था। नाटकों में भी अलंकार-प्रयोग के लिए नाटक को ही उपमान रूप में चुना है।[7] इसी प्रकार हस्तिमल्ल सुभाषित-प्रिय थे, सुभाषितों की और उसी प्रसंग में स्वयं की प्रशंसा कई स्थानों पर है।[8]

---

१. नानादेशपरिभ्रमो नामैकं सौख्यं पुरुषस्य (सुभद्रा, पृष्ठ २)

२. पितस्तु संकेतमलंघनीयम् (विक्रान्तकौरव, पृष्ठ ७४।५)

३. गोविन्द भट्ट इत्यासीद् विद्वान् मिथ्यात्ववर्जितः
देवागमनसूत्रस्य श्रुत्वा सद्दर्शनान्वितः (विक्रान्तकौरव, प्रशस्ति १०)

४. कीर्तिस्तोमेऽभिरामे जगति कृतमतेः कस्य वा स्याद्विरक्तिः (विक्रान्तकौरव २।३)

५. सोऽयं समस्त जगदूर्जितचारुकीर्तिः। (प्रशस्ति जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय)

६. (अ) तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती श्रमादुपास्या खलु कीर्तिमीप्सुभिः (हिन्दी काव्यादर्श १।१०५, पृष्ठ ४३)
(ब) साधुशब्दार्थसन्दर्भगुणालंकारभूषितम्
स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये। (वाग्भटालंकार १।२, पृ० ५)

७. (अ) संग्रामनाटकपूर्वरंगकुसुमांजलिशरनिकरः (विक्रान्तकौरव, पृष्ठ ८७)
(ब) त्वं खलु भाववेदिनी नाटकसूत्रधारिणी। (अंजनापवनंजय, पृष्ठ १३)
(स) यथैतस्योद्वाहविधिः तवोद्वाहसंपत्तिनाटिकायाः पूर्वरंगविधिर्भविष्यति। (सुभद्रा, पृ० ५८)

८. (अ) शोभनं सुभाषितम् (विक्रान्तकौरव, पृष्ठ १३८)
(ब) सुभाषितानि सुभगानि। (सुभद्रा, पृष्ठ १।२)
(स) सत्यं नस्तव हस्तिमल्ल सुभगास्तास्ताः सदा सूक्तयः। (मैथिलीकल्याण २।२)
(ड) प्रसादं सूक्तीनामकृतसुकृतः कृत्रिमबुधः किमीष्टे निर्वेष्टुं.... ....(वही ३।४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हस्तिमल्ल भाग्यवादी थे। जीवन में उन्हें ऐसे अनुभव हुए हों, जिससे वे भाग्यवादी हो गये हों। पहिले राज्य द्वारा तिरस्कार और बाद में सम्मान मिलना भी उसका एक कारण हो। सभी नाटकों में भाग्य और पूर्व जन्म में किये गये कर्मों की मान्यता के अनेक स्थलों पर संकेत हैं।[1] माघ कवि विधि के बाम होने पर साधनों को विफल ही मानते हैं।[2] हस्तिमल्ल तो विधि के बाम होने पर सभी को बाम मानते हैं।[3]

इसी प्रकार नाटकों में राजा की सेवा के सम्बन्ध में जो कथन है, उनमें कुछ उनके स्वयं के अनुभव हों। परपिण्डगृध्नुता अच्छी नहीं होती है।[4] यदि सेव्य उत्कृष्ट गुण वाला हो तो बात दूसरी है।

हस्तिमल्ल अपने जीवन में एकान्तप्रेमी रहे हों, यह कल्पना संगत लगती है। साहित्य साधना के लिए एकान्त प्रेम अपेक्षित भी है। एकान्तप्रेम[5] और गंभीर हृदय[6] के कारण ही इनके नाटकों में हास्य की कमी है।

ये गृहस्थ थे[7] और इनके पार्श्व-पंडित नामक पुत्र था, जिसके सम्बन्ध में कुछ जानकारी ब्रह्मसूरि के प्रतिष्ठासारोद्धार की प्रशस्ति से मिलती है।[8] नेमिचन्द

१. दुखगाहा भाग्यधेयानां परिपाकः। (अंजनापवनंजय, पृष्ठ ९)
विधिरेवात्र उपालम्भनीयः (वही, पृष्ठ ८८)
अनुभाव्य एव वाढं जन्मान्तर एव कर्मपरिपाकः (वही, पृष्ठ ८८।४)
चिरतरं विधिना प्रतिवन्धिना विघटितानि मिथो मिथुनानि। (वही, पृ० ९३)
धारयामि मन्दभागा .... इत्यादि पृष्ठ ९६।३५
स्वैरं फलानि वितरत् प्रविहाय दैवं यत्नान्तरं किमिति तत्र गवेषणीयम्। (सुभद्रा, पृष्ठ ८३।२४)
अहो वयमपि विधिना पुनरूक्तप्रयत्नाः (वही, पृष्ठ ८३)
आर्य इमानि भाणधेयानि (मैथिलीकल्याण, पृष्ठ १६)
स एव जनोऽत्र समानीतो देवेन। (विक्रान्तकौरव, पृ० ४१)

२. प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति वहुसाधनता। (शिशुपाल वध ९।६)

३. वामे विधौ कः खलु भो न वामः। (सुभद्रा, पृ० ५४।३)

४. अंजनापवनंजय, पृ० ५८

५. रामः—कृत्यान्तरविनिवृतः कविजन इव विजनमाश्रितो देशः।
अन्तश्च किमपि जल्पन् विभामि चिन्तां विनम्रमुखः। (मैथिलीकल्याण २०।६)

६. तादृशमुदारगंभीरसत्वं न अन्यस्य संभाव्यते (विक्रान्तकौरव, पृ० ३८)

७. प्रवादिहस्तिनां मल्लो हस्तिमल्लसमुद्भवः
गृहाश्रमी बभूवार्हच्छासनातिप्रभावकः (प्रतिष्ठातिलक, पृ० ८०२)

८. तद्धस्तिमल्लतनुजो भुवि सुप्रसिद्धः
सद्धर्मपालकमहोज्वलकीर्तिनाथः
तद्धर्मवर्धयितुमप्यखिलागमज्ञः
श्री पार्श्वपंडित बुधोऽविशदन्यराजकम्
तच्चन्द्रनाथ जिनवादसरोजभृंगः—इत्यादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के प्रतिष्ठापाठ में परवादिमल्ल आदि को हस्तिमल्ल की वंश-परम्परा में बताया है। किन्तु नेमिचन्द के उल्लेख से परवादिमल्ल उनके पुत्र नहीं प्रतीत होते हैं, वंशज प्रतीत होते हैं।[1]

रूपककार की बहुमुखी प्रतिभा

हस्तिमल्ल की विद्वत्ता के सम्बन्ध में बहिरंग प्रमाण तो कम मिलते हैं, क्योंकि उनके जीवन के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों ने नहीं के बराबर लिखा है। उनकी कृतियों पर ही अधिक अवलम्बित होना पड़ता है; जिसे हम अन्तरंग साक्ष्य का नाम दे सकते हैं।

बहुभाषाविद्—राजाबली कथे के कर्त्ता देवचन्द ने कवि हस्तिमल्ल को उभय भाषा चक्रवर्ती कहा है।[2] इसलिए यह तो अब निर्विवाद हो गया है कि हस्तिमल्ल संस्कृत और कन्नड भाषा के प्रौढ़ विद्वान थे। कन्नडी आदिपुराण की भूमिका (पुष्पिका) में कवि ने स्वयं भी उभय भाषा चक्रवर्ती लिखा है।[3] इनके रचित ग्रन्थों में हम देखेंगे कि इन्होंने कन्नड भाषा के भी ग्रन्थ लिखे हैं। यद्यपि ये संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषाओं के भी विद्वान थे, क्योंकि संस्कृत नाटकों में कतिपय पात्र संस्कृत में न बोलकर प्राकृत बोलते हैं। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के ज्ञान की सूचना नाटकों में मिलती है। मैथिली कल्याण नाटक में एक ही पद्य में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाएँ हैं।[4] दो भाषाओं में बोलने की वाक् कुशलता कवि की वाक् कुशलता की अभिव्यंजक है।[5] उन्हें दो भाषाओं का ज्ञान प्रमुख रूप से था, अन्य भाषाओं का सामान्य ज्ञान था।[6] इनके नाटकों की भाषा आदि की विशेषताओं की प्रशंसा दूसरे पात्रों के मुख से नाटक में करायी गयी है, जिसे आलोचक हस्तिमल्ल की विशेषताओं को बताने के लिए उद्धृत कर सकता है।[7] प्रस्तावना में

---

१. प्रवादिविजये मल्लः परवाद्यादि मल्लवाक्
मुनिः प्राभावयज्जैनशासनं तत्कुलोद्भवः
इत्थमन्येऽपि तद्वंशसंजाता द्विजपुंगवाः

२. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, (भाग १) प्रस्तावना, पृ० ४३

३. इत्युभयभाषाचक्रवर्तीहस्तिमल्लविरचितपूर्वपुराणमहाकथायां दशमपर्वम्।

४. विदूषकः—वयस्य एकया वाचा संस्कृतं प्राकृतं भणत्येष वाक्कुशलः
(मैथिलीकल्याण, पृ० ५४)

५. मैथिलीकल्याण ३।३०

६. आसादिता जनपदा बहुदर्शनीया
भाषान्तराणि सकलानि सुशिक्षितानि। (सुभद्रा, पृष्ठ २)

७. अहो वक्रभाषिते वैदग्ध्यम्। —सुभद्रा, पृष्ठ ३०
अभिजातश्लेषोपन्यासः। —सुभद्रा, पृष्ठ ६०
अहो वाक् कौशलम्। —सुभद्रा, पृष्ठ ६०
अहो गम्भीरता वचनस्य। अंजनापवनंजय, पृष्ठ १८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्रधार आदि के द्वारा प्रयुक्त संकेत तो कवि के लिए हैं ही[१], जो उनकी वाणी की विशेषताओं के परिचायक हैं, और वाणी विद्वत्ता की परिचायक होती है।

नाटक एक ऐसी कृति है, जिसके अन्तर्गत सब कुछ आ जाता है।[२] इसलिए एक ही नाटक भिन्न-भिन्न रुचि वालों को भी आनन्द दे सकता है[३], क्योंकि उसमें विविध प्रकार की सामग्री और ज्ञान रहता है। महाभारत की भाँति जो इस नाटक में है वह सर्वत्र है अथवा यों कहें कि जो सर्वत्र है वह नाटक में होता है।[४] जहाँ गद्य कवियों की कसौटी समझा जाता है,[५] वहाँ नाटक में गद्य और पद्य दोनों के प्रयोग की क्षमता के साथ चतुर्मुखी ज्ञान और प्रतिभा भी अपेक्षित होती है, इसलिए नाटक की रचना कवि की चरम सीमा है।[६] उनकी नाट्यकला की उत्कृष्टता के कारण अय्यपार्य ने उन्हें कविराज चक्रवर्ती पद से संस्तुत किया है।[७] इनके नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हस्तिमल्ल को अनेक विषयों का ज्ञान था। कुछ विषयों के सम्बन्ध में यहाँ लिखना उपयुक्त होगा।

ज्योतिष ज्ञान—नाटक में कुछ प्रसंग ऐसे आये हैं, जिनके समझने के लिए मुझे ज्योतिष के विद्वानों की सहायता लेनी पड़ी। उन प्रसंगों के विवेचन से हस्तिमल्ल के ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान का परिचय मिलता है। युद्ध प्रकरण में अर्ककीर्ति अपने को अर्क (सूर्य) और सोमवंशोत्पन्न जयकुमार को सोम (चन्द्र) बताते हुए कहते हैं कि सूर्य का अतिक्रमण करने वाले तुम्हारा ही क्षय होगा।[८] ज्योतिष के अनुसार

---

१. समीचीना वाचः सरलसरला काऽपि रचना परावाचो युक्तिः इत्यादि
(अंजनापवनंजय, पृष्ठ २)
सुधासध्रीचीना त्रिजगति यदीया सुभणितिः (विक्रान्तकौरव ३।५)
कवीनां काप्यन्या भणितिः विजयते (वही, ४५।१)
कवीन्द्रोऽयं वाचा विजितनवमो चाफलरसः (विक्रान्तकौरव, पृ० ३।५)

२. त्रैलोक्यस्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्। (नाट्य शास्त्र १।१०४)
नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्। —नाट्यशास्त्र १।१०९
न तज्ज्ञान न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते। —नाट्यशास्त्र १।११४

३. नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकम् समाराधकम्। —मालविकाग्निमित्रम्

४. यदिहास्ति तदन्यत्र (महाभारत)

५. गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति। (भूमिका, गद्यचिन्तामणि)

६. (क) नाटकान्तं कवित्वम्। —संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ० ४५०
(ख) सत्यं नाटकान्ताः कवयः (अंजनापवनंजय, पृ० २)

७. जीयादशेषकविराजचक्रवर्ती श्रीहस्तिमल्ल इति विश्रुतपुण्यमूर्तिः
(जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की प्रशस्ति)

८. अर्ककीर्तिरसावर्कः सोमस्त्वं सोमवंशजः
अभुभास्कन्दतो मूढ तवैव प्रत्युतक्षयः (विक्रान्तकौरव १०४।८५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पौर्णमासी को चन्द्रमा सूर्य से सर्वाधिक दूरी पर होता है, इसलिए उस दिन चन्द्रमा में सर्वाधिक प्रकाश होता है, और अमावस्या के दिन चन्द्रमा और सूर्य में अन्तर नहीं रहता है, इसलिए उस दिन चन्द्रमा का क्षय रहता है।[१] सुलोचना के कौतुकबन्ध के प्रसंग में जो छन्द आया है[२], उसकी अर्थ-संगति के लिए ज्योतिष की जानकारी आवश्यक है। इससे विदित हो जायगा कि हस्तिमल्ल को ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था और ज्योतिष पर अच्छा विश्वास था। अंजनापवनंजय में पवनंजय के शरीर के सामुद्रिक शास्त्र के चिह्नों का वर्णन साम्राज्य लक्ष्मी का सूचक होता है, यह बात ज्योतिष ग्रन्थों से मिलती जुलती है। इसी प्रकार स्त्री के बाँये नेत्र का स्पन्दन[३] प्रिय-मिलन का सूचक होता है। विक्रान्तकौरव का उद्धृत छन्द[४] ज्योतिष के अनुसार ठीक अर्थ देता है। ज्योतिष में १२ भाव होते हैं।[५] उन भावों में अनेक पर्यायवाची नाम भी मिलते हैं। उन १२ भावों में केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लिम और त्रिक संज्ञाएँ होती हैं। प्रथम (देह) चतुर्थ (सुख) सप्तम (कलत्र) और दशम (कर्म) भाव केन्द्र कहलाते हैं।[६] उद्धृत छन्द का केन्द्र शब्द इसी अर्थ का द्योतक है। ग्रह नव होते हैं, उनमें गुरु, चन्द्र, बुध और शुक्र, ये ग्रह शुभ होते हैं तथा मंगल, सूर्य और शनि, ये अशुभ ग्रह होते हैं। इनमें राहु केतु भी हैं और ये ही दिन ग्रहानुसार शुभाशुभ होते हैं[७]। केन्द्र में शुभ ग्रहों की स्थिति और तीसरे, छठवें और ग्यारहवें भाव (स्थान) में इन ग्रहों की सत्ता न होने का कथन करने का कारण यह है कि ज्योतिष के अनुसार त्रिकोण (पंचम सुत और नवम धर्म भाव) के नेता ग्रह शुभ फलदायक होते

---

१. यः परमो विकर्षः सूर्याचन्द्रमसौः सा पौर्णमासी,
यः परमः संकर्षः साऽमावस्या। (गोभिल गृह्य सूत्र ५।७)
यः परमो महान् विकर्षः व्यवधानम् महदन्तरम् इत्यर्थः
यः परमः महान् संकर्षः अव्यवधानम् एकीभाव इत्यर्थः
कयोः ? सूर्याचन्द्रमसौः, साऽमावस्या (गोभिल गृह्य सूत्र, पृ० १५०)

२. शुभग्रहाधिष्ठितकेन्द्रशोभितं, तृतीयषष्ठायगतेतरग्रहम्
वदन्ति जामित्र विशुद्धमत्तनुं मुहूर्तमह्लाय मुहूर्तकोविदाः (विक्रान्तकौरव १५८।४१)

३. अंजनापवनंजय, पृ० ४८

४. शुभग्रहाधिष्ठितकेन्द्रशोभितं तृतीयषष्ठायगतेतरग्रहम्
वदन्ति जामित्रविशुद्धमत्तनुं मुहूर्तमन्ह्राय मुहूर्तकोविदाः

५. देहं द्रव्यपराक्रमौ, सुखसुतौ शत्रुकलत्रं भृति।
भाग्यं (धर्म) राज्यपदं (कर्म) क्रमेण गदिता लाभव्ययो लग्नः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मतं देहिनां।
तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजः कार्यः बुधैः निर्णयः (जातकालंकार, संज्ञाध्याय १।५)

६. आद्यं तुर्यं कलत्रं दशममिह बुधैः केन्द्र मुक्तम्
त्रिकोण पुत्रं धर्माख्यमुक्तमित्यादि (वही १।९)

७. गुरुश्चन्द्रौ बुधः शुक्रः शुभाः वाराः शुभे स्मृताः
क्रूरास्तु क्रूरकृत्येषु ग्राह्या भौमार्कसूर्यजाः (संग्रह शिरोमणि, पृ० १६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, किन्तु वही ग्रह यदि तीसरे (पराक्रम) छठवें (शत्रु) ग्यारहवें (आय) स्थान में होते हैं तो अशुभ फलदायक बन जाते हैं।[१] यदि अशुभ ग्रह इन स्थानों में हों, तो वे शुभ फल देते हैं। इन तीन ग्रहों से भिन्न कहने का कारण यह भी हो सकता है कि घर में आय (लाभ) पराक्रम या शत्रु हो तो सज्जन भी दुर्जनता को प्राप्त हो जाता है, इसलिए इनके आधिपत्य से सब ग्रह पाप फलदायक होते हैं।[२]

उद्धृत छन्द में एक जामित्र दोष का उल्लेख है। विवाह सम्बन्धी दश दोष होते हैं, उनमें पांचवां जामित्र दोष होता है।[३] वैवाहिक नक्षत्र से चतुर्दशवें नक्षत्र ऊपर पापग्रह होने से जामित्र दोष लगता है। लग्न से या चन्द्रमा से सातवें घर में कोई भी ग्रह हो तो भी जामित्र दोष होता है। इसके फलादि के विषय में मुहूर्तप्रकाश और मुहूर्त-चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में विस्तार से विवेचन है।[४]

विविध शास्त्रों का ज्ञान :—हस्तिमल्ल के नाटकों में पशु-पक्षियों, वृक्ष, पुष्प-लताओं, संस्कृति और भूगोल के स्थानों का वर्णन प्रायः वैज्ञानिक शोध और उस विषय के विद्वानों के मत के अनुकूल है। कुछ वर्णन कवि परम्परा की प्रसिद्धि के अनुसार हैं, जो उनके काव्य शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान को पुष्ट करते हैं। उन्होंने नाट्य विद्या का अभ्यास अच्छी तरह किया था।[५] उनके छन्द रस और वृत्ति के अनुकूल हैं। उनके द्वारा किया गया उनकी रचना का अलङ्करण सुसंगत एवं शोभादायक है।[६] काव्य के गुण दोषों आदि का विवेक[७] गुण उनकी काव्य विद्या के परिचायक हैं और उन्हें महाकवि सूचित करते हैं।[८] उन्होंने अपने पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य का

---

१. सर्वे त्रिकोण नेतारो ग्रहा शुभफलप्रदाः
पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः
लघुपाराशरी (बंबई प्रकाशन) संज्ञा प्रकरण, अनुष्टुप ६

२. आयः पराक्रमो वापि शत्रुर्वाऽपि गृहे तदा
साधोरपि खलत्वं स्यादिति लोकेऽपि दृश्यते
तस्मात् स्वभावतः सौम्याः पापा वा गगनेचराः
त्रिषडायाधिपत्येन सर्वे पापफलप्रदाः (लघु पाराशरी—वाराणसी प्रकाशन, पृष्ठ ३२)

३. (१) लात दोष, (२) पात दोष, (३) युति, (४) वेधसारिणी, (५) यामित्र, (६) बाणपंचक, (७) एकार्गल, (८) उपग्रह, (९) क्रान्तिसाम्य और (१०) दग्धातिथि दोष। (दैवज्ञ विनोद, पृष्ठ २९५)

४. (अ) मुहूर्तप्रकाश, पृष्ठ ९०, छन्द १०४ से १०६
(ब) मुहूर्त-चिन्तामणि, पृष्ठ २९३, विवाह प्रकरण ६।६७

५. अधीतैषा विद्या (नाट्यशास्त्रविद्या) क्रमत इह पारंच गमिता (विक्रांतकौरव २।२)

६. देवी—किं सुसंगतमस्या अलंकरणम्, मंदारिका—किमत्र भणितव्यं, यत्र स्वयमेव देवी (वैलाती। सरस्वती)—अलंकरोति (सुभद्रा, पृष्ठ ८७)

७. गुणदोषां च विवेक्तुं व्यक्तं जानाति। (सुभद्रा, पृष्ठ १)

८. सूत्रधारः—महाकविसमाबद्धं रूपकं रूप्यतामिति। (विक्रान्तकौरव ३।४)
हस्तिमल्लनाम्ना महाकवितल्लजैन विरचितं विक्रान्तकौरवं नाम रूपकम्, (पृ० ३।४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्ययन अच्छी तरह किया था, इसलिए उनके नाटकों में पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों की छाया कुछ स्थलों पर दिखाई देती है। अन्य कवियों के वियोगियों के विलापों का वर्णन अवश्य पढ़ा होगा।[१] राम के जल्प को मेघोत्कण्ठासुलभ बताया गया है। सम्भवतः मेघदूत के कामी यक्ष के मेघ के प्रति किये गये कथन की ओर संकेत हो।[२]

जैन धर्म, दर्शन तथा साहित्य का तो उन्हें अच्छा ज्ञान था। प्रस्तुत नाटकों के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि उन्हें जैन धर्म के चारों अनुयोगों के शास्त्रों का ज्ञान था। प्रथमानुयोग[३] सम्बन्धी महापुरुषों के जीवनवृत्तों को अपने नाटकों तथा पुराण लेखन का आधार बनाया है। जैन भूगोल के स्थान, ज्योतिर्विमान और अत्यन्त कालापन दिखाने के लिए सप्तम पाताल आदि के उल्लेख करणानुयोग[४] के परिचायक हैं। अतत्वश्रद्धान[५] (मिथ्यादर्शन), जैनेश्वर साधन, रत्नत्रय[६], षष्ठोपासकस्थान[७] आदि शब्दों के प्रयोग चरणानुयोग[८] के ज्ञान के अभिव्यञ्जक हैं। आद्य तत्व (जीव), अन्त्य-तत्व (मोक्ष), निर्जरा (छठवां तत्व), उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि शब्द द्रव्यानुयोग[९] के ज्ञान की व्यञ्जना कराते हैं।

अद्वैत दर्शन[१०] शब्द का प्रयोग उनके अन्य दर्शनों के ज्ञान को प्रकट करता है। श्री पटवर्धन ने अंजनापवनञ्जय की भूमिका में उनके नाटकों के अनेक उद्धरण दिये हैं, जो उपनिषद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं। सम्भव है उन्होंने सभी सम्प्रदाय के प्रख्यात ग्रन्थों का अध्ययन किया हो। अपने पिता को उन्होंने सर्व शास्त्रों और सर्व धर्मों का विद्वान लिखा है।[११] इसलिए इन्होंने भी पिताजी के अनुकरण पर या

१. नो मिथ्या कुरुते वचांसि विरहे वाला कवीनामपि (मैथिली कल्याण ५३।२७)
२. मैथिली कल्याण, पृष्ठ ६
३. प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्
बोधिसमाधिनिधानं बोधतिबोधः समीचीनः (रत्नकरण्डश्रावकाचार ४३)
४. लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्च चतुर्गतीनां च
आदर्शमिव तथामति रवैति करणानुयोगं च (वही, द्वितीय अधिकार ४४)
५. अंजनापवनंजय, पृष्ठ ६५
६. विक्रान्तकौरव, पृष्ठ १६०,
७. विक्रान्तकौरव, पृष्ठ १५५।३३
८. गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्ति वृद्धि रक्षांगम्
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति। (वही, ४५)
९. जीवाजीवसुतत्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोक मातनुते। (वही, ४६)
१०. विक्रान्तकौरव, पृष्ठ ४६
११. निखिलशास्त्रतीर्थावगाहपवित्री कृतधिषणस्य
मध्यलोकधिषणस्य, निःशेषनिः पीतधर्मामृतरसायनस्य
सरस्वतीविस्मयनीयोपायनस्य भट्टारकगोविन्दस्वामिनः
सूनुना हस्तिमल्लेन विरचितं। (मैथिली कल्याण, पृष्ठ २)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दाय रूप में अध्ययन किया हो। कवि हस्तिमल्ल की जीवनी में हम देखते हैं कि वे शास्त्रार्थी भी थे। उन्हें परवादि रूपी हाथियों के लिए सिंह माना जाता था।[1] शास्त्रार्थ करने वाले को सभी धर्मों के और सभी विषयों के ग्रन्थों के गहन अध्ययन की आवश्यकता होती है, अन्यथा वह शास्त्रार्थ कर ही नहीं सकता है; उसमें विजय पाना दूर की बात है।

एक छन्द ऐसा है, जिसमें उन्होंने केवल (व्याकरण की) क्रियाओं का प्रयोग किया है।[2] चन्द्रसेना और वैशिक चकोर का समान प्रेम बताने के लिए द्वन्द्व पद का प्रयोग किया है।[3] क्योंकि द्वन्द्व समास में दोनों पक्षों का प्राधान्य होता है। इस प्रकार उनके व्याकरण के ज्ञान की सूचना मिलती है। नाटकों में विभिन्न वाद्यों के उल्लेख के अतिरिक्त मैथिलो कल्याण के गीत की विशेषताओं का वर्णन[4] हस्तिमल्ल के संगीत शास्त्र के ज्ञान का सङ्केत देता है।

उद्धृत छन्द में आये हुए अलंकार, वर्ण ताल, अंग, लय, कला, श्रुति और प्रासादिकी ध्रुवा में संगीत शास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं।[5]

मैथिली कल्याण नाटक में काम्भोजी भाषा का उल्लेख आया है।[6] वह संगीत के ५८ रागों में से एक है। काम्भोजी भाषा राग में ग्रह, अंग तथा न्यास स्वर धैवत होते हैं।[7]

युद्ध के प्रकरण में अनेक व्यूहों और शस्त्रास्त्रों का उल्लेख है। इनसे भी उनके प्राचीन शास्त्रों के व्यापक अध्ययन और विस्तृत ज्ञान की जानकारी प्राप्त होती है। भेंट में दिये गये घोड़ों और हाथियों के वर्णन[8] उनके पशु लक्षणशास्त्र के ज्ञान का

---

१. परवादिहस्तिनां सिंहोहस्तिमल्लस्तदुद्भवः। (जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २६१)

२. क्षुन्ध्याधूर्णय कुट्टय क्षिप दह व्यारंध सन्धानय
भिन्दिच्छिन्धि मथान ताडय जहि व्यावर्तयापातय। इत्यादि (विक्रान्तकौरव, पृ० ८८।४३)

३. विक्रान्तकौरव, पृष्ठ ४८

४. सालंकारमनिष्ठुराक्षरपदं प्रव्यक्तवर्णक्रमं
पूर्णांगं सलयं कलानियमितं प्रस्पष्टतालश्रुतिः
तत्कालोचितगेयवस्तुरचितां प्रासादिकी ध्रुवा
माश्रित्यैव हि गीतमेतदधुना गीतं सुकण्ठ्यानया (मैथिली कल्याण, पृ० १२।२३)

५. संगीत शास्त्र, पृष्ठ १०, ३१, २०९

६. संगीतशास्त्र–राग प्रकरण

७. संगीतशास्त्र–राग प्रकरण

८. अष्टौ शतानि कलभाः शुभलक्षणाढ्या (विक्रान्तकौरव १४७।४)
श्लाघ्यावर्ताः पंचधाराऽभियुक्ताः सत्वोद्रिक्ताः काशिराजेन दत्ता वाजिनश्चाभिजाताः। (विक्रान्तकौरव १४८।५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देशक है। प्रस्तुत नाटक में घोड़ों की पंच धाराओं का उल्लेख है। उनके नामादि का विवरण अश्वशास्त्र में मिलता है।[1] इसी प्रकार घोड़ों के शुभ और अशुभ आवर्तों का विवेचन भी विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है।[2] हाथियों के शुभ लक्षणों का वर्णन भी बृहत् संहिता में है।[3]

विरह वर्णन में एक स्थान पर चन्द्र की किरणों के समुदाय का वर्णन आया है कि यह पारे के प्रवाह की भाँति स्पर्श मात्र से वियोगिओं को नष्ट करता हुआ-सा शोभित हो रहा है।[4] मैंने रसायनशास्त्र के एक विद्वान ने पूछा तो उन्होंने बताया कि पारा शरीर को स्पर्श मात्र से कुछ हानि नहीं पहुँचाता है, तब मुझे लगा कि हस्तिमल्ल ने वैज्ञानिक तथ्य के विरुद्ध ऐसा वर्णन क्यों किया होगा, परन्तु शोध के बाद पता चला कि यह वर्णन शास्त्र-सम्मत है। पारद का वर्ण श्वेत होता ही है जो कि प्रस्तुत वर्णन से उपमा दी है और प्रवाह शब्द ही वर्णन को वैज्ञानिक शोध के अनुकूल बनाता है। शुद्ध पारद की भी यदि अधिक मात्रा हो जाय, तो वह रोग को दूर करने के स्थान में अनेक रोगों का जन्मदाता हो जाता है, यहाँ तक कि मृत्यु का कारण बन जाता है।[5]

---

१. धाराः पंच प्रवक्ष्यामि मुनिभिर्या प्रकीर्तिताः
प्रथमा विक्रमा धारा द्वितीया पुलका स्मृता
तृतीया पूर्णकण्ठी तु चतुर्थी त्वरिता स्मृता
पंचमी चैव या धारा निरालम्बा प्रकीर्तिता इत्यादि।
(अश्वशास्त्र, पृष्ठ १२० और अंग्रेजी टीका, पृष्ठ २३०)

२. (अ) आवर्तो सुविवस्थौ शुक्ती वा यस्यवाजिनः स्याताम् स प्राप्नोति चेष्टमन्नं भर्ता पुत्रांश्च पौत्रांश्च। (अश्वशास्त्र, पृष्ठ २३)

२. (व) वक्षसि यस्यावर्ताश्चत्वारः वाजिनः स्वामी
प्राप्नोति रणे विजयं वित्तं निष्कण्टकम् राज्यम्। (वही, ८।३७ तक)

२ (स) बृहत् संहिता का ६६वाँ अध्याय अश्व लक्षणाध्याय है। इसमें घोड़ों के शुभ और अशुभ आवर्तों के लक्षण हैं।

३. (अ) वाराही (बृहत्) संहिता हस्तिलक्षण नामक ६७वाँ अध्याय।

३. (ब) उत्तम हाथी सात हाथ ऊँचा, नौ हाथ चौड़ा, मध्य भाग में १० हाथ, पाद पुच्छादि सात अंगों से सुप्रतिष्ठित, शिर उठा हुआ, पृष्ठ भाग सूकरवत्, लम्बी सूँड और शुक्ल वर्ण वाला होता है। (ज्ञातृधर्म कथा १, पृ० ३५)

४. रजनिसुरभिभूरिक्षीरनिष्यन्दशुभ्रः किरणपरिकरोऽसौ रोहिणी वल्लभस्य
प्रसृत इव विभाति स्पर्शमात्रेण निघ्नन् विधुरविरहिदेहान् पारदासारपूरः।
(विक्रान्तकौरव १३१।४८)

५. दोष्हीनो यदा सूतस्तदामृत्युजरापहः।
शुद्धोऽयममृतः साक्षाद् दोषयुक्तो रसो विषम्।
प्रयुक्तस्त्वतिमात्रायां सततं पारदः पुनः।
ज्वरं शिथिलतां चापि मनसः सदनं तथा।
मुखं विद्रादिपाण्डुत्वरक्तपित्तादिकान् गदान्।
घोरान् संजनयित्वा तु मृत्युमापादयेदिति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो लोग पारद के वाष्पीय वातावरण में अधिक समय तक रहते हैं, खानों में काम करने वालों या शीशों पर कलई चढ़ाने वालों को जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और कम्पन आदि अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।[1] दूसरी बात यह है कि इसका घनत्व १३.५९ होता है, ३९ सेन्टीग्रेड पर जमता है और ३५९ सेन्टीग्रेड पर उबलता है। इस प्रकार इसका वजन पानी से लगभग १५ गुना अधिक होता है और यदि उसका प्रवाह शरीर से स्पर्श कर जाय तो निश्चय ही नाश करने वाला होगा। इसी प्रकार सुभद्रा नाटिका की एक उपमा[2] उनके आयुर्वेदादि की जानकारी पुष्ट करती है। हस्तिमल्ल द्वारा सुभद्रा नाटिका में चित्र के आलेखन का जो वर्णन किया गया है[3], उस वर्णन की सूक्ष्मता पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि वह चित्रकला या आलेख्य विज्ञान के अनुकूल है। आलेख्य के छह अंग होते हैं। (१) रूप नामक अंग है। सुभद्रा की आकृति बनायो गयी है और उसे यह वही है कहा गया है। इससे रूप नामक अंग का अस्तित्व माना जायगा। (२) विशाल नेत्रों की रचना एवं भुजयुगपरिव्यंग्यजघना विशेषण से प्रमाण अंग समझना चाहिए। (३) परिणत-शरच्चन्द्रवदना विशेषण चित्रकला के भाव अंग का व्यंजक है। भाव अंग का आशय आकृति की भंगिमा अर्थात् उसके स्वभाव, मनोभाव की व्यंग्यात्मक प्रक्रिया से है। (४) आलेख्य की दर्शनीयता[4] उसके लावण्य अंग की पुष्ट करती है। (५) सादृश्य अंग है। विदूषक चित्र देखकर कहता है कि मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे वही आ गयी हो[5], इससे केवल सादृश्य की और आकृति अंग की पूर्ति नहीं होती, बल्कि यह शुद्ध चित्र की श्रेणी का द्योतक है, क्योंकि चित्र कल्पना से प्रसूत हो या वास्तविक, किन्तु दर्शक उसको पहिचानने में यदि भूल नहीं करता या किसी प्रकार की द्विविधा में नहीं पड़ता तो उस चित्र को शुद्ध माना जाता है।[6] और छठवाँ अंग वर्णभंगिमा या रंग है।[7]

कामशास्त्र का ज्ञान—विक्रान्तकौरव में कुछ ऐसी शृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन है, जो कामशास्त्र के अनुकूल हैं। हो सकता है शृंगार रस के नाटक रचयिता ने इस शास्त्र की भी कुछ जानकारी की हो। कामशास्त्र के अनुसार दर्पण, दीवाल, अथवा पानी में नायक या नायिका की छाया पड़ रही हो तो प्रेम प्रदर्शित करने के लिए उस छाया का चुम्बन करना चाहिए।[8] सुलोचना द्वारा दर्पण में संक्रान्त

---

१. धन्वतरि, विष चिकित्सांक, वर्ष २७, अंक १, २, जनवरी-फरवरी १९५३ लेख—पारद एवं उसके प्रयोग—लेखक—कविराज जागेराम शर्मा, पृ० २८९

२. सुभद्रा ५७।१३

३. इयं सा दीर्घाक्षी परिणतशरच्चन्द्रवदना इत्यादि २८।१५

४. अहो दर्शनीयता आलेख्यस्य। (सुभद्रा, पृष्ठ २८)

५. अहं पुन समर्थये स्वयमेवेहागतेति। (सुभद्रा, पृ० २८)

६. भारतीय चित्रकला, पृ० ५२

७. भारतीय चित्रकला, पृ० ४८

८. आदर्शे कुड्ये सलिले वा प्रयोज्यायारछाया चुम्बनमाकार प्रदर्शनार्थमेवकार्यम्। (हिन्दी कामसूत्र २।३।२८, पृ० २६६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जयकुमार की छाया का चुम्बन किये जाने का वर्णन विक्रान्तकौरव में है।[१] इसी प्रकार कामशास्त्र के अनुसार तीव्र राग होने पर जब पुरुष स्त्री पर प्रहार-सा करे तो उस स्त्री को अरी री, बस करो इत्यादि शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।[२] विक्रान्त-कौरव में इसी के अनुसार वर्णन भी मिलता है।[३]

इस प्रकार विविध विषयों से संबंधित तत् तत् विषय के अनुकूल वर्णन हस्तिमल्ल के विविध विषयों के ज्ञान के परिचायक हैं और हस्तिमल्ल की विद्वत्ता को प्रकट करते हैं।

हस्तिमल्ल की रचनाएं

हस्तिमल्ल के पिता गोविन्द भट्ट भी विद्वान थे, उनके सभी पुत्र भी विद्वान थे। जिस प्रकार तुलसीदास की कृतियां स्वान्तःसुखाय होकर भी परसुखाय और परहिताय भी हुई हैं, उसी प्रकार किसी की विद्वत्ता अपने विकास के लिए तो होती ही है किन्तु उस विद्वत्ता का विशेष महत्त्व होता है, जिसे विद्वान दूसरे में संक्रान्त कर सकें। कालिदास की कृति में ऐसा ही विद्वान प्रतिष्ठा के योग्य माना गया है।[४] दि० जैन साहित्य में नाटक साहित्य में नाटक रचना का जो अभाव था, उसे हस्तिमल्ल की विद्वत्ता ने दूर किया है। श्वेताम्बर जैन साहित्य में भी नाटक लेखन नहीं हुआ था, पर हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र सूरि द्वारा लिखित प्रकरणों का उल्लेख मिलता है।[५]

---

१. स तु पुनस्तया दर्पणः (जयकुमार की छायायुक्त) मुखेन कामं परिचुम्बितश्च ।
(विक्रान्तकौरव, पृ० १६, २८)

२. रागवशात् प्रहणनाभ्यासे वारण मोक्षणालमर्थानां
शब्दानामम्वार्थानां च सतान्तश्वसितरुदित—
स्तनितमिश्रीकृतप्रयोगा विरुतानां च। (कामसूत्र २।७।२०, पृ० ३३२)

३. तत्कालप्रतिबोधिताभिरलसोन्निद्रेक्षणाभिः प्रियाः
सीदन्तीभिररं प्रदोषसुरतश्रान्तिश्लथैरंगकैः
निर्मर्यादविमर्दनिर्दयममी विस्रम्भरुद्धत्रपम्
सेवन्ते रतिलम्पटा युवतिभिः प्रत्यूपरत्युत्सवम् (विक्रांतकौरव २२।३)

४. शिल्ष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।
(मालविकाग्निमित्र १।१६)

५. (A) As poets, the Jains have also contributed their share to the literature of the drama. Ramchand Suri the pupil of Hemchand was an exceptionally prolific writer of dramas. Hastimalla a pupil of Govind Bhatta wrote in the South India several dramas—A History of Indian Literature, Maurice Winternit, Vol. II, page 546.

(B) Among Jain Play wrights, the outstanding names are Ramchand Suri and Hastimalla. Each have written a number of nice Sanskrit Plays—The Jain Sources of the History of Ancient India, page 228.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी समय हस्तिमल्ल ने दि० जैन ग्रन्थों की कथावस्तु के आधार पर नाटकों का प्रणयन किया था। नाटकों के माध्यम से हस्तिमल्ल ने अपनी विद्वत्ता को समाज में संक्रान्त किया है। वे शास्त्रार्थी थे, इसलिए वाग्विदग्ध भी। नाटकों के सुभाषित तथा कथोपकथन उनकी वाग्विदग्धता के प्रमाण हैं, किन्तु सत्कवित्व के बिना वह वाग्विदग्धता अधूरी है।[1] इनका सत्कवित्व नाटकों में तो प्रस्फुटित हुआ ही है, अन्य ग्रन्थ आदिपुराण और प्रतिष्ठा तिलक आदि भी उनके सत्कवित्व के प्रमाण हैं।

हस्तिमल्ल के द्वारा लिखित इन (विक्रान्तकौरव, अंजनापवनंजय, मैथिलीकल्याण और सुभद्रा) चार नाटकों के अतिरिक्त भरतराज, अर्जुनराज, और मेघेश्वर नामक नाटकों का उल्लेख और मिलता है। यद्यपि इन नाटकों के लेखक का नाम हस्तिमल्ल के स्थान पर सूची में हस्तिमल्लषेण छपा हुआ है।[2] चूंकि हस्तिमल्लषेण नामक द्वितीय नाटककार का पता अब तक नहीं चला है, इसलिए इन्हीं हस्तिमल्ल द्वारा लिखित ये नाटक होना चाहिए। इन्होंने मैथिली कल्याण नाटक की प्रस्तावना में अंजना-पवनंजय प्रमुख रूपकों का प्रवर्तक अपने को बताया है। संस्कृत में बहुवचन कम से कम तीन का बोधक होता है और उससे अधिक का बोधक तो हो ही सकता है। इससे सिद्ध होता है कि हस्तिमल्ल मैथिलीकल्याण लिखने के पूर्व कम से कम तीन नाटक लिख चुके थे। सुभद्रा नाटिका रूपकों के अन्तर्गत नहीं मानी जा सकती है, क्योंकि वह रूपक नहीं उपरूपक के अन्तर्गत आती है और उसकी रचना सबसे अन्त में हुई प्रतीत होती है। इसलिए इनके द्वारा लिखित नाटक विक्रान्तकौरव के अतिरिक्त भी होंगे और वे उपर्युक्त नाटक ही होंगे। हस्तिमल्ल का नाम हस्तिमल्लषेण लिखे जाने का क्या कारण हो सकता है? मेरी समझ में इन्होंने अपनी गुरु परम्परा में वीरसेन और जिनसेन का उल्लेख किया है। जिनसेन के आदिपुराण के आधार पर आदिपुराण भी कन्नड भाषा में लिखा है, यहाँ तक कि एक प्रति में आदिपुराण के श्लोक से मिलता-जुलता श्लोक मिलता है।[3] प्रत्येक पर्व में जो मंगलाचरण है, वह भी जिनसेन के आदिपुराण का है। आचार्य वीरसेन और जिनसेन के नाम के बाद का शब्द इनके नाम के आगे भी जुड़ गया है। केटेलाग्ज कटलागोरम में मैथिली परिणय नाटक का उल्लेख है और उसके भी रचयिता का नाम हस्तिमल्लषेण है,

---

१. रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता (काव्यालंकार १।४)

२. Catalogus Catalogorum Part I
   (A) Page 30 Arjunraj Natak by Hastimallasena, Oppert II 316,
   (B) Page 396 Bharatraj Natak by Hastimallasena, Oppert II 325,
   (C) Page 466 Megheswar Natak by Hastimallasena, Oppert II 326,
   (D) Page 468 Maithili Natak by Jain Author, Rice 304.

३. श्रीपुराणसमाम्नातमाम्नातं हस्तिमल्लिना
   तरण्डं सर्वशास्त्राब्धेरखण्डं धारयत्वमुम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबकि वह यही मैथिलीकल्याण नाटक होगा, क्योंकि इस नाटक के नामकरण का जो कारण नाटक की एक पंक्ति है, जो कि मैथिलीकल्याग और मैथिलीपरिणय दोनों नामों के निर्धारण में सहायक हो सकती है।[१] अर्थों का भी साम्य दोनों शब्दों में है। यदि केटेलाग्ज में उल्लिखित नाटक को मैथिलीकल्याण मान लिया जाय तो हस्तिमल्लषेण को भी हस्तिमल्ल माना जा सकता है। उस स्थिति में इनके नाटकों की संख्या दो और बढ़ जायगी।

विक्रान्तकौरव नाटक का दूसरा नाम नायक जयकुमार (मेघेश्वर[२]) के कारण मेघेश्वर हो सकता है। इस नाटक के अंकों की समाप्ति पर भी विक्रान्तकौरव नाटक के परिवर्तित नाम मिलते हैं।[३] इतना अवश्य है कि सुभद्रा नाटिका का दूसरा नाम हीं भरतराज नहीं होगा, उसका कारण यह है कि नाटिका का नाम स्त्रीलिंग पर ही रखा जाता है, इसलिए उसका नाम भरतराज, पुंलिंग नाम, नहीं हो सकता है। सुभद्रा की प्रस्तावना में भी उसका नाम 'सुभद्रा नाटिका' लिखा गया है। जैन पुराणों से चक्रवर्ती के चरित्र को आधार बनाकर अनेक नाटक बनाये जा सकते हैं, क्योंकि उनके जीवन की अनेक घटनाएँ जैन पुराणों में हैं। केटलाग्ज केटलागोरम में जो सुभदा नामक अनेक कृतियों का उल्लेख है[४], वे सब कृतियाँ हस्तिमल्ल की नहीं हैं। वे दूसरे लेखकों की हैं। वे कृतियाँ भरत सुभद्रा से सम्बन्धित भी नहीं हैं, बल्कि अर्जन सुभद्रा से सम्बन्धित हैं। केटलाग्ज में अंजनापवनंजय का उल्लेख न होने पर भी यह उनकी कृति स्वतंत्र है ही।

केटेलाग्ज केटलागोरम में इन ग्रन्थों के उल्लेख का आधार आपर्ट सा० द्वारा तैयार की गयी (लिस्ट आफ संस्कृत मैनुअल इन सदर्न इण्डिया) जिल्द १-२ सन् १८८०-८५ है। इसलिए यह बिल्कुल सम्भव है कि ये कृतियाँ उस समय उक्त महाशय को देखने को मिली होंगी और इनके लेखक यही हस्तिमल्ल होना चाहिए क्योंकि दक्षिण में इन्हीं का साहित्य उपलब्ध होना चाहिए। इस नाम के अन्य जैन लेखकों का उल्लेख जैन ग्रन्थकारों से नहीं मिलता है।[५] अन्य कृतियों में आदि पुराण की प्रतियाँ तो प्राप्त होती ही हैं।[६] उसके अतिरिक्त कन्नड़ लिपि में संस्कृत भाषा के

---

१. त्वमपि अचिरेण तत्रभवती परिणयकल्याणं लभस्व। पृष्ठ २२

२. (अ) मेघेश्वरोऽपि विस्मारयति गुणान् सोमप्रभस्य। (विक्रान्तकौरव, पृ० २४)
   (ब) मेघेश्वर नाम का कारण, विक्रान्त कौरव (६८.७४)

३. (अ) विक्रान्तकौरवीय नाटके वाराणसी दर्शनो नाम प्रथमोंऽक: समाप्त:, पृ० २०
   (ब) कौरव पौरवीय नाटके गंगामज्जनं नाम द्वितीयोंऽक: समाप्त:, पृ० ४४
   (स) सुलोचना नाटके स्वयंवर यात्रा नाम तृतीयोंऽक: समाप्त:, पृ० ७१
   (द) सुलोचना नाटके कौरव पौरवीयो नाम चतुर्थोंऽक: समाप्त:, पृ० १११

४. सुभद्रा धनंजय, सुभद्रा परिणय, सुभद्रा विजय, सुभद्राहरण, प्रथम भाग, पृ० ७२८; सुभद्राहरण, द्वितीय भाग, पृ० १७४

५. जैन ग्रंथ और ग्रंथकार में केवल एक ही हस्तिमल्ल का उल्लेख है, पृ० ३६

६. A Volume of Studies in Indology, Page 526 to 529.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कतिपय ताड़पत्रीय ग्रन्थों में रचयिता का नाम हस्तिमल्ल और कवि हस्तिमल्ल है। उनमें प्रतिष्ठा विधि अथवा विधान[1] वही होगा, जिसका सार लेकर अय्यपार्य ने अपना प्रतिष्ठा सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा है। वृषभनाथ पुराण[2] आदि पुराण का ही दूसरा नाम होना चाहिए। हस्तिमल्ल द्वारा लिखित श्रीपुराण की अनेक प्रतियों का उल्लेख ताड़पत्रीय ग्रन्थ सूची में है।[3] नाटकों की भाँति इनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों को भी शोध का विषय बनाया जा सकता है। भण्डारों की समुचित व्यवस्था के अभाव में इन ग्रन्थों को खोजना और भी कठिन हो सकता है। आपर्ट सा० की सूची के अनुसार सभी नाटक उपलब्ध नहीं हुए हैं, और अब तो ऐसी स्थिति होती जा रही है कि जिन रत्नकोश के अनुसार भी उनके विक्रान्तकौरव की प्रतियाँ नहीं उपलब्ध हुई हैं। जबकि जिन रत्नकोश में भण्डारों में विद्यमान ग्रन्थों की सूची के अनुसार संख्या आदि सहित सूचना दी गयी है।[4]

केटेलाग्ज केटलागोरम में लेखक सूची में हस्तिमल्ल के द्वारा रचित उदयनराज काव्य का उल्लेख भी है।[5] ये महाकवि थे[6], इसलिए इनका स्वतन्त्र काव्य उदयनराज काव्य होगा। यद्यपि उदयनराज काव्य के रचयिता का नाम मल्लषेण लिखा है[7] और मल्लषेण को हस्तिमल्ल ही बताया गया है।[8] इसके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित अन्य काव्यों और नाटकों के अस्तित्व की संभावना की गयी है।[9]

प्राप्त नाटकों का लेखन क्रम—अञ्जनापवनञ्जय, सुभद्रा और विक्रान्तकौरव तथा मैथिलीकल्याण—इस क्रम से इन नाटकों के लिखे जाने का अनुमान श्री पटवर्धन ने किया है।[10] मेरी समझ में इनके लिखे जाने का क्रम विक्रान्तकौरव, अञ्जनापवनञ्जय, मैथिलीकल्याण और सुभद्रा, यह होना चाहिए।

(अ) कवि की नाट्यकला का क्रमशः विकास होता है, इस दृष्टि से विक्रान्तकौरव की रचना सर्व प्रथम होनी चाहिए। मैथिलीकल्याण के पूर्व अञ्जनापवनञ्जय के लिखे जाने का उल्लेख मैथिलीकल्याण की प्रस्तावना में है। सुभद्रा नाटिका उनकी उत्कृष्टतम कृति है, जो अनुरूप प्रयोग के द्वारा समाज का आराधन करने की क्षमता

---

१. कन्नड ताड़पत्रीय ग्रन्थ सूची, पृ० २१५
२. वही, पृष्ठ २२८
३. कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची, पृष्ठ १४८-१४९
४. देखो जिनरत्नकोश (वेलंकर द्वारा सम्पादित)
५. केटलाग्ज केटलागोरम, भाग १, पृ० ७६५
६. महाकवि समावद्धं रूपकं रूप्यतामिति (विक्रान्तकौरव ३।४)
७. वही, उदयनराज काव्य रचयिता मल्लषेण, आपर्ट २, पृ० ४२१
८. वही, पृष्ठ ४३३
९. Other Poems & Plays of his (i.e. Hastimalla's) are in existence—Catalogus Catalogorum, Part I, Page 765
१०. अंजनापवनंजय की भूमिका, अंग्रेजी में, पृ० १०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखती है।[१] जिसके लेखन में नाटकीय गुणों के समावेश और दोषों के परिहार का विवेक नाटककार ने रखा है[२] और सुसंगत अलंकरण आदि भी हैं।[३]

(ब) विक्रान्तकौरव के छन्द मैथिलीकल्याण और सुभद्रा में आये हैं, किन्तु सुभद्रा और मैथिलीकल्याण के छन्द एक दूसरे नाटक में नहीं हैं। पहिले लिखे गये नाटक के छन्द बाद में लिखे गये नाटकों में आना सम्भव है।

(स) विक्रान्तकौरव की प्रस्तावना में नाटककार ने अपनी प्रशंसा में सबसे अधिक लिखा है और सुभद्रा नाटिका में सबसे कम लिखा है। उन्होंने यह बात स्वीकार की है कि उच्च चित्त वाले मितभाषी होते हैं।[४] ज्यों-ज्यों उनकी कला विकसित हुई होगी, त्यों-त्यों नाटककार का मितभाषी होना स्वाभाविक है। विक्रान्तकौरव सबसे बड़ा नाटक है, उससे छोटा अञ्जनापवनञ्जय; उससे भी छोटा मैथिलीकल्याण नाटक और सबसे छोटी कृति सुभद्रा है।

(द) विक्रान्तकौरव में उनकी भाषा क्लिष्ट है, जो कि अविशद है। बाद के नाटकों में सावधानी से पदन्यास किया है। इसलिए उनके शब्दों में मृदुता है। उस समय ही ये नाटकीय कला की दृष्टि से प्रौढ़ता को प्राप्त हुए होंगे।[५] इसी पदन्यास की मधुरता और मृदुता के आधार पर मैंने उक्त क्रम समझा है।

इसी साध्वी प्रतिमा वाले[६] नाटककार के सम्बन्ध में आगे लिखेंगे कि इस नाटककार की लेखनी सुसंगत अभिव्यञ्जना करना जानती है।

नाटककारों का जो चार प्रकार का वर्गीकरण किया जाता है, उसमें से हस्तिमल्ल आदर्शवादी नाटककार हैं, जिनकी कृतियों में प्रधान पात्रों में गुण दिखाई देते हैं। उसमें भी ये प्राचीन संस्कृति के अनुरूप आदर्श नायक तथा आदर्श परिणाम खोजने वाले हैं।[७]

दूसरे वर्गीकरण के अनुसार चार भेदों में से[८] यह नाटककार उदात्त नाटककार की श्रेणी में आयेंगे, क्योंकि जीवनी के परिच्छेद में हम लिख चुके हैं कि इनके मन में विद्वत्ता सम्बन्धी मान की मात्रा थी। वैसे इनके चारों नाटकों में देखें तो ऐसा लगता है कि क्रमशः मृदु होते गये हैं। उस दृष्टि से उद्धत, प्रौढ़, उदात्त और विनीत—सभी रूप क्रमशः विक्रान्तकौरव, अंजनापवनञ्जय, मैथिलीकल्याण और सुभद्रा में हैं।

इनके नाटकीय कृतित्व का मूल्याङ्कन नाटकों के आलोचनात्मक अध्ययन में प्रसंगानुसार किया जायगा।

---

१. सुभद्रा, पृ० १ २. सुभद्रा, पृ० १।२,
३. सुभद्रा, पृ० ८७
४. सुभद्रा, पृ० ८६—कुतो हि मितभाषिता लघुचेतसाम्।
५. गिरमविशदां कृच्छाद् बद्ध्वा व्रजन्नपहास्यताम्।
कुकविवदहो भूयोभूयः स्खलामि पदे पदे
अवहितमना एव न्यस्यन् पदानि मृदून्यहम्
परिणतिमपि प्राप्य प्रौढ़ां कवेः समतां गतः (अंजनापवनंजय ५६।२)
६. भोः सखे साध्वी प्रतिभा जानासि सुसंगतं भाषितुम्। (सुभद्रा, पृ० ४०)
७. अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० ६८
८. हमारी नाट्य परम्परा, पृ० १०४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय अध्याय

विक्रान्तकौरव नाटक की समीक्षा

कथा वस्तु

इस नाटक में सुलोचना के स्वयंवर तथा जयकुमार के साथ कौतुकवन्ध का वर्णन है।

प्रथम अंक :—आशीर्वादात्मक मंगलाचरण में प्रथम जिनेन्द्र आदिनाथ से श्रेय की प्रार्थना की गयी है। प्ररोचना में कवि, कवि की कृति विक्रान्तकौरव नाटक की प्रशंसा द्वारा रचना के प्रति उन्मुख किया गया है।

सुलोचना की स्वयंवर यात्रा के महोत्सव को देखने के लिए जयकुमार अपनी चतुरंग सेना के साथ वाराणसी आए हुए हैं। साथ में उनके दो मित्र विशारद और नन्द्यावर्त तथा विदूषक सौघातकी भी हैं। विशारद के कथन से ज्ञात होता है कि वसन्त का समय है, किन्तु वाराणसी में गर्मी बहुत है, सैनिक ठंडक पाने के अनेक उपाय कर रहे हैं।

वाराणसी से कुछ दूर नदी के किनारे पर तम्बू लगे हुए हैं। कौरवेश्वर का तम्बू विशाल भवन की तरह है। वाराणसी में स्वयंवर के लिए आये हुए लोगों की तथा दर्शकों की इतनी भीड़ है कि मार्ग निराकुल नहीं है। कौरवेश्वर जय कुमार मित्र नन्द्यावर्त के साथ वाराणसी के अनेक दृश्यों को देखते हुए एक आम्र वृक्ष के नीचे पहुँचे, जहां स्वयंवर यात्रा से लौटती हुई सुलोचना को पालकी में जयकुमार ने देखा। सुलोचना के दर्शन के पश्चात् ही उसके प्रति आकर्षित होकर जयकुमार अपनी सुधवुध-सी भूल गये और फिर वे अपने शिविर में चले गये।

शिविर में जयकुमार अपने मित्र विदूषक को समस्त घटना सुनाते हैं तथा सुलोचना के अपूर्व सौन्दर्य और उसकी लज्जाशीलता की प्रशंसा करते हैं। साथ में कौरवेश्वर जयकुमार के कथन से यह भी ज्ञात होता है कि सुलोचना ने दर्पण में जयकुमार का प्रतिबिंब देखकर उस दर्पण के प्रतिबिम्ब के प्रति अनेक अनुराग चेष्टाएं कीं, जिससे जयकुमार के प्रति सुलोचना के अनुराग की सूचना मिलती है। सुलोचना के सम्बन्ध में उत्सुकता का वर्णन करते करते रात्रि हो जाती है और राजा को सुलोचना के मुख की स्मृति बनी रहती है।

द्वितीय अंक :—प्रातः काल जागकर उठे हुए राजा अकम्पन के प्रतीहार के कथन से ज्ञात होता है कि उसे गंगातीर्थ की रक्षा करने जाना है, क्योंकि कुलवृद्धाओं के आदेशानुसार सुलोचना को सौभाग्य स्नान करना है। प्रातःकाल की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए प्रतीहार की कौरवेश्वर के एक परिजन से भेंट होती है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिससे प्रतीहार को जयकुमार के गुणों का परिचय मिलता है। प्रतीहार गंगातीर की रक्षार्थ चला जाता है। इधर राजा जयकुमार विदूषक के साथ उसी सुलोचना का स्मरण करते हुए गंगा तीरोद्यान में पहुँचते हैं। विदूषक और राजा उसी गंगा तीरोद्यान तथा गंगा का वर्णन विविध प्राकृतिक दृश्यों को लेकर करते हैं। इन उद्दीपक दृश्यों से जयकुमार की उत्कण्ठा और भी वढ़ जाती है।

उधर सुलोचना भी अपनी सखि नवमालिका के साथ सौभाग्य मज्जन के लिए गंगा किनारे जाती है, किन्तु अभी मज्जनवेला का समय नहीं हुआ है, इसलिए नवमालिका के सुझाव के अनुसार गंगा तीरोद्यान के सौन्दर्य से मनोविनोद करती है। दोनों प्रियंगु वृक्ष के नीचे बैठ जाती हैं। सुलोचना जयकुमार का ध्यान करती हुई अनेक प्रकार के तर्क वितर्क चिन्ता आदि करती है और जयकुमार के बिना अधीरता का अनुभव करती है। नवमालिका चिन्ता का कारण समझकर सान्त्वना देती है कि कल होने वाले स्वयंवर में उस अभिरूप पति का वरण कर ही सकोगी, लज्जा के द्वारा भावों को मत छिपाओ।

जयकुमार पीपल के वृक्ष की ओट से सुलोचना को देखकर उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं और सुलोचना तथा नवमालिका के बीच में चल रही वार्ता को सुनते हैं। सुलोचना को अधिक बेचैन देखकर सखी विनीता तब तक गंगा की ओर उसे ले जाती है। गंगा की ओर जाने पर राजा के ऊपर सुलोचना की दृष्टि पड़ जाती है और लज्जा के कारण सखी से कहती है कि अब क्या किया जाय। नवमालिका उत्तर देती है कि इन्हीं राजा से पूछ लो। सखी का उत्तर सुनकर सुलोचना यह कहकर दूसरी ओर जाना चाहती है कि तुम बारबार (परिहास में) असंबद्ध बातें करती हो। नवमालिका दूसरी ओर जाने और क्रोध करने से रोकती है। इसी समय राजा को सान्त्वना देने के बहाने समीप में पहुँचने का अवसर मिल जाता है। अल्प भेंट के बाद ही सरलिका द्वारा आह्वान की आवाज आने से अनिच्छापूर्वक सुलोचना को जाना पड़ता है।

राजा भी इस क्षणिक भेंट के पश्चात् सुलोचना की अपने प्रति की गयी अनुराग चेष्टाओं के विषय में विदूषक को सुनाता है। उसकी उत्कण्ठा सुलोचना के प्रति वढ़ती जाती है। इधर दिन का एक भाग बीतने से प्राणी घाम के सन्ताप से बचने के उपाय करते हैं। राजा और विदूषक भी चले जाते हैं।

तृतीय अंक – वाराणसी का एक आर्यभद्रिलक नाम का विट वाराणसी की समृद्धि का वर्णन करता है। उसी समृद्धि वर्णन के सिलसिले में वेश्याओं के बाजार, उनके उन्नत भवन, वेश्याओं के क्रियाकलापों, उनके व्यवहार आदि के सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश डालता है। यह व्यक्ति वाराणसी नगरी के प्रत्येक प्रकार के स्वरूप से परिचित है और वाराणसी के वेश्या बाजार तथा वेश्याओं का आँखों देखा चित्र प्रस्तुत करता है। उसी प्रसंग में चन्द्रसेना, भोगवती, उसकी वृद्धा माता निषादवती, चन्द्रमती की पुत्री रतिचन्द्रिका, अशोकलतिका की पुत्री केलीमति आदि वेश्याओं का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्र उपस्थित करता है। इसके पश्चात् वही वेशवाट के समीपवर्ती राजमार्ग से स्वयंवर यात्रा के निमित्त जाने वाले अनेक देशों के राजाओं का चित्र प्रस्तुत करता है। स्वयंवर यात्रा में उस मार्ग से निकले हुए गुज्जरात्र, काश्मीर, आन्ध्र, कर्नाटक, चोल, पाण्ड्य, केरल देशों के तथा कुरू देश के राजा कौरवेश्वर जयकुमार का परिचय है। राजा जयकुमार अपने मित्र नन्द्यावर्त और विदूषक के साथ स्वयंवर सभा में आसन पर पहुँचते हैं।

स्वयंवर की सभा में एक ओर विद्याधर राजा तथा दूसरी ओर भूपाल समुदाय उपस्थित है। सुलोचना के स्वयंवर सभा में पहुँचने के पश्चात् प्रतीहार पहिले विद्याधर राजाओं का परिचय देता है। उनमें दक्षिण श्रेणी के राजा नमि के पुत्र सार्द्रगन्ध, उत्तर श्रेणी के राजा विनमि के पुत्र सुनमि, लोहार्गल के अधिपति मेघप्रभ का परिचय है। सुलोचना का भाव जब इन विद्याधरों के प्रति नहीं दिखाई देता, तब अन्य भूमिपालों का परिचय प्रतीहार सुलोचना को देता है, जिनमें अयोध्यापुरी के राजा भरत चक्रवर्ती के प्रथम पुत्र अर्ककीर्ति, पोदनपुर के अधिपति बाहुबलि के पुत्र महाबली, उज्जयिनी के अधिपति मघवा के पुत्र जयन्त, मथुरापति हरिकान्त के पुत्र सुकेतु के परिचय के पश्चात् जब कुरुदेश के राजा सोमप्रभ के पुत्र जयकुमार का परिचय दिया जाता है, तब सुलोचना जयकुमार के गले में वरमाला अर्पण कर देती है।

स्वयंवर समाप्ति के पश्चात् ईर्ष्यावश कुछ राजा लोग भड़क कर युद्ध के लिए तत्पर होकर सुलोचना-हरण को तैयार होते हैं।

राजा जयकुमार और उनका मित्र नन्द्यावर्त भी उत्तेजित होकर युद्ध का सामना वीरता से करने का निश्चय करते हैं।

चतुर्थ अंक—मिश्र विष्कम्भक में प्रतीहार द्वारा सूचना मिलती है कि स्वयंवर समाप्ति के पश्चात् ईर्ष्याकलुषित कुलूतेश्वर दुर्मर्षण आदि राजाओं ने चक्रवर्ती भरत के पुत्र अर्ककीर्ति के पास पहुँचकर उसे भड़का दिया, कि अकम्पन ने चालाकी से सबको बुलाकर जयकुमार का मान बढ़ाने तथा हम सबका अपमान करने के लिए जयकुमार के गले में वरमाला डलवा दी है। इसी प्रकार दशार्ण देश के नरेश संकर्षण एवं सौराष्ट्र नरेश भीम ने समर्थन करते हुए अग्नि में घृताहुति का काम किया। अर्ककीर्ति आवेश में आकर अकम्पन को कम्पित करने का दम भरने लगे। चक्रवर्ती भरत के द्वारा अर्ककीर्ति के साथ भेजे गये निरवद्य नाम के न्यायी मंत्री ने अर्ककीर्ति को भलीभाँति समझाया कि यह कार्य अविवेकपूर्ण है, जो तुम करने जा रहे हो। यह भी समझाया कि कौरव जयकुमार को पराजित करना भी निश्चित नहीं है, इसलिए इस कुमार्ग को ग्रहण न करो। अर्ककीर्ति ने जब मंत्री के सदुपदेश पर बिलकुल ध्यान न दिया, तब सुलोचना के पिता अकम्पन ने प्रतीहार को अर्ककीर्ति के पास भेजा और समझाया कि सुलोचना की छोटी बहिन रत्नमाला मेरी अनुज्ञा से आपको वरण कर लेगी तथा आपको यह अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि दूसरों के अनुचित कार्य का निवारण करना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्ककीर्ति ने राजा अकम्पन तथा मंत्री निरवद्य की बात पर जब कुछ भी ध्यान न दिया, तब मंत्री ने दो विद्याधर दूत राजा भरत के पास स्थिति की जानकारी देने के लिए भेजे। इधर अकम्पन ने वाराणसी की तथा अन्य सभी प्रकार की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया। युद्ध की भेरी बज उठी। सब सेनाएँ एकत्रित हो गयीं।

युद्ध में अधिकतर राजा लोग चक्रवर्ती भरत के पुत्र अर्ककीर्ति के पक्ष में हो गये, जिनमें कुलूतेश्वर दुर्मर्षण, सौराष्ट्र नरेश भीम, दशार्ण नरेश संकर्षण तो थे ही, अर्ककीर्ति के चाचा बाहुबली का पुत्र महाबली, शूरसेन नरेश सुकेतु तथा अर्ककीर्ति के भाई आदि प्रमुख थे। विद्याधरों में सुनमि विद्याधर भी अपने सम्बन्धी अर्ककीर्ति के पक्ष में हो गया (क्योंकि नमि की बहिन सुभद्रा भरत को विवाही थी तथा अर्ककीर्ति भरत के पुत्र थे। सुनमि नमि के पुत्र थे, इसलिए अर्ककीर्ति फ़ुआ के लड़के थे)। सुनमि के अर्ककीर्ति के पक्ष में हो जाने पर अन्य विद्याधर भी अर्ककीर्ति के पक्ष में हो गये।

जयकुमार के पक्ष में राजाओं में केवल उज्जयिनी का राजा जयन्त था और विद्याधरों में से लोहार्गल का अधिपति मेघप्रभ था। जयकुमार के मित्र नन्द्यावर्त और विशारद तथा छोटे भाई थे ही। व्यूहों में सेनाओं का विभाजन कर प्रमुख योद्धा युद्ध करने लगे। युद्ध में दोनों ओर से अनेक दिव्य शस्त्रों का प्रयोग हुआ। बड़ा लोमहर्षक संग्राम हुआ। कुछ समय के लिए अर्ककीर्ति और जयकुमार की एक दूसरे के प्रति संग्राम स्थल के अनुरूप जोश पूर्ण बातचीत हुई। अन्त में जयकुमार ने अर्ककीर्ति को बन्दी बना लिया, जिससे अर्ककीर्ति की सेना पराजित हुई और जयकुमार की सेना विजय का अनुभव करने लगी।

पंचम अंक—राजा अकम्पन के पास जब जयकुमार अर्ककीर्ति को लेकर पहुँचे, तब मध्यस्थता धारण करने वाले राजा अकम्पन ने अर्ककीर्ति के बन्धन से प्रसन्नता का अनुभव नहीं किया; बल्कि अर्ककीर्ति के बन्धन का कार्य अनुचित ही बताया। इसी बीच निरवद्य मंत्री के द्वारा राजा भरत के पास भेजे गये दोनों दूत भरत के पास से लौटकर वापिस आ गये। भरत ने काशिराज अकम्पन को दूतों द्वारा समाचार भेजा कि अनुचित कार्य करने के कारण अर्ककीर्ति पर तुम्हें अनुशासन का पूरा अधिकार है, जिसमें जयकुमार और अर्ककीर्ति वैर भूलकर परस्पर में मित्र बने रहें, इस प्रकार समझा देने के लिए भी प्रेरणा की।

अकम्पन ने अर्ककीर्ति के साथ अपनी दूसरी पुत्री रत्नमाला के विवाह का निश्चय करके अर्ककीर्ति के कलुषित मन को प्रसन्न कर दिया।

जयकुमार जिनका मन अभी तक एकाग्ररूप से युद्ध में व्यस्त था, युद्ध समाप्ति के पश्चात् पुनः सुलोचना के सम्बन्ध में उधेड़बुन करने लगा। उसे अब प्रिया के स्पर्श के सुख का एक बूंद सुख भी कहीं दिखाई नहीं देता है। राजा जयकुमार के मित्र नन्द्यावर्त ने समाचार सुनाया कि सुलोचना युद्ध समाप्ति के पश्चात् आपको सकुशल देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक है, इसलिए नवमालिका के साथ संकेत स्थान का निश्चय कर मित्र सौघातकी आने वाले हैं; अतएव अब चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमदवन के मार्ग से दूर जाकर बालोद्यान में स्थित कौमुदी गृह संकेत स्थल निश्चित हुआ है। राजा संकेत स्थल पर पहुँचने के लिए प्रमदवन द्वार से बालोद्यान में जाते हैं। इसी समय चन्द्रमा का उदय हुआ है। उसके सम्बन्ध में विरही के अनुरूप अनेक कल्पनाएँ राजा के हृदय में उठती हैं। इसके पश्चात् बालोद्यान की सुषमा देखते हुए कौमुदीगृह के समीप पहुँच जाते हैं। उधर नवमालिका भी सुलोचना को लेकर वहाँ आ जाती है। नवमालिका के परिहास के कारण कृत्रिम कोपपूर्वक जब सुलोचना जाने लगती है, तभी सुलोचना के कोप को रोकने के बहाने जयकुमार को सुलोचना के कर-ग्रहण का अवसर मिल जाता है। विदूषक तथा नवमालिका बहाना लेकर वहाँ से चले जाते हैं। क्षणिक भेंट के पश्चात् रत्नमाला के कौतुवन्धन के लिए सरलिका द्वारा आवाज लगाये जाने से सुलोचना को वहाँ से चला जाना पड़ता है।

षष्ठ अंक—प्रतीहार के कथन से ज्ञात होता है कि रत्नमाला के साथ अर्ककीर्ति का विवाह हो चुका है। राजा अकम्पन ने बहुत-सा दहेज भी अर्ककीर्ति को दिया। याचकों को प्रभूत दान भी अकम्पन द्वारा दिया गया है।

सुसज्जित राजभवन में सुलोचना और जयकुमार के कौतुवन्ध की व्यवस्था की गयी है, क्योंकि अब सभी विघ्नों के बादल दूर हो गये हैं। वर जयकुमार को देखने के लिए नगर की स्त्रियाँ अत्यन्त उत्सुक हैं तथा वे स्त्रियाँ जयकुमार के ऊपर मांगलिक धान्य वृष्टि कर रही हैं। रत्नमण्डप से परिणयन वेदी पर जयकुमार पहुँच गये हैं। वहाँ यज्ञादि मांगलिक क्रियाएँ हो रही हैं। शुभ मुहूर्त में राजा अकम्पन अपनी कन्या जयकुमार को सौंप देते हैं। सुखद वातावरण में भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

कथा का मूल स्रोत

जैसा कि हस्तिमल्ल द्वारा लिखित अन्य नाटकों के सम्बन्ध में ज्ञात है, उन्होंने जैन पुराण या चरितों से ही नाटकों का मूल ग्रहण किया है।

विक्रान्तकौरव नाटक का कथानक आदिपुराण के ४३ से ४५ पर्व तक उपलब्ध होता है। आदिपुराण के विस्तृत कथानक को नाटक के अनुकूल बनाने के लिए कुछ अंश छोड़ दिये गये हैं तथा आदिपुराण का आलङ्कारिक वर्णन भी त्याग दिया गया है। विक्रान्तकौरव नाटक में कुछ स्थल ऐसे भी हैं, जो आदिपुराण में नहीं हैं। उन्हें कवि ने अपनी कल्पना से नाटकीय संविधान के अनुकूल बनाने, काव्य कल्पना की नवीन उद्भावना तथा काव्य सौन्दर्य के लिए रखा है।

कवि ने आदि पुराण से ही उक्त कथानक लिया है। इसके समर्थन में मुझे निम्न प्रमाण दिखाई देते हैं :—

विक्रान्त कौरव की प्रशस्ति में हस्तिमल्ल के पिताजी को समन्तभद्राचार्य की शिष्य परम्परा में बताया गया है। समन्तभद्राचार्य की परम्परा का उल्लेख करने के प्रसङ्ग में आचार्य वीरसेन के शिष्य जिनसेन और उनके प्रथम (आदि) पुराण का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी उल्लेख किया गया है,[१] जिनकी शिष्य परम्परा में कवि का जन्म हुआ है। उनके ग्रन्थों का अध्ययन कवि ने अवश्य किया होगा और उक्त कथानक से अपने नाटकों को शोभित किया जाना बहुत सम्भव है।

आदिपुराण में ४३ वें पर्व में स्वयंवर भवन तैयार होने के पश्चात् तथा स्वयंवर का निमन्त्रण जब अन्य राजाओं को दिया गया, उस समय वसन्त ऋतु थी। विक्रान्त कौरव नाटक की प्रस्तावना में भी वसन्त ऋतु का ही वर्णन है।

स्वयंवर सभा में राजकुमारों का परिचय कराने वाले व्यक्ति का नाम महेन्द्र-दत्त आदि पुराण तथा विक्रान्त कौरव नाटक में समान है। नाटक में आदि पुराण की तरह स्वयंवर सभा में राजकुमारों के परिचय के सिलसिले में नमि और विनमि के पुत्रों का ही परिचय आरंभ में दिया गया है।

स्वयंवर में सुलोचना द्वारा जयकुमार को वरमाला पहिनायी जाने पर अर्ककीर्ति को सर्व प्रथम भड़काने वाला आदि पुराण तथा विक्रान्त कौरव, दोनों में दुर्मर्षण ही है।

आदि पुराण पर्व ४४ श्लोक ४१ तथा विक्रान्त कौरव नाटक अंक ४ श्लोक ४२ बिलकुल एक ही हैं—

पुरस्सरणमात्रेण, श्लाघ्यं चक्रं विशां प्रभोः।
प्रायो दुस्साधसंसिद्धौ, श्लाघते जयमेव सः॥

इस नाटक में आदि पुराण के श्लोक का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि हस्तिमल्ल ने इसी पुराण को विक्रान्तकौरव की कथा का मूल आधार माना है।

इसके अतिरिक्त आदि पुराण के कई अंश अर्थ की दृष्टि से तो बिल्कुल साम्य रखते ही हैं; कई अंश शब्दों की दृष्टि से भी समान हैं। जैसे आदि पुराण पर्व ४४ श्लोक ६४-६५ के शब्द जो अर्ककीर्ति द्वारा कहे गये हैं, उनका अर्थ और कुछ रूप में शब्दों में साम्य है।

---

१. यस्य वाचां प्रसादेन ह्यमेयं भुवनत्रयम्।
तच्छिष्यप्रवरो जातो जिनसेनमुनीश्वरः॥
यद्वाङ्मयं पुरोरासीत्पुराणं प्रथमं भुवि।
तदीयप्रियशिष्योऽभूद् गुणभद्रमुनीश्वरः॥
शलाकाः पुरुषाः यस्य सूक्तिभिर्भूषिताः सदा।
गुणभद्रगुरोस्तस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते॥
यस्य वाक्सुधया भूमावभिषिक्ता जिनेश्वराः।
तच्छिष्यानुक्रमायाते संख्येयो विश्रुतो भुवि॥
गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान्मिथ्यात्ववर्जितः।
देवागमनसूत्रस्य श्रुत्या सद्दर्शनान्वितः॥

(विक्रान्त कौरव, पृ० १६३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदिपुराण पर्व ४४, द्विधा भवतु वा मा वा वलं ते न किमाशुगाः ६४
नाहं सुलोचनार्थ्यस्मि ६५

विक्रान्तकौरव अङ्क ४, द्वैधीभावं भजतु सहसा संहतो राजवर्गः २४
नाहं सुलोचनार्थ्यस्मि क्षात्रधर्मस्तु पाल्यते २३

आदिपुराण पर्व ४४, न चक्रिणोऽपि कोपाय स्यादन्यायनिषेधनम् ६१

विक्रान्तकौरव अङ्क ४, तातस्यापि न विद्वेषो निग्रहे कूटकारिणाम् २३

स्वयंवर के पश्चात् संग्राम के वर्णन में भी आदिपुराण के वर्णन से विक्रान्त कौरव का वर्णन मिलता जुलता है। आदि पुराण तथा विक्रान्तकौरव दोनों के अनुसार जयकुमार ने मकर व्यूह, अर्ककीर्ति ने चक्र व्यूह तथा नमि ने गरुड व्यूह की रचना की थी।

आदि पुराण पर्व ४४, संग्राम नाटकारम्भसूत्रधारा धनुर्धराः
रणरंगं विशन्ति स्म गजसूर्यपुरस्सरम् ११६
आवंध्यस्थानकं पूर्वं रणरङ्गे धनुर्धरैः
पुष्पांजलिरिव क्षिप्तो शितशरोत्करः ११७

विक्रान्तकौरव, चतुर्थ अङ्क, पृष्ठ ८७—परस्पराभ्यां विमुक्तो द्वाभ्यां संग्राम नाटक-
पूर्वरंगकुसुमाञ्जलिशरनिकरः

आदि पुराण के ४४ वें पर्व के २२३ वें श्लोक में यह भाव है कि एक दूसरे के दांतों के प्रहार से विदीर्ण दो हाथी परस्पर दो पर्वतों की तरह मिले हुए एक दूसरे के आधार पर चिरकाल तक खड़े हैं। ठीक यही भाव विक्रान्तकौरव के चतुर्थ अङ्क के ६३ वें श्लोक में है।

आदि पुराण के ४४ वें पर्व के २३६ वें श्लोक के अनुसार जयकुमार के बाण अष्टचन्द्र विद्याधरों के पास बहुत शीघ्र एक साथ पड़ रहे थे। विक्रान्तकौरव की चतुर्थ अङ्क की गद्य तथा ९० वें श्लोक के अनुसार भी जयकुमार के बाणों ने अष्टचन्द्र विद्याधरों को नष्ट किया था।

आदि पुराण के अनुसार सुनमि ने मेघप्रभ के ऊपर तमोबाण का प्रयोग किया, मेघप्रभ ने उसका प्रतिकार सूर्य बाण से किया। सुनमि ने मेघ बाण चलाया, उसका प्रतिकार मेघप्रभ ने वायु बाण से किया।

विक्रान्तकौरव के चतुर्थ अंक के अनुसार सुनमि ने मेघप्रभ के ऊपर तामसास्त्र, मेघप्रभ ने प्रतिकार के लिए आग्नेयास्त्र, पुनः सुनमि ने उसको विफल करने को वारुणास्त्र तथा मेघप्रभ ने वायव्यास्त्र छोड़े। विक्रान्तकौरव चतुर्थ अंक, छन्द ६२ में जयकुमार के छोटे भाई का नाम संजयन्त तथा अर्ककीर्ति के छोटे भाई का नाम अजितंजय आया है। आदि पुराण के सर्ग ४७ के २७९ से २८२ छन्दों में भी दोनों के भाइयों के इन नामों का उल्लेख है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार विक्रान्तकौरव में मूल तथा प्रधान कथानक ही आदि पुराण के अनुसार समान नहीं है, बल्कि अवान्तर तथा गौण कथानक भी आदि पुराण के समान है। अतएव यह निश्चय है कि हस्तिमल्ल ने विक्रान्तकौरव के कथानक का मूल स्रोत जिनसेन के आदि पुराण को माना है।

वस्तु विवेचन

कौरव जयकुमार इस नाटक के नायक हैं। उनकी कथा आधिकारिक कथा है, क्योंकि युद्ध में उत्कृष्ट विजय तथा स्वयंवर में वरमाल की प्राप्ति और विधिपूर्वक पाणिग्रहण के बाद सुलोचना की प्राप्ति कौरव जयकुमार को हुई है।

प्रासंगिक कथाओं में इस नाटक की पताका की योजना दुरूह हो गयी है। कारण यह है कि नाटक के सम्बन्ध में भारतीय शास्त्र की जो आदर्शवाद की परम्परा है, उसमें यथार्थ को महत्त्व देकर प्रतिनायक को ही एक प्रकार से पताका-नायक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है।

सुलोचना की प्राप्ति में बाधक अर्ककीर्ति चतुर्थ अंक तक प्रतिनायक के रूप में जयकुमार से युद्ध करता है। अन्त में पराजित होने पर भी जयकुमार का मार्ग निष्कंटक प्रतीत नहीं होता है। इसलिए अकम्पन उसे कन्या-रत्न रत्नमाला तथा अन्य सामग्री देकर सन्तुष्ट करते हैं और उसका सन्तुष्ट होना ही नायक को सुलोचना की निर्बाध प्राप्ति में सहायक है।[1] अर्ककीर्ति चक्रवर्ती-पुत्र था, उसका प्रसन्न होना अत्यन्त अपेक्षित था, उसके प्रसन्न हुए बिना जयकुमार का सुलोचना से सम्बन्ध कैसे होता ? उसकी प्रसन्नता ही नायक की फल-प्राप्ति की साधिका है तथा उसे भी रत्नमाला की प्राप्ति भी एक फल प्राप्त होता है, जो प्रासंगिक कथा पताका का फल है। फिर भी मैं इसे पताका-नायक नहीं मानता हूँ; क्योंकि एक तो यह प्रतिनायक है; बाद में पराजित होने पर भले ही इसने प्रतिकूलता त्याग दी है। किन्तु पताका-नायक में दशरूपक के अनुसार नायक के प्रति भक्ति होनी चाहिए। वह गुण इसमें नहीं है। नाटक में इसकी उपस्थिति भी प्रत्यक्ष नहीं है। इसलिए मैं नन्द्यावर्त को पताका-नायक मानता हूँ। नन्द्यावर्त जो कौरवेश्वर जयकुमार का मित्र है, उसको भी कौरवेश्वर के साथ वाराणसी पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और इसलिए उसने देशान्तर परिभ्रमण का फल भी प्राप्त किया है। नन्द्यावर्त गुणों में विट आर्य भद्रिलकसे कम नहीं है, इसलिए उसने वाराणसी में दूसरे प्रकार के आनन्द लूटे होंगे।[2] इस प्रकार इसे भी एक फल प्राप्ति मान सकते हैं और उसका पूरा प्रयास नायक की फल प्राप्ति के लिए आदि से अन्त तक दिखाई देता है। इस दृष्टि से इसे

---

१. सुविहितं भोः प्रतिभावता काशिपतिना
तैस्तैश्च समुदाचारैः सुसत्कारपुरस्सरैः
न परं मोचितो बन्धात् पौरवो दुर्ग्रहादपि। १४७।१, २

२. पृ० ५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पताका नायक माना जा सकता है। युद्ध काल में नन्द्यावर्त को कौरवेश्वर के शरीर से निर्विशेष बताया गया है[1]। इसलिए इसे पताका-नायक मानना चाहिए, क्योंकि पताका-नायक नायक से गुणों में थोड़ा ही तो कम होता है तथा नाटक की फल-प्राप्ति में सहायक होता है और नायक का भक्त होता है।[2] ये सब लक्षण नन्द्यावर्त में हैं। इसलिए नन्द्यावर्त को ही पताका-नायक तथा इससे सम्बन्धित कथा को पताका मानना चाहिए।

चतुर्थ अंक के रत्नमाली विद्याधर की कथा प्रकरी के अन्तर्गत मान सकते हैं। यद्यपि इसकी योजना युद्ध की सूचना देने के लिए की गयी है, क्योंकि नाट्य नियमों के अनुसार युद्ध का प्रत्यक्ष दर्शन निषिद्ध है; फिर भी रत्नमाली विद्याधर युद्ध दर्शन के समय जयकुमार की विशेष प्रशंसा करता है तथा उसे इस युद्ध दर्शन में आनन्द की अनुभुति रूपी फल प्राप्त होता है। इसलिए इस को प्रकरी के अन्तर्गत मानना चाहिए।

अर्थ प्रकृतियां

बीज :—मूल प्रयोजन का हेतु रूप बीज सुलोचना है। प्रथम अंक के स्वयंवर यात्रा के वर्णन के आरंभ से बीज अर्थ प्रकृति आरंभ होती है। प्रथम अंक के उस स्थान से बीज अर्थ प्रकृति आरंभ होती है, जिसमें नगर देवता यात्रा के प्रसंग में नन्द्यावर्त सुलोचना का पालकी में जाने का समाचार सुनाता है। उसी समय कौरवेश्वर जयकुमार ने सुलोचना को देखा था तथा सुलोचना ने जयकुमार को दर्पण के माध्यम से देखा था, जिससे पारस्परिक अनुराग का बीज आरंभ हुआ था। इस अंक में यह अनुराग का बीज जयकुमार के हृदय में बढ़ता हुआ पाया जाता है। यह बीज नामक अर्थ प्रकृति द्वितीय अंक के मिश्र विष्कंभक के आगे १४वें छन्द तक चलती है, जिसमें कि जयकुमार दर्पण में संक्रान्त अपने तथा सुलोचना के प्रतिबिम्ब का स्मरण करते हैं।

बिन्दु :—बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति में वही अनुराग फैलने लगता है या यों समझना चाहिए कि बीज आगे प्रस्फुटित होने लगता है। कथा विच्छेद होने पर जोड़ने वाला अंश भी बिन्दु कहलाता है। द्वितीय अंक में कौरव जयकुमार गंगातीर के उद्यान की शोभा देखने में लग जाते हैं और बहुत देर तक उसी का वर्णन करते हैं। मूल कथा विच्छिन्न होने लगती है। जब वे गंगा के किनारे कोक मिथुन को देखते हैं, तब उन्हें सुलोचना के स्तनों का स्मरण आता है। सुलोचना के स्मरण से उसके सौभाग्य मज्जन का ध्यान आ जाता है। इस तरह यहां पुनः विच्छिन्न कथा को जोड़ दिये जाने के कारण बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति है। इसी प्रकार तृतीय अंक में विट वाराणसी के वैशवाट में तल्लीन हो जाता है। जब वह अशोकतिलका की सुता

---

१. पृ० ८९,

२. दशरूपक—२।८

पताकायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः

तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केलीमती के समीप पहुँचता है, तब वह उसे हाथ पकड़ कर बैठाना चाहती है। उस समय वहां से निकलने वाली स्वयंवर यात्रा का वर्णन पुनः मूल कथा से इस प्रसंग को सम्बद्ध कर देता है। इस प्रकार बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति तृतीय अंक के शुद्ध विष्कम्भक तक चलती है।

पताका तथा प्रकरी के सम्बन्ध में पहिले लिखा ही जा चुका है।

अर्थ प्रकृति को प्रयोजन सिद्धि का हेतु माना जाता है। कार्य नामक अर्थ प्रकृति के सम्बन्ध में शंका यह उठती है कि अन्तिम प्रयोजन को कार्य मानें तव प्रयोजन सिद्धि का हेतु नहीं हो सकता है। इस नाटक का अन्तिम कार्य कौरवेश्वर का सुलोचना के साथ पाणिग्रहण है, जो कि चार पुरुषार्थों में काम पुरुषार्थ या काम वर्ग रूप है। वही कार्य नामक अर्थ प्रकृति है। यदि अवान्तर प्रयोजन को भी कार्य नामक अर्थ प्रकृति मानें तो चतुर्थ अंक के अन्त में अर्ककीर्ति पर विजय पाने को भी एक कार्य मान सकते हैं। वही विजय प्रमुख कार्य की साधिका होने से प्रयोजन सिद्धि का हेतु भी है।

अवस्थाएं :—कार्य या व्यापार शृंखला की सूचक नायक की मनोदशा अवस्था कहलाती है।

आरंभ :—फल लाभ के लिए होने वाला औत्सुक्य आरंभ कहलाता है। नायक कौरवेश्वर जय कुमार ने स्वयंवर यात्रा के प्रसंग में पालकी में जाती हुई सुलोचना को देखा; तभी उनमें सुलोचना के प्रति औत्सुक्य उत्पन्न होता है। इस तरह प्रथम अंक के १२वें छन्द से आरंभ नामक अवस्था है। वह अवस्था द्वितीय अंक में उस स्थान तक चलती है, जहां सुलोचना का औत्सुक्य विशेष बढ़ जाता है।

यत्न :—द्वितीय अंक में (प्रस्तुत संस्करण का पृष्ठ ३९) जहां विदूषक प्रियंगु के वृक्ष के नीचे होने वाले स्त्रियों के वार्तालाप का समाचार कहता है, तब जयकुमार कहते हैं कि पीपल के वृक्ष से छिपकर देखें। यहां से प्रयत्न नामक अवस्था का आरंभ समझना चाहिए, क्योंकि राजा का सुलोचना को देखने तथा प्राप्ति के लिए प्रयत्न आरंभ होता है। यह प्रयत्न नामक अवस्था तीसरे अंक में उस स्थल तक है, जहाँ तक कि प्रतीहार और नत्रमालिका स्वयंवर स्थल में आये हुए अनेक राजाओं का परिचय देती हैं तथा सुलोचना वरमाला प्रदान द्वारा नायक को प्राप्त करना चाहती है। नायक भी वरमाला की प्राप्ति द्वारा सुलोचना को पाने के लिए स्वयंवर में स्थित है। इस प्रकार वरमाला के पहिनाये जाने तक प्रयत्न अवस्था है।

प्राप्त्याशा:—तृतीय अंक में वरमाला पहिनाये जाने से जहाँ एक ओर नायक अपने मन में सोचता है कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया; वहीं कल-कल के बाद सूचना मिलती है कि कुछ लोग युद्ध के लिए तैयार हैं, जो जयकुमार के मान तथा सुलोचना को हरण करना चाहते हैं। इस प्रकार वरमाला पड़ जाने के बाद भी, सुलोचना की प्राप्ति अनिश्चित हो जाती है। तीसरे अक के अन्त में प्राप्त्याशा नामक अवस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरंभ होती है। चतुर्थ अंक में युद्ध में दोनों ओर से विभिन्न अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग तथा उत्तर प्रत्युत्तर चलते हैं, जिनसे फल प्राप्ति सन्दिग्ध ही बनी रहती है। चतुर्थ अंक के १००वें छन्द में देवों द्वारा जयकुमार के ऊपर पुष्प वर्षा करने के वर्णन के पूर्व तक प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्तिः—चतुर्थ अंक में १०० तथा १०१वें छन्द में पौरव सेना की पराजय तथा कौरव सेना की विजय की सूचना मिलने से यह निश्चित हो जाता है कि जयकुमार की सुलोचना की प्राप्ति संबंधी बाधा दूर हो गयी है तथा बाधक अर्ककीर्ति बाँध लिया गया है। इस स्थान से नियताप्ति नामक अवस्था प्रारंम्भ होती है। पंचम अंक में भरत चक्रवर्ती के द्वारा प्रेषित समाचार से स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है कि भरत चक्रवर्ती कुमार्गगामी पुत्र का कोई पक्ष नहीं लेंगे तथा उन्होंने राजा अकम्पन को पूरे अधिकार दे दिये हैं। इससे राजपक्ष का भी भय दूर हो गया। इधर अकम्पन ने अर्ककीर्ति को रत्नमाला प्रदान करने का निश्चय करके उसे भी सन्तुष्ट कर दिया है। इस प्रकार सुलोचना प्राप्ति के सम्बन्ध में जनमानस में रहने वाले विघ्न की आशंका भी दूर हो जाने से यह निश्चय हो गया है कि जयकुमार सुलोचना के पाणिग्रहण में अब कोई बाधा नहीं है। यह अवस्था पंचम अंक के मिश्र विष्कंभक तक चलती है।

फलागमः—सभी बाधाओं के दूर हो जाने से पंचम अंक के १९वें छन्द में जयकुमार उन्हीं सुलोचना-मिलन के मनोरथों को फिर संजोने लगे हैं, जो युद्ध काल में विघटित हो गये थे। राजा को कौमुदीगृह में एक बार फिर क्षणिक मिलन का अवसर मिलता है। उसके बाद षष्ठ अंक में उनका विधिपूर्वक विवाह हो जाता है। इस तरह पंचम अंक तथा षष्ठ अंक में फलागम अवस्था है।

सन्धियां—अर्थ प्रकृतियों तथा अवस्थाओं का मिश्रण सन्धि के लिए बिलकुल ठीक ठीक नहीं बैठता है। सन्धियों के अंगों का क्रम भी ठीक नहीं बैठता है। सन्धियाँ नाटक रचना के विभागों की द्योतक हैं, जिनमें उत्थान निर्वाह तथा अन्त उचित ढंग से हो।

मुख सन्धि—प्रथम अंक में मुख सन्धि की योजना है। इसी अंक में बीजोत्पत्ति का निर्देश है, जैसा कि अर्थ प्रकृति के प्रसंग में लिखा जा चुका है। प्रथम अंक में नाना भाव तथा रसों की अभिव्यंजना भी है। मुख सन्धि में नाना अर्थ और रसों की अभिव्यक्ति अपेक्षित है।[1] शुद्ध विष्कम्भक के पश्चात् सुलोचना के सम्बन्ध में राजा द्वारा जो भी कहा गया है, वह सब शृङ्गार की अनुभूति कराता है। इसके पूर्व वाराणसी में पहुँचे हुए सैनिकों ने अपने तम्बू तानने में तथा अपने श्रम के अपहरण के जो उपाय किये हैं, वे सब उनके उत्साह भाव के सूचक हैं।[2] हस्ती के क्रोध[3] तथा शिविरवासियों के परस्पर के मार्गदुःख का कथन[4], ये वर्णन अनेक भावों

---

१. मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा—दशरूपक १।२४

२. पृष्ठ ५।८, ९ ३. पृष्ठ ६।१२ ४. पृष्ठ ७।१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अर्थों की अनुभूति कराते हैं। इस प्रकार प्रथम अंक में मुख सन्धि की योजना है।

प्रतिमुख सन्धि—प्रथम अंक का अलक्ष्य बीज दूसरे अंक में कुछ लक्ष्य होकर फूट पड़ता है। इसलिए दूसरे अंक में प्रतिमुख सन्धि की योजना माननी चाहिए। द्वितीय अंक में विदूषक के साथ होने वाली राजा की बातचीत से राजा का सुलोचना के प्रति होने वाला तीव्रानुराग प्रकट होता है तथा सुलोचना का अनुराग नवमालिका पर प्रकट हो जाता है। द्वितीय अंक की भेंट से उनका अनुराग बीज और भी फूट पड़ता है। इस तरह द्वितीय अंक में प्रतिमुख सन्धि की योजना है।

गर्भ सन्धि :—नाटक के तृतीय तथा चतुर्थ अंक में गर्भ सन्धि पायी जाती है। तृतीय अंक में स्वयंवर में वरमाला डाले जाने से सुलोचना प्राप्ति की सम्भावना दृढ़ हो जाती है, किन्तु तुरन्त ही युद्धाभिलाषी प्रतिपक्षी राजाओं के विरुद्ध हो जाने की सूचना से एक बड़ा विघ्न उपस्थित होता है। प्रतिपक्ष में चक्रवर्ती राजा का पुत्र अर्ककीर्ति है, जो कि अमात्य की बात भी ठुकरा देता है। इस प्रकार वह सफलता जो वरमाला के समीप दिख रही थी, नष्ट हो जाती है; किन्तु नायक इस युद्ध से विचलित नहीं होता, बल्कि सोत्साह उसका सामना करके फलान्वेषण करता रहता है।[1] इसलिए तृतीय तथा चतुर्थ अंक में गर्भ सन्धि की योजना है।

विमर्श सन्धि—विमर्श सन्धि का यथार्थ रूप तो पंचम अंक में है, जहाँ राजा अकम्पन जयकुमार के प्रति क्रोध-सा प्रकट करके चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति के बन्धन रूप व्यसन से उसे मुक्त कराने का प्रयत्न करके तथा अर्ककीर्ति को रत्नमाला देने का प्रलोभन देकर नायक को सुलोचना प्राप्त करने का मार्ग निर्वाध बनाने का उपक्रम करते हैं; किन्तु विमर्श सन्धि के कुछ अंगों की योजना चतुर्थ अंक के अन्त में भी पायी जाती है। बात यह है कि गर्भ सन्धि से विमर्श सन्धि की कड़ी जुड़ी रहती है; क्योंकि जहाँ गर्भ सन्धि में बीज को प्रकट किया जाता है, वहीं विमर्श सन्धि आरम्भ हो जाती है।[2] इसलिए विमर्श सन्धि की योजना चतुर्थ अंक में ८३वें छन्द से ही समझना चाहिए, जबकि दोनों पक्षों की सेनाएँ युद्ध से विरत कर दी जाती हैं और जयकुमार तथा अर्ककीर्ति, दोनों ही युद्ध में लग जाते हैं।

पंचम अंक के मिश्र विष्कम्भक तक विमर्श सन्धि चलती है, जिसमें विलोभन द्वारा अर्ककीर्ति को विरोध भावना से रहित कर दिया जाता है और उसे बन्धन से छुटा दिया जाता है तथा कौरवेश्वर के कौतुकबन्ध का आगामी दिवस निश्चित होता है।

निर्वहण सन्धि—पंचम अंक के मिश्र विष्कम्भक के पश्चात् निर्वहण सन्धि आरम्भ होती है और यह षष्ठ अंक के अन्त तक अर्थात् नाटक की समाप्ति तक

१. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः। —दशरूपक, १।३६

२. क्रोधेनावमृशेद् यत्र व्यसनाद् वा विलोभनात्
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः। —दशरूपक, १।४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चलती है। इस सन्धि में सुलोचना तथा जयकुमार के कौतुकबन्ध के विच्छिन्न हो जाने वाले साधन एकत्र होते हैं। जयकुमार अपने उन मनोरथों को पुनः संजोने लगे हैं, जो युद्धकाल में विघटित हो गये थे। स्वयंवर के बाद कलह के आरम्भ से दुःखी रहने वाली सुलोचना राजा जयकुमार को देखने के लिए उत्कण्ठित हो गयी है और उसकी व्यवस्था प्रमदवन में की गयी है। विवाह विधि की सभी सामग्री जुटा ली जाती है। इस प्रकार निर्वहण सन्धि का निर्वाह षष्ठ अंक में विशेष रूप से किया गया है।

भारती वृत्ति—नाटक के आरम्भ के पूर्व रंग में मंगलाचरण करने का विधान है। मंगलाचरण में प्रथम जिनेन्द्र आदिनाथ से श्रेय प्रदान की प्रार्थना की गयी है, क्योंकि उक्त नाटक की कथावस्तु उन्हीं तीर्थंकर के काल की है।

प्रस्तावना में वसन्त ऋतु की रमणीयता का उल्लेख किया गया है। श्रृङ्गार रस की प्रधानता के लिए वसन्त ऋतु विशेष महत्त्व रखती है। भारतीय संस्कृत साहित्य में प्रस्तावना में ऋतु वर्णन की परम्परा मान्य है।[1]

प्ररोचना—पाठकों को उन्मुख करने के लिए कवि, कवि की रचना, अभिनेताओं आदि की प्रशंसा की गयी है।[2] इसलिए यहाँ भारती वृत्ति के प्ररोचना अंग की योजना माननी चाहिए।[3]

अन्य प्रकार के वस्तु भेद—वस्तु के अन्य प्रकार से सर्व श्राव्य (प्रकाश), नियत श्राव्य तथा अश्राव्य, ये तीन भेद होते हैं। विक्रान्तकौरव में अश्राव्य (स्वगत) तथा अपवारित के प्रयोग[4] के अतिरिक्त आकाशभाषित का भी प्रयोग तृतीय अंक में विट द्वारा किया गया है।

नाटककार ने नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार वर्जित दृश्यों[5] को रूपक का विषय नहीं बनाया है। जैसे वेणीसंहार नाटक के चतुर्थ अंक में युद्ध का वृत्तान्त सुन्दरक पात्र के द्वारा सूचित कराया गया है, उसी प्रकार प्रस्तुत नाटक के चतुर्थ अंक में कौरव-पौरव युद्ध का वृत्तान्त रत्नमाली को मन्दर नाम का सेवक सुनाता है।

इसी प्रकार सूच्य वस्तु के लिए अर्थोपक्षेपकों की योजना प्रस्तुत नाटक में की गयी है। इसमें प्रथम अंक में शुद्ध विष्कंभक, द्वितीय अंक में मिश्र विष्कंभक,

---

१. रंग प्रसाध्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः ऋतुं कंचिदुपादाय भारतीं वृत्तिमाश्रयेत्।
—३।४ दशरूपक।

२. पृष्ठ ३।५, ६,

३. उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना ३।६, दशरूपक

४. पृष्ठ ४१

५. दूराध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम्
संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम्
अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत्। —३।५ दशरूपक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अंक में शुद्ध विष्कंभक, चतुर्थ अंक में मिश्र विष्कंभक, पंचम अंक में मिश्र विष्कंभक और छठें अंक में शुद्ध विष्कंभक की योजना की गयी है।

नाटक का नामकरण—नाटक के नामकरण के लिए कोई दृढ़ नियम नहीं है; फिर कुछ नियम शास्त्रकारों ने नाटकों के नामों को देखकर बना लिये हैं। नायक की प्रधानता होने पर नायक के नाम पर कुछ नाटकों के नाम रखे जाते हैं। किन्हीं नाटकों में नायक नायिका दोनों पात्रों की प्रधानता के कारण दोनों के नाम पर नाटक का नामकरण होता है; जैसे, इनका अंजनापवनंजय नाटक इसी आधार पर सार्थक नाम वाला है। व्यापार या कार्यप्रधान नाटक में मुख्य घटना या व्यापार के आधार पर नामकरण होता है, जैसे मृच्छकटिक आदि। किन्तु जिन नाटकों में पात्र तथा घटना दोनों ही प्रधान होती हैं, उनका नामकरण पात्र तथा घटना दोनों के आधार पर होता है, जैसे अभिज्ञान शाकुन्तल आदि।[1] वैसे नाट्य के भाव व्यंजक नाम नाटकों के होना चाहिए। इनके एक नाटक का नाम मैथिली-कल्याण है, जिसमें पात्र सीता के उल्लेख के साथ उसके कल्याण (परिणय) की प्रमुख घटना का भी संकेत है। प्रस्तुत नाटक का नाम विक्रान्त-कौरव नायक कौरव (जयकुमार) का सूचक तो है ही, उसके पराक्रम का सूचक विक्रान्त शब्द भी है अथवा विक्रान्त शब्द के आधार से उनके युद्धकाल के पराक्रम व्यापार की भी सूचना मिलती है। प्रायः इनके सभी नाटकों में प्रमुख पात्रों को आधार बनाकर नामकरण किया गया है।

पात्रों का शील निरूपण

विक्रान्तकौरव के प्रमुख पात्र यद्यपि अपना अपना व्यक्तित्व रखते हैं, किन्तु जैसा कि नाटककार करते हैं, नाटक में जीवन का एक चुना हुआ नमूना रंगमंच पर लाया जाता है। उसके पात्र व्यक्तित्व को प्रकट नहीं करते, बल्कि एक प्रकार श्रेणी (या Type) को प्रकट करते हैं।[2] इस नाटक के पात्र भी अपना निजी व्यक्तित्व रखते हुए भी एक श्रेणी के परिचायक हैं। जयकुमार एक आदर्श साहसी व्यक्तित्व के प्रतिनिधि हैं। दुर्मर्षण एक ऐसी श्रेणी का प्रतिनिधि पात्र है, जो अनुचित कार्य के लिए दूसरों को भिड़ा सकता है। अर्ककीर्ति उन राजकुमारों के प्रतिनिधि हैं, जो राजपुत्र होकर भी नीतिमार्ग को लांघकर मनमानी करना चाहते हैं। अकम्पन ऐसे अनुभवी तथा शान्त व्यक्तियों की श्रेणी का आभास देते हैं, जो किसी भी प्रकार शान्ति स्थापित करने का प्रयास करते हैं। सुलोचना एक ऐसी भारतीय नारी का प्रतीक है, जो कि एक चक्रवर्ती कुमार को भी त्याग कर शौर्य और त्याग पर रीझती है।

---

१. नायकव्यापारोभयजात्युद्देश्यवस्तुस्थानपरकानि नाट्यभावव्यंजकानि नामानि स्युः।
—अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० ३७७

२. आलोचना के सिद्धान्त, पृष्ठ १६५, ले० राजेन्द्रसिंह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुष पात्र

कौरवेश्वर जयकुमार—विक्रान्तकौरव नाटक है तथा नाटक का नायक धीरोदात्त प्रकृति का होता है।[1] कौरवेश्वर जयकुमार में धीरोदात्त प्रकृति के अनुकूल सभी गुण मिलते हैं। यह बात दूसरी है कि धीर ललित प्रकृति के गुण भी उसमें हैं, किन्तु विशेषता धीरोदात्त प्रकृति के गुणों की ही है। नाटककार हस्तिमल्ल ने द्वितीय अंक में नवमालिका के मुख से जयकुमार की धीरललित प्रकृति बतलायी है। मैं समझता हूँ कि नवमालिका ने वहाँ जयकुमार को पहिले गंभीर, सात्विक बतलाकर[2] सुलोचना के परिणय के लिए धीर ललित प्रकृति बताने का आशय यह है कि जयकुमार महासत्व, गंभीर होकर भी निश्चिन्त, सुखी तथा कलासमन्वित है, इसलिए वह पति रूप में वरण करने के लिए भी योग्य है।

धीरोदात्त प्रकृति का नायक महासत्व, अधिक गंभीर, अविकत्थन, स्थिर तथा अपने व्रत का निर्वाहक होता है। इन सभी गुणों के संकेत जयकुमार के चरित्र में उपलब्ध होते हैं।

जैसा कि द्वितीय अंक में नवमालिका ने उचित स्थान में सुलोचना की लगी हुई दृष्टि की प्रशंसा करते हुए कहा है कि उस प्रकार का अति गंभीर सत्व अन्य के संभव नहीं है। प्रथम अंक में विदूषक जयकुमार से यह कहता है कि आप जैसे लोगों का धैर्य भंग होना अत्यंत अनर्थ की बात है। उसी अंक में सुलोचना के देखने के बाद की जयकुमार के धैर्य से विचलित होने की अवस्था के संबंध में बातचीत करते हुए नन्द्यावर्त ने कहा था कि जयकुमार की सात्विकता विचलित होने लगी तथा विशारद ने कहा था कि उस प्रकार के लोगों में धैर्य का स्खलन होता है, तब सचमुच सत्व शरणहीन हो गया। इन पात्रों के कथोपकथन से जयकुमार को अति गंभीरता तथा महासत्वता अभिव्यंजित होती है।

युद्ध में अर्ककीर्ति को बाँध लेने के पश्चात् अपनी शूरवीरता आदि के सम्बन्ध में जयकुमार एक शब्द भी नहीं कहता है। इस प्रकार उसका अविकत्थन स्वभाव व्यक्त होता है। जयकुमार की स्थिरता तथा दृढ़ व्रतत्व इसीसे समझा जा सकता है कि जिस अर्ककीर्ति के प्रतिपक्षी हो जाने पर कन्या का पिता स्वयं दामाद का पक्ष न लेकर मध्यस्थ हो जाता है, उसी चक्रवर्ती-पुत्र का सामना जयकुमार बड़ी दृढ़ता से करता है और उत्तर प्रत्युत्तर में अपने अहंकार को दबाये हुए कह देता है कि आप जैसे पुत्रों के कारण महाराज भरत भी शोचनीय हो गये हैं।[3] इस प्रकार धीरोदात्त प्रकृति के विशेष गुणों के अतिरिक्त नेता के सामान्य गुण भी जयकुमार में हैं।

---

१. (तत्र नाटके) अभिगम्यगुणैर्युक्तः धीरोदात्तः प्रतापवान् इत्यादि—दशरूपक ३।२२

२. पृष्ठ ३८—तादृशमुज्ज्वलं मधुरं रूपं, तादृशमुदारं गंभीरं सत्त्वं
तादृशों च धीरललिता प्रकृतिः नोत्तमक्षत्रियादन्यस्य संभाव्यते।
(संस्कृत छाया)

३. पृष्ठ १०४—गद्य तथा पद्य ८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जयकुमार के वाग्मी होने का प्रमाण यह है कि युद्ध के क्षेत्र में वह अर्ककीर्ति के साथ होने वाले उत्तर प्रत्युत्तर में श्लेषपूर्वक अर्ककीर्ति पर तीव्र व्यंग्य कसता है,[१] जिससे अर्ककीर्ति तिलमिला उठता है।

जयकुमार के प्रति उसकी प्रजा इतनी अनुरक्त है कि अकम्पन का प्रतीहार कौरवेश्वर के परिजन से पूछता है कि क्या जयकुमार अपने पिता के गुणों को भी (अपनी लोकप्रियता द्वारा) विस्मरण करा रहे हैं। उत्तर में उसे समाधान मिलता है कि वह बिल्कुल पिता के अनुरूप है। प्रतीहार के कथनानुसार उस जयकुमार के कारण ही कुरु देश वास्तविक राजन्वान है।[२] धार्मिकता के सम्बन्ध में उनका कुल तो विख्यात था ही, क्योंकि सर्वोत्तम दान की प्रथा का सूत्रपात्र इनके पिता सोमप्रभ के भाई श्रीयांस ने ही किया था।[३] उसके परिजन उसकी लोकप्रियता की प्रशंसा किया करते थे। सौविदल्ल ने कहा था कि मेघेश्वर जयकुमार चित्त में करुणा, तथा अपने माथे पर परमेश्वर के चरणयुगल को धारण करते हैं। इतना ही नहीं, भुजाओं पर भूमि का भार धारण करते हैं तथा अपनी भाँति समस्त लोक की रक्षा करते हैं।[४]

जयकुमार अत्यन्त सुन्दर हैं, इसलिए उनमें मधुरता या प्रियदर्शनत्व का गुण विद्यमान है। सुलोचना से द्वितीय अंक में नवमालिका ने कहा ही था कि उस प्रकार का उज्ज्वल तथा मधुर रूप और वैसा उदार तथा गंभीर सत्व उत्तम क्षत्रिय को छोड़ अन्य व्यक्ति के होना संभव नहीं है।[५] प्रतीहार ने स्वयंवर स्थल में जयकुमार का परिचय देते हुए बताया था कि रूप, कान्ति, तेज, महिमा, शौर्य, दान, पराक्रम के कारण अनन्य लभ्य कीर्ति धारण करने वाले जयकुमार सोमप्रभ के पुत्र हैं।[६] युद्ध स्थल का समाचार सुनाते हुए मन्दर ने रत्नमाली विद्याधर से कहा था मकर-व्यूह की रचना करके रथ पर स्थित जयकुमार साक्षात् कामदेव था। इन सब कथोपकथनों से जयकुमार का अत्यन्त मधुर रूप सिद्ध होता है।[७]

ये प्रख्यात एवं कुलीनवंश के थे, क्योंकि ये उसी सोमप्रभ के पुत्र थे, जिनके भाई ने भगवान आदिनाथ को दान दिया था तथा आदिनाथ ने अपने राज्यकाल में इनके वंश का राज्याभिषेक कर इनके पूर्वजों को राज्य प्रदान किया था। नाटक[८] का नायक प्रख्यात वंश का होना ही चाहिए।[९]

---

१. पृष्ठ १०६—अयि भो भरतपुत्र साधु शिक्षितोऽसि नटविभीषिकायां
यद्वीररसोदारप्रयोगेष्वसमर्थस्तत्रभवानित्थमेव विकत्थसे।
२. पृष्ठ २४
३ पृष्ठ ६७।७२
४. पृष्ठ २५।९
५. पृष्ठ ३८
६ पृष्ठ ६८।७३
७. पृ० ८६।३७
८. पृ० ६७।७१, ७२
९. गुणैःश्लाघ्यैः समायुक्तः ख्यातवंशश्च नाटके
धीरोदात्तः प्रतापी च काव्ये वा नायको नृपः। —मानसोल्लास, भ.ग २, २।३८,
पृ० १८४,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनके शौर्य, त्याग तथा तेजस्विता के संबंध में भी नाटक में उल्लेख है, जैसा कि लिखा जा चुका है। प्रतीहार ने स्वयंवर स्थल में जयकुमार की अनन्यकीर्ति का कारण रूप, कान्ति, तेज, महिमा, शौर्य, दान, पराक्रम आदि गुणों को बताया था।[1] इनके शौर्य का यह पुष्ट प्रमाण है ही कि इन्होंने अर्ककीर्ति जैसे चक्रवर्ती-पुत्र को भी बाँध लिया था, जिससे राजा अकम्पन भी चिंतित थे। जब भरत चक्रवर्ती की सेना भी मेघ वर्षा से सन्त्रस्त थी, तब इन्होंने अपने आग्नेय बाण से मेघों को छिन्न-भिन्न किया था, जैसा कि निरवद्य मंत्री ने अर्ककीर्ति को समझाते हुए जयकुमार के शौर्य के संबंध में कथन किया है कि भरत चक्रवर्ती की दृष्टि में असाध्य युद्धादि कार्यों की सफलता के लिए जयकुमार ही प्रशंसनीय माना जाता है, यद्यपि वह पराक्रमी जनों में विख्यात है, फिर भी ये वचन मात्र उसके पराक्रम के क्या प्रमाण होंगे, युद्ध की कसौटी उसके पराक्रम का सबसे बड़ा प्रमाण है।[2] यह केवल उसके शौर्य तथा पराक्रम का ही प्रमाण नहीं है, बल्कि इससे उसकी दक्षता या क्षिप्रकारिता भी प्रमाणित होती है।

युद्ध में विजय प्राप्त करने पर देवों द्वारा भी उसके सम्मान में पुष्प वृष्टि की गयी थी।[3] इस प्रकार यह जयकुमार सम्मानयुक्त था। फिर भी वह विनीत इतना था कि जब महाराजा अकम्पन ने अर्ककीर्ति के बाँधने की निन्दा की, तब उनके सामने चुपचाप सुनता रहा।

नेता के इन सामान्य गुणों के अतिरिक्त उसके उदात्त चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह पवित्र चरित्र है।[4] प्रकृति का इतना प्रेमी है कि गंगा-तीरोद्यान में प्रकृति की सुषमा के दर्शन और अभिव्यक्ति में तल्लीन हो जाता है। इन सब गुणों के कारण वह पुरुषों का शिरोमणि ही है।[5]

नन्द्यावर्त—नन्द्यावर्त कौरवेश्वर का मित्र है। इतना ही नहीं, वह कौरवेश्वर के इतना निकट है कि उसे कौरवेश्वर के शरीर से अभिन्न ही बताया गया है।[6] वाराणसी में पहुँचने पर केवल नन्द्यावर्त ही वाराणसी की शोभा देखने जयकुमार के साथ प्रारम्भ में गया था, इससे यह विदित होता है कि नन्द्यावर्त जयकुमार के अन्तरंग मित्रों में से एक था। वह अपने मित्र के भावों को पूर्णतया समझता है।

---

१. पृष्ठ ६८।७३
२. पृ० ७६।११,१२
३. पृ० ७७।१४
४. पृ० ६८—नवमालिका का कथन (संस्कृत छाया)
एष लोकलोचनपूर्णचन्द्रः समरमुखपरांगमुखीकृतवैरिनरेन्द्रो
निजगुणामृतस्रोतनिर्वर्तितसकलजन श्रोत्ररसायनः
पवित्रचरित्रपरायणः कौरवेश्वरो मेघेश्वरः
५ पृ० १५१।१९—शिखारत्नं पुंसां स जयति जयः कौरवपतिः
६. पृ० ६८९—एष खलु कौरवेश्वरशरीरनिर्विशेषो नन्द्यावर्तो नाम प्रियसखः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुलोचना के प्रथम दर्शन पर जयकुमार की प्रत्येक अवस्था का समाचार मित्र विशारद को उसने सुनाया है। वह कामशास्त्र की कलाओं में पारंगत है, इसलिए उसे वाराणसी के विट आर्य भद्रिलक से कम नहीं बताया गया है।[1] आर्य भद्रिलक वाराणसी के वेशवाट के चप्पे चप्पे का जानकार है। वाराणसी की अशोकलतिका नाम की वेश्या ने तो नन्द्यावर्त को अपना पति ही मान लिया था और वह इतनी सुन्दरी थी कि उस वेश्या के पति बनने के सौभाग्य के कारण नन्द्यावर्त ने देशान्तर भ्रमण का फल ही प्राप्त कर लिया, ऐसा वाराणसी के विट ने समझा है। जहाँ वह शृंगारिक कला में सिद्धहस्त है, वहाँ वह वीरता में भी पीछे नहीं है। स्वयंवर के बाद ज्यों ही ईर्ष्यालु राजा युद्ध के लिए तैयार होते हैं, त्यों ही जयकुमार के साथ नन्द्यावर्त भी उन्हें ललकारता है और कहता है कि यह नन्द्यावर्त युद्ध में पुष्पकलावर्तक मेघ की लीला उत्पन्न कर देगा।[2]

युद्ध स्थल में नन्द्यावर्त गन्ध गज पर आरूढ़ हुआ कुलूत देश के राजा दुर्मर्षण के साथ भिड़ जाता है, जिसने सर्वप्रथम अर्ककीर्ति को भड़काकर युद्ध के लिए तैयार किया था। वह युद्ध में क्षिपणि, कुन्त, शक्ति, प्रास इत्यादि अनेक शस्त्रों का प्रयोग करना जानता है और धनुष चलाने में तो इतना निपुण है कि क्रमशः दोनों हाथों में धनुष रखकर बाण प्रयोग करता है।[3] नन्द्यावर्त की युद्ध कुशलता की प्रशंसा युद्धदर्शक रत्नमाली ने भी की थी।[4] इस प्रकार नन्द्यावर्त जयकुमार का मित्र होकर भी काम तथा युद्ध, दोनों कलाओं में प्रवीण है।

विशारद— विशारद भी कौरवेश्वर जयकुमार का मित्र है। यह जयकुमार की दृष्टि में नन्द्यावर्त की तरह ही था। युद्ध में इन दोनों का इतना महत्त्व था कि युद्ध का समाचार सुनाने वाले मन्दर ने दोनों को जयकुमार की अजेय तथा पराक्रम की सूत्रधार भुजाएं ही माना है।[5] उसका शौर्य, चातुर्य इतना प्रशंसनीय है कि उसकी तलवार विपक्षी के घोड़ों, हाथियों को केले के सरस वृक्ष की तरह सरलता से काट देती है।[6] वह आजानेय अश्व पर सवारी करता है। नीति परायण इतना है कि युद्ध में जब प्रतिपक्षी दशार्ण देश के राजा संकर्षण के हाथी को अपनी प्रास से आहत कर दिया, तब उसके वाहनहीन हो जाने पर उससे युद्ध करना ही त्याग दिया।[7] रत्नमाली विद्याधर के शब्दों में विशारद का वैशारद्य विस्मयकर है।[8]

---

१. पृ० ५२—अथ कीदृशो गुणैर्नन्द्यावर्तः किं ब्रवीषि
न क्वापि हीयते वाराणसीविटमहत्तरार्यभद्रिलकादिति।

२. पृ० ७१।७७

३ पृ० ८९।४६

४. पृ० ८९—अहो नन्यावर्तस्य कृतहस्तता। (संस्कृत छाया)

५ पृ० ९१।५२

६ पृ० ९१।५३

७ न च हन्यात् स्थलारूढम् (मनुस्मृति, ७।९१, पृ० २४१)

८. अहो विशारदस्य वैशारद्यम्, पृ० ९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराज अकम्पन—ये नाटक की नायिका के पिता हैं। ये काशी देश के राजा थे। वाराणसी इनको राजधानी थी। इनको जन्मान्तर के संस्कार से स्वयंवर प्रथा के संबंध में विचार आया था, इसलिए इन्होंने अपनी पुत्री सुलोचना का स्वयंवर किया था।[1] इस स्वयंवर की योजना के कारण महाराज अकम्पन की बुद्धि को सर्वातिशायिनी बताया गया है, क्योंकि स्वयंवर की प्रतिष्ठा इस कारण है कि इसमें कन्या अपनी इच्छानुसार वर प्राप्त करती है और वर को भी चुनाव की प्रतियोगिता में भाग लेने का अवसर मिलता है।

राजा अकम्पन का इतना मान था कि चक्रवर्ती भरत उन्हें अपने पिता आदिनाथ के तुल्य मानते थे। भरत चक्रवर्ती के पास अर्ककीर्ति के कुमार्ग पर चलने के वृत्तान्त को सूचित करने के लिए दो दूत भेजे गये थे; उसके उत्तर में चक्रवर्ती भरत ने अकम्पन को बड़ा समझते हुए यही समाचार भेजा था कि आपकी आज्ञा अर्ककीर्ति को शिरोधार्य करनी चाहिए और यदि वह ऐसा नहीं करता है, तब आप जैसे विचारक को उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इससे यह तो सिद्ध होता है कि अकम्पन का बड़ा सम्मान था। वे धार्मिक प्रकृति के थे। कंचुकी ने अकम्पन के सम्बन्ध में बताया है कि समस्त पापों से रहित उनकी प्रगाढ़ भक्ति परमेष्ठी के संबंध में है तथा वे सम्यग्ज्ञान पूर्वक तत्वों का विवेचन करते हैं और चरित्रवान् हैं।[2]

महाराज अकम्पन को बड़ा प्रतिभावान बताया गया है, क्योंकि वह राजनैतिक सूझबूझ वाले थे। उन्होंने चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति को बंधन से छुटाकर दुराग्रह-रहित बना दिया था। ऐसा करके उन्होंने चक्रवर्ती के कुल से सम्बन्ध जोड़कर अपना कुल भी गौरवपूर्ण बना लिया था और चक्रवर्ती को भी प्रसन्न कर लिया था।[3] वैसे इसे इनके चरित्र का दोष ही मानना चाहिए, क्योंकि स्वयंवर में सुलोचना द्वारा चुने गये जयकुमार के अर्थात् अपने दामाद के पक्ष को न लेकर मध्यस्थता धारण करना न्यायपूर्ण मार्ग नहीं माना जा सकता है। इनकी मध्यस्थता सुनकर रत्नमाली विद्याधर के मुख से भी ये शब्द निकले थे कि मध्यस्थता के प्रेमी अकम्पन ने अपने दामाद का भी पक्ष नहीं लिया, यह विस्मय की बात है।[4] जयकुमार ने युद्ध के स्थल में जब अर्ककीर्ति को बांध लिया, तब अकम्पन ने जयकुमार के कृत्य की निन्दा की; इससे अकम्पन का चक्रवर्ती घराने के प्रति खुशामदी का ही भाव झलकता है। इतना ही नहीं, बड़ी लड़की सुलोचना के पूर्व अपनी छोटी लड़की रत्नमाला का विवाह अर्ककीर्ति के साथ पहिले कर दिया, क्योंकि उसे सन्तुष्ट करना था। यह भी अकम्पन द्वारा मर्यादा का उल्लंघन है।

विदूषक—जयकुमार का साथी विदूषक है, जिसका नाम सौघातकि है। जयकुमार स्वानुभूत बात उससे एकान्त में कहते हैं।[5] वह गंगातीरोद्यान में तथा

---

१. पृ० ७८।१६
२. पृ० ११८।१३
३. पृ० १४७।१, २
४. पृ० ८५,
५. पृ० १३,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमदवन में जयकुमार के साथ रहता है। कहना चाहिए कि विक्रान्तकौरव का विदूषक श्रृंगार सहायक है और उद्दीपक स्थानों में जयकुमार के साथ रहता है। संस्कृत नाटकों के नियत विदूषक के गुण[१] इस नाटक के विदूषक में नहीं मिलते हैं। न तो वह हास्य की सृष्टि करता है और न राजा के साथ युद्ध स्थल आदि सभी स्थानों में साथ रहता है, न पेटू ही है। इस नाटक में जयकुमार के दो अन्य मित्रों, नन्द्यावर्त और विशारद ने ही विदूषक का कार्य कुछ हलका कर दिया है। इस तरह प्रस्तुत नाटक में विदूषक के चरित्र का कोई उभार नहीं है। इस नाटक के विदूषक के चरित्र को देखकर श्री व्यास के शब्दों की याद आ जाती है कि संस्कृत नाटकों के विदूषक का चरित्र संश्लिष्ट तथा दुरुह कहा जा सकता है, क्योंकि एक ओर उसे हास्योत्पाद कार्यों के लिए विकृत वेषभूषा और विकृत वचन चाहिए, दूसरी ओर नायक का विश्वस्त होने के लिए शान्त गंभीर बने और वह जाति का ब्राह्मण हो, तब फिर उसके कार्यकलाप कुल मर्यादा के अनुकूल कैसे होंगे ?[२] सौधातकि केवल नायक का विश्वस्त दिखाई देता है।

विट :—नाटक के अन्य पुरुष पात्रों में जिनकी भूमिका अभिनय के लिए अपेक्षित है, उनमें वाराणसी का एक विट आर्य भद्रिलक है, जो वेशवाट की प्रक्रिया से परिचित है; उससे भी सभी परिचित हैं। फिर भी उसके अन्तरङ्ग का ऐसा भाव झलकता है, जैसे कि अन्तरंग में वह इस बात को जानता है कि संसार में स्पृहणीय बातें कौन-कौन सी हैं। वह वाराणसी की समृद्धि में ऐसे गुणों का आख्यान करता है, जिन गुणों के कारण ही वास्तव में किसी नगरी को समृद्ध कहना चाहिए। वाराणसी में पुरुषों के लिए गुण ही एक मान्य अलंकार है। धनी लोग धन को छिपाते नहीं हैं, बल्कि सुपात्र में दान देते हैं। कवियों की चमत्कारिक तथा अभिजात रचना सुशोभित होती है।[३] वह स्वयंवर में पहुँचने वाले राजाओं को देखने जा रहा है, किन्तु विचारता है कि इस वेशवाट को पार करके कैसे जाऊँ ?[४] मार्ग में बड़े हठी जुआरी भी मिलते हैं, जिनसे बच निकलना कठिन है; किन्तु वह इनसे बराबर निकल भागने का प्रयत्न करता है, यहाँ तक कि अपने उत्तरीय का अवगुंठन डालकर निकल भागता है और बचकर निकल जाने पर अपने को सराहता है। इस प्रकार उसके हृदय में गुणों का पक्ष अवरूद्ध नहीं है। वह सोचता है कि जुए में धन कमा कर वेशवाट में खर्च कर देना, यही दो व्यसन इन जुआरियों के हैं।[५] वह चन्द्रसेना नामक वेश्या की इसीलिए प्रशंसा करता है, क्योंकि वह वेश्या होकर भी केवल वैशिक चकोर से अपना सम्बन्ध रखती है और दाम्पत्य भाव की तरह अपना जीवन बिताती है। धन-हरण करना उसका लक्ष्य नहीं है। इस प्रकार वह वेश्या गणिकाकुल के आचरण

---

१. उज्ज्वल नीलमणिः —पृ० ४१—(नायक सहायक भेद वाला परिच्छेद)
२. सम्मेलन पत्रिका, भाग ४५, संख्या १, पृ० ६६
३. पृ० ४५।१
४. पृ० ४५।१
५. पृ० ४७।९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के विरुद्ध ही व्यवहार करती है।[1] इसी प्रकार की अन्य नीति की बातें वह समझता है।[2] वह केवल वाराणसी से ही परिचित नहीं है, बल्कि स्वयंवर यात्रा में जाने वाले राजाओं को उनकी वेषभूषा आदि से पहिचान लेता है। इस प्रकार यह काम-कला का जानकार तथा अन्य जानकारी रखता हुआ भी हृदय में अच्छाइयों को रखने वाला पात्र है। इस तरह शास्त्रीय परिभाषा वाले विट के गुण इसमें विद्यमान हैं।[3]

प्रतीहार महेन्द्र दत्त :—यह अकम्पन का प्रतीहार है। कार्य में चतुर होने के कारण महाराज अकम्पन ने इसे दूत के रूप में अर्ककीर्ति को समझाने के लिए अर्ककीर्ति के पास भेजा था। गंगातीर्थ की रक्षा का कार्य भी उसे सौंपा गया था। स्वयंवर में सुलोचना की सखी नवमालिका के साथ प्रतीहार ही स्वयंवर स्थल में समागत राजाओं का परिचय देता था।

रत्नमाली :—रत्नमाली एक देव है, जो अपनी देवी मन्दारमाला और सेवक मन्थरक के साथ युद्ध दर्शन के कौतुक से विमान में आरूढ़ होकर आकाश में स्थित था। इसके देवत्व का यही चिह्न है कि रत्नमाली ने कहा था कि इस महान् युद्ध को देखने से यह अनिमेष भाव सफल होगा। रत्नमाली को युद्ध के समाचार जानने की बड़ी उत्सुकता है। उसने वाराणसी से सभी समाचार लाने के लिए अपने अन्य सेवक मन्दर को भेजा था। युद्ध दर्शन की तीव्र लालसा होते हुए तथा युद्ध को देखते हुए भी रत्नमाली सदैव वीर लोगों की प्रशंसा करता है; नीति पर चलने वालों का समर्थन करता है तथा जयकुमार की विशेष प्रशंसा करता है। अन्त में युद्ध समाप्ति पर युद्ध दर्शन से उत्पन्न पाप के विघटन के लिए भगवान आदिनाथ के समवशरण में जाता है। इसलिए उसका चरित्र अन्त में अच्छा ही कहा जायगा। चतुर्थ अंक के पात्रों की योजना युद्ध की सूचना देने के लिए ही हुई है।

अन्य पुरुष पात्र :—इनके अतिरिक्त रत्नमाली का सेवक मन्दर है, जो वाराणसी से युद्ध के पक्ष विपक्ष के राजाओं का समाचार जानकर रत्नमाली को सुनाता है। मन्थरक भी रत्नमाली का सेवक है। अकम्पन का पुत्र है मांगद, जिसने अपनी बहिन सुलोचना के विवाह की तैयारी के लिए प्रतीहार को कुछ कार्य सौंपे थे। अकम्पन के द्वारदेश का रक्षक कंचुकी है, जिसे जयकुमार की विजय से प्रसन्नता का अनुभव होता है। जयकुमार का परिजन सौंविदल्ल है, जिसे जयकुमार के सुष्ठु चरित्र की अच्छी जानकारी है। इस प्रकार ये पात्र नाटकीय संविधान के लिए अनिवार्य होते हुए भी इनका विशेष चरित्रचित्रण नहीं है।

---

१. वेश्यानां धनार्जनमेव हि पुरुषार्थः। —गणिकावृत्त संग्रह, पृ० २४

२. पृ० ५०।१६

३. (अ) वेशोपचारकुशलो धूर्तो गोष्ठीविशारदः
कामतंत्रकलावेदी विट इत्यभिधीयते। —उज्ज्वल नीलमणि, पृ० ४१, नायक सहायक भेद ५

(ब) एकविद्यो विटस्तस्य कामतंत्रेषु कौशलम्। —भावप्रकाशन, पृ० ९३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य सूच्य पात्र :—प्रस्तुत नाटक में कुछ पात्रों की सूचना अन्य पात्रों के द्वारा दी गयी है; उनमें भरत चक्रवर्ती का पुत्र अर्ककीर्ति है, जो कि प्रतिनायक है, किन्तु इसका नाटकीय अभिनय में कहीं स्थान नहीं है। यह अभिमानी है तथा अविनीत है। अपने मान्य अमात्य के वचनों को ठुकरा देने वाला, अकम्पन के शान्तिपूर्ण सन्देश पर भी व्यंग्य कसने वाला यह वह व्यक्ति है, जिसके कारण राजा भरत भी शोचनीय हो गये हैं। यह चक्रव्यूह की रचना करके युद्ध में उपस्थित हुआ था। हाथ में कटक तथा शिर पर मुकुट पहिने हुए था। स्वयंवर स्थल में अलंकृत होकर पहुँचा था। किन्तु अर्ककीर्ति की सूचना पूरे नाटक में अनेक स्थलों पर दूसरे पात्रों के मुख से दी गयी है। अर्ककीर्ति के पक्ष में बाहुबली का कुमार महाबली था, जो कौरव के सेनापति इरंमद से लड़ा था।[1] बाहुबली के मामा नमि का पुत्र सुनगि था, जिसने तामसास्त्र का प्रयोग किया था और जो जयकुमार के मौसी के लड़के लौहार्गल के अधिपति आग्नेयास्त्र का प्रयोग करने वाले मेघप्रभ विद्याधर से लड़ा था। हरिवंश का कन्दर्प महाराज हरिकान्त का पुत्र सुकेतु था, जिसने पारिपतंगक व्यूह की रचना की थी। उसका संग्राम जयकुमार की ओर से युद्ध करने वाले, सर्वतोभद्र व्यूह की रचना करने वाले कश्यपवंशी महाराज मघवा के पुत्र, कुमार जयन्त से हुआ था। अर्ककीर्ति का छोटा भाई अजितंजय कौरवेश्वर के छोटे भाई संजयन्त से लड़ा था। कुलूत देश का राजा दुर्मर्षण, जिसने अर्ककीर्ति को भड़का कर कलह का प्रथम अध्याय आरंभ किया था, वह जयकुमार के मित्र नन्द्यावर्त से लड़ा था। दाशार्ण देश का राजा संकर्षण कौरवेश्वर के द्वितीय मित्र विशारद से लड़ा था।

इसके अतिरिक्त स्वयंवर में उपस्थित होने के लिए स्वयंवर यात्रा में आर्य भद्रिलक द्वारा देखे गये कौञ्जरात्र, काश्मीर, आन्ध्र, कर्नाटक, चोल, दक्षिण मथुरा, केरल देशों के राजाओं का उल्लेख किया गया है।

स्त्री पात्र

सुलोचना—सुलोचना इस नाटक की नायिका है, जिसके स्वयंवर की कथा-वस्तु को केन्द्र-विन्दु मानकर नाटक की रचना हुई है। यह काशीराज अकम्पन की पुत्री है। इसके एक भाई का नाम हेमांगद है तथा माता का नाम प्रभावती आया है। उसकी छोटी बहिन का नाम रत्नमाला है। अवस्था में यह युवती है, क्योंकि जयकुमार ने सुलोचना को देखने के बाद अपने अन्तरंग मित्र विदूषक को उसके सम्बन्ध में जो कुछ बताया है, इससे उसके रूप तथा शारीरिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। उसे काम का उद्दाम यौवनमद, रतिप्रवाहों की सरिता, विलास सम्पत्तियों का क्रीडांगण बताया गया है। इससे उसके युवती होने का निश्चय होता है[2]। उसकी विशेषता यह है कि वह सौन्दर्य का पवित्र विक्रय स्थल है।

१. पृ० ५८

२. शृंगारस्य गरीयसी परिणतिर्विश्वस्य सम्मोहिनी
विद्या काप्यपरा परा च पदवी सौन्दर्यसारश्रियाम्
उद्दामो मदनस्य यौवनमदः कुल्यारतिस्रोतसां
केलिर्विभ्रमसम्पदामविकलो लावण्यपुण्यापणः। (१०४।२३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे सिद्ध होता है कि वह पतिव्रता है। अत्यन्त सुन्दरियों में तो उसका ऊँचा स्थान है। वह शरीर की समस्त इन्द्रियों को आह्लाद देने वाली है। शरीर पर (स्पर्श द्वारा) चन्दन का लेप, मुख में (चुम्बन करने पर) अमृत, नासिका में (सूँघने पर) बकुल की गन्ध, कानों में (उसका स्वर सुनने पर) कोकिल तथा नेत्रों के लिए (देखने पर) शरदकालीन चन्द्रिका ही है।[1] वह स्तनतट पर चन्दन का लेप करती है, वक्षस्थल पर स्थूल हार पहिनती है तथा उत्तरीय भी धारण करती है।[2] हाथ में कुछ ढीला कटक और कान में दन्तपत्र धारण करती है।[3] अवस्था में युवती होने पर भी अधिक लज्जालु है, जिसके कारण अन्तरंग में जयकुमार के विरह में अत्यन्त सन्तप्त होकर भी अपना अभिप्राय अपनी सखी से भी छिपाकर रखती है। उसकी सखी इसके भाव को ताड़ जाती है और कहती है कि अयि सरले, मुख से भी लज्जित होने वाली तुम अपने हृदय से क्यों नहीं लज्जित होती हो ? उसकी लज्जा के संकेत अनेक स्थलों पर नायक द्वारा भी किये गये हैं तथा उसके अनुभावों से भी लज्जा की व्यञ्जना करायी गयी है। तुलसीदास की सीता विवाह के अवसर पर कंगन के नग में राम की परछाई देखती थीं,[4] विक्रान्तकौरव की सुलोचना शृङ्गार की सामग्री में से दर्पण उठाकर स्वयंवर यात्रा में जयकुमार का प्रतिबिम्ब उस दर्पण में लेकर उसको देखती है, कपोल पर लगाती है और उसका चुम्बन तक कर लेती है। इस प्रकार यह भी सूझबूझ का परिचय देती है। उसके इस दर्शनोपाय की प्रशंसा विदूषक भी करता है।[5] सुलोचना, जैसाकि उसका नाम है, उसके सुन्दर नेत्र हरिण-शावक के नेत्रों की भाँति थे,[6] उसकी नाभि गम्भीर थी,[7] तथा वह हंसगमना थी।[8] इस प्रकार परम्पराप्राप्त कवि समय के अनुसार नायिका वर्णन की तरह सुलोचना का वर्णन मिलता है।[9] स्वयंवर स्थल में अनेक विद्याधरों तथा राजाओं और राजकुमारों के बीच जिनमें चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति भी था, सबको छोड़कर पराक्रमी और गुणी जयकुमार को वरण करने वाली सुलोचना भी गुणानुरागिणी है और उसे वह पहिली ही दृष्टि में पहिचान कर पुर्वानुरागिणी हो गयी थी।

---

१. गात्रे चन्दनचर्चा, मुखे सुधा, वकुलपरिमलो घ्राणे
परिवादिनी श्रवणयोरीक्षणयोः शारदो ज्योत्स्ना। (१५।२५)

२. पृ० १५।२६

३. पृ० १६।३०

४. राम को रूप निहारति जानकी, कंगन के नग की परछाहीं।
(कवितावली, पृ० ३८, कवित्त १७)

५. पृ० १६—अभिजातं दर्शनोपायविज्ञानम्

६. पृ० ४०।२७

७. पृ० ५७।३५

८. पृ० १४४।७८

९. पृ० ४१।२९—अस्याः कामः कठोरः स्तनतटयुगले नाभिरन्ध्रे गभीरो
विस्तीर्णः श्रोणिबिम्बे गतिषु कृतपदो हस्तयोर्दत्तहस्तः
जातोत्कण्ठोथ कण्ठे, मुखमनु सुमुखं, काममोष्ठे सरागो
विभ्रान्तश्चायमक्ष्णोर्जनयति हृदयस्यान्यवस्थामवस्थाम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवमालिका- यह सुलोचना की प्रिय सखी है। सुलोचना के भावों को पहिचान लेती है और कह देती है कि कल की नगरदेवी की यात्रा से लेकर तुम्हारा भिन्न रूप ही मैं देख रही हूँ। वह सुलोचना की इस बात के लिए प्रशंसा करती है कि तुम्हारी दृष्टि योग्य पुरुष से लगी हुई है और कहती है कि तुम निश्चिन्त रहो, क्योंकि तुम्हारा अभिलषित व्यक्ति स्वयंवर के निमित्त आया होगा और कल स्वयंवर में तुम उसे वरण कर ही सकोगी। उसकी जानकारी इतनी बड़ी है कि स्वयंवर स्थल में उपस्थित राजकुमारों एवं विद्याधरों का परिचय प्रतीहार द्वारा दिये जाने पर उनका सार विवेचन वही करती है।

उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस नाटक में यदि मनोरंजन के लिए किंचित् हास्य उत्पन्न करती है, तो वह है केवल नवमालिका। स्वयंवर स्थल में अनेक राजकुमारों के प्रति सुलोचना की अभिलाषा न होने से अन्य अन्य राजकुमारों के समीप सुलोचना को ले जाया जाता था। जयकुमार के समीप में पहुँचने के पश्चात् नवमालिका मुस्कराकर कहती है, प्रिय सखि, क्या और दूसरे स्थान पर चलें ? उसकी इस बात से स्वयंवर सभा में हल्की मुस्कराहट अवश्य दौड़ जानी चाहिए। इसी प्रकार दूसरे अंक में गंगातीरोद्यान में जयकुमार के पहुँचने पर सुलोचना से कहती है, यह वही महाभाग जन है जो तुम्हारे हृदय में सदा बसता है। सुलोचना कहती है, कुछ असम्बद्ध बात न कहो, तुम्हें मेरी शपथ है। तब नवमालिका कहती है, असम्बद्ध बात कौन करता है, यह सब सुसम्बद्ध हो जायगा। राजा के समीप पहुँचने पर जब सुलोचना लज्जावश कहती है, सखि, यहाँ अब क्या किया जाय ? तब उसका उत्तर होता है, इन्हीं (जयकुमार) से पूछ लो। इस प्रकार नवमालिका का चरित्र इस नाटक में विशेष अच्छा हुआ है।

इसके अतिरिक्त स्त्री पात्रों में प्रमदवनपालिका गन्धमालिनी है, जो प्रमद वन में जयकुमार और उसके विदूषक को कौमुदीगृह बतलाकर नन्द्यावर्त के साथ लौट जाती है। सरलिका नाम की चेटी है, जिसे दूसरे अंक में नवमालिका ने मज्जनविधान की तैयारी जानने का कार्य सौंपा था तथा चतुर्थ अंक में प्रतीहार के मुख से स्वयंवर के पश्चात् अर्ककीर्ति आदि के मनोभाव सुनती है। वह भी परिस्थिति को समझती है, इसलिए अकम्पन द्वारा अर्ककीर्ति के लिए छोटी पुत्री के विवाहने के प्रस्ताव का समर्थन करती है। मन्दारमाला रत्नमाली देव की पत्नी है, जो पति के साथ युद्ध दर्शन के लिए आयी हुई है, किन्तु उसे युद्ध का न रुक सकना अच्छा नहीं लगा, तभी वह अपने पति से पूछती है कि जब महाराज भरत भारतवर्ष का अच्छी तरह पालन करते हैं, तब इन दुर्विनीति राजपुत्रों का ऐसा पराक्रम क्यों है ? एक स्त्री पात्र प्रतीहारी भद्रसेना है, जो पंचम अंक के मिश्र विष्कंभक में कंचुकी के साथ उपस्थित होती है।

भाव सौन्दर्य तथा कला सौन्दर्य

रसात्मक तथा कल्पनापक्ष भाव सौन्दर्य कहलाता है। शाब्दिक चमत्कार कला पक्ष के अन्तर्गत आता है। भाव पक्ष पर विचार करते समय हमें रस, भाव तथा सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति पर ध्यान देना होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रस—रस को काव्य की आत्मा माना जाता है। काव्य में रस का महत्त्व यहाँ तक है कि विश्वनाथ तो रसात्मक वाक्य को ही काव्य मानते हैं।[1] जैसा कि नाटककार ने सूत्रधार के मुख से संकेत कराया है कि परिषद् ने श्रृङ्गार तथा वीर रस वाले रूपक का अभिनय करने के लिए आज्ञा दी है। इस नाटक में श्रृङ्गार रस प्रधान है। नाटक के प्रारम्भ से स्वयंवर की चर्चा आरम्भ होतो है, जिसके निमित्त हस्तिनापुर से जयकुमार आये हुए हैं। स्वयंवर में सुलोचना द्वारा जयकुमार का वरण काम पुरुषार्थ के लिए सामाजिक अनुमति है, श्रृङ्गार का पुष्प या फल काम पुरुषार्थ ही है। चतुर्थ अंक में ईर्ष्यालु राजकुमार उस सुलोचना को पाने की इच्छा करते हैं जो कि जयकुमार को छोड़ अन्य किसी को नहीं चाहती है। इस प्रकार तृतीय अंक के अन्त में उस सुलोचना को हरण करने की बात करना श्रृङ्गाराभास का सूचक है, किन्तु यह सब युद्ध में परिणत हो जाता है। उस चतुर्थ अंक में युद्ध के प्रसंग में वीर रस की व्यंजना तो है ही, उसके साथ ही युद्ध के विस्मयकारी दृश्यों से अद्भुत रस, योद्धाओं के परस्पर के क्रोधभाव से रौद्र रस तथा युद्ध की स्थली पर रक्तादि के बहने के वर्णन से वीभत्स रस तथा प्रयोपगमन संन्यास द्वारा स्वर्ग को पहुंचने आदि के वर्णन से शान्त रस की व्यंजना भी करायी गयी है। युद्ध समाप्ति पर युद्ध दर्शक देव रत्नमाली युद्ध दर्शन के पाप को दूर करने के लिए भगवान के समवशरण में जाता है। यहाँ भी शान्त रस के अनुकूल कथन है। इस प्रकार चतुर्थ अंक में अनेक रसों की अनुभूति होती है।

चतुर्थ अंक के रस पूर्व पक्ष की तरह अभिभूत हो जाते हैं और पुनः श्रृङ्गार रस पंचम अंक से वर्णन का विषय बन जाता है और अन्त तक उसी का परिपाक दिखाई देता है। इस प्रकार नाटक का प्रधान रस श्रृङ्गार है।

कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। विप्रलंभ श्रृङ्गार के लिए स्मर्यमाण सुलोचना का वर्णन है, जो कि विभाव रूप है।

वह चन्द्रमा से न उत्पन्न होने वाली, नेत्रों को आह्लाद देने वाली चन्द्रिका है। मदिरा के साधनों से न बनी हुई भी मद को धारण करती है। पुष्पों से न गुंथी हुई स्वभावतः सुन्दर मन को आकर्षित करने वाली माला है तथा मेघ से न उत्पन्न होने वाली स्थिर चमकीली विद्युत है[2]।

आलम्बन के विभाव, जो कि रस के लिए उद्दीपक हैं, जयकुमार की स्मृति में आकर उनके वियोग को तीव्र करते हैं। उन्हें सुलोचना के उस दर्पण की याद आ

---

१. साहित्य दर्पण, १।३

२. पृ० १४।२४—शीतांशोरविनिःसृता नयनयोराह्लादिनी चन्द्रिका
द्रागन्तर्दधती मदं च मदिरातन्त्रैरनिर्वर्तिता
पुष्पैरग्रथिता निसर्गललिता माला मनोहारिणी
जीमूतादकृतोद्गतिः स्थितिमती विद्युत्समुद्द्योतिनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रही है, जिसमें सुलोचना ने जयकुमार का प्रतिबिम्ब ले लिया था। उस सुलोचना ने मेरे प्रतिबिम्बयुक्त दर्पण को नेत्रों से स्पृहापूर्वक देखा, कपोलों पर आदरपूर्वक रखा और उस सुदती ने स्तनों पर बार बार लगाया तथा मुख का चुम्बन किया।[1]

इस आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव से जयकुमार के हृदय में श्रृंगार की अनुभूति होती है। वियोग में उनकी जो अनुभाव दशा है, वह निम्न प्रकार है: जय कुमार का सत्व लुप्त हो गया, अंग तप-से गये, धैर्य गल-सा गया, अन्तरात्मा फट-सी गयी, चित्त पिघल-सा गया, ज्ञान छिप-सा गया, मान पुछ-सा गया, और वे जयकुमार घसीट से लिये गये।[2]

द्वितीय अंक में सुलोचना को भी हम अपने आपमें वियोग में चिन्तित पाते हैं, जिसकी चिन्ता अपने आपमें कुछ तानाबाना बुनती रहती है।[3] उसकी चिन्ता के शब्दों को सुनने वाला दर्शक और पढ़ने वाला पाठक वियोग श्रृंगार की अनुभूति में नायिका के साथ अपनी एकतानता कर लेता है। नाटककार द्वारा किया गया यह वर्णन[4] किसी भी उच्च साहित्य के भाव पक्ष की समता प्राप्त कर सकता है।

संयोग श्रृंगार का एक उदाहरण पंचम अंक से उद्धृत किया जाता है—जब कौमुदीगृह में सुलोचना पहुँचती है, उसकी सखी विदूषक के पीछे बहाना लेकर चली जाती है, तब सुलोचना कहती है कि मैं एकाकी रहने में डरती हूँ। जयकुमार कहते हैं, कातरे, क्या यही तुम्हारी सखी है? मैं भी तो अविरत तुम्हारी सेवा कर सकता हूं। तुम्हारे श्रान्त चरणों के सहलाने की चतुराई मुझमें है। मैं तुम्हारी श्लाघ्य आज्ञा को शिरोधार्य करता हूं। प्रिय सखि, मुझे भी नवीन सखिभाव प्रदान करो। मैं यह अंजुलि बांधता हूं।[5]

इस प्रकार हस्तिमल्ल ने संयोग श्रृंगार के जो भी चित्र दिये हैं, वे सब उदात्त श्रृंगार के सूचक हैं। वे अश्लीलता को स्पर्श नहीं करते हैं, क्योंकि जयकुमार स्वयं ऐसे अश्लील मनोरथों के सम्बन्ध में कहता है कि वे दूर रहें। केवल वह एक बार

---

१. पृ० १६।२८—निर्वर्णितः सस्पृहमीक्षणाभ्याम्
कपोलयोः सादरमर्पितश्च
न्यस्तश्च भूयः स्तनयोः सुदत्या
मुखेन कामं परिचुम्बितश्च।

२. सत्त्वं विलुप्तमिव तप्तमिवांगमंगम्, धैर्यं विशीर्णमिव दीर्णं इवान्तरात्मा
चेतः प्रलीनमिव लीन इव प्रवोधो, मानः प्रमृष्ट इव कृष्ट इवास्मि चाहम्। १८।३२

३. इयं च (चिन्ता) ततः प्रभृति किमपि किमपि सूत्रयन्ती न पारयति

४. पृ० ३५ का सुलोचना का स्वगत कथन।

५. पृ० १४२।७५—अविरतमहं सेवे रम्भोरु विद्यत एव मे
तव चरणयोः श्रान्तो संवाहनेषु विदग्धता
सपदि शिरसा श्लाघ्यामाज्ञां वहामि नियुज्यताम्
प्रिय सखि ममाप्यार्द्रं सख्यं प्रतीच्छ कृतोंजलिः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिरंभ के सुख का आकांक्षी है। यही बात इनके नाटकों की है कि वे गहरी अश्लीलता के मनोरथ को दूर ही रहने देते हैं।[1]

गुण—हस्तिमल्ल का युग यद्यपि वह युग था, जब कि कवियों का झुकाव भाव पक्ष से हटकर कला पक्ष की ओर जा रहा था। इनके विक्रान्तकौरव नाटक में स्वयं कई स्थल ऐसे क्लिष्ट हैं या समासपूर्ण हैं, जो नाटकीय संविधान के अनुकूल नहीं हैं। फिर भी उनके अधिकांश पद्य तथा गद्य प्रसाद गुण से ओतप्रोत हैं। इतनी बात अवश्य है कि इस नाटक की सम्पादन संबंधी अशुद्धियां प्रसाद गुण के स्थलों पर भी अर्थसंगति को दुरूह बना देती हैं। प्रसाद गुण का एक उदाहरण पंचम अंक से ले सकते हैं। जयकुमार द्वारा सुलोचना का हाथ ग्रहण करने पर वह लज्जावश छुड़ाना चाहती है। जयकुमार कहते हैं, अयि मुग्धे, हाथ क्यों खींचती हो लज्जा से, बस करो। यह मुरझाये मृणाल की भाँति सुकुमार तुम्हारी अंग यष्टि अत्यन्त सन्तप्त हो रही है, इसलिए हे नितम्बिनी, लज्जा व्यसन को त्यागती हुई तुम मेरे हाथ का अवलम्बन लो।[2] इसी प्रकार के अन्य अनेक स्थल हैं, जिन्हें साधारण संस्कृत के जानकार पढ़ते साथ ही समझ जाते हैं।[3]

माधुर्य गुण—प्रसाद गुण की तरह माधुर्य गुण इनकी नाटक रचना में सर्वत्र प्राप्त हैं। माधुर्य गुण के सम्बन्ध में क्या लिखूं! सूत्रधार ने प्रारम्भ में जो निर्देश दिये हैं, वे भले ही कवि प्रशंसा के परिचायक हैं, किन्तु उनमें सत्यता है। जैसी कथा लोकोत्तर चमत्कार के कारण मधुर है[4], उसी प्रकार उस कवि की कथन प्रणाली या भारती भी अमृत की सहेली है।[5] जयकुमार का यदि उज्ज्वल मधुर रूप है, तो उस नायक वाले नाटक में भी मधुर गुण है।[6] जयकुमार वर के रूप में कौतुकबन्ध के लिए रत्नमण्डप में पहुँच रहे हैं। जैसा कि प्रायः होता है, कुरूपति को देखने के लिए उत्कण्ठित स्त्रियाँ दौड़ती हैं। मंजीर की ध्वनि के रसिक गृह केलि हंस चरणों में लिपट जाते हैं, जिससे एक स्त्री उत्कण्ठा के कारण न तो अपने को रोक ही पाती है और क्रीड़ा हंस के पैर में लिपट जाने से न शीघ्रता से जा ही

---

१. पृ० १४३।७७—लब्धं किल प्रियसखि तव दुर्विमोच-
मिष्टं मया त्वमपि मुंच मूहूर्तमेनाम्
रम्भोरू देहि परिरंभ सुखं सकृन्मे
तिष्ठन्तु तावदपरे तु मनोरथा नः।

२. पृ० १४१—इयं परिम्लानमृणाल कोमला, तवांगयष्टिर्भृशमद्य ताप्यति,
तदेव लज्जाव्यसनं विमुंचती ममावलम्बस्व करं नितम्बिनी।

३. न हारयष्टौ न तुषारवृष्टौ न चन्द्रकान्ते न च द्रवश्मौ
ध्रुवं मया जातु चिदन्वभावि प्रियांगसंस्पर्शसुखस्य लेशः। १२२।२५

४. कथाप्येपा लोकोत्तर चमत्कारमधुरा ३।६

५. सुधा संध्रीचीना त्रिजगति यदीया सुभणितिः ३।५

६. पृष्ठ ३८, नवमालिका का कथन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाती है।[1] यद्यपि इसमें कुछ समास अवश्य है, किन्तु इसे अल्प समास ही माना जायगा। मधुर गुण के प्रतिकूल ट, ठ, ड, ढ, वर्ण होते हैं। वे वर्ण इसमें हैं ही नहीं तथा मधुर रस के अनुकूल वर्ग के अन्तिम वर्ण के साथ संयोग तथा रकार और णकार के प्रयोग[2] भी प्रस्तुत छन्द में हैं। माधुर्य गुण के अनेक पद्य ऐसे हैं, जिनमें संगीत की लय का आनन्द मिलता है।[3]

ओज गुण—स्वयंवर में जयकुमार के गले में वरमाला डाले जाने के पश्चात् युद्ध का वातावरण आरंभ हो जाता है और युद्ध में जयकुमार की विजय होने तक वीर, रौद्र रस तथा तदनुकूल वृत्ति और ओज गुण की योजना है। जब ईर्ष्यालु राजा युद्ध के लिए तत्पर दिखाई देते हैं, तब जयकुमार उन्हें ललकारता हुआ अपनी प्रतिज्ञा सुनाता है कि बाण के प्रहार से टूटी गाँठों के कारण बन्धन से ढीली हड्डियों से बहते हुए मस्तिष्क के टुकड़ों के कारण निम्नोन्नत मांस वाले ऐसे तुम्हारे वक्षस्थल से मान रूपी शंकु को उखाड़ता हुआ रोष रूपी ग्रह ने हर ली है दया जिसकी, ऐसा भैरव यह (मैं) कौरव, त्रास की आशंका से पहिले ही प्राण त्याग देने वाले तथा व्यर्थ की उकताहट के कारण शोचनीय तुम लोगों को मार डालेगा।[4]

इसी प्रकार की दीर्घ समास वाली तथा टवर्गादि वर्णों वाली रचना युद्ध प्रकरण में प्रयुक्त हुई है। जैसा कि साहित्यशास्त्रियों ने बताया है कि माधुर्य गुण करुण विप्रलम्भ श्रृंगार तथा शान्त रस में अतिशय युक्त होता है अर्थात् इन रसों में ही माधुर्य गुण विशेष उपयोगी होता है; क्योंकि इन रसों में यह गुण चित्त को द्रवीभूत करता है तथा ओज गुण वीर, वीभत्स, रौद्र रसों में क्रमशः अतिशय युक्त होता है क्योंकि इन रसों के लिए अपेक्षित चित्त की दीप्ति ओज गुण से होती है।[5] प्रस्तुत

---

१. पृष्ठ १५४।२९—मंजीरशिंजित रसानुगैतरियं च
संसज्यमानचरणा गृहकेलिहंसैः
देवावलोकनसमुत्सुकचित्तवृत्तिः
स्थातुं न पारयति न त्वरयाभियातुम्।

२. मूर्ध्नि वर्गान्त्यवर्णेन युक्ता टठडढान्विना
रणौ लघू च तद् व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गताः
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा। —साहित्य दर्पण, ८।३

३. पृष्ठ २५।९, १०

४. पृष्ठ ७०।७६—वक्षःप्रस्थात् क्षुरप्रप्रहतिविघटित ग्रन्थिबन्धश्लथास्थ्न—
श्च्योतनमस्तिष्कशकलस्थपुटितपिशितादुत्खनन् मानशंकुम्
त्रासातंकाज्जिहासून् प्रथमतरमसून् मोघसंरम्भशोच्या—
नाच्छेत्स्यत्येष रोषग्रहविघृतघृणः कौरवो भैरवो वः।

५. (अ)—करुणे विप्रलंभे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् (काव्य प्रकाश ८।८९)
(ब)—वीरबीभत्सरौद्रेष्वोजसो यथोत्तरमतिशयः
उत्तरोत्तरमतिशयितायाश्चित्तवृत्तेर्जननात्। (रस गंगाधर, प्रथम आनन, पृ० २०२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटक में इसी क्रम से हम देखते हैं कि विप्रलम्भ श्रृंगार के स्थलों पर माधुर्य तथा युद्ध के वीरता रौद्र आदि स्थलों पर ओज गुण के अनुरूप रचना है।

वस्तु व्यंजना :—हस्तिमल्ल की व्यंजना शक्ति इनकी भाव पक्ष की उत्कृष्टता को सूचित करती है। वस्तु व्यंजना के भी अनेक स्थल इस नाटक में हैं। सुलोचना द्वारा प्रतिविम्बित दर्पण के साथ अनेक चेष्टाओं रूप वस्तु वर्णन[1] के द्वारा जयकुमार के प्रति उसका प्रगाढ़ अनुराग तथा भविष्य में सुलोचना द्वारा कौतुकवन्ध के बाद जयकुमार के साथ की जाने वाली संभोग क्रीडाओं की सूचना रूप वस्तु व्यंग्य है।

स्वयंवर में वरमाला डालने से सुलोचना को आनन्द हुआ कि सहसा युद्ध कार्य से सुलोचना कातर हो गयी। सुलोचना की आँखों में आँसू आ रहे थे, फिर भी रोक लिये थे। इस आँसू के निरोध की वस्तु से अमंगल न हो, यह वस्तु व्यंग्य होती है।[2]

युद्ध स्थल में सब विद्याधरों का समुदाय एक ओर था, क्योंकि चक्रवर्ती के पुत्र का पक्ष प्रवल था; केवल मेघप्रभ विद्याधर जयकुमार की ओर था, उसकी उपमा ऐसे सिंह के साथ दी गयी है जो कि श्रेष्ठ हस्तियों के रक्तपात की लालसा वाला होता है और उसके सामने मृग शोभाहीन हो जाते हैं। इस उपमा अलंकार से यह वस्तु व्यंग्य होती है कि उसके समक्ष सभी विद्याधर नहीं ठहरेंगे तथा वह श्रेष्ठ हाथी जैसे बड़े-बड़े विद्याधरों को भी उत्साह से आहत कर सकेगा। इसी प्रकार सुलोचना को लावण्य का पुण्य आपण बताया गया है। यहाँ रूपक अलंकार द्वारा सौन्दर्य के साथ सतीत्व रूप वस्तु की व्यंजना है।[3]

अलंकार व्यंजना - सुलोचना को मेघ से अनुत्पन्न अचंचल, किन्तु चमचमाती विद्युत कहा गया है।[4] यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार द्वारा सुलोचना के गौरवर्ण रूप वस्तु तथा अचंचल विशेषण से पातिव्रत्य धर्म रूप वस्तु की व्यंजना करायी गयी है।

कौतुकवन्ध के अवसर पर राजकुल में उत्सुकता छायी हुई है। एक स्त्री नीलमणि के फर्श पर झुकी हुई चल रही है। अपने नेत्र को फर्श पर प्रतिविम्वित देखकर आँख की मछली का जोड़ा समझकर उकताहट से दूसरी ओर लौट पड़ती है कि कहीं मछली पर पैर न पड़ जाय।[5] यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार वाच्य है, उससे

---

१. पृ० १६।२८ तथा सः दर्पण निर्वर्णितः सस्पृहमीक्षणाभ्यां कपोलयोः सादरमर्पितश्च न्यस्तश्च भुयः स्तनयोः सुदत्या मुखेन कामं परिचुम्बितश्च।

२. तुषारलेखाकुलितोत्पलाभे पर्यश्रुणी मंगलभंगभीरू।
अगूढभावाऽपि विलोकनेऽसा न लोचने मीलयितुंविषेहे (किरातार्जुनीय, ३।३६)

३. पृष्ठ १४।२३

४. जीमूतादकृतोद्गतिः स्थितिमती विद्युत्समुद्योतिनी। –१४।२४

५. विलोक्य नीलाश्मतले विलोचने, विनम्रगात्रा प्रतिविम्बिते पुरः
निर्वृत्तपाठीनयुगाभिशंकया निवर्तयत्यन्यत आकुलं पदम्। –१५०।१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीलमणि में जल की भ्रान्ति व्यंग्य है। नेत्रों और मछलियों की उपमा व्यंग्य है। इस प्रकार अलंकार से अलंकार की व्यंजना है। विनम्रगात्रा पद उस स्त्री के स्तनों की विशालता की व्यंजना कराता है।

शाब्दी व्यंजना—शब्द शक्ति से उद्भूत व्यंजना के उदाहरण भी प्रस्तुत नाटक में हैं। युद्ध क्षेत्र में जयकुमार के बाण ने अर्ककीर्ति के धनुष की डोरी काट दी है। मन्दर कहता है, देखा ओजहीन अर्ककीर्ति का कोदण्डदण्ड शत्रु जयकुमार के द्वारा युद्ध में काट दिया गया ; अतएव निर्जीव (प्रत्यंचाहीन) तथा निश्चल है।[1] यहाँ निर्जीव शब्द जीवनराहित्य अर्थात् मृत्यु का सूचक है, जिससे यह वस्तु व्यंग्य होती है कि अब पुनः अर्ककीर्ति के द्वारा कोई शस्त्र नहीं उठाया जा सकता है, क्योंकि निर्जीव को सजीव नहीं बनाया जा सकता है। हुआ भी ऐसा ही। उसके बाद अर्ककीर्ति कोई शस्त्र नहीं उठा सका और वह बाँध लिया गया। निर्जीव शब्द परिवर्तन-सह न होने से शाब्दी व्यंजना है, जिससे वस्तु व्यंग्य है।

शाब्दी व्यंजना से अलंकार व्यंग्य के अनेक स्थल देखे जा सकते हैं। अर्ककीर्ति को महाराज अकम्पन समझा रहे हैं। कहते हैं कि मेरी अभिलाषा है कि वह जय स्वयंवर में पुष्पमाला पाकर उसके साथ अपने देश को जाय तथा अनर्घ्य रत्नमाला गुण रूपी रत्नों की राशि रूप तुम्हें पाकर तुम्हारी सेवा करे।[2] यहाँ रत्नमाला शब्द कन्या का नाम तथा रत्नों की माला का वाचक होकर पुष्पमाला की अपेक्षा रत्नमाला के अनमोल भाव को प्रकट करता है और व्यतिरेक अलंकार की व्यंजना कराता है। इसमें केवल जय शब्द विजय रूप वस्तु का भी सूचक है।

पंचम अंक में कंचुकी अपनी वृद्धावस्था की कुरूपता को बतलाता हुआ कह रहा है कि वय (वयांसि आयु के निषेक) कम्पन के कारण हिलते हुए कवच के बहाने घबड़ाकर शरीर की विकृति देख कर उड़ उड़कर भाग-से रहे हैं।[3] इसमें दिनोंदिन घटने वाली आयु का वर्णन है, किन्तु वयांसि शब्द द्व्यर्थक है और इस प्रकार पक्षी वाची होने से यह अर्थ भी निकलता है कि कांपते हुए वृक्ष की विकृति देखकर पक्षी उड़ जाते हैं। वयांसि शब्द परिवर्तन-सह नहीं है, इसलिए शब्दशक्त्युद्भव ध्वनि है। आयु तथा पक्षी की उपमा व्यंग्य है, इसलिए अलंकार व्यंजना का उदाहरण है।

लक्षणा—अभिधामूलक व्यंजना के कुछ प्रसंग बताये जा चुके हैं। व्यंजना के वे स्थल भी कम प्रभावक नहीं होते हैं, जिनके मूल में लक्षणा काम करती हैं।

द्वितीय अंक में गंगातीर के उद्यान में जयकुमार विदूषक के साथ अनार के वृक्ष को देख रहे हैं, जो अत्यन्त पकने से प्रस्फुटित हुए अपने फलों के द्वारा गौड देश

---

१. पश्य कोदण्डदण्डोऽयमर्ककीर्तेर्गतौजसः
निर्जीवस्तिमितो जातः शत्रुणा समरे हतः। १०८।९८

२. स्वयंवरे प्राप्य स पुष्पमालां, तया समं यातु जयः स्वदेशम्
त्वां रत्नमाला गुणरत्नराशिं संवाहयत्वर्घ्यमसावनर्घा। ११८।१८

३. वयांसि वेपथूद्धतवारबाणच्छलात्। —पृष्ठ ११२।२
स्वयम्, उड्डीयेव पलायन्ते सोद्वेगं तनुवैकृतम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की स्त्रियों की उस मनोहर दन्तकान्ति के पीछे दौड़ रहा है जो कि ओष्ठ की कान्ति से अनुरंजित है।[1] पैरों वाले किसी प्राणी का धर्म अनुधावन करना फलवाले अनार में बाधित है। लक्षणा द्वारा उसका अर्थ साम्य प्राप्त करना है तथा अनार के दानों के साथ गौड स्त्रियों के दांतों की उपमा व्यंग्य है।

इसी प्रकार बिजौरे का वृक्ष अपने तप्त, अतएव शुद्ध स्वर्ण की तरह कान्ति वाले तथा सावधान नासिका के द्वारा प्राप्य गन्धवाले अपने स्वच्छ फलों के द्वारा काश्मीर देश की स्त्रियों के कपोल की शोभा को ग्रसित कर रहा है। मुख द्वारा भक्षण की शक्ति वाले प्राणी का धर्म ग्रसित करना अचल मातुलिंग में बाधित है। यहाँ उस शोभा को जीतने या उससे बढ़कर शोभित होने से तात्पर्य है। यहाँ काश्मीर की स्त्रियों के कपोलों का तिरस्कार होने से प्रतीप अलंकार व्यंग्य है।

ये अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि के स्थल समझने चाहिए। विपरीत लक्षणा सम्बन्धी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि का वहाँ स्थल है, जबकि युद्ध के क्षेत्र में क्रोध पूर्वक पौरव अर्ककीर्ति ने जयकुमार से कहा है कि हे समरविदग्ध, सुन्दर और सुकुमार (जयकुमार) तुमने यों ही पराक्रम की ओर ध्यान न देने वाले मुझको क्या समझ लिया है? यहाँ क्रोध में जयकुमार के लिए अर्ककीर्ति द्वारा समर-विदग्ध सम्बोधन बाधित है, क्योंकि अपने को पराक्रमी बताने वाला प्रतिनायक नायक को ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं कर सकता है। यहाँ समर-अनभिज्ञ अर्थ में उसकी लक्षणा होगी और जयकुमार की निन्दा व्यंग्य है।

अलंकार—संस्कृत साहित्य में महाकवि माघ से लेकर आगे कृत्रिम शैली का बढ़ता हुआ रूप देखा जाता है। बाद के महाकाव्य माघ की कृत्रिम शैली की ओर जितने आकृष्ट हुए, उतने काव्यशक्ति की ओर नहीं आकृष्ट हुए। संस्कृत के महाकाव्य शाब्दिक चमत्कार, विविध छन्द प्रयोग, आलंकारिक ज्ञान के दर्शन और पाण्डित्य प्रकाशन के क्षेत्र समझे जाने लगे थे[2]। १२वीं शताब्दी के संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित श्रीहर्ष के नैषधीय चरित में पांडित्य-प्रदर्शन तथा कल्पना की उड़ान और शृंगार के विलासपूर्ण चित्र दिखाई देते हैं। नाटक में पाण्डित्य-प्रदर्शन का अवसर नहीं रहता है, इसलिए इस समय नाटक लिखने की ही प्रवृत्ति कम हो गयी थी। जो भी नाटक लिखे गये, उनमें भी कृत्रिम शैली का आभास है। हस्तिमल्ल भी श्रीहर्ष के आसपास थे। इसलिए उनके नाटकों में अलंकारों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में है; यह बात दूसरी है कि ये उस काल की शैली की ओर

---

१. हृद्यामनुधावत्यधरदलरुचा रंजितां दन्तपंक्तिम्
गौडीनां प्रौढपाकद्रुमपरिदलितैः स्वैः फलैरुच्छिलिंगः
निष्टप्तस्वर्णवर्णच्छविभिरवहितघ्राणलेह्यगन्धैः
काश्मीरीगण्डशोभां कवलयति फलैर्निमलैर्मातुलिंगः। २९।१६

२. संस्कृत कवि दर्शन, पृ० १९१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्णतः नहीं झुके थे। जयदेव ने तो बिना अलंकार के काव्य का अस्तित्व ही नहीं माना है।[1]

शब्दालंकारों में अनुप्रास तो सर्वत्र रहता ही है। एक दो उदाहरण लिये जा सकते हैं।[2] यमक,[3] श्लेष,[4] वक्रोक्ति[5] के भी प्रयोग हैं, किन्तु यह अलंकार विधान कहीं भी दुरूह नहीं है।

अर्थालंकारों में उपमा[6], रूपक[7], समासोक्ति[8], स्वभावोक्ति[9], उत्प्रेक्षा[10],

---

१. अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमलंकृती (चन्द्रलोक १।८, १६।२९)

२. संतर्पणोऽथ हृदयस्य स दर्पणोऽभूत्
सत्त्वं विलुप्तमिव तप्तमिवांगमंगं
धैर्यं विशीर्णमिव दीर्ण इवान्तरात्मा
चेतः प्रलीनमिव लीन इव प्रबोधो
मानः प्रमृष्ट इव कृष्ट इवास्मि चाहम्। —१८।३२
मनोरथशतार्तानां प्रोषितानां प्रमाथिनी
निशीथिनी जगज्जिष्णोर्मन्मथस्य वरूथिनी —१९।३८

३. किंचिच्चरणसंचरणक्षमायां क्षमायां
पृ० ९ तथा ९६।६४ में दो बार प्रायोपगमन का प्रयोग भिन्न २ अर्थों में है।
न राजते कश्चन राजते गिरौ —९७।६०
परा जयमसौ प्राप्ता कौरवस्य पताकिनी —१०९।१०१
पराजयमसौ प्राप्ता पौरवस्य पताकिनी
येनापवाहितोऽसौ भरतसुतौ दर्पगुरुभरतः —पृ० १४८

४. जय शब्द का जयकुमार तथा विजय अर्थों में प्रयोग। —८०।२५

५. निरवद्य मन्त्री ने जितकाशिता का प्रयोग अहम्मन्यता के अर्थ में किया था, किंतु अर्ककीर्ति ने जितकाशिता ही प्रकाशित की। अर्ककीर्ति ने उत्तर दिया था—न केवल मेरी जितकाशिता (काशी की विजय) समझो, बल्कि कुरुओं को भी जीता हुआ समझो। —पृ० ८०

६. ९१।५१, १०३।८४, पृ० ३३ को गद्य

७. ३।५, १०४।८५, पृ० १३० विदूषकः—सदृशापतद् शिशिरांशुराजहंसः १४।२३

८. १२९।४१, १४६।८३

९. ६।१२, ७।१३ अ तथा १७।१३ ब, ८।१६

१०. मध्याह्नतापसन्तप्तनभःस्थलावस्थितिमसहमान इव
अपरकाष्ठामिमुखे लम्बमाने भगवत्यम्बरमणौ............। —पृ० ९
पवनैरप्यालिंगनकुतूहलादिव स्तनांशुकान्तप्रवेशिभिः
सेव्यमानेन·······स्त्रीलोकेन........पृ० ११
ख्यातः पूर्वं जगति समरो मत्कृते भूपतीनाम्
कांचित् कन्यां प्रतिरणमिदं तद् यशो मे प्रमार्ष्टि
इत्युद्भूतात् प्रकृतिसुलभात् स्त्रीषु सापत्न्यवैरात्
क्वापि क्षोणी घनतमरजश्छद्मना गच्छतीव। —८४।३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपह्नुति[1], सहोक्ति[2], सन्देह[3], व्यतिरेक[4], उल्लेख[5], समुच्चय[6], स्मरण[7], असंगति[8], विरोध[9], भ्रान्तिमान[10]।

इनके अलंकार रसानुकूल, सहज एवं नवीन सुन्दर कल्पनाओं पर आधारित हैं; इसलिए शोभादायक ही हैं।

छन्द :—भावमयी भाषा में जो स्वाभाविक गति आ जाती है, छन्द उसी का बाहरी आकार है। छन्द भाषा को भावानुकूल बनाकर पाठक में एक विशेष ग्राहकता उत्पन्न कर देते हैं।[11] यही कारण है कि संस्कृत नाटकों में छन्दों का विशेष प्रयोग पाया जाता है। विक्रान्तकौरव नाटक का आरंभ हरिणी छन्द से हुआ है, जिसमें सर्वप्रथम नगण का प्रयोग होता है। नगण का देवता इन्द्र माना जाता है और उसका फल आयुवृद्धि माना जाता है। इतना ही नहीं, अ कार (स्वर) से आरम्भ किये जाने का फल भी आयुवृद्धि माना जाता है।[12] प्रस्तुत नाटक भी अ कार तथा नगण से आरंभ किया गया है।

प्रस्तुत नाटक में सर्वाधिक छन्दों का प्रयोग है एवं उनके अन्य नाटकों में सबसे बड़ा है। इसमें ५३ शार्दूलविक्रीडित,[13] ५२ शिखरिणी[14], ५१ वसन्ततिलका[15],

१. १०।७७, १२३।२६,
२. प्रोज्झन्तीषु च पथिकैः समं तरुमूलानि छायासु............पृ० ९
३. १४।२२
४. १४।२४, ११९।१८
५. १५।२५
६. १५।२७
७. ३२।२३
८. ५६।३१
९. अहो सौकुमार्यमपि योषितां कार्कश्यमेव पुष्णाति कुसुमायुधस्य। पृ० ५६ तथा ५६।३०
१०. विलोक्य नोलाश्मतले विलोचने विनम्रगात्रा प्रतिबिम्बिते पुरः विवर्तपाठीनयुगाभिशंकया निवर्तयत्यन्यत आकुलं पदम्। १५०।१५ तथा १५१।१७
११. सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० २४३
१२. संगीत शास्त्र, पृ० २३५
१३. (१) ७, ८, ९, १०, १२, १९, २३, २४, २६, २७, ३१, ३३, ३६, ३७, (२) २, ३, ५, १९, २४, २८, ३६, (३) १४, १६, ३३, ५८, ७१, (४) १, २, ३, ८, ३०, ३३, ४३, ४४, ४६, ७२, ७३, ७७, ७९, ८३, ९३, ९६, १०५, (५) ४, ९, ११, २०, ३३, ३८, ५६, (६) २५, ३२, ४४ = ५३
१४. (१) २, ५, ६, १३ अ, १७, २२, २९, (२) १४, २१, २३, २५, २६, (३) १, ५, ७, १८, २०, ३६, ५९, ६५, ७२, (४) ७, १०, १५, २०, २५, ३५, ४१, ४७, ५०, ५३, ७०, ८०, ८२, ९१, ९५, (५) १६, १७, ३०, ३७, ३९, ५५, ७८, ८१, ८२, (६) १९, २०, २३, २४, ३१, ५३, ५४ = ५२
१५. (२) १४, १८, २९, ३२, ४०, (२) ९, १२, १३, (३) ४, ६, ११, १२, १९, २५, २९, ३०, ३२, ३७, ५२, ५४, ६७, (४) १४, २९, ५१, ७५, ७८, ९७, १०३, (५) १३, १९, २७, ३२, ४१, ५७, ५८, ६०, ७२, ७७, (६) ४, ७, ९, १३, १६, १८, २१, २२, २९, ३५, ४५, ५५, ५६ = ५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५ उपजाति[1], ४० मालिनी[2], ३१ अनुष्टुप[3], २५ वंशस्थ[4], १६ आर्या[5], १५ स्रग्धरा[6], १४ उपेन्द्रवज्रा[7], ११ इन्द्रवज्रा[8], १० हरिणी[9], १० रथोद्धता[10], ५ स्वागता[11], ५ औपच्छन्दसिक[12], ४ मन्दाक्रान्ता[13], ३ पृथ्वी[14], ३ अपरवक्त्र[15], २ शालिनी[16], २ मंजुभाषिणी[17], १ वियोगिनी[18], १ द्रुतविलंबित[19], १ नर्दटक[20] और १ घत्ताषट्पदी[21] (पांचवें अङ्क की तीसरी गाथा) छन्द हैं।

---

१. (१) २८, (२) १०, ३०, ३२, (३) ८, १५, १७, २१, २६, २७, २८, ३८, ४८, ४९, ५०, ५१, ६३, ६६, ७०, (४) ४, ५, ९, २२, ३४, ५२, ५५, ६१, ६५, ७४, ८९, (५) ५, ७, १२, १५, १८, २२, २३, २४, ५१, ८३, ८४, (६) १७, ४२, ४७, ४९ = ४५

२. (१) ११, १६, २०, २१, ३०, (२) १, ७, ८, ३३. ३४, ३५, (३) २२, ४५, ७४, (४) १३, १७, २७, २८, ४०, ४२, ६०, ८८, ९९, १०२, १०६, (५) २६, ४०, ४२, ४४, ४६, ४८, ४९, ५२, ८०, ८५, (६) २, ११, ३३, ३७, ३८ = ४०

३. (१) ४, ३५, ३८, (३) २, ९, १०, ३९, ६०, ६८, (४) ६, १२, १९, २३, ३६, ३७, ३८, ३९, ४९, ५४, ५७, ८४, ८६, ९८, १०१, (५) २, ६२, (६) १, ३४, ४६, ५१ = ३१

४. (२) ६, (३) ४२, ४३, ५५, ५६, ६४, (४) १६, २६, ३१, ५८, ६७, (५) ८, १४, ३४, ४५, ६१, ६३, ७४, ७६, ७९, (६) ३. १५, ४०, ४१, ४३ = २५

५. (१) २५, ३४, (२) ११, (३) ३४, ५३, (४) ६४, ६९, ७१, ७६, (५) २९, ४३, ५९, ७३, (६) ६, ४८, ५८ = १६ प्रस्तुत संस्करण में कुछ छन्द भंग भी हैं।

६. (१) २, ३, १३ ब, (२) १५, १६, २९, (३) ४०, ७६, ७७, (४) ११, ६३, ९४, (६) २८, ३९, ५२, ५७ = १५

७. (२) १८, (३) १३, ३५, ४४, (४) १८, ६६, ८७, १०४, (५) ६, १०, २५, ३६, (६) १०, २७ = १४

८. (३) २३, २४, ५७, ६२, ७३, (४) २१, ५६, (६) ८, १४, ३६, ५० = ११

९. (१) १, (२) १७, ३१, (४) ५९, ८१, ९२, १००, (५) १, ६९, ७५ = १०

१०. (२) २०, (४) ६८, (५) २१, २८, ३५, ५०, ६४, ६५, ६८, (६), ३० = १०

११. (३) ४७, (४) ६२, ९०, (५) ६६, ७० = ५

१२. (३) ४१, ६९, ७१, (५) ५४, (६) १२ = ५

१३. (२) ४, (३) ३, (४) २४, ३२ = ४

१४. (१) १५, (२) २२, (५) ७१ = ३

१५. (४) ४५, ४८, (५) ५३ = ३

१६. (६) ५, २६ = २

१७. (३) ६१, (५) ५३ = २

१८. (३) ४६

१९. (५) ४७

२०. (५) ६७ इसका लक्षण निम्न प्रकार है—जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक न गण, एक ज गण, एक भ गण, दो ज गण, एक लघु और एक गुरु वर्ण हों। चारों पादों में १७ वर्ण होते हैं।

२१. पृ० २९—इह अ सुह विणोदए इत्यादि। –छन्दोऽनुशासन, पृ० ३००।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभाषित :—हस्तिमल्ल के नाटकों में सुभाषितों का प्रचुर प्रयोग है। पहले के काव्यकार इन सुभाषितों के माध्यम से एक प्रकार की शिक्षा भी देते थे। इनकी सूक्तियाँ बड़ी सरस हैं; इसलिए इनके सुभाषितों को आलंकारिक भाषा में सुधा सम कहा जा सकता है।[1] अञ्जना पवनञ्जय नाटक की भूमिका में इस नाटक के सुभाषित संकलित हैं। उस संकलन में केवल एक का समावेश रह गया है, वह निम्न प्रकार है :—

पितुस्तु संकेतमलंघनीयम्। –७४।५

संवाद एवं भाषा

संवाद—नाटकों में पात्रों के संवाद विशेष रोचकता लाते हैं। इनके प्राप्त चार नाटकों में विक्रान्तकौरव एक ऐसा नाटक है, जिसके संवाद नाटकीय कला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं। विक्रान्तकौरव में पद्यों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। यदि अवस्थानुकरण को नाटक माना जाय, तब तो आलोचकों का कहना है कि व्यवहार में कोई भी व्यक्ति पद्य का प्रयोग नहीं करता है, इसलिए नाटक में भी नहीं होना चाहिए; किन्तु प्रभाव के लिए पद्य का प्रयोग उपयोगी होता है। इसीलिए नाट्य-शास्त्र में भी पद्य प्रयोग के संकेत हैं।[2] किन्तु उनकी अधिकता स्वाभाविक नाटकीय कला में व्यवधान पैदा कर देती है। छोटे संवाद नाटकीय गति और प्रभाव तथा प्रवाह के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं; किन्तु इस नाटक में कुछ स्थलों पर संवाद बड़े विस्तृत तथा क्लिष्ट हो गये हैं। पाठक या दर्शक की रुचि बढ़ने के स्थान पर दबती चली जाती है, क्योंकि जहाँ कथोपकथन बहुत लम्बे और अस्वाभाविक ढंग से बढ़ जाते हैं, वहाँ नाटक में नीरसता तथा निर्जीवता आ जाती है।[3] प्रथम अंक में नन्द्यावर्त ने विशारद को नगरदेवता यात्रा का समाचार सुनाया है, वह लम्बा तथा क्लिष्ट हो गया है। विशारद तो केवल 'उसके बाद क्या हुआ ?' कहता चला जाता है और नन्द्यावर्त कहानी-सी कहता जाता है। द्वितीय अङ्क के आरम्भ का गंगा-तीरोद्यान के सम्बन्ध में राजा और विदूषक के बीच जो कथोपकथन है, वह भी अत्यन्त विस्तृत तथा क्लिष्ट है। वहाँ प्रकृति का वर्णन भी पाठक को विशेष मनमोहक नहीं लगता है। यही बात पंचम अङ्क के बालोद्यान के वर्णन में है।

चतुर्थ अङ्क में संवादों के द्वारा कथा को आगे बढ़ाया गया है तथा युद्ध के वर्जनीय दृश्य को संवादों द्वारा बताया गया है। वेणीसंहार नाटक में भी चतुर्थ अंक के सुन्दरक द्वारा समरभूमि की समस्त सूचना दिलाने का प्रयास भट्टनारायण ने किया है; किन्तु उस लम्बे वर्णन में घटनाओं का केवल संकेत है। नाटकीय व्यापार उस अंक में बहुत कम पाया जाता है। व्यापार द्वारा कथा को अग्रसर न करके केवल वर्णन द्वारा अग्रसर करने को कहानी जैसी शैली नाटकीय प्रभाव में बाधक हो गयी

१. सुधासध्रीचीना त्रिजगति यदीया सुभणितिः (विक्रान्तकौरव ३।५)
२. समीक्षा शास्त्र, पृ० ८११
३. साहित्य विवेचन, पृ० २२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है।[1] विक्रान्तकौरव के चतुर्थ अंक में भी लगभग यही प्रक्रिया है, किन्तु विक्रान्तकौरव नाटक के चतुर्थ अंक में रत्नमाली, मन्दारमाला, मन्दर तथा मन्थरक, ये चार पात्र हैं। वे सब बीच-बीच में संवाद में भाग लेते हैं। इसलिए वह नीरसता नहीं है, जो कि वेणीसंहार में अकेले सुन्दरक के द्वारा समस्त कथन का भार उठाने के कारण है। विक्रान्तकौरव के चतुर्थ अंक के संवादों से ऐसा लगता है कि कुछ व्यापार हो रहा है और कथा आगे बढ़ रही है। मन्दर और रत्नमाली जयकुमार तथा अर्ककीर्ति के परस्पर के मानपूर्ण कथन को सुनाते हैं। उनसे ऐसा लगता है, जैसे साक्षात् जयकुमार और अर्ककीर्ति के वाकोवाक् सुन रहे हों। इस प्रणाली के अपनाने से जहाँ हस्तिमल्ल एक दोष से बचे हैं, वहाँ दूसरा दोष उभर आया है। ये पात्र युद्ध के दर्शक हैं और उनकी बातचीत इस प्रकार की है, जैसे वे अभी वर्तमान में चलते हुए युद्ध का आँखों देखा समाचार बता रहे हों। वहाँ यह समर भूमि का दृश्य सूच्य न होकर दृश्य-सा लगने लगता है, जबकि वहाँ दर्शनीय कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार वेणीसंहार में कई प्रकार के संवाद उपनिबद्ध हैं। कहीं उसके संवाद छोटे, सरल, चुस्त और समयानुकूल हैं, तो कहीं दीर्घ, समासयुक्त, कृत्रिम शैली में नीरस वर्णनात्मक और लम्बे हैं।[2] ठीक इसी प्रकार की विशेषताएं विक्रान्तकौरव नाटक के संवादों में हैं। चौथे अंक में जो कौरव पौरव के संवाद के सूचक संवाद हैं, वे रोचक हैं। उनके संवादों को पढ़कर पाठक उन संवादों के उत्तर प्रत्युत्तर को सरस तथा स्वाभिमान के अनुकूल कहेंगे जो कि वीरोचित ही नहीं, वीर रसोचित भी हैं।[3]

भाषा—नाटकों की वही भाषा रमणीय समझी जाती है, जिसे सुनने वाला तत्काल भाषा के प्रभाव से प्रभावित हो जाय। कलात्मक भाषा का प्रयोग करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इतनी गूढ, जटिल और दुरूह न हो जाय कि दर्शक की समझ में ही न आये।[4] विक्रान्तकौरव में कतिपय स्थलों पर भाषा क्लिष्ट और समासबहुला है। उसमें कलाकृति भी नहीं है; केवल पाण्डित्य और वर्णनशक्ति का प्रदर्शन ही दिखाई देता है। उस युग के कवियों में यह प्रवृत्ति थी भी। उदाहरण के लिए तृतीय अंक के अन्तिम छन्दों को और द्वितीय अंक की पृष्ठ २८ की गद्य को लिया जा सकता है।[5]

---

१. संस्कृत कवि दर्शन, पृ० ३३९
२. संस्कृत काव्यकार, पृ० ३८५
३. अहो सरसाणि वीराणां मानावष्टम्भसोल्लासानि
 स्ववाकोवाक्यानि। पृ० १०६
४. समीक्षा शास्त्र, पृ० २०३
५. पृ० ७१।७६, ७७—शोभन्ते खण्डितजनहृदयोत्खण्डनसंक्रान्तबहलरुधिर-कर्दभ-रसरंजितानि उद्दाममकर ध्वजशार्दूल नरवांकुराणीव। बहिस्फुटग्रन्थिविघटनघन-शोणिमानि, किंशुककुसुमानि अथ च उत्तानपुटकिनीराजितानि बहुमंजरीवत्सहकारकाणिकुसुमभरभरितशेफालिकानि भूरिविकसन्नवमालिकानि स्तबकशतनिविडकंकेलिकानि
 विगलदासवविसराद्रितानि मुकुलोद्गममनोहर मल्लिकानि उत्फुल्लसुरभि-बहुवल्लिकानि निपतत्कुसुमरजोधूसराणि हरन्ति युवजनमनांसि गंगातटपर्यन्त-वनानि, पृ० २८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत नाटकों में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त विविध प्राकृतों के प्रयोग भी होते हैं। पं० बल्देव उपाध्याय ने प्राकृतों के मनोरम मिश्रण की प्रशंसा की है।[१] संस्कृत-भाषी पात्रों में जयकुमार, उनका मित्र विशारद और नन्द्यावर्त, वैतालिक, प्रतीहार, विट, रत्नमाली, मन्दर, कंचुकी, महाराज अकम्पन और हेमांगद हैं। शेष पात्रों की भाषा शौरसेनी प्राकृत है। केवल सौविदल्ल, जो कौरवेश्वर का परिजन है, महाराष्ट्री प्राकृत बोलता है। महाराष्ट्री प्राकृत को प्रकृष्ट प्राकृत माना जाता है तथा शौरसेनी आदि को भी उसी प्रकार का वता कर कुछ गौण माना गया है।[२] अन्य प्राकृत वैय्राकरणों ने महाराष्ट्री को मूल मानकर उसका विस्तृत वर्णन किया है। अन्य प्राकृतों को उसके सदृश वताकर कुछ विशेषताएं अलग से दी हैं। महाराष्ट्री में स्वरों के मध्यवर्ती व्यंजन का लोप अधिक हुआ है, इसलिए उसका प्रयोग गीत के लिए व्यापक रूप से हुआ है।[३]

महाराष्ट्री के सम्वन्ध में यह भी मत है कि यह महाराष्ट्र प्रान्त की भाषा है और शौरसेनी मथुरा प्रदेश की। स्थान विशेष के आधार पर इनका नामकरण अवश्य हुआ है, किन्तु यह महाराष्ट्री भी शौरसेनी का विकसित या परिर्वातित रूप ही है। वैसे हस्तिमल्ल ने भी मथुरा प्रदेश को शौरसेनी की उत्पति का क्षेत्र स्वीकार किया है।[४] महाराष्ट्री की प्रमुख विशेषता स्वरों के मध्य के स्पर्श वर्ण के लोप की है। सौविदल्ल की भाषा में क कार का लोप बहुलता से हुआ है। दूसरी विशेषता शौरसेनी की अपेक्षा यह है कि यहां थ कार का ध कार में न बदल कर ह कार में बदलना है।[५] सौविदल्ल के कथन में निशीधरति के लिए णिसीहरइ और माधवी की जगह माहवी का प्रयोग हुआ है। महाराष्ट्री और शौरसेनी में अनेक समानताएं होती हैं; इसलिए इसकी पहिचान के लिए दोनों की परस्पर की विशेषताओं को समझना अपेक्षित होता है। शौरसेनी में जहां क्रिया में त के स्थान में द होने की प्रवृत्ति है, वहाँ महाराष्ट्री में त का लोप ही होता है।[६] सौविदल्ल द्वारा प्रयुक्त छन्द में वहति के स्थान पर वहइ, स्फुरति के स्थान पर फुरइ, रक्षति के स्थान पर रक्खइ आदि प्रयोग हुए हैं[७]। च, क, द इत्यादि अल्पप्राण स्पर्शों के लोप भी हैं। सप्तमी विभक्ति

१. संस्कृत आलोचना, पृ० ७२
२. महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः (काव्यादर्श १।३४) शौरसेनी च गौडी च लाटी चान्या च तादृशी। —वही, १।३५
३. प्राकृत विमर्श, डा० सरयूप्रसाद, पृ० ३७
४. विक्रान्तकौरवम्, पृ० ६६
५. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, पृ० १० (भूमिका भाग)
६. पाइ अ सद्द महण्णव, भूमिका, पृ० ३५
७. वहइ चिहुर भारो माल दी पाडलाणं, कुसुमबइहरेण गुंफि अं मज्झमालं
बकुलकुसुमगुच्छं माहवी फुल्लबिद्ध, फुरइ अ थण पट्ठे दामअं कामिणीणं
चित्तें धरेइ करूणं घर्राणं भुअम्मि
सीसम्मि पाऊजुअलं परमेसरस्य
णिल्लुत्तदुक्खवि अणं स अलंपि लो अं
अत्ताण अं पि रक्खइ अप्पमत्तो। पृ० २४,२५, छन्द ८, ९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के सीसम्मि, भुअम्मि रूप महाराष्ट्री के सूचक हैं।[१] न कार को ण कार होना[२], ईश्वर का ईसर रूप[३], चिकुर का चिहुर[४], मकरन्द का मअरन्द[५] प्रयोग महाराष्ट्री होने के निश्चय को सूचित करते हैं। इसी प्रकार अन्य नियम भी चरितार्थ होते हैं।

संस्कृति सम्बन्धी संकेत

प्रस्तुत नाटक में अन्य तीन नाटकों की अपेक्षा संस्कृति के सर्वाधिक संकेत मिलते हैं। भौगोलिक एवं भौगोलिक स्थानों का ऐतिहासिक परिचय बताते हुए तत्संबंधी संस्कृति की कुछ जानकारी उसी परिच्छेद में दी गयी है।

युद्ध एवं युद्ध सामग्री :—प्रस्तुत नाटक में स्वयंवर के पश्चात् होने वाले युद्ध का विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त बाहुबलि के पुत्र कुमार महाबली के स्वयंवर भूमि के परिचय में एक युद्ध का संकेत है, जो भरत और बाहुबलि दो भाइयों के बीच साम्राज्य के आधिपत्य के सम्बन्ध में था। सुलोचना के स्वयंवर के बाद होने वाले युद्ध से यह स्पष्ट होता है कि स्वयंवर के बाद कलह की बहुत सम्भावना रहती थी, इसलिए स्वयंवर में पहुँचने वाले राजा लोग अपनी सेनाएं साथ ले जाते थे। जयकुमार की विशाल सेना के वाराणसी पहुँच कर ठहरने एवं हाथियों आदि का उल्लेख है। इसी प्रकार अन्य राजा जिनका स्वयंवर भूमि की ओर गमन सूचित किया गया है, उनके वर्णन से उनके सैनिकों आदि की जानकारी मिलती है कि अनिल्वाटेश्वर के राजा के सैनिक लम्बी डाढ़ी वाले तथा पैनी तलवारों वाले, काश्मीर के सैन्य धनुर्धारी, आन्ध्र के सैनिक कुन्तधारी, कर्नाटक के शक्ति को उठाये हुए, चोल के तलवार तथा धनुष दोनों को धारण करने वाले, पाण्ड्य देश के सैनिक तालों के धनुष लिये हुए तथा केरल के सैनिक वाण एवं धनुषधारी थे।[६] कुछ राजा लोग नीति, अनीति का ध्यान न करके अपने स्वार्थ या सम्बन्ध के अनुसार पक्ष ग्रहण कर लेते थे। स्वयंवर में सुलोचना ने जब जयकुयार को चुन लिया, तब उसके गौरव को सहन न कर कतिपय राजाओं ने अर्ककीर्ति को भड़का कर युद्ध के लिए उत्तेजित कर दिया। इतना ही नहीं, अर्ककीर्ति के संबंधी मामा के पुत्र आदि सभी विद्याधर अर्ककीर्ति के पक्ष में हो गये, क्योंकि वह उनका संबंधी था। कुछ लोग चक्रवर्ती के पुत्र की महत्ता के ध्यान से भी उधर मिल गये थे। राजा अकम्पन तक तो युद्ध में मध्यस्थ बन गये थे। इस प्रकार कहना चाहिए कि शक्तिशाली राजा का आतंक था।

---

१. पाइअ सद्द महण्णव, पृ० ३०

२. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० ३३४ के अनुसार वि० कौ० नाटक का पृ० २३

३. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० १६२ के अनुसार परमेश्वर का परमेसर रूप-वि० कौ० २५।९

४. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० ३०७ के अनुसार चिहुर रूप का प्रयोग-वि० कौ० २४।८

५. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० ३९० के अनुसार वि० कौ० गद्य, पृ० २३

६. पृ० ५३—५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेना में अनेक प्रकार के घोड़ों तथा हाथियों का उल्लेख मिलता है। ये दो ही युद्ध में उस समय सवारी के प्रमुख साधन थे। यद्यपि रथ अश्व, हस्ती और पैदल—चारों तरह की सेना के भी अस्तित्व के संकेत नाटक में हैं।[१] युद्ध के पूर्व भेरी और काहल वाद्य बजाये जाते थे।[२] युद्ध में हाथी विशेष पराक्रम दिखाते थे।[३] इन हाथियों को युद्ध की शिक्षा दी जाती थी। सौराष्ट्र के राजा भीम का हाथी शिक्षित नहीं था, इसलिए उसके बलवान होने पर भी उसे संग्राम से शुण्डहीन होकर भागना पड़ा था।[४] युद्ध में रथ बड़े वेग से चलते थे![५] इतना अवश्य है कि लोगों में धर्म के प्रति अभिरुचि रहती थी; इसलिए शूरवीर युद्ध के समय युद्ध कर्म शूरवीरता से करते थे। युद्ध कर्म से पीछे नहीं हटते थे और मृत्यु के समय प्रायोपगमन संन्यास धारण करने के कारण स्वर्ग प्राप्त करते थे।

युद्ध स्थल में सैन्य निवेश के प्रकार को व्यूह रचना कहते हैं। प्रस्तुत नाटक में अनेक प्रकार की व्यूह रचना के उल्लेख हैं। इस व्यूह रचना का उद्देश्य संग्राम में अपने सैनिकों की रक्षा तथा शत्रु पक्ष पर आक्रमण करने की सुविधा से सफलता पाना होता था। अर्ककीर्ति ने चक्रव्यूह रूप में अपनी सेना का निवेश किया था।[६] युद्ध यात्रा के समय जब चारों ओर से शत्रु के आक्रमण का भय हो, तो सेना को चक्रव्यूह में संचालित करना चाहिए। चक्रव्यूह में सेना का निवेश चक्र (पहिए) के आकार की तरह गोल होता है। इसमें प्रवेश पथ एक होता था तथा यह आठ कुण्डलाकार सेना पंक्तियों द्वारा वेष्टित होता था।[७] जयकुमार ने अपनी सेना को मकर व्यूह में स्थापित किया था।[८] जब युद्ध में दो ओर से आक्रमण का भय हो, तो मकर व्यूह में सैन्य निवेश किया जाता है। मकर की आकृति के अनुसार सेना का निवेश करना मकर व्यूह कहलाता है। इस व्यूह में सैनिक मकर के सिर, नेत्र, ग्रीवा, पृष्ठ, पाँव, पूँछ तथा दायें बायें पक्ष का स्थान ग्रहण करते हैं।[९] कुमार जयन्त ने सर्वतोभद्र व्यूह में अपनी सेना को जमाया था। यह व्यूह भी चक्रव्यूह की तरह होता है, अन्तर इतना है कि इस व्यूह में सेना आठ चक्राकार में आठ भागों में परिवेष्टित रहती है; उसमें प्रवेश द्वार एक भी नहीं होता था।[१०] इसी प्रकार सुकेतु

---

१. पृ० १०, पृ० ८४
२. पृ० ८२।२७
३. पृ० ९२, ९४, ९५
४. पृ० ९३।५६, ५७
५. पृ० ९७
६. पृ० ८६।३६
७. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता, पृ० ११५ के बाद व्यूहप्रकरण
८. पृ० ८६।३७
९. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता
१०. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का पारिपतंगक व्यूह, सुनमि का गरुड व्यूह[1] और मेघप्रभ का अपने नाम जैसा अभ्रव्यूह भी अपने अपने नाम के अनुसार सैन्य निवेश के सूचक हैं।[2] अपनी रक्षा के लिए सैनिक कवच का प्रयोग करते थे।[3] युद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग की सूचना मिलती है। सुनमि ने तामसास्त्र का प्रयोग किया था।[4] इस शस्त्र से चारों तरफ अन्धकार फैल गया था। मेघप्रभ ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया था, जिससे पैदा होने वाली अग्नि ने अपने नाम के अनुसार तामसास्त्र का प्रयोग विफल कर दिया था। नमि के पुत्र सुनमि ने वारुणास्त्र का प्रयोग कर जल-वृष्टि की थी, जिससे अग्नि बुझ गयी थी। मेघप्रभ ने उन वर्षा करने वाले मेघों को अपने वायव्यास्त्र के प्रयोग से छिन्न भिन्न कर दिया था।[5] वायव्यास्त्र से वायु का सृजन होता था, जिससे घर, वृक्ष, दुर्ग आदि उन्मूलित होने लगते थे। ये अस्त्र अपने नाम के अनुसार आभायुक्त होते थे।[6] अन्य शस्त्रों में भाले[7], क्षिपणि[8], कुन्त[9], शक्ति[10], प्रास[11], पाश[12], विभिन्न प्रकार की तलवारें[13], विभिन्न प्रकार की लकड़ी के बने हुए धनुष बाणों[14] का प्रयोग होता था। इनमें शक्ति नामक अस्त्र एक मत से चार हाथ लम्बा, धातु द्वारा निर्मित होता था।[15] भगवतशरण उपाध्याय ने इसे रथ पर से ही योद्धा द्वारा प्रयोग किया जाने वाला एक प्रकार का भाला माना है।[16] पं० रामदीन ने लिखा है कि यह लोहे की बनती थी और उसकी मूठ सोने की होती थी। यह अनेक प्रकार की होती थी। घटोत्कच की शक्ति में आठ चक्र थे।[17] कुन्त लकड़ी की लाठी होती थी। प्रास चौबीस अंगुल लम्बा अस्त्र होता

---

१. सहस्रेण पदातीनां वेष्टयित्वा गजोत्तमम्
अग्रभागेन शून्येन चालयेत् समरे ततः
एष स्याद् गारुडव्यूहो गजस्य परिकीर्तितः। —हरिहर चतुरंगम्, युद्ध परिच्छेद, पृ० २२७

२. पृ० ८६

३. १०७।९६

४, ५. पृ० ९८ से १००

६. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता, पृ० १११

७. पृ० १०७।९४

८. पृ० ८९।४६

९. पृ० ८९।४६

१०. पृ० ५३।२५, पृ० ८९।४६, ५४।२५

११. पृ० ८९।४६

१२. पृ० ८७

१३. पृ० ९१, ५३।२२, ५४।२६

१४. पृ० ९०, ५३।२३, ५४।२७ तथा पृ० ८७, २६

१५. 'आजकल' पत्रिका, जून, १९६३, श्री हरिहर प्रसाद गुप्त का लेख

१६. कालिदास का भारत, भाग १, पृ० २६४

१७. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता, पृ० ११५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था। पाश एक रस्सियों का फन्दा है, जो शत्रुओं के हाथ पैर बांधने में काम आता था।[1]

वाद्य—वाद्य का हृदय को उत्तेजित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहाँ एक ओर प्रातःकाल के कल-कल के स्वर, कोयल की काकली, मयूर की केका हृदय में कोमल भावों को जागृत करती है, वहां सिंह गर्जना, मेघ गर्जना तथा अन्य कई प्रकार के वाद्यों के बजने से वीरता के भाव जाग जाते हैं। युद्ध के पूर्व भेरी, शंख और काहल, इन तीन वाद्यों के बजने का उल्लेख है।[2] इनमें भेरी के संबंध में अंजना पवनंजय के अध्याय में परिचय दिया गया है। युद्ध प्रारंभ के समय अनेक प्रकार के वाद्य दोनों पक्षों ने बजाये थे।[3] कौतुकबन्ध के अवसर पर भी मंगल-पाठ के साथ तूर्य की ध्वनि का उल्लेख आया है।[4]

वास्तुकला—जिस काल की कथा को लेकर नाटक की रचना हुई है, वह काल अत्यन्त समृद्ध था। वाराणसी में जयकुमार ने नगरदेव यात्रा में जिन स्थानों को देखा था, उसी वर्णन में उल्लेख मिलता है कि ऐसे अनेक मन्दिर (देवकुल) थे, जिनमें हजारों भक्त भरे रहते थे। इससे मन्दिरों की विशालता सूचित होती है। भवनों में छज्जे रहते थे, जिनमें स्त्रियाँ घूमा करती थीं। मकानों के बड़े झरोखे (वातायन) होते थे। उस काल में भी फव्वारे होते थे, जिनसे पानी छिड़क कर सन्ताप पर नियंत्रण किया जाता था।[5] वाराणसी के राजमार्ग का उल्लेख आया है, जहाँ कि अनेक राजा लोग सैन्य सहित निकले थे।[6] मार्गों में प्रथम स्थान राजमार्ग का ही होता है। राजमार्ग की चौड़ाई ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ के भेद से २४,२०,१६ हाथ मानी गयी है। राजमार्ग इतना विस्तृत होता है, जिसमें चतुरंगिणी सेना और राजसी जुलूस तक के संचार में कठिनाई न हो। इसे केन्द्र मार्ग माना जाता है।[7] वेशवाट के प्रकरण में शिक्षागृह का उल्लेख आया है, जहाँ संगीत आदि की शिक्षा प्राप्त की जाती थी।[8] वेश्याओं के ऐसे भवन होते थे, जिनमें एक ओर से कामी लोगों का प्रवेश होता था और दूसरी ओर से उनका निष्कासन।[9] भवनों में अनेक शालाएं या कमरे होते थे। चन्द्रसेना ने चन्द्रशाला में खिड़की खोल कर विट को पुकारा था।[10] चन्द्रशाला महल के ऊपर का कमरा कहलाता, है जिसमें चन्द्र का प्रतिबिम्ब आ

१. 'त्रिपथगा', अस्त्र शस्त्र विशेषांक, पृ० ७०
२. पृ० ८२।२७
३. पृ० ८६, ८७
४. पृ० १५८।४२
५. पृ० १०
६. पृ० ४७, ५३
७. वास्तु शास्त्र, पृ० १५९
८. पृ० ५१
९. पृ० ५०
१०. पृ० ४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता हो और उससे वह कमरा सुशोभित होता हो।[1] एक वेश्या द्वितीय प्रासाद भूमि में गोपानसी पर आसीन थी।[2] इससे प्रतीत होता है कि उस समय भी कई खण्ड के महल बनते थे। उनमें छज्जे की भाँति गोपानसी बनी रहती थी। छत का नीचे स्थित वक्र काष्ठ गोपानसी कहलाता है।[3] एक वृद्ध वेश्या अलिन्द की भूमि को दूषित करती हुई बतायी गयी है।[4] अलिन्द शब्द से तोरण से शोभित एक झरोखे का बोध होता है। इसे शायद थूक कर वह दूषित करती होगी अथवा दालान की दीवाल के बाद के छाये हुए मार्ग का बोध होता है जो आँगन के सामने हो।[5] कोश में इसे बाहरी दरवाजे से सटी हुई चौरस भूमि माना गया है।[6] युद्ध के पूर्व सुरक्षा हेतु जिन स्थानों का उल्लेख किया गया है, उनसे विदित होता है कि राजमार्ग के अतिरिक्त पुरमार्ग तथा गलियाँ होती थीं, किन्तु ये इतनी बड़ी होती थी कि इनमें से हाथी तक जा सकते थे। किलों का अस्तित्व था। नगरों के प्राकारों में कई द्वार होते थे, जिन्हें पुर द्वार कहते थे। अट्टालकों का निर्माण भी होता था। प्राकार को भित्तियों से १०० हाथ की दूरी पर चारों दिशाओं में अट्टालकों का निवेश वास्तु शास्त्र में बत।या गया है।[7] राजमहल में सोने के स्तंभों की स्थिति की सूचना भी मिलती है।[8] जमीन में मणि का फर्श बिछा रहता था। वे भी अनेक रंग के होते थे।[9] क्रीडा के लिए पर्वतों को कृत्रिम रूप से योग्य बना लिया जाता था। प्रस्तुत नाटक में केलिरोहण नामक क्रीडा पर्वत का वर्णन है, जहां चन्द्रकान्त, मरकत, पद्मराग, वैडूर्य, स्फटिक मणियों की भूमियों की स्थिति थी।[10] चन्द्रकान्त मणि को स्निग्ध, मृदु, पीताभ, फलक रहित उपरत्न माना जाता है। चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से यह जलार्द्र हो उठता है। मरकत को गुरु, कोमल, स्निग्ध, अष्टकोण वाला, हरे रंग का महारत्न माना जाता है। पद्मराग को लाल कमल के समान रक्तवर्ण, मृदु और स्निग्ध मणि माना जाता है। वैडूर्य बिलाव के नेत्र के समान श्यामाभ भूरे रंग का माना जाता है। यह निष्कोण होता है और इसके गर्भ में रेखाएँ होती हैं। स्फटिक मणि छह या बारह कोण वाला चिकना, किन्तु कठोर होता है। इसका रंग प्रायः श्वेत होता है। यद्यपि अन्य रंगों के स्फटिक भी होते हैं। यह काँच

---

१. चन्द्रेण शालते शोभते चन्द्रशाल, महल के ऊपर का कमरा, हिन्दी विश्वकोश, ७वां भाग, सम्पादक, नगेन्द्रनाथ बसु, पृ० १८३
२. पृ० ५२
३. गां जलं पाति निवारयति, छादं सेधति प्राप्नोति गोपानसी, हिन्दी शब्दकोश, भाग ६
४. पृ० ४८
५. कालिदास का भारत, भाग २, पृ० ५०
६. बहिर्द्वारसंलग्नचतुरस्रकृत्रिमभूमिः। — शब्दकल्पद्रुम में अलिन्द शब्द
७. वास्तु शास्त्र, पृ० १२९
८. पृ० १४९।१०
९. पृ० १५०।१४, १५
१०. पृ० १३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को काट सकता है।[१] इसी प्रकार क्रीडार्थं बनायी गयी अमृततरंगिणी नामक वापिका का उल्लेख है, जिसमें अनेक प्रकार के पुष्प थे। जयकुमार के शिविर के तम्बुओं से ऐसा बोध होता है कि ये तम्बू एकदम विशाल भवन की भाँति ही थे। विशारद ने उसे कौरवेश्वर के भवन नाम से ही सम्बोधित किया है।[२] यह शिविर के लिए लगाये गये तम्बुओं की विशालता एवं प्रत्येक प्रकार की पृथक् पृथक् व्यवस्था की व्यंजना कराते हैं, क्योंकि शिविर से साधारणतया छावनी (सेना के स्थान) का बोध होता है, किन्तु वास्तु शास्त्र में शिविर न केवल कैंप वरन् राजा का निवास तथा सुरक्षित नगर ही था।[३] जयकुमार के शिविर में घोड़े, हाथी बाँधने की भी पूर्ण व्यवस्था थी। विवाह के अवसर पर रत्नमण्डप के निर्माण का उल्लेख है, जो चीन देश के निर्मित चीन पट्ट से वेष्टित हजारों स्वर्ण स्तम्भों से थामा गया था। मणि का तोरण बनाया गया था, जिसमें स्वर्ण की घंटिकाएँ लगायी गयी थीं।

वेशभूषा, प्रसाधन, अलंकरण एवं विनोद साधन

उस समय स्त्रियाँ ढीली चोली पहनती थीं। सुलोचना की चोली ऐसी ही थी।[४] वह उत्तरीय वस्त्र भी धारण करती थी।[५] विट के उत्तरीय वस्त्र से पुरुषों के उत्तरीय वस्त्र के प्रचलन का बोध होता है।[६] वेश्याएँ चण्डातक एक प्रकार का लहंगा पहनती थीं।[७] डा० मोतीचन्द ने लिखा है कि यह आधी जाँघों तक आने वाला घाघरा जैसा कोई वस्त्र था, जिसे नर्तकियाँ पहना करती थीं।[८] पाण्ड्य देश के सैनिक मयूर पंख का जटाजूट बाँधते थे।[९] विद्याधर लोग शिर पर मुकुट बाँधा करते थे।[१०] युद्ध के समय महाबली कंकट पहिने हुआ था।[११] यह युद्ध के समय कुछ चुस्ती लाने वाला वस्त्र है। इसे सूती बख्तर माना गया है।[१२] एक स्त्री के संव्यान वस्त्र के खिसकने का उल्लेख है।[१३] यह एक प्रकार का दुपट्टा या चादर ही है और शिर पर ओढ़ा जाता होगा।[१४]

---

१. द्रव्य गुण विज्ञान, अध्याय चतुर्थ
२. पृ० ८
३. वास्तु शास्त्र, पृ० १३०
४. पृ० १७
५. पृ० १५।२६ तथा १५०।१२
६. पृ० ४७
७. पृ० ५१।१७
८. प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० २३
९. पृ० ५४।२७
१०. पृ० ८६।३५
११. पृ० ९४।५९
१२. प्राचीन भारतीय वेशभूषा
१३. पृ० १५५।३१
१४. प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वक्षस्थल पर चन्दन का लेप[१] और कपोल पर लोध्र पुष्प की पराग को भुरका जाता था।[२] चोल देश की स्त्रियाँ अपने बालों में बन्धूक के पुष्पों को लगाती थीं।[३] अशोक के प्रवालों को कर्णपूर के रूप में उपयोग में लिया जाता था। द्रविड़ स्त्रियाँ हरे हरे नारिकेल के पत्तों को ताटंक के रूप में काम में लेती थीं।[४] वेश्याएँ कण्ठ में कस्तूरी का लेप करती थीं।[५] स्तन पर हरिचन्दन का लेप किया जाता था।[६] ताम्बूल का सेवन भी मुख की सुगन्धि एवं शोभा को बढ़ाता था। पान में कपूर डालकर खाया जाता था। बालों को कालागुरु से धूपित करके उनमें मल्लिका के पुष्प लगाये जाते थे। कभी जाती के पुष्प भी लगाये जाते थे।[७] वेश्याएँ बालों में मालाएँ लगाये रहती थीं।[८] इस प्रकार के खिजाबों का प्रयोग किया जाता था, जिससे बाल मूल भाग में श्वेत, उससे ऊपर भाग मंजीठ के रंग का, उससे ऊपर लाल और उससे ऊपर कृष्ण वर्ण के बाल होते थे। एक नीली रस का उल्लेख आया है।[९] ज्ञात हुआ है कि इटावा, उ० प्र० में एक हलवाई है, जो बालों में मेंहदी लगाता है। उसके बाल अत्यन्त लाल रंग के हो गये हैं। इसलिए नाटक के वर्णन के अनुसार बालों का प्रसाधन और रूप संभव हो सकता है। चोल देश की स्त्रियाँ स्तनों पर केशर का लेप करती थीं। महाराष्ट्र देश की स्त्रियाँ सुगन्धित मदिरा का पान करती थीं, जिससे उनके मुख से सरस गन्ध आती थी।[१०] चोल देश की स्त्रियाँ स्तनों पर हरिद्रा (हल्दी) का लेप करती थीं।[११] ये लेप शरीर की शोभा बढ़ाने तथा दुर्गन्धि को कम करने के लिए किये जाते थे। हल्दी रंग को साफ भी करती है।[१२] हल्दी के लेप के वर्णन वहुत कम लेखकों ने किये हैं। सुलोचना भी स्तनों पर चन्दन का लेप करती थी। आँखों में अञ्जन लगाने का भी उल्लेख हैं।[१३] बालों में चूर्ण भुरकने, कर्णावतंस के लिए फूलों का उपयोग करने एवं शोभा के लिए विशेषक (तिलक) रचना के भी उल्लेख हैं।[१४] बात यह है कि अंकगणित में यदि

---

१. पृ० ३०।१९
२. पृ० ३०।१८
३ पृ० ३०।१७
४. पृ० २९
५. पृ० ४६।६
६. पृ० ५१।१८, १९, पृ० १५।२६
७. पृ० ११३ एवं १९।३७
८. पृ० ४७।८
९. पृ० ४९।१४
१०. पृ० १२८।३९
११. पृ० १२९।४२
१२. प्राचीन भारत के प्रसाधन
१३. पृ० १३२।५३
१४. पृ० १५१।१८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिन्दी रखने से १० गुना मूल्य बढ़ जाता है, तो प्रसाधन की बिन्दी (तिलक) स्त्री की सहस्र गुनी (अगणित) शोभा बढ़ा देती है।[१] पुरुषों के प्रसाधन के भी नाटक में संकेत मिलते हैं। कौतुकबन्ध के अवसर पर जयकुमार माथे पर चन्दन का तिलक लगाये हुए थे और उस चन्दन में मांगलिक विचार से अक्षत (चावल) चिपके हुए थे।[२] जैसे आजकल हल्दी में चावल मिला कर टीका किया जाता है।

अलंकरण का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है। दोनों वर्गीकरणों में चार-चार भेद होते हैं। अलंकारों के अतिरिक्त वस्त्र भी उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। उसके अनुसार (१) बालों में धारण किये जाने वाले पुष्पादि कचधार्य, (२) देहधार्य हार, वलय, कटकादि, (३) परिधेय वस्त्रादि; (४) विलेपन केशर, चन्दनादि का लेप आदि।[३] दूसरे वर्गीकरण में (१) आवेध्य अलंकार, जो छेद कर पहने जाते हैं, जैसे कुण्डल, ताटंक आदि, (२) निबन्धनीय अलंकार जो बांध कर पहने जाते हैं, जैसे कांची (करधनी) आदि, (३) अंगूठी, मंजीर आदि प्रक्षेप्य अलंकार, जो प्रक्षेपपूर्वक पहने जाते हैं और (४) झूलती हुई माला, हार इत्यादि आरोप्य अलंकार होते हैं।[४] प्रस्तुत नाटक में सभी प्रकार के अलंकारों का उल्लेख मिलता है। स्त्रियों द्वारा धारण किये गये मंजीर[५], मेखला[६], मणिवलय[७], मणि का कर्णाभरण[८], हार[९], वलय[१०], दन्तपत्र[११], (कर्णाभरण) कर्ण में उत्पल का अलंकरण[१२], मौक्तिकलता[१३] (लड़ी), नूपुर[१४], तुलाकोटि[१५], कर्णपूर, हेमताटंक, रत्न का कांची कलाप[१६], अवतंस[१७], मौक्तिकहार[१८], कौतुकबन्ध के समय के कंकण[१९], परिहार्य[२०] का उल्लेख नाटक में है।

---

१. बिहारी रत्नाकर, पृ० १३७, ३२७
२. पृ० १५७।३८
३. कचधार्यं देहधार्यं, परिधेयं विलेपनम्, चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च देशिकम्
४. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ८१
५. पृ० ११, ५१।१८ १५४।२९
६. पृ० ११, ५१, १५५।३०
७. पृ० ११
८. पृ० ११
९ पृ० १५।२६, १५४।२८
१०. पृ० १६।३०
११. पृ० १६।३०
१२. पृ० १७
१३. पृ० ११
१४. पृ० ५१
१५. पृ० ११, ५१।१८, १५४।२९
१६. पृ० १५४।२८
१७. पृ० ४८।१२
१८. पृ० १५५।३१
१९. पृ० १५९।४५
२०. पृ० ४४।३४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनमें परिहार्य एक प्रकार की चूड़ियाँ ही हैं तथा घुंघरूदार सोने का कमरबन्द कांची तथा मणियों की दानेदार करधनी मेखला कहलाती है।[1]

पुरुषों के आभूषणों में कर्नाटक के सैनिकों द्वारा वक्ष पर शंखमणिमाला तथा कर्णों में दन्तपत्र, पाण्ड्य सैनिकों द्वारा मुक्ता-खचित हेमपत्र (कर्णाभरण[2]), विद्याधर कुमार सुनमि द्वारा अंगद[3], अर्ककीर्ति द्वारा कटक[4], महाबली द्वारा पद्मरागमणि[5] से जड़ी हुई अंगूठी तथा मुक्ताहार[6] जयकुमार द्वारा नाभि तक लटकते मध्यमणि से सुशोभित हार, तथा मुक्ताखचित स्वर्णमय कर्णसूत्र[7], धारण किये जाने के उल्लेख यह सूचित करते हैं कि सम्पन्न घरानों के पुरुष इस प्रकार आभूषण पहनते थे। विन्ध्य हस्ती को आन्ध्र देश का राजा नक्षत्रमाला[8] एवं पाण्ड्य राजा हाथी के बच्चे को किंकणी पहिनाये हुए था।[9] इससे पशुओं के अलंकरण की प्रथा की सूचना भी मिलती है।

मनोविनोद के लिए गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था, जिनमें परिहासपूर्ण तथा अन्य मधुर कथाएँ होती थीं।[10] कुछ लोग द्यूतक्रीडा द्वारा अपना मनोरंजन करते थे; किन्तु जुए में हार जाने पर स्थिति अच्छी नहीं रहती थी।[11] स्त्रियाँ चपेटे झेलने के खेल खेलती होंगी। स्त्रियों की हथेली द्वारा क्रीडापूर्वक जम्बीर के गोल फल धारण करने के उल्लेख हैं।

अन्य रीतिरिवाज :—राजा या राजकुमार जब स्वयंवर यात्रादि के निमित्त जाते थे, तो सेना के साथ अन्य परिकर, मित्र आदि उनके साथ जाते थे। सैनिकों की स्त्रियों के भी साथ में जाने के उल्लेख मिलते हैं।[12] वारवनिताएँ भी साथ चलती थीं और अपने प्रसाधन की सामग्री साथ ले जाती थीं।[13] राजा के अंगरक्षक उनके साथ रहते थे तथा छत्रधारी लोग भी साथ चलते थे। मिलिन्द प्रश्न में भी

---

१. रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ६०
२. पृ० ५४।२५, २७
३. पृ० ६०।४४
४. पृ० ५२।५१
५. पद्मराग को प्रमुख नवरत्नों में एक रत्न माना गया है। इसका नाम सूर्यग्रह के नाम से सम्बंधित है। इसका रंग लाल होता है। —रत्नविज्ञान, पृ० ७
६. पृ० ६४।५७
७. पृ० १५२।२२
८. पृ० ५३
९. पृ० ५४
१०. पृ० ९
११. पृ० १०
१२. पृ० ६।१०, ७।१४
१३. पृ० ७।१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राज-पुरुषों के सेनापति, पुरोहित, छत्तगाहक (छत्रधारी) तथा खग्गगाहक (खड्ग-ग्राही) का उल्लेख है।[1] उस समय ज्योतिष की मान्यता के अनुसार विवाह आदि शुभ वेला तथा नक्षत्रों में किये जाते थे।[2] ऐसी अनेक क्रियाएँ की जाती थीं, जिनका उद्देश्य शुभ या मंगल की प्राप्ति हो। आभूषणों में भी मांगलिक मण्डन का विशेष ध्यान रखा जाता था।[3]

सूत्रों का पाठ, मंगल पाठकों का उद्घोषण,[4] योगियों के चरित्र से मंगल की कामना करना,[5] अरहन्तों से मंगल हो, सिद्धों से मंगल हो, साधुओं से मंगल हो और धर्म से मंगल हो, इस प्रकार चार मंगल की कामना की जाती थी। अग्नि में घृताहुति[6], सिद्ध पूजा एवं छत्र चक्र की स्थापना आदि से सिद्धि की कामना की गयी है।[7] छत्र की अष्ट-मंगल द्रव्य में गणना होती है।[8] रत्न मण्डप के नीचे मंगल धान्ययुक्त कलशों की स्थापना[9] भगवान के अनेक नामोच्चारण पूर्वक भूति की कामना[10], आशीर्वाद की वाणियों के प्रयोग, अखण्डित चावलों से युक्त सरसों तथा कोमल हरी दूर्वा की अंजलि जयकुमार के शरीर पर बिखेरना[11]—ये क्रियाएं मंगल क्रियाओं तथा उनके प्रति गाढ़ विश्वास को व्यक्त करती हैं। शुभ्र चामरयुगल से जयकुमार का शोभित होना भी[12] इसी विचारधारा का पोषक है, क्योंकि चामर को भी मंगल द्रव्य में गिना गया है।

लोग मन्दिरों में कमल के कुडमल चढ़ा कर ईश्वर की पूजा करते थे। नगर-देवता के पूजन का विशेष समारोह होता था। उसमें तीन दिन तक यात्रा होती थी। संभवत: यह वैवाहिक अवसर पर होता हो। इस समय पालकी का प्रयोग होता था, जिसे चार पुरुष उठाते थे। पालकी में उपधान दर्पण आदि सामग्री रहती थी। सुलोचना के चतुरन्तयान में यह सामग्री थी। पालकी में एक पान देने वाली दासी भी रहती थी।[13] विलासिता का युग था ही, अनेक वार संभोग के चित्र

१. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ६३
२. पृ० १५८।४१
३. पृ० १५८।४३
४. पृ० १५८
५. पृ० १५७।३७
६. पृ० १५६।३६
७ पृ० १६०।५०
८. श्रृंगार कलश दर्पण वीजन ध्वज चामरातपत्रमथ
सुप्रतिष्ठमंगलानि चाष्टाधिकशतानि प्रत्येकम्। —संस्कृत छाया, त्रिलोकसार ९८९
९. पृ० १५६
१०. पृ० १६०।६२
११. पृ० १५५।३२
१२. पृ० १५२।२१
१३. पृ० ११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आये हैं। दिन में भी रतिक्रीडा करने की सूचना मिलती है।[1] ग्रीष्मकाल में गर्मो से छुटकारा पाने के लिए तलगृहों का निर्माण होता था। लोग उनमें रहते थे और चन्दन आदि शीतल द्रव्यों का लेप करते थे।[2] वेश्याओं के आँगन पुष्प बिखेर कर सुरभित किये जाते थे और राजमार्गों को साफ करके सुगंधित जल से छिड़काव किया जाता था।[3] वेश्याएं स्वागत में अपने केशपाश की सुगन्धित मालाएं तथा पिपरमेन्ट आदि सहित पान का बीड़ा देती थीं।[4] जुआरी लोग जो धन जुआ में प्राप्त करते थे, वे जाकर वेश्याओं के यहाँ व्यय कर आते थे।[5] वेश्याओं के यहाँ वृद्धा माताएं या कुट्टिनी रहती थीं, जो लोगों को एक ओर से प्रवेश कराने और दूसरी ओर से कामुकों को निकलवाने का काम करती थीं।[6] सौभाग्यवृद्धि के लिए विवाह के अवसर पर कन्याएं प्रभात में गंगा-स्नान करती थीं।[7] गणिकाएं भी नृत्य संगीत आदि का अभ्यास करती थीं।[8] बड़े घरानों में वारवधुएं चमर झुलाने का भी कार्य करती थीं।[9] महलों में पताकाएं फहराती रहती थीं, मणि के तोरण और वन्दनमालाएं लगायी जाती थीं।[10] उस काल में भी दहेज की प्रथा थी, यद्यपि यह दहेज की प्रथा आज जैसी नहीं थी; क्योंकि उस समय तो कन्या का स्वयंवर होता था, जिसके द्वारा वरण किये जाने के इच्छुक अनेक व्यक्ति होते थे। आज वर का स्वयंवर होता है, जिसकी स्वयंवर सभा में अनेक लड़कियाँ चित्र के रूप में उपस्थित की जाती हैं। लड़का उनमें से एक कन्या को चुनता है। महाराज अकम्पन ने रत्नमाला नामक कन्या के विवाह में अनेक सुन्दर हाथी और घोड़े प्रदान किये थे, यद्यपि यह प्रदान करना एक उपहार के रूप में था।[11] विवाह आदि के शुभ अवसरों पर दान देने की भी प्रथा थी। महाराज अकंम्पन द्वारा दिये गये किमिच्छक दान का उल्लेख है।[12] किमिच्छक दान में याचक से पूछा जाता है कि उसकी इच्छा किस वस्तु की है और तब उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता है।

लोग परमेश्वर की पूजा करते थे। सूत्रों के पाठ करते थे तथा अन्य अनेक धार्मिक कार्य करते थे।[13] प्रधान राजा जब अन्य राजाओं की नियुक्ति माण्डलिक राजा के रूप में करता था, तब उनका अभिषेक किया जाता था। अभिषेक के लिए सोने के कलशों से जल की धारा छोड़ी जाती थीं।[14]

---

१. पृ० ९, १०।१८
२. पृ० ४४।३६
३. पृ० ४५।३
४. पृ० ४७।८
५. पृ० ४७।९
६. पृ० ५०।१५
७. पृ० २१
८. पृ० ५१
९. पृ० ६०।४४
१०. पृ० ४५।४
११. पृ० १४७
१२. पृ० १४८।७
१३. पृ० १४९।९
१४. पृ० १५६।३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्री लोग राजकुमारों को नीति की ही सम्मति देते थे। निरवद्य नामक मंत्री ने अर्ककीर्ति को न्यायपूर्ण सम्मति दी थी कि जयकुमार के विपक्ष में युद्ध करना उचित नहीं है, क्योंकि एक कन्या जब एक वर का चयन कर चुकी है तब उस कन्या की इच्छा करना अनुचित है। यह बात दूसरी है कि राजकुमार अर्ककीर्ति ने यह सम्मति ठुकरा दी थी। राजा भी केवल अपने पुत्र का पक्ष न लेकर न्याय का पक्ष लेते थे। यही कारण है कि चक्रवर्ती भरत ने अपने पुत्र अर्ककीर्ति का पक्ष न लेकर उसके कुमार्ग पर चलने पर अनुशासन में रखने का समाचार भेजा था। महाराज अकम्पन षष्ठी प्रतिभा के धारी थे; इससे विदित होता है कि वृद्धावस्था के निकट आने पर लोगों की धार्मिकता के प्रति विशेष रुचि रहती थी। नाटक में प्रमुख रूप से रत्नत्रय धर्म की अभिव्यंजना है; जिसमें सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को सम्मिलित रूप में धारण करना पड़ता है।[1] ब्राह्मणों को भी इसी रत्नत्रय धर्म से शुद्ध बताया गया है।[2] भरत वाक्य में भी उसी रत्नत्रय की आराधना की गयी है।[3] इस रत्नत्रय को दूसरे शब्दों में भक्ति, ज्ञान और कर्म का समवाय कहा जा सकता है। इसमें से एक की भी कमी होने पर शाश्वत सुख का मार्ग नहीं मिल सकता है। कवि प्रसाद ने भी 'कामायनी' में इसी बात का समर्थन किया है।[4] भक्ति या दर्शन का सम्बन्ध हृदय से है, जो रति प्रदान करता है। ज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है, जो मति प्रदान करता है एवं चारित्र या कर्म का सम्बन्ध कर चरण आदि अंगों से है, जो गति प्रदान करता है। संसार में सुख देने वाले धर्म, अर्थ, काम, इन तीन पुरुषार्थों की तरह मोक्ष के मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र[5] रूप रत्नत्रय की प्रेरणा प्रस्तुत नाटक में संस्कृति के चित्रांकन द्वारा अन्त में दी गयी है।

तुलना

जैसा कि अन्य नाटकों के तुलना वाले परिच्छेदों में दिखाया है, साम्य खोजने पर हर जगह साम्य किसी न किसी रूप में प्राप्त हो जाता है। महाकवि श्रीहर्ष का नैषध इन नाटकों की रचना के कुछ ही समय पूर्व रचा गया था। हस्तिमल्ल के परिचय में लिखा गया है कि स्वयंवर से सम्बन्धित नाटक रचना की प्रेरणा संयोगिता के स्वयंवर की बहुचर्चा एवं नैषधीय चरित के स्वयंवर वर्णन से मिली हो। नैषधीयचरित के १२वें सर्ग में दमयन्ती के स्वयंवर का वर्णन है, जिसके अनुसार

---

१. पृ० १६०।५०

२. पृ० १५८।४०

३. पृ० १६२।५८

४. ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से मिल न सके यह विडम्बना है जीवन की॥ —कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २७२

५. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। —तत्वार्थ सूत्र, १।१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दमयन्ती शिविका में आरूढ होकर स्वयंवर भूमि में वरमाला लेकर चलती है। वहाँ सरस्वती (वाग्देवी) को साक्षात् परिचय देने वाली के रूप में श्रीहर्ष ने उपस्थित कराया है। नैषध महाकाव्य है, इसलिए उसमें वर्णन विस्तार के लिए व्यापक क्षेत्र श्रीहर्ष को मिला है, किन्तु साक्षात् सरस्वती को परिचय देने के लिए उपस्थित करना यथार्थता के अनुकूल नहीं पड़ना है, इसी प्रकार दमयन्ती का शिविका में आरूढ़ होकर वरमाला लिये स्वयंवर भूमि में घूमना भी शोभादायक नहीं है। नैषध में वर्णन की क्लिष्टता तथा अतिशयोक्ति की बहुलता भी प्रसाद गुण के विपरीत है। हस्तिमल्ल के विक्रान्तकौरव के तृतीय अंक में जो वर्णन है, वह इन दोषों से बचा हुआ है, क्योंकि सुलोचना के लिए समागत राजाओं का परिचय प्रतीहार ने दिया है और सुलोचना स्वयंवर भूमि में पादचार भ्रमण करती है। नैषधीय चरित में सरस्वती ने नल का परिचय देते समय ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिनसे पांच-पांच अर्थ निकलते हैं। इस शब्दजाल से दमयन्ती भ्रम में पड़ कर परेशान हो जाती है। पाठक भी मानसिक आयाम से परेशान होने लगता है। नैषध चरित में जिस प्रकार दमयन्ती को सरयू के किनारे के ऋतुपर्ण राजा का, पाण्ड्य राजा का, महेन्द्र पर्वत के राजा कलिंगराज का, कांचीपुरी के राजा का, नेपाल नरेश का, मिथिला नरेश का, उत्कल नरेश का तथा मगधेश्वर का परिचय दिया गया है, उसी प्रकार विक्रान्तकौरव में विद्याधरों की दक्षिण श्रेणी के राजा सुनमि, उत्तर श्रेणी के विद्याधरराज सुविनमि, लोहार्गल के अधिपति मेघप्रभ, अयोध्या के महाराज भरत के पुत्र अर्ककीर्ति, पोदनपुर के राजकुमार महाबली, उज्जयिनी के राजकुमार जयन्त, मथुरा के राजकुमार सुकेतु तथा हस्तिनापुर के अधिपति जयकुमार का परिचय दिया गया है। अन्तर इतना है कि नाटक के राजाओं का परिचय सरल और संक्षिप्त है। परिचय के एक दो वाक्यों में साम्य भी देखा जा सकता है।[1] नैषध चरित के नल के सम्बन्ध में सभी को पूर्व जानकारी थी कि दमयन्ती नल को ही चाहती है; इसलिए देवता लोग पहले से ही अपने लिए रूप बदलकर चुनाव कराने का प्रयत्न करने लगे थे। नाटक में परस्पर के पूर्वराग का वर्णन होने पर भी स्वयंवर स्थल में अन्य लोगों को इसकी जानकारी नहीं थी कि सुलोचना जयकुमार का ही वरण करेगी। स्वयंवर के बाद, जैसा कि होता है, केवल अर्ककीर्ति ही प्रतिपक्षी के रूप में उपस्थित होता है, जबकि नैषध में स्वयंवर के पूर्व एक नहीं अनेक देवता (इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण) नल के प्रतियोगी बन कर रूप बदल कर उपस्थित होते हैं और बाद में अपना विरोध समेट लेते हैं। इसके बाद स्वयंवर निर्विघ्न हो जाता है और बाद में कोई संकट नहीं रहता है।

---

१. तस्मिन्नेतेन यूना सह विहर पयः केलिवेलासु बाले। —नैषध १२।१०३

अमुना यमुनातरंगभंगस्खलनक्लेशितशीतमारुतेषु।
विहरस्व सुखाकरेषु वृंदावनपर्यन्तलतागृहांतरेषु॥
(विक्रान्तकौरव, पृ० ६७।६९)

इसी प्रकार के तृतीय अंक के अन्य छन्द संख्या ४३, ४७, ५० भी देखे जा सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबकि नाटक में स्वयंवर हो जाने के पश्चात् भीषण युद्ध होता है और तब कौतुक-वन्ध की क्रिया सम्पन्न होती है।

शिशुपाल-वध के तेरहवें सर्ग में जब भगवान कृष्ण द्वारका में प्रवेश करते हैं, तब स्त्रियाँ उनको देखने की उतावली में अपना शृंगार अस्तव्यस्त रूप में धारण कर लेती हैं। हार के स्थान वक्षस्थल पर कांची (करधनी), बालों में कर्णफूल पहन लेती हैं तथा कर्णफूल को अपना वलय बना लेती हैं।[1] विक्रान्तकौरव नाटक में परिणय वेदिका की ओर जयकुमार जा रहे हैं। दूल्हे को देखने की स्त्रियों में स्वाभाविक उत्सुकता होती है, उनके औत्सुक्य का आधिक्य व्यंजित करने के लिए हस्तिमल्ल ने उनके आभूषणों का व्यत्यय न दिखाकर खिसक जाने का वर्णन किया है। नाटक में स्त्रियों की भीड़ जो जयकुमार को देखने को आगे बढ़ रही है, उसे संघर्षण में खिसक जाने वाले हार का ध्यान ही नहीं है। इसी प्रकार सोने का ताटंक खिसक कर गिर गया है, उसका भी ध्यान नहीं है। रत्नों की करधनी तथा टूटते हुए हार का ध्यान उसी प्रकार उसे नहीं है, जैसे सुरत काल में उन्मादित हो जाने पर कुछ भी ध्यान नहीं रहता है।[2]

माघ ने जहाँ स्त्रियों की उत्सुकता की अधिकता आभूषणों के अंग विपर्यय का वर्णन करके बतायी है, वहाँ हस्तिमल्ल ने उन आभूषणों के बिल्कुल खिसक जाने पर भी ध्यान न देने के द्वारा करायी है। इस प्रकार उनका वर्णन अपना अलग ही है।

शैली की तुलना करें तो विक्रान्तकौरव की गद्य लेखन की शैली बाणभट्ट की शैली से कई स्थानों पर साम्य रखती है।

अहो अस्य निरन्तरोत्फुल्लरागकुसुमतया रत्नकंबलावगुण्ठितैरिव पारिभद्रद्रुमैः, निरन्तरोत्फुल्लपीतफुल्लतया कनत्कनकप्रच्छदसंच्छन्नैरिव कांचनकोविदारपादपैः, निर्भर विकसितकृष्णगुच्छतया इन्द्रनीलमणिकिरणसंवलितैरिव तापिच्छै.........रमणीयता गंगातीरोद्यानस्य। (विक्रान्तकौरव, पृष्ठ ३३)

पल्लवितकोमलदूर्वांकुरमिव मरकतस्थलेषु, प्रदीप्यदिव पद्मरागमणिकुट्टिमेषु, उन्मिषितमिव वैडूर्यप्रस्तरेषु किसलयितमिव प्रवालतटेषु....चन्द्रातपं दर्शयन्....क्रीडा-पर्वतकः। (विक्रान्तकौरव, पृष्ठ १३५)

---

१. रभसेन हादपद्दत्तकांचयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन् वलयी कृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः। –१३।३२ (शिशु-पाल वध, १३वां सर्ग)

२. न भ्रष्टं कर्णपूरं न चलनपतितं हेमताटंकपत्रम्
न स्रस्तं केशहस्तं न गलितकलनं रत्नकांची कलापम्
न त्रुट्यन्तं च हारं गणयति सुरतव्यत्ययोन्मादितेव
स्त्रीसंसत् संपतन्ती सपदि कुरुपतिं द्रष्टुमुत्कण्ठमाना॥
विक्रान्तकौरव, पृ० १५४।२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस शैली का साम्य कादम्बरी की निम्न गद्य में देखा जा सकता है :—

यस्यां च (उज्जयिन्यां) सन्ध्यारागारूणा इव सिन्दूरमणिकुट्टिमेषु, प्रारब्धनील-कमलिनीपरिमण्डला इव मरकतवेदिकासु, अभिभूततारकापंक्तय इव मुक्ताप्रालम्बेषु ········विराजन्ते रविगभस्तयः (कादम्बरी, पृष्ठ १६३)

तिरोहितायां काशीराजसुतायां कौरवेश्वरः इत्थमभूत्।

मूढ इव, विलिखित इव, उत्कीर्ण इव, विशीर्ण इव, मुषित इव, आविष्ट इव, दृत इव, दीन इव। (विक्रान्तकौरव, पृष्ठ १३)

उपदेशवाग्भिः प्रक्षालितः चन्द्रापीडः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अलंकृत इव, पवित्रीकृत इव, स्वभवनमाजगाम।

(कादम्बरी, पृष्ठ ३३८)

उद्देश्य-उपसंहार

कवि या लेखक अपने समाज के मस्तिष्क और मुख (दोनों) होते हैं। कवि द्वारा बनायी गयी सामाजिक भावों की मूर्ति समाज की उन्नायिका बन जाती है[१]। इसलिए हमें कवि के उन भावों को समझना चाहिए, जिन्हें उसने समाज को देने का प्रयत्न किया है। दूसरी बात यह है कि हमारा देश आदर्शवादी है, इसलिए साहित्य की भाँति नाटक की रचना सोद्देश्य होती है।[२] नाटक में कुछ शिक्षाएँ तो दूसरे पात्रों के मुख से साक्षात् प्रकट की गयी हैं। जैसे, पिता की आज्ञा ही नहीं, उनके संकेत का भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।[३] सद्गुण पुरुषों का बहुमत अलंकार है, इसलिए पुरुषों को अलंकृत बनने के लिए गुण प्राप्त करना चाहिए।[४] निर्दोष उक्ति, मत्सरहीन बुद्धिमत्ता, पापरहित नृपत्व, निर्दोष चारित्रिक अवस्था, ये भाग्यवान् को ही प्राप्त होती हैं।[५] इससे सिद्ध होता है कि कवि उपर्युक्त विशेषताओं के सहित उक्ति, बुद्धि-मत्ता तथा नृपत्व पाने की प्रेरणा कर रहा है। धार्मिक विचारों के प्रतिपादक वाक्यों का सर्वाधिक प्रयोग नाटकीय भाषा के अनुकूल भले ही न हो, किन्तु कवि का उद्देश्य धर्म के प्रति रुचि जाग्रत करना है। काव्य का एक उद्देश्य सरलता से चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ) की प्राप्ति भी माना गया है।[६] नाटक के भरत वाक्य में इसी का संकेत है। उसमें इतनी विशेषता अवश्य है कि प्रत्येक पुरुषार्थ के साथ

---

१. काव्य के रूप, पृ० ६

२. काव्य के रूप, पृ० २२२

३. पितुस्तु संकेतमलंघनीयम्, सुलोचना साप्यनुपालयन्ती, पृ० ७४।५

४. गुण एवाहार्यं भवति पूरुषाणां बहुमतम्। —पृ० ४५।१

५. पृ० ५०।१६

६. चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि
काव्यादेव यतस्तेन तत् स्वरूपं निगद्यते। (साहित्य दर्पण)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म का लगाव आवश्यक है। सबसे प्रथम धर्म का उल्लेख भी उसकी प्रधानता का सूचक है। प्राणियों में अचल धार्मिकता एवं निष्ठा होनी चाहिए, योग्य पात्रादि में दान देने की भावना से तथा अन्य आवश्यक खर्चों के हेतु नीति या धर्मपूर्वक ही अर्थ का अर्जन करना चाहिए। लोग अपनी कामवेदना शान्त करें, किन्तु उसका उद्देश्य सन्तान-प्राप्ति हो, एक मात्र विषय भोग नहीं और अन्तिम वाक्य यही है कि शुद्ध तथा नित्य मोक्षसुख के लिए प्रयत्न करना चाहिए।[1] प्रस्तुत नाटक का स्वयंवर काम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए है, जो धर्मपूर्वक है। एक स्त्री ने जब किसी एक वर का वरण कर लिया है, तब उसी स्त्री की इच्छा करने वाले को धिक्कारा गया है तथा उस अनैतिक वासना को भी धिक्कारा गया है।[2] और ऐसे व्यक्ति को बाँध कर इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है कि महान् व्यक्ति भी अनैतिक कामना को सफल नहीं कर सकता है। जयकुमार की वीरता अर्थप्राप्ति में सक्षम है। मनोरथ में आने वाली बाधा को हटा कर उसकी वीरता अर्थ की प्राप्ति कराती है। उसकी वीरता काम की बाधक नहीं, साधक है, क्योंकि युद्ध द्वारा जयकुमार काम की बाधक परिस्थितियों पर विजय पा लेते हैं। वह युद्ध भी धर्म-रहित नहीं है, क्योंकि अधर्म पर चलने वालों का बन्धन हुआ है। काम भी धर्महीन नहीं है, बल्कि स्वयंवर के पश्चात् धार्मिक विधिपूर्वक कौतुकबन्ध हो जाने पर ही काम का मार्ग खुलता है। इस प्रकार तीनों पुरुषार्थों को एक दूसरे से सापेक्ष बताया गया है। राम ने भी भरत को यही उपदेश दिया था कि अर्थ, धर्म और काम एक दूसरे के बाधक न बनें, बल्कि साधक हों।[3] बृहदारण्यक उपनिषद की पुत्रैषणा काम पुरुषार्थ की सूचक है, क्योंकि धर्म से ही लोक (गति) सुधरती है।[4] इन पुरुषार्थों के सम्बन्ध में अन्य साहित्यकारों का भी यही मत है।[5] पश्चिम के आलोचकों ने कवि कृतियों में कवि के व्यक्तित्व पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है और वे मानते हैं कि कवि जीवन की समस्याओं पर चिन्तन करते-करते जीवन के रहस्यों का उद्घाटन करने लगता है।[6] विक्रान्त-

---

१ भूयाद् भूतेषु धर्मप्रकृतिरसुवतां निष्प्रकम्पाऽनुकम्पा
धर्म्यं पात्रे विसृष्ट्यै व्ययनियतिवशादार्जयन्त्वर्थमार्याः
सन्तानस्थापनायै विदधतु गृहिणः कामखेदापनोदम्
चेष्टन्तां चात्मनीनाः निरुपधिशुचये मोक्षसौख्योदयाय। –पृ० १६२।५७

२. वीभत्सोपहतां धिगस्तु विषयोन्मुग्धाभिमां कामिताम्। –पृ० ७२।२

३. कच्चिदर्थेन धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः, उभौ वा प्रीतिसारेण न कामेन प्रबोधसे।
कच्चिदर्थं च धर्मं च कामं च वदतां वर, विभज्य काले कालज्ञः सर्वान् भरत सेवसे॥
(वाल्मीकीय रामायणम्, अयोध्याकाण्ड ११४।६४, ६४, पृ० ४३९)

४. या ह्येव पुत्रैषणा.......पाण्डित्य निर्विद्य तिष्ठासेत्। –बृहदारण्यकोपनिषत्,
अध्याय ३, ब्राह्मण ५, पृ० १४९

५. परस्पराविरोधेन त्रिवर्गो यदि सेव्यते, अनर्गलमतः सौख्यमपवर्गोऽप्यनुक्रमात्।
(क्षत्रचूडामणि, १।१६)

६. समीक्षाशास्त्र, पृ० २३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौरव में जीवन के इसी रहस्य का उद्घाटन किया है कि सोना आग में तपने पर विशेष चमकता है। युद्ध के प्रसंग में जब जयकुमार के हृदय का वासनात्मक रूप जल गया और यह स्पष्ट हो गया कि वह केवल कामी नहीं, शूरवीर भी है, तब काम पुरुषार्थ का वास्तविक प्रशस्त मार्ग प्राप्त हुआ तथा आवेश में आकर मन्त्री के समुचित उपदेश को ठुकरा देने वाले राजकुमार अर्ककीर्ति को युद्ध की पराजय द्वारा अपमान का घूंट पीना पड़ा। इस प्रकार अनुचित कार्य को करने वाला सदैव अपमान प्राप्त करता है। यही जीवन की शिक्षा है, यही जीवन का रहस्य है।

नाटक के कतिपय दोषों पर प्रासंगिक चर्चा कर ही दी है। इस नाटक में अनेक पारिभाषिक जैसे अर्थ विशेष के सूचक शब्दों का प्रयोग हुआ है। कुछ शब्दों का विवेचन विस्तार भय से त्यागना भी पड़ा। अन्य दोष जो देखा जा सकता है, वह यह कि विस्तृत तथा क्लिष्ट होने के कारण प्रेक्षकों के लिए योग्य नाटक नहीं है, जैसा कि प्रेक्षकों के लिए अपेक्षित गुण वाला नाटक होना चाहिए।[1] यद्यपि अधिक नाटकों के अभिनय सम्बन्धी दोष को देखकर कुछ विद्वानों ने अपनी आलोचना का ढंग बदलकर यों कहना उचित समझा कि संस्कृत नाटकों का अभिनय इतना सीमित हो गया है कि संस्कृत के दिग्गज विद्वान् अभिनय की विशेषताओं की उपेक्षा करते हुए ऐसे पाठ्य नाटक रचने लगे, जिनको एकान्त में पढ़कर काव्य जैसा आनन्द लिया जा सकता है। डा० राघवन का मत है कि कुछ विद्वानों के इस प्रकार के नाटकों का केवल गायन होता था, अभिनय नहीं। यदि पाठ्य नाटकों को नाटक की श्रेणी से बहिष्कृत करें, तो अभिनय की पूर्ण क्षमता न रखने वाले संस्कृत के बहुत से नाटक, नाटक या साहित्य की कोटि से बहिष्कृत हो जायँ।

भरत के अनुसार अभिनय का अर्थ है, पात्रों द्वारा कवि का तात्पर्य दर्शकों तक पहुँचा देना। कुशल अभिनेता, सात्विक, वाचिक, आहार्यादि अभिनयों द्वारा या नृत्य संगीतादि के माध्यम से कवि का विचार दर्शकों तक मनोरंजक रीति से पहुँचाता है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता है, तो यह अभिनेता का दोष है, कवि का नहीं। इसलिए अभिनय की कला विकसित करनी चाहिए। यन्त्रों के आविष्कार के कारण अभिनय कला तथा उसके साधनों का ज्यों-ज्यों विकास होगा, त्यों-त्यों पाठ्य नाटक प्रेक्ष्य बनते जायेंगे।[2] यह कथन विक्रान्त-कौरव नाटक पर भी चरितार्थ होता है।

---

१. मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनम्
   भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्। (नाट्यशास्त्र)

२. सम्मेलन पत्रिका, (त्रैमासिक), भाग ४२, संख्या ४, सं० २०१३, पृ० ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अध्याय

अञ्जना-पवनञ्जय नाटक की समीक्षा

कथासार

प्रथम अंक में विष्कम्भक द्वारा सूचना मिलती है कि दन्ति पर्वत के निवासी राजा महेन्द्र ने अपनी पुत्री अञ्जना के स्वयवंर में निमन्त्रित राजकुमारों के स्वागत तथा नगर सजावट के हेतु अपने ज्येष्ठ पुत्र अरिन्दम को नियुक्त किया है। अनेक राजकुमार स्वयंवर के हेतु आये हुए हैं, उनमें हिरण्यप्रभ का पुत्र विद्युत्प्रभ, रावण का पुत्र मेघनाद और राजर्षि प्रह्लाद का पुत्र पवनञ्जय मुख्य हैं।

पवनञ्जय अपने सखा (विदूषक) प्रहसित के साथ महेन्द्रपुर के प्रमदवन नामक उद्यान में प्रवेश करते हैं, जहाँ वसन्त ऋतु के कारण मनोरम सौन्दर्य है।

पवनञ्जय नवमालिका द्वारा तमालवर के वरण का संकेत कर अपने वरण की आकांक्षा व्यञ्जित करते हैं। विदूषक इसी वात का समर्थन करता है कि इसके पूर्व विजयार्घ पर्वत के सिद्ध कूटायतन में पुष्पों का चयन करती हुई अञ्जना आपके द्वारा देखी जा चुकी है, उस समय आपको देखकर अञ्जना का भी धैर्य नष्ट हो गया था और उसके हाथ से फूलों की अञ्जलि बिखर गयी थी।

इसके पश्चात् मधुकरिका और मालतिका, दो दासियाँ आती हैं, जिनमें से मालतिका को आगामी दिन होने वाले स्वयंवर के लिए औषधिमाला के गुम्फन का कार्य अञ्जना की माता मनोवेगा के द्वारा सौंपा गया है। उसी निमित्त मंगल पुष्पों का चयन करने उद्यान में गयी है। मालतिका पुष्प चयन के हेतु चली जाती है और मधुकरिका अंजना के पास केलीवन में जाती है। इसके पीछे-पीछे चुपचाप पवनञ्जय और विदूषक भी केलीवन में चले जाते हैं।

केलीवन में अञ्जना अपनी सखी वसन्तमाला से कुछ सुनाने के लिए कहती है। तब अवसर पाकर वसन्तमाला अञ्जना के अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए पवनञ्जय तथा अञ्जना का परिचय एक निरपेक्ष की तरह देकर दोनों के परस्पर दर्शन की घटना का उल्लेख कर देती है और 'इसके पश्चात् तुम्हीं जानती हो' कहकर शान्त हो जाती है।

मधुकरिका अञ्जना और वसन्तमाला के पास पहुँचकर स्वयंवर के लिए समागत कुछ राजाओं को सूचना देती है और अञ्जना से पूछ बैठती है कि सभी राजकुमार तुमने चित्र में देख लिये हैं, तुम्हारा हृदय किस सौभाग्यशाली के प्रति उत्कण्ठित है? पवनञ्जय और विदूषक दोनों छिपकर इस बातचीत को सुन रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके बाद मधुकरिका मिश्रकेशी का, वसन्तमाला राजकुमारी अञ्जना का अभिनय करके कृत्रिम स्वयंवर का रूप उपस्थित करती हैं; उसमें पवनञ्जय का अभिनय अञ्जना को तथा अन्य राजकुमारों की कल्पना शालमंजिकाओं में कर ली जाती है और इस कृत्रिम स्वयंवर में अञ्जना का अभिनय करने वाली वसन्तमाला पवनञ्जय का अभिनय करने वाली अञ्जना के गले में मुक्तमाला डाल देती है, जिसे औषधिमाला मान लिया गया था। इस प्रकार स्वयंवर के निर्णय की सूचना प्राप्त हो जाती है।

इसके बाद पवनञ्जय अवसर पाकर सामने पहुँच जाते हैं और अञ्जना का हाथ पकड़ लेते हैं। इसी बीच अञ्जना को वैवाहिक प्रसाधन तथा समय पर स्नान के लिए बुला लिया जाता है। पवनञ्जय और विदूषक भी भोजन करने चले जाते हैं।

द्वितीय अंक—पहले अंक में और दूसरे अंक में कुछ दिनों का अन्तर है। स्वयंवर के पश्चात् अञ्जना की विदा हो जाती है। अञ्जना ससुराल आदित्यपुर पहुँच जाती है। साथ में उसकी हृदयनिर्विशेषा सखी वसन्तमाला भी गयी है। इतनी घटना पाठक अपने आप समझ जाते हैं। दूसरे अङ्क में वसन्तमाला के मुख से यह सूचना मिलती है कि राजा प्रह्लाद की राजधानी आदित्यपुर विद्याधर लोक का अलङ्कार है और स्वयंवर में किसी प्रकार की कलह का प्रसंग नहीं आया था। प्रवेशक में यह भी सूचना मिलती है कि प्रमदवन के बकुलोद्यान में पवनञ्जय और अञ्जना का प्रथम समागम होगा; उसके लिए उद्यान की शोभा सेवकों द्वारा बढ़ायी जा रही है।

पवनञ्जय बड़े सबेरे ही प्रमदवन में पहले से पहुँचकर अञ्जना की प्रतीक्षा करने लगते हैं। वहाँ वसन्तमाला अञ्जना को लेकर पहुँचती है। अंजना के प्रमदवन में पहुँचने पर सभी बकुलोद्यान में पहुँचते हैं और बकुलोद्यान में जो चित्र-मण्डप था, उसमें दोनों की शय्या बिछी हुई थी, वहीं सभी पहुँच जाते हैं। फिर विदूषक और वसन्तमाला बहाना लेकर वहाँ से चले जाते हैं।

थोड़े ही समय बाद भेरी की आवाज से ज्ञात होता है कि पवनंजय के पिता प्रह्लाद ने वरुण पर आक्रमण करने हेतु प्रस्थान-कालीन वाद्य बजवाया है। इसी के बाद प्रतीहारी वैजयन्ती आर्य विजय शर्मा मन्त्री के आगमन की सूचना देती है। मन्त्री एकान्त में पवनञ्जय को बताते हैं कि त्रिकूट पर्वत पर लंका नगरी में रहने वाले रावण की शत्रुता पश्चिम समुद्र के पातालपुर में रहने वाले वरुण के साथ है। रावण ने वरुण के प्रति संग्राम किया, जिसमें वरुण के द्वारा रावण के पक्ष के खर-दूषण आदि बन्दी बना लिये गये। रावण ने खर दूषण के मुक्त कराने हेतु प्रह्लाद से सहायता की याचना दूत द्वारा की है; इसीलिए प्रार्थना को स्वीकार कर राजकुमार पवनञ्जय को राजशासन का कार्य सौंपकर युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहे हैं।

पवनञ्जय का यह निश्चय है कि मैं युद्ध में विजय कराने में समर्थ रहूँगा, फिर पिताजी को क्यों कष्ट उठाना पड़े। मंत्री के कहने पर पवनञ्जय इस बात पर सहमत हो जाते हैं कि पिताजी की सम्मति के अनुसार यह कार्य होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अंक—वरुण के विरुद्ध संग्राम करने के लिए पवनञ्जय सेनापति मुद्गर के साथ चले जाते हैं। वरुण ने अपने युद्ध का कार्यभार अपने राजीव आदि सौ पुत्रों पर सौंप दिया है। पवनंजय को युद्ध करते-करते चार माह व्यतीत हो गये हैं। पवनञ्जय इसलिए भी सावधानी से युद्ध कर रहे हैं कि वरुण का मान भंग न हो जाय, अन्यथा खर दुषण के जीवन पर संकट आ जाय।

एक दिन सन्ध्या को पवनञ्जय समुद्र के किनारे चन्द्रोदय की शोभा देख रहे हैं। इस समय के मनमोहक वातावरण को देखने के हेतु पवनञ्जय कुमुदती नदी के किनारे अपने प्रिय विदूषक प्रहसित के साथ चले जाते हैं। वहाँ अपने सहचर का अन्वेषण करती हुई विरहविधुरा चक्रवाकी को देखकर पवनंजय को अंजना की विरह दशा का स्मरण आता है। अत्यन्त उत्कण्ठित हो जाने पर विदूषक समझाता है, किन्तु कामोन्माद में पवनंजय कुछ नहीं सुनते हैं। चित्रफलक मंगवा कर अंजना को चित्रित रूप में देखना चाहते हैं, किन्तु उनका विरह-सन्तप्त हाथ कम्पित हो जाता है; फलस्वरूप चित्र बनाकर भी अञ्जना-दर्शन की उत्कण्ठा पूरी नहीं कर पाते। अन्य शीतलोपचार के साधन जुटाये जाते हैं, किन्तु पवनञ्जय को शान्ति नहीं मिलती है।

विचार-विमर्श के पश्चात् यह निश्चय करते हैं कि विमान पर चढ़कर अञ्जना के पास पहुँच कर उससे मिलकर पुनः सूर्योदय के पूर्व वापस आ जायँ।

रात्रि भर विश्राम का बहाना लेकर विमान द्वारा अंजना के पास पहुँचते हैं। उधर वसन्तमाला द्वारा अञ्जना का भी शीतलोपचार किया जा रहा था, पर वह सब व्यर्थ था। इतने में पवनंजय पहुँच जाते हैं।

चतुर्थ अंक – पवनंजय उसी रात के बाद सबेरा होने के पूर्व अंजना से मिल कर संग्राम के लिए विदा हो जाते हैं। यह वृत्तान्त अंजना की सखी वसन्तमाला को छोड़कर किसी को भी विदित नहीं होता है कि पवनंजय अंजना से मिलकर चले गये हैं। पवनंजय इस बार जाते समय यह कह गये थे कि चार माह बाद युद्ध समाप्त करके मैं लौट आऊँगा, किन्तु चार माह बाद उनका आना सम्भव न हो सका।

अंजना के अब गर्भ के चिह्न प्रकट होने लगे हैं; इसी शुभ सन्देश को सुनाने के हेतु वसन्तमाला अंजना की सास केतुमती के पास जाना चाहती है कि उधर से केतुमति की दासी युक्तिमती अंजना की अस्वस्थता के समाचार जानने के लिए आती है। वसन्तमाला और युक्तिमती की परस्पर बातचीत होती है, तब वसन्तमाला गर्भ का औचित्य सिद्ध करने के लिए युक्तिमती से पवनंजय के चार मास पूर्व आकर चले जाने की बात बता देती है। केतुमती पवनंजय के आने का विश्वास न करके अंजना को शराबी क्रूर भैरव के द्वारा निर्वासित करा देती है और उसके पिता राजा महेन्द्र के यहाँ भिजवा देती है, किन्तु अंजना को जो लान्छन लगा कर भेजा था, उस स्थिति में वह पीहर न जाकर मार्ग में भूधरवाट वीथि में उतर जाती है। क्रूर भैरव से कह देती है कि तुम कह देना हम महेन्द्रपुर में छोड़ आये हैं और हम वहाँ चले जायेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम अंक—अंजना को वन में छोड़ दिये जाने पर वहाँ यह अपनी सखी के साथ मातंगमालिनी वन में प्रविष्ट होती है। वहाँ कोई निवास योग्य स्थान खोजते समय इन्हें एक अमितगति नामक जैन साधु के दर्शन होते हैं। उन्होंने अंजना को बताया कि तुम्हारे पूर्व जन्म के कर्म के कारण इतने दिन तक पति-विरह तथा अन्य आपत्तियाँ उठानी पड़ी हैं, अब वह तुम्हारा समय पूरा हो चुका है। शीघ्र ही सौभाग्यशाली पुत्र का प्रसव करोगी एवं कुछ समय बाद पति पवनंजय से भेंट होगी। गुहा में दोनों रहने लगीं। एक दिन एक सिंह उनके सामने आता है, दोनों भयभीत हो जाती हैं और उनकी चिल्लाहट को सुन कर गन्धर्वराज मणिचूड़ अपनी पत्नी के कहने से रक्षार्थ आ जाता है। उसके कुछ समय बाद वहीं हनुमान को अंजना जन्म देती है। उसी समय अंजना के मामा प्रतिसूर्य वहाँ से विमान द्वारा जा रहे थे; अंजना की सखी वसन्तमाला का विलाप सुन कर प्रतिसूर्य विमान से उतर कर अंजना, वसन्तमाला और हनुमान को अपने साथ अनुरुह द्वीप ले जाते हैं, जहाँ हनुमान का लालन पालन तथा संस्कारादि कार्य करते हैं। हनुमान को जब विमान पर चढ़ाया था, उस समय हाथ से छूट जाने पर भी हनुमान को कोई क्षति नहीं हुई थी, बल्कि जिस पत्थर पर वे गिरे थे, उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे।

पंचम अंक के विष्कम्भक से पता चलता है कि पवनंजय ने अपने कालमेघ हाथी पर सवारी करके वरुण के हजारों व्यूहों को भेद डाला है और वरुण के पुत्र डरकर भाग खड़े हुए हैं। तब वरुण गन्धहस्ती पर सवार होकर पवनंजय से लड़ रहा है। पवनंजय के पराक्रम से प्रसन्न होकर वरुण ने युद्ध रोक दिया है और दोनों की मित्रता हो गयी। खर दूषण आदि मुक्त कर दिये गये। वरुण ने पवनंजय को सत्कार में अनन्त महामूल्य रत्न भी उपहार में दिये।

पवनंजय रथ पर आरूढ होकर वेग से अपने नगर पहुँचते हैं। पहले से दूतों द्वारा समाचार पहुँच जाने के कारण केतुमती द्वारा युक्तिमती मंगलकार्य के लिए नियुक्त की गयी है। उसी स्वागत संभाषण के बीच पवनंजय को पता लगता है कि अंजना गर्भवती थी और वसन्तमाला के साथ महेन्द्रपुर गयी हुई है। सहसा पवनंजय यह कहकर महेन्द्रपुर को चल देते हैं कि मैं प्रिया अंजना के साथ अभी आता हूं। तभी माता-पिता के दर्शन करेंगे, सेनापति आदि सब प्रतीक्षा करें। कालमेघ पर सवारी कर चल देते हैं। मार्ग में थककर भूधरवाट वीथि में सरोवण सरसी पर विश्राम हेतु उतर जाते हैं। एक सल्लकी वृक्ष के नीचे से वे विश्राम करते हुए अंजना के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे कि अंजना महेन्द्रपुर में होगी या नहीं? इसी बीच वनचरी के साथ वनचर वहीं उपस्थित होता है। इन दोनों को देखकर वनचरी को पहिले ठहरी हुई अंजना और वसन्तमाला की स्मृति आ जाती है। उसके सम्बन्ध की चर्चा पवनंजय और विदूषक सुनते हैं, जिससे वे इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि अंजना वसन्तमाला के साथ यहाँ से मातंगमालिनी नामक सघन वन में प्रविष्ट हुई थी।

पवनंजय विदूषक को विजयार्ध पर्वत पर सभी विद्याधरों को लेने भेजते हैं और कहते हैं कि तुम सभी विद्याधरों के साथ आकर अञ्जना का अन्वेषण कराना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं यहीं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। विदूषक के चले जाने पर पवनंजय एकाकी मातंग-मालिनी वन में प्रविष्ट हो जाते हैं।

षष्ठ अंक—पवनंजय उन्मत्त की तरह वन में अंजना को खोजते फिरते हैं। वे अशोक, बकुल वृक्षों से, चमरी से उसका पता पूछने लगते हैं। उन्हें अब चेतन अचेतन का कोई ध्यान नहीं रहता है। पक्षियों से भी अंजना का समाचार पूछते हैं। वे थककर एक चन्दन के वृक्ष से टिक कर विश्राम करने लगते हैं।

इधर प्रह्लाद का समाचार पाकर प्रतिसूर्य भी पवनजय का अन्वेषण करते-करते वहीं पहुँच जाते हैं। प्रतिसूर्य पवनंजय की यह अत्यन्त दुरवस्था देखते हैं, और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यहाँ अंजना को लाना ही श्रेयस्कर होगा। प्रतिसूर्य की सूचना पाकर अंजना भी वहीं पवनंजय के समीप पहुँच जाती है।

सप्तम अंक—आदित्यपुर में पवनंजय के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही है। अनुरुह द्वीप से मामा प्रतिसूर्य हनुमान को लेकर आ गये हैं। हनुमान आकर सबको यथोचित नमस्कार करते हैं। इसी समय प्रतिसूर्य अंजना की मातंगमालिनी की घटना का समाचार सुनाते हैं। इसके अनन्तर मणिचूड़ गन्धर्व उपस्थित होकर खुशखबरी सुनाता है कि मित्रता के कारण वरुण ने और उपकार से प्रेरित होकर रावण ने यौवराज्याभिषेक के अवसर पर पवनंजय को विजयार्घ राज्य की लक्ष्मी के प्रदान करने का निश्चय किया है।

इस प्रकार अन्त में भरत वाक्य के साथ सुखद वातावरण में नाटक समाप्त हो जाता है।

वस्तु तत्व

अधिकारिक कथावस्तु—पुत्र सहित पत्नी अंजना को प्राप्त होना नाटक का प्रमुख फल है। उस फल के अधिकारी पवनंजय हैं, जिन्हें फल की प्राप्ति हुई है।[1] इसलिए फलभोक्ता पवनंजय की कथा अधिकारिक कथा है।

प्रासंगिक कथावस्तु :

पताका—प्रासंगिक कथा के पताका और प्रकरी, दो भेद होते हैं। उनमें से अंजना-पवनंजय नाटक में अंजना के मामा प्रतिसूर्य की कथा तथा मणिचूड़ गन्धर्व की कथा छठवें तथा सातवें—दो अंकों में निर्दिष्ट होने से सानुबन्ध है। उनमें मणिचूड़ गन्धर्व वन में प्रसव काल में अंजना की रक्षा द्वारा नायक की फल-प्राप्ति में सहायक होता है तथा नाटक के अन्त में विद्याधर राज्य की लक्ष्मी भी पवनंजय से स्वीकार करने का अनुरोध करके दूसरे फल को भी प्राप्त कराने में सहायक बनता है। अंजना के मामा प्रतिसूर्य ने प्रसूति के पश्चात् अंजना तथा पुत्र हनुमान को अपने घर लाकर उनको सकुशल रखा और पवनंजय का अन्वेषण कर

---

१. ११८।१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें अंजना से मिलाया, अतएव उनका भी नायक को पुत्र सहित अंजना की प्राप्ति कराने में सहयोग है। एक नाटक में दो पताकाओं के होने में कोई विरोध भी नहीं है।[1] नाटक के अन्त में पवनंजय ने पुत्र सहित पत्नी तथा विद्याधर राज्य की लक्ष्मी की प्राप्ति का श्रेय मणिचूड़ गन्धर्व की अनुकूलता को दिया है; इसलिए भी उसे पताका-नायक तथा पवनञ्जय के द्वारा अनुग्रह स्वीकार करना उसका फल माना जा सकता है। प्रतिसूर्य मामा का उपकार भी पवनञ्जय ने षष्ठ अंक के अन्त में स्वीकार किया है तथा हनुमान की रक्षा द्वारा नमि वंश के स्थितिकरण का श्रेय प्रतिसूर्य को दिया गया है।[2] इस तरह दोनों से सम्बन्धित कथाएँ पताकाएँ मानी जा सकती हैं।

प्रकरी—पञ्चम अंक के वनेचर चमूरक तथा उसकी प्रिया लवंगिका सम्बन्धी कथावस्तु प्रकरी है। यह अवान्तर कथावस्तु थोड़ी दूर जाकर समाप्त हो जाती है। अंजना तथा उसकी सखी वसन्तमाला के उस मातंगमालिनी वन में प्रवेश तथा स्थिति आदि की सूचना नायक पवनञ्जय को इसी वनेचर चमूरक से प्राप्त होती है। इस प्रकार यह वनेचरों की प्रकरी रूप कथा नायक की फल-प्राप्ति की सहायिका भी है।

अर्थ प्रकृतियाँ—दशरूपक के अनुसार प्रयोजन सिद्धि को अर्थ-प्रकृति कहते हैं। ये पाँच होती हैं। बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। इनमें से पताका और प्रकरी को प्रासंगिक कथा का उल्लेख करते हुए ऊपर बताया गया है।

बीज—नाटक के मुख्य कार्य का वह हेतु बीज कहलाता है, जो अल्प रूप में उद्दिष्ट होता है तथा आगे अनेक रूपों में विस्तृत होता है।[3] पवनंजय को अंजना की स्थायी रूप से प्राप्ति तथा हनुमान नामक पुत्र की प्राप्ति ही प्रमुख प्रयोजन है। उसके हेतु रूप में अंजना तथा पवनञ्जय का अनुराग का अंकुर प्रथम अंक के आरम्भ में दिखाई देता है। अञ्जना के स्वयंवर के लिए पवनंजय भी आये हुए हैं। महेन्द्रपुर के उद्यान में पवनञ्जय तथा विदूषक की बातचीत से उस बीज का उद्घाटन हुआ है। विदूषक के कथन से विदित होता है कि इस स्वयंवरोत्सव के निर्धारण के पूर्व भी विजयार्ध पर्वत पर सिद्धायतन में एक बार पुष्प चयन करती हुई अंजना को पवनंजय ने देखा था, अंजना की उत्कण्ठा राजा के प्रति जाग्रत हुई थी, जिसके कारण उसके हाथ से पुष्पांजलि भी गिर गयी थी। दूसरी ओर पवनञ्जय के कथन से ज्ञात होता है कि पवनंजय भी अंजना की पुष्प बिखेरने की चेष्टा के समय उसके प्रति अत्यन्त उत्सुक थे, क्योंकि पवनंजय कहते हैं कि प्रिया के करपल्लव से जो पुष्प बिखर गये थे, कामदेव उन्हीं पुष्पों के सफल बाण बनाकर अब भी मेरे ऊपर प्रहार कर रहा है। इसके साथ ही वे अंजना को बिहार करती हुई देखने के लिए उत्सुक हो जाते हैं।[4] स्वयंवर के एक दिन पूर्व जब अंजना मधुकरिका के मुख से यह

१. इसी प्रबन्ध में सुभद्रा नाटिका का वस्तु-विवेचन अध्याय।
२. १०४।५८
३. दशरूपक १।१७
४. ७७ और ७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनती है कि पवनंजय, विद्युत्प्रभ, मेघनाद इत्यादि राजकुमार आये हुए हैं, तब पवनंजय के नाम को सुन कर मन में उसके आने से प्रसन्न होती है और लज्जा का अनुभव करती है। इस प्रकार परस्पर का पूर्वानुराग बीज रूप में प्रथम अंक के प्रारम्भ में उपन्यस्त है। मधुकरिका और वसन्तमाला के द्वारा किया गया कृतक स्वयंवर भी उसी बीज का अभिव्यंजक है, जिसमें अंजना द्वारा पवनंजय के चुने जाने की सूचना है।

यह बीज नामक अर्थ-प्रकृति दूसरे अंक में उस घटना तक चलती है, जबकि पवनंजय और अंजना बकुलोद्यान में विवाह के बाद प्रथम वार मिलते हैं। यद्यपि यह मिलन क्षणिक है, जो स्थायी मिलन के लिए भूमिका के रूप में है। इस मिलन के समय पवनंजय को पिताजी के ससैन्य प्रस्थान की सूचक भेरी की ध्वनि सुनाई देती है तथा अमात्य विजयशर्मा के आगमन और युद्ध में जाने के निश्चय आदि से अंजना पवनंजय एक दूसरे से वियुक्त हो जाते हैं। यहाँ से दोनों के मिलन की कथा विच्छिन्न हो जाती है।

बिन्दु :—दूसरी कथा से मूल कथा के विच्छिन्न हो जाने पर उसको पुनः सम्बद्ध करने वाले निमित्त को बिन्दु कहा जाता है।[1] प्रस्तुत नाटक में पवनंजय के वरुण के विरुद्ध युद्ध में व्यस्त हो जाने से अंजना से मिलन की कथा विच्छिन्न हो जाती है। तृतीय अंक में चार मास तक युद्ध करने के पश्चात् एक दिन सन्ध्या के समय जब पवनंजय समुद्र के किनारे प्राकृतिक दृश्य का आनन्द ले रहे थे, तभी विरह-विधुरा चक्रवाकी को देखने से उन्हें अपनी विरह-विधुरा अंजना की स्मृति आ जाती है और अंजना के दर्शन की उत्कण्ठा शान्त करने के लिए चित्र-लेखन का उपाय करते हैं, फिर अंजना से मिलने के लिए आदित्यपुर चले जाते हैं। इस तरह समुद्र के किनारे चक्रवाकी के दर्शन की घटना बिन्दु के रूप में उपन्यस्त है, क्योंकि विच्छिन्न कथा को मुख्य प्रयोजन की कथा से सम्बद्ध कर देती है। पवनंजय का अंजना के साथ होने वाला यह समागम ही नाटक के अन्त में पुत्र सहित अंजना की प्राप्ति का कारण है।

कार्य :—पवनंजय को पुत्र सहित अंजना की प्राप्ति इस नाटक का कार्य है।

अवस्थाएँ :—अर्थ प्रकृतियों की भाँति नाटक में पाँच अवस्थाएँ होती हैं। नायक की फल-प्राप्ति के सम्बन्ध में जो मनोदशा होती है, ये अवस्थाएँ उसी की सूचक हैं। भारतीय नाटकों को आदर्शपूर्ण बनाने की परम्परा है, क्योंकि भारतवासी सत्कर्म में विश्वास करते हैं, इसलिए सत्कर्म करने वाला नेता अन्त में फल की प्राप्ति का अधिकारी होता है। इस आदर्शवादिता के कारण दर्शक और पाठकों को नाटक से व्यंजना वृत्ति द्वारा यही शिक्षा दी जाती है कि व्यक्तियों को कष्ट आने पर भी सन्मार्ग नहीं त्यागना चाहिए तथा सुख पाने के लिए कुमार्ग का अवलम्बन नहीं लेना चाहिए। आदर्श तथा सिद्धान्तों की रक्षा के लिए हँसते-हँसते कष्टों तथा

---

१. दशरूपक १।१७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाधाओं का सामना करना चाहिए। इसीलिए संस्कृत के नाटकों में एक ओर अन्त में फलागम की अवस्था होती है। उसी लक्ष्य की ओर नायक का प्रयत्न तथा कथावस्तु का विकास होता है।

प्रारम्भ :– पाँच अवस्थाओं में प्रथम अवस्था का नाम आरम्भ या प्रारंभ है। नायक के फल को लक्ष्य करके नायक की उत्सुकता का वर्णन प्रारम्भ अवस्था कहलाती है। अंजना-पवनंजय नाटक में नायक पवनंजय को पुत्र सहित अंजना की प्राप्ति होना प्रमुख फल है। उसकी प्राप्ति के लिए पवनंजय की उत्सुकता अंजना प्राप्ति के लिए प्रथम अंक में व्यक्त की गयी है। यह उत्सुकता अंजना को विवाह या स्वयंवर द्वारा प्राप्त करने पर ही उचित मानी गयी है, क्योंकि भारतीय (धार्मिक) संस्कृति में इस प्रकार विधिपूर्वक होने वाला मिलन ही आदर्श मिलन है। प्रथम अंक में पवनंजय विदूषक से कहते हैं कि क्या ही अच्छा हो कि हंसगमना वह अंजना क्रीड़ापूर्वक विहार करती हुई इन दोनों उत्सुक नेत्रों को उत्सव प्रदान करे।[1] इस प्रकार आरम्भ अवस्था का प्रारम्भ प्रथम अंक के ७वें श्लोक से लेकर तीसरे अंक ४३वें श्लोक तक समझना चाहिए; क्योंकि दूसरे अङ्क में बकुलोद्यान में पवनंजय अंजना से मिलने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हैं। कामदेव कामी लोगों के हृदय में सहस्र उत्कण्ठाओं से निर्मित सोपान के ऊपर आरोहण कर रहा है।[2] यह पवनंजय का कथन उनकी उत्सुकता का व्यंजक है। यह मिलन सम्बन्धी उत्कण्ठा शान्त नहीं होती है और उन्हें युद्ध में जाना पड़ता है। तृतीय अंक में विरह-विधुरा चक्रवाकी की दीन दशा देखने से पवनंजय की उत्कण्ठा अंजना की विधुरा अवस्था का अनुमान कर जाग्रत हो जाती है। वे तृतीय अंक में उत्कंठापूर्वक कह उठते हैं कि उस विरहविधुरा अंजना का मुखकमल कब देखूँगा? विदूषक कहता है कि यह उत्कण्ठा के लिए अनुकूल अवसर नहीं है।[3]

यत्न :—नायक के द्वारा फल-प्राप्ति के लिए की जाने वाली चेष्टा प्रयत्न नामक अवस्था कहलाती है। तृतीय अंक में पवनंजय के अधिक उत्कण्ठित होने पर, पवनंजय अपने मित्र विदूषक से चित्रफलक लाने को कहते हैं। इस प्रकार यहाँ से यत्न नामक अवस्था का आरम्भ है, क्योंकि पवनंजय चित्रगत प्रिया को ही देखने की चेष्टा करते हैं।[4] यह यत्न नामक अवस्था तीसरे अंक के अन्त तक चलती है, क्योंकि वे बहाना लेकर विमान द्वारा अंजना-मिलन के लिए संग्रामभूमि से चल देते हैं और अंजना के पास पहुँचते हैं।

प्राप्त्याशा :—उपाय तथा उपाय के कारण फलप्राप्ति में सन्देह होने की अवस्था को प्राप्त्याशा कहा जाता है। अंजना-पवनंजय नाटक में चतुर्थ अंक से प्राप्त्याशा नामक अवस्था का आरम्भ होता है, क्योंकि संग्राम से आकर एक रात

१. पृ० ७।८
२. पृ० २७ का गद्य
३. पृ० ४३।१० तथा गद्य
४. पृ० ४३ गद्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंजना से मिल कर पवनंजय यह विश्वास दे गये थे कि मैं चार मास में युद्ध कार्य से वापिस आ जाऊँगा, इससे यह आशा थी कि पवनंजय का अंजना से चार मास बाद स्थायी मिलन हो जायगा; किन्तु पाठकों को चतुर्थ अंक के आरम्भ में विदित होता है कि पवनंजय नियत समय पर नहीं लौट सके हैं; इधर अंजना गर्भवती है, चार मास हो जाने से उसके गर्भ के चिह्न प्रकट हो रहे हैं। सासु केतुमती को यह शंका हो गयी है कि पवनंजय तो आठ मास से युद्ध में गये हुए हैं, अंजना का गर्भ पर-पुरुष के समागम से होना चाहिए। इस प्रकार पवनंजय का युद्ध के बीच से चार मास बाद आकर एकान्त समागम अंजना की विपत्ति का कारण बन जाता है। उसे पीहर भेजा जाता है, किन्तु एक कुलीना नारी अपने प्रति कलंक की संभावना मात्र से किसी परिचित को भी अपना मुख नहीं दिखा सकती है। फलतः अंजना मातंगमालिनी वन में चली जाती है। उसका ऐसे बीहड़ वन में प्रविष्ट हो जाना पवनंजय के मिलन के संबंध में पाठकों के हृदय में अनिश्चय पैदा कर देता है, जिस वन में हिंसक पशु विचरण करते रहते हैं। फिर सकुशल प्रसूति के बिना पुत्र सहित अंजना की प्राप्ति और भी कठिन है। इस प्रकार यह प्राप्त्याशा नामक अवस्था है। यह प्राप्त्याशा नामक अवस्था पंचम अंक के २८वें श्लोक के पूर्व तक चलती है। पवनंजय संग्राम से लौटने के बाद सोचते हैं कि अब अंजना का समागम होगा; किन्तु उन्हें ज्ञात होता है कि उसे महेन्द्रपुर भेज दिया गया है। पवनंजय इस आकांक्षा से महेन्द्रपुर चल देते हैं कि वहाँ अंजना मिल जायगी, किन्तु मार्ग में विदूषक का यह तर्क पुनः न मिलने की शंका उपस्थित कर देता है कि यदि अंजना महेन्द्रपुर में होती तो अब तक उसकी प्रसूति का समाचार महेन्द्रपुर से आ जाता। सल्लकी वृक्ष के नीचे वनेचर और उसकी प्रिया के कथन से पवनंजय को अनुमान होता है कि अंजना वसन्तमाला के साथ मातंग-मालिनी वन में प्रविष्ट हुई है। इस प्रकार उसके अन्वेषण का एक मार्ग मिल जाता है तथा पंचम अंक में पवनंजय को यह विश्वास हो जाता है कि मेरे दर्शनों की अभिलाषा अंजना की जीवन के प्रति रुचि को हठात् बनाये रखेगी;[1] और इसलिए उसे प्राप्ति का विश्वास हो जाता है। यहाँ से नियताप्ति अवस्था का आरम्भ समझना चाहिए।

नियताप्ति :—फल की प्राप्ति का निश्चय हो जाना नियताप्ति है। जैसा कि प्राप्त्याशा अवस्था के सम्बन्ध में उल्लेख करते समय लिखा है कि वनेचर द्वारा अंजना के मातंगमालिनी वन में प्रवेश का पता लग जाने से अंजना की प्राप्ति का विश्वास हो जाता है। दूसरी ओर अंजना को भी इसी वन में दिव्यज्ञानी अमितगति नामक मुनिराज से ज्ञात हो गया था कि अंजना का पुत्र भी महान पुरुष होगा तथा अंजना की पवनंजय से भेंट होगी। इस प्रकार अंजना को तो मुनिराज पर पूर्ण श्रद्धा होने के कारण निश्चय था ही कि मुझे अपने प्रियतम मिलेंगे; इधर पवनंजय को षष्ठ अंक में अंजना का अन्वेषण करते समय तोते द्वारा वे दुहरायी गयी बातें सुनने को

---

१. कदाचिज्जीवेत् सा यदि तु विधिना, जीवितरुचिं
बलात् तस्या मन्ये नियमयति मद्दर्शनरतिः। (८५।२८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलती हैं जो वन में अंजना ने विरहकाल में अपनी सखि वसन्तमाला से कहीं थीं। इन निमित्तों से पवनंजय का अंजना-मिलन का विश्वास पुष्ट होता जाता है। यह नियताप्ति अवस्था षष्ठ अंक के उस स्थल तक चलती है, जब कि अंजना के मामा प्रतिसूर्य पवनंजय की स्थिति जानकर अंजना को पवनंजय के समीप पहुँचा देते हैं।

फलागम :—पूर्णफल की प्राप्ति को फलागम कहा जाता है। पवनंजय को छठवें अंक में अंजना की प्राप्ति तथा पुत्र के सम्बन्ध में कुशलता के समाचार ज्ञात हो जाने से यहां से फलागम नामक अवस्था का आरंभ हो जाता है तथा यह अवस्था नाटक के अन्त तक चलती है, जिसमें पवनंजय तथा अंजना अपने नगर आदित्यपुर पहुँच जाते हैं। वहां अभिषेक के अनन्तर उन्हें पुत्र हनुमान के आगमन से पुत्र की भी प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है।

सन्धियां—नाटक में कथा का फल की ओर विकास तथा बीच में बाधा आने से फल-प्राप्ति की ओर विकसित होने वाली कथा में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। अवरोध या द्वन्द्व उपस्थित होना ही नाटक का प्राण है। कभी कभी एक व्यक्ति विशेष की इच्छा जब घटनाओं या अड़चनों से टकरा जाती है, तब भी द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है और उसी से नाटक का जन्म होता है।[1] अनेक नाटकों में इस द्वन्द्वात्मक स्थिति को देखकर ही इस सिद्धान्त को स्थिर किया गया है। नाटकों में गर्भ-सन्धि की योजना इसी द्वन्द्व के आधार पर होती है। इसे ही पश्चिमी आलोचक आपद्काल (CRISIS) मानते हैं। आपद्काल या द्वन्द्व के क्रमशः दूर हटने से फल की ओर कथानक का क्रमशः अग्रसर होकर फल के शिखर पर पहुँचने का क्रम नाटक की कथावस्तु में होता है। इसी के आधार पर भारतीय नाट्य-शास्त्रियों ने नाटक को पांच सन्धियों में विभाजित किया है।

मुख सन्धि—यद्यपि क्रमशः एक एक अवस्था का एक एक अर्थ प्रकृति के साथ मिलन ही मुखादि सन्धियां हैं, ऐसा नाट्य शास्त्री मानते हैं;[2] किन्तु ऐसा मानने से कुछ नाटकों में संगति नहीं बैठती है। ऐसा भी देखा जाता है कि कभी कभी दूसरी प्रकृति या अवस्था आरंभ होने के पूर्व ही प्रतिमुख सन्धि आरंभ हो जाती है तथा कभी मुख सन्धि दूसरी अर्थ प्रकृति और अवस्था तक चली जाती है। अतएव इनका मिश्रण सन्धि का निर्माण करता है, ऐसा मानना ग्राह्य नहीं है। इसी प्रकार पताका तथा प्रकरी अवस्थाओं में भी संधियों का व्युत्क्रम देखा जाता है।

नाना अर्थ और रस को उत्पन्न करने वाली बीज की उत्पति को मुख सन्धि कहा जाता है। प्रस्तुत नाटक में प्रथम अंक में मुख सन्धि का रूप है। प्रारंभ से ही पवनंजय तथा अंजना के परस्पर अनुराग की व्यंजना, उनके साथ के विदूषक तथा सखी वसन्तमाला की बातचीत से होती है। कृत्रिम स्वयंवर उस बीज को पुष्ट कर देता है तथा दर्शकों में नया कौतुक प्रकट करता है, क्योंकि यह अभिनय का ही अभिनय है।

---

१. नाटक की परख, पृ० २१

२. दशरूपक १।२२-२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें काम पुरुषार्थ का हेतु स्वयंवर तथा विवाह इसी अंक में पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार सामाजिक स्वीकृति काम पुरुषार्थ के हेतु रूप में प्रथम अंक में सम्पन्न हो जाती है।

प्रतिमुख सन्धि—इस सन्धि में बीज कुछ लक्षित तथा कुछ अलक्षित रहता है। यह सन्धि दूसरे अंक से आरम्भ होकर तृतीय अंक के अन्त तक चलती है तथा उसकी कुछ व्यंजना चतुर्थ के आरम्भ तक मिलती है। प्रथम अंक में बीज की उत्पत्ति रूप अंजना-पवनंजय का जो स्वयंवर के माध्यम से वैवाहिक सम्बन्ध हो गया था। दूसरे अंक में बकुलोद्यान में दोनों को मिलन का अवसर प्राप्त होता है, जिससे बीज लक्षित होता है, किन्तु उस मिलन के पूर्ण हुए विना ही युद्ध के लिए प्रस्थान कर देने के कारण पुनः वह मिलन विछिन्न हो जाने से बीज अलक्ष्य बन जाता है। तृतीय अंक में विरहविधुरा चक्रवाकी के दर्शन से अंजना को स्मरण कर लेने से पुनः मिलन का अवसर निकल आने के कारण फिर बीज का उद्घाटन होता है और चतुर्थ अंक के आरम्भ के इतिवृत्त से पाठकों को यह ध्वनित हो जाता है कि पवनंजय अंजना से एक रात मिलकर पुन युद्ध में वापस चले गये हैं तथा उन्हें गये हुए चार मास व्यतीत हो चुके हैं। इस प्रकार पुनः बीज अलक्ष्य हो जाने से यहाँ तक प्रतिमुख सन्धि माननी चाहिए।

गर्भ सन्धि—गर्भ सन्धि में बीज दृष्ट तथा नष्ट होता हुआ या लाभ अलाभ, दोनों की आशा दिखाई देती है। इसमें विघ्न के कारण फलप्राप्ति अत्यन्त सन्दिग्ध हो जाती है। चार मास बाद युद्ध समाप्त कर वापस आ जाने के विश्वास से पवनंजय अपने एकान्त मिलन के प्रमाण के लिए कोई चिह्न भी न दे गये थे। पर वे युद्ध की व्यस्ततावश समय पर न लौट सके; दूसरी ओर अंजना के पातिव्रत्य धर्म में सन्देह करके उसकी सास उसे घर से निकलवा देती है। इस प्रकार मिलन का रूप अत्यन्त अनिश्चित हो जाता है। इसलिए चतुर्थ अंक में अंजना के निर्वासन तथा पंचम अंक तक युद्ध के शान्त होने पर बीज अदृष्ट रहता है। युद्ध समाप्त होने पर पवनंजय अंजना-मिलन की उत्सुकता के कारण शीघ्र आदित्यपुर पहुँचते हैं, किन्तु उन्हें द्वार पर युक्तिमती से अंजना के महेन्द्रपुर जाने का समाचार मिलता है। इस प्रकार उनका एक अन्वेषण व्यर्थ हो जाता है। फिर वे माता पिता से मिले बिना महेन्द्रपुर को ही प्रस्थान कर देते हैं। मार्ग में बैठकर अंजना के सम्बन्ध में विचार करते हैं। वनेचर से अंजना के समाचार सुनते हैं और पंचम अंक के अन्त में मृगलोचना के अन्वेषण का पुनः संकल्प करते हैं। इस अदृष्ट लाभ के बार बार अन्वेषण के कारण पंचम अंक के अन्त तक गर्भ सन्धि चलती है।

विमर्श सन्धि—जहाँ क्रोध से अथवा व्यसन से अथवा लोभ से विचार विमर्श पाया जाय, वहाँ विमर्श सन्धि होती है। षष्ठ अङ्क के आरम्भ में मणिचूड़ गन्धर्व के कथन से ज्ञात होता है कि पवनंजय विरहोन्मत्त होकर वन में घूमते हुए पशु, पक्षी, पौधों तथा लताओं आदि से अंजना का पता पूछते हैं। उत्तर न मिलने पर बार बार विमर्श करते हैं। यह विमर्श षष्ठ अङ्क के ४९वें छन्द तक चलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्वहण सन्धि—अब तक फल के सहायक जो भी अर्थ थे, वे इधर उधर बिखरे हुए थे। निर्वहण सन्धि में सभी एकत्रित होकर प्रयोजन-सिद्धि करने लगते हैं। प्रस्तुत नाटक में यह सन्धि षष्ठ अङ्क के २९वें छन्द के बाद से आरम्भ होकर नाटक के अन्त तक चलती है। प्रतिसूर्य मामा, पवनंजय के वन-भ्रमण का समाचार सुनकर पवनंजय को खोजते हुए पवनंजय के पास पहुँच जाते हैं तथा सखी सहित अंजना को भी पवनंजय के पास भेज देते हैं। उसके बाद विदूषक, हनुमान, मणिचूड़ गन्धर्व आदि सब एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार पवनंजय को पुत्र हनुमान और अंजना का स्थायी मिलन प्राप्त हो जाता है।

पताका स्थानक—प्राकरणिक भावी वस्तु के सूचक पताका स्थानक की योजना भी प्रस्तुत नाटक में है। पवनंजय और विदूषक महेन्द्रपुर में प्रमदवन की शोभा देख रहे हैं, जिसमें कलकण्ठिका मधुरतापूर्वक गा रही है। राजकीर विहार कर रहा है, नवमालिका आकर्षित कर रही है और बालतमाल शोभित हो रहा है। इस प्रकार क्रमशः एक स्त्रीलिंग, एक पुल्लिग, पुनः एक स्त्रीलिंग और एक पुल्लिग का वर्णन होने से नायिका नायक की ध्वनि निकलती है। पवनंजय विदूषक की उक्त बात का समर्थन करते हुए कहते हैं कि नवमालिका (लता) चंचल किसलय रूपी हथेली से उठायी गयी पुष्पमाला को तमाल के स्कन्ध (तने) पर संसक्त करके स्वयं तमाल रूपी वर या तमाल श्रेष्ठ का वरण कर रही है। यहीं तुल्य इतिवृत्त तथा श्लिष्ट पद अधिस्कन्ध के द्वारा अंजना द्वारा पवनंजय के वरण की सूचना दी गयी है कि चंचल किसलय की भाँति हथेली से उठायी गयी पुष्पमाला को लेकर अंजना पवनंजय के कन्धों पर माला को डाल कर स्वयं वरण कर रही है।[1]

पात्र तथा वस्तु सूचना—प्रस्तावना में सूत्रधार के सहयोगी पारिपार्श्विक द्वारा प्रमुख स्त्री पात्र अंजना तथा उसके स्वयंवर महोत्सव की सूचना द्वारा वस्तु सूचना दी गयी है, जैसा कि दशरूपक में उल्लेख है कि सूत्रधार के सहयोगी नट द्वारा यह सूचना दी जानी चाहिए।[2]

भारती वृत्ति का अंग प्ररोचना—अंजना-पवनंजय नाटक में सूत्रधार ने प्रस्तावना में नाटक की सरल रचना तथा सुयोग्य दर्शकों के वर्णन द्वारा पाठकों को उधर उन्मुख किया है। इस प्रकार यहाँ भारती वृत्ति के प्ररोचना नामक अंग की योजना है। अंजना-पवनंजय नाटक का अभिनय कराने के लिए परिषद ने विशेष रुचि क्यों दिखायी ? पारिपार्श्विक के इस प्रश्न के उत्तर में सूत्रधार ने कहा कि कवि का परिश्रम ही इसमें कारण है, क्योंकि समीचीन वचन हैं। अत्यन्त सरल रचना है तथा कथन का ढंग भी उत्कृष्ट है। यह कवियों की सभा भी काव्य की आराधिका है। रसाभिव्यंजना भी अतिगूढ़ नहीं है।[3]

---

१. चलकिसलयाग्रहस्तोत्क्षिप्तां नवमालिका कुसुममाला।
आमुच्याधिस्कन्धं स्वयं वृणीते तमालवरम्॥ ५।६

२. दशरूपक ३।२, ३

३. समीचीना वाचः सरलसरला काऽपि रचना
परा वाचो युक्तिः कविपरिषदाराधनपरा। इत्यादि २।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके अतिरिक्त संस्कृत नाट्यशास्त्र के नियमानुसार सूच्य वस्तुओं तथा भावी घटनाओं की सूचना विष्कम्भक तथा प्रवेशकों द्वारा दी गयी है। नाटक में जिन बातों का प्रत्यक्ष अभिनय निषिद्ध है, जैसे हनुमज्जन्म तथा सिंह का अंजना के समीप आना आदि की सूचना कथोपकथन द्वारा तथा संभोगादि की सूचना व्यंजना वृत्ति द्वारा दी गयी है।

पात्र परिचय, रूपरंग तथा रेखाएं

नाटकों के निर्माण में प्रमुख योग घटनाओं का होता है; इसलिए वस्तु को नाटक का प्रथम तत्व माना जाता है। उन घटनाओं के कार्यकर्ता विविध पात्र होते हैं; इसलिए नेता को नाटकों का दूसरा तत्व माना जाता है। इस नेता नामक रूपक के तत्व में नेता का समस्त परिकर सम्मिलित समझना चाहिए। चूँकि संसार के मनुष्य तथा नाटकों के दर्शकजन विविध प्रकृति के होते हैं; वे सब नेता के साथ मानवीय सम्बन्ध स्थापित कर अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और उसके आदर्श कार्यों के प्रति दर्शकों का समर्थन रहता है, जिससे दर्शक अपने जीवन में उन्हीं मानवीय गुणों के उतारने का प्रयत्न करने के प्रति उन्मुख रहें। नेता अपने आदर्श-पूर्ण सिद्धान्तों पर चलने के लिए कुछ कठिनाइयों तथा बाधाओं का सामना करता है और कभी कभी उसे अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में पाठकों तथा दर्शकों की सहानुभूति नायक के साथ बनी रहती है और अन्त में उन बाधाओं पर विजय पा जाने पर जब सफलता नायक के चरण चूम लेती है, तब दर्शक भी गद्गद होकर आदर्शों के पालन के लिए कष्ट सहन करने के लिए उत्साहित रहने की प्रेरणा प्राप्त करता है। इसलिए भारतीय नाट्यशास्त्रियों ने जहाँ एक ओर नाटक की कथावस्तु का प्रख्यात होना अपेक्षित माना है, जिससे दर्शक वस्तु में असत्यता की कल्पना न कर बैठे; उसी प्रकार नेता को भी प्रख्यात वंश का राजर्षि या दिव्य होना चाहिए तथा उसमें अनेक स्पृहणीय गुण अपेक्षित हैं। वह धार्मिक ग्रन्थों का रक्षक हो, उत्साही हो तथा यशस्वी हो, इत्यादि गुण हों और धीरोदात्त प्रकृति का हो।[1] पवनंजय धीरोदात्त प्रकृति के नायक हैं, क्योंकि उनमें नायक के सामान्य गुणों के अतिरिक्त महासत्वता आदि[2] विशेष गुण पाये जाते हैं, जो कि धीरोदात्त नायक में होते हैं। इन गुणों की अभिव्यंजना नाटक के विभिन्न स्थलों पर हुई है।

पंचम अंक में जब पवनंजय के पराक्रम से प्रभावित होकर देवों ने साधुवाद के साथ पुष्पवृष्टि की, तब प्रतिपक्षी वरुणराज ने भी पवनंजय की प्रशंसा की थी। पराक्रम द्वारा दूसरों पर विजय पाकर अपनी महानता के कारण पवनंजय महासत्व हैं। अपनी प्रशंसा न करके वरुण की स्वयं प्रशंसा करने लगते हैं। इस प्रकार अविकत्थन स्वभाव के भी हैं। विजय-प्राप्ति के पश्चात् भी अपने श्रेय का कथन न

---

१. दशरूपक ३।२२, २३

२. महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः। (दशरूपक २।४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना उनकी अतिगंभीरता को व्यक्त करता है। ये सब गुण धीरोदात्त प्रकृति के अनुकूल हैं।

इसी अंक में युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अपने मित्र विदूषक से पवनंजय कहते हैं कि वरुण के साथ स्थिर मैत्री सम्पादित हुई, खर दूषण आदि राक्षस मुक्त हुए, रावण का होने वाला मान-भंग रुक गया और मैंने यह पिताजी की आज्ञा भी पूर्ण पालन कर ली।[१] इससे यह विदित होता है कि पवनंजय में अहंकार या स्वाभिमान है, किन्तु वह गूढ़ है। पिताजी की आज्ञा पर स्थिर रहकर उन्होंने इस प्रकार का युद्ध किया, जिससे वरुण के द्वारा बन्दी बनाये गये खर दूषण पर विपत्ति नहीं आयी और वे मुक्त हो गये तथा अपनी द्वितीय अंक में की गयी प्रतिज्ञा का निर्वाह करके अपने दृढ़व्रती होने का परिचय दिया। रावण के मान की रक्षा करने का व्रत द्वितीय अंक में पवनंजय ने लिया था। इस प्रकार इनमें धीरोदात्त प्रकृति के स्थिरता, गूढ़ाहंकारत्व तथा दृढ़व्रतत्व आदि गुण हैं।

संस्कृत नाटकों के नायक में जिन सामान्य गुणों[२] की उपलब्धि अपेक्षित है, वे गुण भी पवनंजय में विद्यमान हैं। पवनंजय यद्यपि प्रभावशाली हैं, तेजस्वी हैं, फिर भी उनमें नम्रता है। द्वितीय अंक में जब उनके पिताजी के अमात्य आर्य विजय शर्मा आते हैं, तब पवनंजय उन्हें अभिवादन करते हैं। इस प्रकार व्यवहार-कुशल होने के साथ ही उनमें विनीतता है। पवनंजय इतने सुन्दर हैं कि अंजना का भाई अरिन्दम पवनंजय को कान्तिलक्ष्मी को धारण करने वाले दूसरे वसन्त के समान बताता है। इस प्रकार नायक में मधुर गुण हैं और वह प्रियदर्शन है।

पवनंजय में शूरता, उत्साह आदि गुणों के होने के संकेत अनेक स्थलों पर हैं। द्वितीय अंक में जब उन्हें ज्ञात होता है कि रावण ने हमारे पिताजी से वरुण के विरुद्ध सहायता की याचना की है, तब वे उत्साह में कहते हैं कि जड़ से वरुण की पातालपुरी को उखाड़ कर समुद्र के बीच में फेंक दूंगा तथा बाणों की चिनगारियों द्वारा युद्ध में शत्रुओं के रुधिर सुखा दिये जायेंगे।[३]

दूसरे पात्रों की बातचीत से भी पवनंजय की तेजस्विता पर प्रकाश पड़ता है। जब अमात्य विजय शर्मा पवनंजय के पास पहुँचते हैं, तब वे कहते हैं कि ये कुमार पवनंजय दुर्निरीक्ष्य पैतृक तेज को धारण करते हुए आकाश के मध्य को लांघने वाले सूर्य की श्रेणी को प्राप्त कर रहे हैं।[४] इसी प्रकार इनके सेनापति का यह कथन कि पवनंजय की पराक्रमवत्ता के सम्बन्ध में क्या कहा जाय? क्योंकि दुर्निवार पराक्रम के कारण महान् पवनंजय के सहायकों में हम लोग तो केवल संख्या को बढ़ाने वाले हैं। संग्राम स्थल में तलवार को नचाने की उपदेशिका उनकी भुजा ही

१. पृ० ६९।८
२. दशरूपक २।१
३. पृ० २।२२
४. २।१८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी प्रमुख सहायिका है।[1] इससे पवनंजय की शूरता, दृढ़ता, उत्साह तथा तेजस्विता आदि गुणों की व्यंजना करायी गयी है।

नाटक में वीर तथा शृंगार, इन दो रसों का परिपाक विशेष रूप से हुआ है। इसके अनुरूप नायक युवावस्था का होना अपेक्षित है। पवनंजय को मंत्री इत्यादि कुमार शब्द से सम्वोधित करते हैं, जिससे उनकी नवावस्था सूचित होती है। दूसरे उनका स्वयंवर में वरण किया जाना भी उनकी नव-वयस्कता का सूचक है ; फिर भी उनमें नेता के सामान्य गुणों में जो धार्मिकता का गुण है, वह पाया जाता है। तृतीय अंक के आरंभ में विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि सन्ध्योपचार की क्रिया समाप्त करके पवनंजय कुमुदवती के किनारे स्थित हैं। इससे अधिक धार्मिकता क्या होगी कि संग्राम के कार्य में व्यस्त होने पर भी समय पर अपनी सन्ध्या सामायिक आदि धार्मिक क्रियाओं को पवनंजय पूरा करते हैं। अन्त में पवनंजय के मुख से जो भरतवाक्य का कथन है, उसमें जैन धर्म के श्रद्धालु भव्यों के शाश्वत कल्याण की कामना की गयी है। इसके अतिरिक्त युद्ध में इस युक्ति से संग्राम किया गया है कि विजय भी प्राप्त हो जाय और संग्राम में संहारात्मक हिंसा का ताण्डव भी न हो। इस तरह पवनंजय वीर होकर भी धार्मिक हैं। ऋषियों के प्रति तो उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा है। जब प्रतिसूर्य के मुख से अंजना का वन-वृत्तान्त सुनते हैं, तब अमितगति मुनि का प्रसंग आते ही कह उठते हैं कि उन दिव्य ज्ञानी मुनिराज की जय हो !

तृतीय अंक में विरहविधुरा चक्रवाकी को देखने से उन्हें अंजना की स्मृति आती है। इस समय मनोविनोद के हेतु मित्र से चित्रफलक मंगवाकर चित्र बनाने का प्रयास करते हैं। इससे विदित होता है कि पवनंजय एक कलाकार भी हैं।

धीरोदात्त प्रकृति के विशेष तथा नायक के सामान्य गुणों के अतिरिक्त कतिपय अन्य गुण और भी हैं, जिनसे नायक का उत्कर्ष सिद्ध होता है। प्रथम अंक में अंजना पवनंजय की वाणी को सुनकर आत्मगत कह उठती है कि इनके वचनों में कैसी गंभीरता है ? पवनंजय युद्ध आदि के कार्य को न्याय तथा नियमपूर्वक ही करते हैं। तृतीय अंक में ज्ञात होता है कि युद्ध को दोनों पक्षों ने एक दिन के लिए बन्द कर दिया है। पवनंजय अंजना से मिलने के लिए अन्यन्त उत्कण्ठित हैं। विदूषक के कथनानुसार पवनंजय का छावनी को छोड़कर जाना उचित नहीं है, क्योंकि अभी बलवान वरुण प्रतिपक्षी को विजित नहीं किया है। पवनंजय सहसा आवेश में आकर उसी दिन समस्त शत्रुपक्ष को चूर्ण करने पर उतारू हो जाते हैं, पर विदूषक जब उन्हें स्मरण दिलाता है कि एक दिन के लिए दोनों सेनाओं ने संग्राम बन्द कर दिया है, तब पवनंजय विदूषक की प्रशंसा करते हैं कि तुमने उचित स्मरण दिलाया। इस प्रकार पवनंजय न्यायपूर्ण पग ही उठाते हैं।

---

१. ६६।१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पवनंजय कृतज्ञ भी हैं। षष्ठ अंक के अन्त में उन प्रतिसूर्य के दर्शन की अभिलाषा करते हैं, जिन्होंने हनुमान की रक्षा द्वारा नमिवंश को बचा लिया।[1] नाटक के अन्त में मणिचूड़ गन्धर्व के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए उन्होंने कहा है कि आपके अनुकूल होने पर क्या दुर्लभ हो सकता है![2] कर्त्तव्यपरायण तो पवनंजय इतने हैं कि अंजना के विवाह के पश्चात् प्रथम दिन ही नवविवाहिता पत्नी को त्यागकर पिता की अनुमति लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान कर देते हैं और अंजना को दिये हुए समय का ध्यान कर पिताजी के आज्ञानुसार खर दूषण के मोचन और रावण के मान की रक्षा हो जाने के बाद ही लौटते हैं। इस प्रकार प्रथम अंक के कृतक मिश्रकेशी के अंजना के प्रति कहे गये शब्दों में पवनंजय स्वभावतः सुन्दर शरीर वाले तथा गुणों की खानि हैं। बहुत क्या कहा जाय, यह प्रह्लादराज का पुत्र तुम्हारे (अंजना नायिका तथा अंजना-पवनंजय नाटक के) ही योग्य है।[3]

दर्शकों में यथार्थता के विश्वास के लिए कतिपय मानव-सुलभ कमियां भी प्रधान पात्रों में हो सकती हैं; इसलिए पवनंजय जहां एक ओर अत्यन्त पराक्रमी होकर एक दिन में ही समस्त शत्रुसमुदाय को चूर्ण करने की क्षमता रखते हैं तथा समस्त अरण्यानी तथा उसके प्राणियों को व्याकुल कर सकते हैं, वहाँ चक्रवाकी का विरह देखकर अत्यन्त करुणार्द्र हो उठते हैं। इन विशेषताओं के कारण उत्तर रामचरित के शब्द पूर्णतः चरितार्थ होते हैं कि महान् पुरुषों के चरित एक ओर वज्र से भी कठोर तथा दूसरी ओर पुष्पों से भी सुकुमार होते हैं। उन्हें कौन समझ सकता है?[4] पवनंजय में इन महानताओं के बाद भी मानव-सुलभ कमजोरी है; विदूषक के लाख मना करने पर भी अंजना से मिलने के लिए किसी छल से जाने की बात करके उसे पूरा करते हैं तथा युद्ध से लौटने के पश्चात् आदित्यपुर में अपने भवन में पहुँचने पर जब उन्हें पता चलता है कि अंजना पीहर में (महेन्द्रपुर में) है, तब युक्तिमती के यह कहने पर भी कि माता पिता से मिले बिना तुम्हारा जाना अनुचित है, पवनंजय माता पिता से मिले बिना अंजना के पास चल देते हैं। जिन पिता की आज्ञा से युद्ध में अवधि से अधिक समय लगा दिया, उनसे मिले बिना जाना कुछ दोषपूर्ण अवश्य है, किन्तु इस प्रकार के दोष नायक के मर्त्यरूप के अनुकूल होते हैं। दूसरे उन्हें यह विश्वास था कि मुझे अंजना को लाने में मुहूर्त भर का भी विलम्ब नहीं होगा। इस प्रकार पवनंजय का चरित्र धीरोदात्त कोटि में मर्त्य नायक के अनुकूल है। शृङ्गारी नायकों के भेदों में पवनंजय को अनुकूल नायक की श्रेणी में रखा जायगा, क्योंकि एक मात्र धर्मपत्नी अंजना के प्रति इनका सम्पूर्ण अनुराग प्रस्तुत नाटक में है।[5] पवनंजय विद्याधर हैं, क्योंकि प्रथम अंक में इनके पिता को विद्याधरों

---

१. १०४।५८
२. ११८।१५
३. १७।१६
४. वज्रादपिकठोराणि मृदूनि कुसुमादपि
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति। (उत्तर रामचरित—२।७)
५. अनुकूलस्त्वेकनायिकः। (दशरूपक २।७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में शिरोमणि बताया गया है। पवनंजय में सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ऐसे चिह्नों का उल्लेख षष्ठ अंक में प्रतिसूर्य द्वारा हुआ है जो विद्याधर-राज के साम्राज्य के अधिपतित्व के सूचक हैं।

विदूषक—संस्कृत नाटकों में विदूषक के गुण[1] ज्यों के त्यों इस नाटक के विदूषक में भी मिलते हैं। विदूषक का नाम प्रहसित है, क्योंकि चतुर्थ अंक में वसन्तमाला ने युक्तिमती से अंजना के गर्भवती होने के औचित्य को बताते हुए यह कहा था कि एक समय रात्रि में प्रहसित के साथ राजा आकर चले गये थे। विदूषक राजा या नायक का अभिन्न सहचर होता है। प्रहसित को भी हम नाटक के आरम्भ से पवनंजय के साथ देखते हैं। स्वयंवर में महेन्द्रपुर पवनंजय विदूषक के साथ गये थे। महेन्द्रपुर के प्रमदवन की प्राकृतिक सुषमा को पवनंजय विदूषक के साथ ही देखते हैं। इसके पश्चात् युद्ध से भयभीत होता हुआ भी विदूषक पवनंजय के साथ संग्राम में जाता है और जब पवनंजय एकाकी अंजना से मिलने जाते हैं, तब भी प्रहसित साथ में था। जब पवनंजय युद्ध से लौटकर घर पहुँचते ही अंजना को लेने महेन्द्रपुर चल देते हैं, तब भी विदूषक उनके साथ है। इस प्रकार इस नाटक का विदूषक छाया की भांति राजा का अनुगामी है। जहाँ तक उसके हास्यकारी स्वभाव का सम्बन्ध है, नाटक में कुछ स्थलों पर उसकी बातचीत से मनोरंजन अवश्य होता है। उदाहरण के लिए प्रथम अंक में कृतक स्वयंवर के पश्चात् वसन्तमाला कहती है कि अधिक क्या कहें, सब कुछ तैयार है, केवल पवनंजय की ओर से विलम्ब है। इतने में अवसर पाकर विदूषक पहुँच कर कहता है—'अरे ये पवनंजय कहां विलम्ब कर रहे हैं, बल्कि ये तो त्वरा कर रहे हैं।' इसी प्रकार जब वसन्तमाला आदि कृतक स्वयंवर की तैयारी में यह विचार कर रहीं थीं कि राजपुत्र का अभिनय कौन करे? तब विदूषक और पवनंजय यह सब छिपकर देख सुन रहे थे; विदूषक कह उठता है कि 'ये (पवनंजय) तो यहां मौजूद हैं।' तब पवनंजय कहते हैं कि 'अरे मूर्ख, इनकी विश्वस्त क्रीड़ा में बाधा न डालो।'

विदूषक का पेटूपन इस नाटक में भी दिखाई देता है। प्रथम अंक की समाप्ति पर जब दोपहर हो गया, तब विदूषक राजा से कहता है कि सूर्य आकाश के मध्य में आ गया और भोजन का समय बीत रहा है, इसलिए हम भी चलें। इस प्रकार उसे भोजन की ही याद आती है। द्वितीय अंक के आरंभ में विदूषक के पेट को लेकर वसन्तमाला तथा विदूषक का बड़ा रोचक संवाद-सा बन गया है। वसन्तमाला पवनंजय को खोज रही थी, विदूषक कहता है—क्या मुझे बिना देखे ही चली जा रही हो? वसन्तमाला कहती है, इस मृदंग की तरह तुम अपनी कुक्षि से ढंके हुए होने से दिखाई नहीं दिये। विदूषक कहता है कि क्या मेरा तुम्हारे जैसा अत्यन्त कृश उदर है? वसन्तमाला जब विदूषक के स्थित होने का कारण पूछती है, तब

---

१. वसन्ताद्यभिधो लोलो भोजने कलहप्रियः
विकृतांगवचो वेषे हास्यकारी विदूषकः। (उज्ज्वल नीलमणिः, पृ० ४१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदूषक अपने जठर भार से परेशान होकर विश्राम के लिए बैठ जाने की बात कहता है। वसन्तमाला हंसी में कहती है कि आज तुम्हारा उदर विशेष रूप से बढ़ रहा है, क्या बड़ा पेट ही है अथवा गर्भ है ? तब विदूषक उत्तर देता है कि अये कुम्भदासी, ऐसा उपहास मत कर। रात्रि को स्वस्तिवाचन सम्बन्धी पूरियों से गले तक मेरा पेट भर गया था, सबेरे स्वामिनी ने जीरे मिर्च की अधिकता से युक्त दधि-मिश्रित कलेवा दिया, जिससे यह स्थिति हो रही है। इन सब पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि इस नाटक का विदूषक भी पूरा पेटू है। द्वितीय अंक में जब पवनंजय अंजना के साथ बकुलोद्यान में है, तब विदूषक सुन्दर स्थान पर निद्रा सुख लेने लगता है। वहां भी उसे स्वप्न में रसाल मोदक दिखाई देते हैं। उसकी शयन तथा स्वप्न की चेष्टा भी मर्कट लीला की तरह होती है, जो सबके हास्य का कारण बनती है।

यह भी जाति का ब्राह्मण है और इसलिए इसे स्वस्तिवाचनिक खिलाया गया था। अंजना के पास जब पवनंजय पहुँचे थे, तब विदूषक ने आशीर्वाद में अंजना से कहा था, आपका कल्याण हो; आप वयस्य सदृश पुत्र प्राप्त करें। इस प्रकार ब्राह्मण होने से इसका आशीर्वाद भी इस प्रकार का है जो भविष्य में सफल हुआ है। यद्यपि इसे युद्ध प्रिय नहीं है ; तृतीय अंक के आरंभिक कथन से ज्ञात होता है कि युद्ध के कारण वह अत्यन्त बेचैन है; यहाँ तक कि उसके कारण वह राजपुत्र की मित्रता को भी उद्वेगकारक समझता है। वह राजपुत्र पवनंजय को सदैव राजधर्म पर चलने की प्रेरणा देता है। जब पवनंजय युद्ध के समाप्त हुए विना अंजना से मिलने के लिए जाते हैं, तब उसने अपने पूरे प्रयत्न के साथ पवनंजय को न जाने के लिए प्रेरित किया था। उसकी विचारक बुद्धि का उस समय पता लगता है, जब पवनंजय महेन्द्रपुर अंजना से मिलने के लिए चल देते हैं, तब मार्ग में विदूषक उन्हें सल्लकी वृक्ष के नीचे विश्राम के लिए रोक लेता है और तब विचार करता हुआ कहता है कि युक्तिमती ने कहा था कि गर्भवती अंजना महेन्द्रपुर को गयी है और उसके बाद उसका हृदय उदासीन-सा हो गया था। युक्तिमती की उदासीनता को भाँपकर विदूषक पवनंजय से कहता है कि यदि अंजना महेन्द्रपुर में होती, तो अब तक प्रसूति हो चुकी होती और उसका समाचार भी मिलता, किन्तु प्रसूति का समाचार महेन्द्रपुर से नहीं मिला, इसलिए अंजना वहाँ नहीं होगी। इस प्रकार पवनंजय के आवेशपूर्ण शब्द में भले ही विदूषक मूर्ख हो, पर वास्तव में वह वुद्धिमान है। पवनंजय को जंगल में एकाकी छोड़ने में हिचकता है, परन्तु पवनंजय की रुचि के अनुसार सब विद्याधरों को ले जाकर अंजना के अन्वेषण के लिए प्रयत्न करने हेतु पवनंजय को छोड़ कर लौट पड़ता है। अन्त में विदूषक अंजना के भाइयों द्वारा कुछ आभूषणों से अलंकृत किया गया था, क्योंकि यह पवनंजय का प्रिय वयस्य है और वह अवसर पवनंजय के राज्याभिषेक की प्रसन्नता का था। इस प्रकार वह विदूषक के कर्तव्य को पालता है और उसका पुरस्कार भी प्राप्त करता है।

प्रतिसूर्य—ये अंजना के मामा हैं। इनका निवास अनुरुह द्वीप में था। किन्तु इनकी विशेष प्रसिद्धि होने के कारण प्रथम अंक में वसन्तमाला अंजना को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब कुछ श्रवण योग्य बात सुना रही है, तब अंजना के परिचय में कहती है कि अनुरुह द्वीप के स्वामी प्रतिसूर्य विद्याधर की बहिन रानी मनोवेगा से उत्पन्न असीम सुन्दरी अंजना नामक पुत्री महेन्द्रराज की है। किसी का महत्त्व बताने के लिए उसके महान् सम्बन्धों का नाम लिया जाता है। इससे प्रतिसूर्य का असाधारण व्यक्तित्व प्रतीत होता है। अंजना (भानजी) के प्रति भी प्रतिसूर्य का विशेष स्नेह था, यही कारण है कि जब क्रूर चांडाल अंजना को वसन्तमाला के साथ वन में छोड़ जाता है, तब वसन्तमाला विलाप करती हुई अनेक रक्षा करने वालों में प्रतिसूर्य को भी सम्बोधित करती हुई कहती है कि अपनी इस प्रकार की प्रिय भानजी की रक्षा करो। प्रतिसूर्य वैसे भी हृदय से दयालु प्रकृति के हैं, तभी तो वन के मध्य से विमान द्वारा निकलते समय जब अंजना की प्रसूति के समय वसन्तमाला की विलाप ध्वनि सुनी, तब रुक कर जानकारी प्राप्त करते हैं कि क्या बात है ? प्रतिसूर्य से परिचय न होने पर वसन्तमाला और अंजना को उनके व्यवहार से विश्वास भी हो जाता है। बाद में सम्बन्ध ज्ञात हो जाता है, यह दूसरी बात है। वे पुत्र सहित अंजना को अपने यहाँ ले जाते हैं और वहाँ हनुमान के अनेक जातकर्म आदि संस्कार करते हैं। इस प्रकार उनका स्नेह अंजना के प्रति असाधारण है। पवनंजय के पिता प्रह्लाद भी पवनंजय के मातंगमालिनी वन में प्रविष्ट हो जाने पर प्रतिसूर्य को ही स्मरण करते हैं। इसका कारण प्रतिसूर्य के चरित्र की यही विशेषता है कि वे दूसरों के कार्य में तत्परता से सहायक होते हैं। वे पवनंजय की स्थिति वन में कई प्रकार के चिह्नों, पदपंक्ति आदि से पहचान जाते हैं। पवनंजय का शारीरिक रुप बिलकुल बदल गया था, फिर भी कई बातों के द्वारा पहचान लेते हैं। ये सब कार्य प्रतिसूर्य की बुद्धिमता के द्योतक हैं। वे स्थिति भांप लेते हैं कि पवनंजय को अंजना के बिना स्वस्थ अवस्था में लाना कठिन है, इसलिए वे तुरन्त अपने द्वीप पहुँच कर अंजना को पवनंजय के पास भेजते हैं। इस प्रकार प्रतिसूर्य का एक आदर्श मामा का चरित्र तो है ही, एक हितैषी वृत्ति के पात्र भी हैं। तभी तो नायक पवनंजय ने कहा था कि जिस महात्मा ने सद्योजात हनुमान की रक्षा द्वारा हमारे नमिवंश की रक्षा कर ली, उन तुम्हारे (अंजना के) मामा के हम दर्शन करेंगे। कन्याओं के मामाओं को प्रतिसूर्य के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

मणिचूड़ गन्धर्व—ये वाद्य तथा गानकुशल दिव्य व्यक्ति हैं। यद्यपि मणिचूड़ गन्धर्व केवल छठवें तथा सातवें अंक में आते हैं, किन्तु नाटक के अन्त में नायक पवनंजय से 'तुम्हारा अन्य प्रिय क्या करूँ'—इस प्रकार पूछने के कारण नायक के मुख से फलप्राप्ति का श्रेय मणिचूड़ गन्धर्व को दिया गया है। यह पत्नी रत्नचूड़ा के साथ रत्नकूट गिरि पर निवास करता है। पुरुष होने के कारण पुरुषों के प्रति उसकी सहानुभूति है। इसलिए वर्षा के आरम्भ में तिरोहित हो जाने वाली सहचरी के अन्वेषक भ्रमर के प्रति भी इसकी सहानुभूति उमड़ पड़ती है। उसकी पत्नी जब पवनंजय को विरहिणी अंजना का ध्यान न करने के कारण उन्मत्त कहती है और पुरुषों को निष्ठुर बताती, है तब मणिचूड़ भाग्य को ही इसका दोषी बताता है। मणिचूड़ का कर्म सिद्धान्त पर अटूट विश्वास है, इसलिए अंजना के दुःख को किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म का फल ही निरूपित करता है। प्रतिसूर्य ने जैसा कि वन-वृत्तान्त पवनंजय को सप्तम अंक में सुनाया है, उसके अनुसार अपनी पत्नी के कहने से मणिचूड़ गन्धर्व ने वन में अंजना की पूरी तरह देखभाल की है। जब सिंह अंजना के प्रति झपटने का उपक्रम करता है, तभी गन्धर्वराज अपना रूप परिवर्तन कर सिंह को दूसरी ओर ले जाता है। उसके मारने का वर्णन न कर दूर ले जाने के वर्णन द्वारा गन्धर्व के अहिंसक चरित्र की रक्षा की गयी है। इस प्रकार गन्धर्व दुखियों के त्राता के रूप में वर्णित है। हनुमान के पालन पोषण द्वारा प्रतिसूर्य ने नायक का हित सम्पादन किया था, अंजना की सिंह से रक्षा कर गन्धर्वराज ने प्रतिसूर्य से भी अधिक हित का कार्य किया, क्योंकि अंजना की रक्षा द्वारा अंजना तथा गर्भस्थ शिशु दोनों का परित्राण किया था। मणिचूड़ गन्धर्व के इस उपकार के कारण सप्तम अंक में जब विदूषक प्रतिसूर्य से कहता है कि आपके कारण हम सब लोग पुनरुज्जीवित हो गये, तब प्रतिसूर्य उसका श्रेय मणिचूड़ गंधर्व को ही देते हैं और कहते हैं यह सब मणिचूड़ गन्धर्व का ही महान कार्य है। इस प्रकार एक प्रतिसूर्य अविकत्थन हैं, दूसरी ओर मणिचूड़ गन्धर्व का नायक-हितैषित्व प्रकट होता है। इतना ही नहीं, मणिचूड़ गन्धर्व को लंकेश रावण तथा वरुणराज सभी सम्मान देते हैं। तभी तो पवनंजय के यौवराज्याभिषेक में अपना राज्य भेंट करने के लिए मणिचूड़ को ही नियुक्त कर पवनंजय के पास भेजते हैं। जैन शास्त्रों में गन्धर्व व्यन्तर देवों के अन्तर्गत हैं।[1] ये गाने बजाने वाले होते हैं। अंजना-पवनंजय में भी वीणा सहित गन्धर्व का उल्लेख आया है।

चमूरक वनेचर—पंचम अंक में अपनी पत्नी सहित प्रवेश करता है। यद्यपि उसके पास कोई धन सम्पत्ति नहीं है, फिर भी सन्तोषी व्यक्ति होने के कारण वह अपने को सर्वसुख-सम्पन्न समझता है। वह पर्वत की गुफाओं को ही अपने भवन मानता है। कन्द मूल को ही अपना व्यंजन समझता है और वन भूमियाँ ही उसके क्रीड़ास्थल हैं। इतना ही नहीं, श्रृङ्गार की समस्त सामग्री उन्हें प्रकृति से ही प्राप्त हो जाती हैं।[2] वनेचर होकर भी यह जंगली या असभ्य नहीं है। यह आकृति से पुरुषों को पहिचान जाता है। पवनंजय को देखकर अनुमान लगा लेता है कि ये विद्याधर हैं तथा शिष्टाचार के अनुकूल जाकर पवनंजय को प्रणाम करता है। उनको अंजना वसन्तमाला का समाचार सुनाकर उनके अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त कर देता है।

क्रूर—क्रूर का नाम विद्याधर मैख है। इस नाटक में इस पात्र के वेष का निर्देश मिल जाता है। चाण्डाल जैसे निन्द्य कर्म करने में न हिचकने के कारण ही इसका नाम क्रूर है। यह चरण में घर्घरिका पहनता है, जिसमें चलने से जोर की आवाज होती होगी। हाथ में डमरू लेकर ठोक कर बजाता है। कन्धे पर त्रिशूल-दण्ड धारण करता है। माथे पर लाल चन्दन का तिलक लगाता है तथा अत्यन्त

१. तत्वार्थसार २।२१७, पृ० ८४
२. पृ० ७८।२०, २१, २२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शराब का पान करने से नशे में लाल नेत्रों वाला रहता है। मदिरा के नशे में नाचता और गाता भी रहता है। इस प्रकार इसका वेष इसके कार्य के अनुरूप है तथा मदिरा पान भी इसके निन्द्य कर्म के अनुरूप है। शरीर भी अत्यन्त भयंकर है। इसीलिए इसे साक्षात् आरभटी वृत्ति बताया गया है।[1] यद्यपि इनका व्यापार क्रूरता का है, फिर भी मानव हृदय के अनुकूल इनमें भी दया रहती है। इसलिए जब इसे कंचुकी कान में यह समाचार सुनाता है कि अंजना को उसके पीहर इस कारण से ले जाना है, तब वह कह उठता है कि क्या उपाय है? स्वामिनी का सन्देश अनुलंघनीय होता है। यदि स्वामिनी की आज्ञा मानना कर्तव्य न होता, तो शायद ऐसे कर्म के लिए वह तैयार न होता। दूसरी ओर कहना चाहिए कि इन पात्रों में स्वामी के प्रति भक्ति दृढ़ होती है। पंचम अंक की वनेचर की बात से भी क्रूर के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है कि अंजना ने वन के बीच से पिता के यहाँ ऐसी कलंक लगने की स्थिति में जाना उचित नहीं समझा। तब क्रूर कहता है कि मैं तुम्हें सघन वन में छोड़कर कैसे चला जाऊँ? स्वामिनी केतुमती ने तो तुम्हारी जन्मभूमि में पहुँचाने की आज्ञा दी थी। किन्तु क्रूर को जब यह बात ध्यान में आ जाती है कि कलंक की स्थिति में यह अपने पिता के पास नहीं जाना चाहती है, तब फिर यह कहकर वापस हो जाता है कि तुम भी तो मेरी स्वामिनी हो, अतः तुम्हारी आज्ञा भी पालनीय है। अन्त में अंजना के कल्याणार्थ सब देवता इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करते रहें, इस शुभाकांक्षा के साथ वापस हो जाता है। इस प्रकार स्वामी की आज्ञा का पालन करने वाला क्रूर कर्तव्यपालक है और कर्म क्रूरता का होने पर भी उसके हृदय में करुणा की सरिता बहती है।

चेट—यह विद्याधर मैख क्रूर का दास चेट हिन्तालक है। यद्यपि इसका कार्य नीच पुरुष की सेवा करना है, फिर भी उसमें यह विशेषता है कि उसका स्वामी शराबी है तथा अपने स्वामी की आज्ञा से कमल आदि द्वारा मदिरा को सुगन्धित कर स्वामी को मदिरा-पान कराता है, किन्तु स्वयं उस दुर्व्यसन से अछूता है। अपने स्वामी क्रूर के स्वभाव से पूर्णतया परिचित है, इसलिए जब कंचुकी लब्धभूति क्रूर को बुलाने जाते हैं, तब उन्हें कह देता है कि क्रूर मदिरा के नशे में नाचते गाते गिरते घूरते तथा अकारण हंस रहे हैं तथा क्रूर का यह समय आप जैसे पुरुषों के साथ बातचीत के अनुकूल नहीं है तथा कंचुकी के जाने पर उसे प्रणाम भी करता है।

लब्धभूति कंचुकी—यह राजा प्रह्लाद का कंचुकी है। स्वामिनी की आज्ञा से यह क्रूर को बुलाने को गया था। यह स्वयं कोई उच्च पद का व्यक्ति नहीं है, फिर भी उसमें अच्छे विचार होने से क्रूर नीच के साथ बातचीत करने में संकोच होता है। जब उस क्रूर का साथ छूट जाता है, तो उसे भी बड़ी प्रसन्नता का अनुभव होता है। जब उसे अंजना के सम्बन्ध में केतुमती के विचार ज्ञात होते हैं, तब वह भी किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा होकर चलता है और उसके पैर इधर उधर पड़ने लगते हैं। इसके बाद जब क्रूर के यहाँ पहुँचता है और क्रूर की मदिरा के कारण नशापूर्ण

१. पृ० ६३।१६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थिति देखता है, तो उससे उसकी बात करने की इच्छा नहीं होती है, किन्तु वह चाकरी जो करता है, इसलिए ऐसा काम करना ही है। तब वह परपिण्ड-गृध्नुता (चाकरी) को कष्टकारक समझता है, जिसके कारण दुर्जनों से बातचीत का भी प्रसंग आता है। वह अपने मन में धर्म के प्रति विश्वास रखता है तथा संसार के अशुभ कार्यों को मिथ्या श्रद्धान का कार्य समझता है। वह पुरुषार्थ से जैन धर्म के मार्ग पर जाने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार इस पात्र की मनोवृत्ति भी आदर्शमय है।

इन पात्रों के अतिरिक्त नाटक में कुछ पुरुष पात्र और हैं, किन्तु उनका चरित्र उल्लेखनीय नहीं है। अमात्य विजय शर्मा के कथन से पवनंजय की तेजस्विता की व्यंजना होती है। अमात्य केवल सेवा विनोद के लिए अपने को मानते हैं। इस प्रकार उनका अपना कुछ भी व्यक्तित्व नहीं है। पवनंजय का सेनापति मुद्गर जो पवनंजय के साथ युद्ध में गया था तथा उसके पंचम अंक के कथन से युद्ध व्यापार की सूचना मिलती है और पवनंजय के गुणों पर प्रकाश पड़ता है। पवनंजय का विमान चालक सूत जो युद्ध समाप्ति के बाद पवनंजय को आदित्यपुर ले जाता है। एक पात्र अरिन्दम है, जो अंजना का भाई है। पिता महेन्द्रराज ने स्वयंवर में समागत राजकुमारों के स्वागत का कार्य अरिन्दम को ही सौंपा था।

हनुमान—पवनंजय का पुत्र हनुमान अभी बालक है, किन्तु अत्यन्त भाग्यशाली है, क्योंकि अमितगति मुनिराज ने अंजना को बताया था कि तुम्हारे यहाँ भाग्यवान पुत्र होगा और उसके बाद पति-मिलन होगा। यह पुत्र चरमशरीरी है अर्थात् उसी भव से मुक्त होने वाला है। इसके जन्म के समय की घटना ही विचित्र है। जब रत्नकूट पर्वत पर वसन्तमाला के हाथ से प्रतिसूर्य के हाथ में आने वाला था, तब बीच में छूट जाने से शिला पर गिर जाने पर भी हनुमान अक्षत रहा तथा शिला के टुकड़े-टुकड़े हो गये। नाटक के अन्त में जब वह पिता के राज्याभिषेक के समय आदित्यपुर लाया जाता है, तब सबको प्रणाम करता है। इस प्रकार छोटा होकर भी सबके हृदय में अपना स्थान बना लेता है।

गन्धर्व-पत्नी रत्नचूड़ा के अनुसार इस पुत्र की महानुभावता से ही वनवास के दुःख अंजना ने सहन कर लिये थे।

इनके अतिरिक्त दूसरे पात्रों द्वारा सूचित कुछ पुरुषों के नाम नाटक में आये हैं। ये नाटक के पात्र नहीं हैं। उनमें पवनंजय के पिता प्रह्लाद, हिरण्यप्रभु का पुत्र विद्युत्प्रभ, रावण, रावण का पुत्र मेघनाद, वरुण, अंजना के पिता राजा महेन्द्र, उनका पुत्र अरिन्दम, खर दूषण और वरुण-पुत्र राजीव हैं।

स्त्री पात्र

अंजना—इस नाटक की नायिका है। उसका नाम नाटक के नाम के साथ जुड़ा हुआ है। वैसे भी भारतीय नाट्य साहित्य नायक की पत्नी को नायिका मानता है। अंजना के पिता राजा महेन्द्र हैं, जो दन्तिपर्वत के महेन्द्रपुर के राजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। माता मनोवेगा है। अंजना के ज्येष्ठ भ्राता का नाम अरिन्दम है और छोटे भाई का नाम प्रसन्नकीर्ति है। अंजना स्वयंवर में पवनंजय को वरण करती है; इसलिए उनकी स्वकीया धर्मपत्नी होने के कारण स्वकीया नायिका है, क्योंकि वह पतिव्रता और छलकपट से दूर है तथा लज्जा उसमें अधिक पायी जाती है। अपने ऊपर सास द्वारा कलंक की संभावना मात्र से अपने पिता को अपना मुख दिखाने में लज्जा का अनुभव करती है और वन के कष्टों को भी गर्भावस्था में स्वीकार करती है। स्वकीया के भेदों में भी मुग्धा नायिका है, क्योंकि नवयुवती है। द्वितीय अंक में पवनंजय से प्रथम मिलन में अत्यन्त संकोच का अनुभव करती है। पवनंजय को यह कहना पड़ता है कि लज्जा के प्रति तुम्हारा इतना आग्रह क्यों है ? आलिंगन के लिए अपने अंगों को क्यों नहीं प्रदान करती हो ? पान या चुम्बन के लिए मुखचन्द को क्यों नहीं अर्पण करती हो? मेरी ओर दृष्टि क्यों नहीं उठाती हो और रुंध कण्ठ वाली हो? मेरे साथ वातचीत क्यों नहीं करती हो?[1] इस प्रकार रति के कार्य से लज्जावश परांगमुख रहती है तथा कोप करना तो जानती ही नहीं है। यहाँ तक कि पवनंजय विवाह के एकदम वाद युद्ध के लिए चल देते हैं, फिर भी उसे अपने प्रियतम के प्रति जरा भी क्रोध नहीं है। गर्भवती हो जाने पर उसे अत्यन्त दुःख उठाने पड़ते हैं। उसे कलंक लगाया जाता है। इसका कारण उसका प्रियतम ही है, जो कि चार मास का समय देकर भी समय पर नहीं लौटा है। तब भी अंजना के हृदय में प्रियतम के प्रति जरा भी रोष का चिह्न उदित नहीं हुआ। ये सब मुग्धात्व के लक्षण हैं। तृतीय अंक के अन्त में पवनंजय ने अंजना के प्रति स्वयं मुग्धा शब्द का प्रयोग किया है। नायिकाओं की अवस्था की दृष्टि से विवाह के पूर्व अंजना के हृदय में पवनंजय के प्रति जो अनुराग है, वह पूर्वराग है। उसके बाद विवाह हो जाने पर पवनंजय को युद्ध में जाना पड़ता है; इसलिए प्रोषित-पतिका के रूप में अधिक दिन विताने पड़ते हैं। षष्ठ अंक में मिलन हो जाने के वाद फिर स्वाधीन-पतिका की अवस्था वाली हो जाती है। अंजना अत्यन्त सुन्दरी है; इसलिए वसन्तमाला ने प्रथम अंक में कुछ सुनाते हुए कहा था कि अप्परा के रूप का उपहास करने वाली असाधारण कान्तिलक्ष्मी से युक्त अंजना है। जब पवनंजय मातंगमालिनी वन में उन्मत्त होकर अंजना का अन्वेषण करते हैं, तब अनेक पशु पक्षियों से अंजना का पता पूछते हैं तथा अनेक उपमाओं का वर्णन करते हैं। इससे अंजना के सर्वांग-सुन्दरी होने की व्यंजना करायी गयी है। अंजना केवल शरीर मात्र से सुन्दरी नहीं है, वह संगीतशाला में जाकर कला ज्ञान भी प्राप्त करती है। प्रथम अंक में मालतिका ने मधुकरिका को बताया था कि इस समय अंजना संगीतशाला में गयी है। अंजना को प्रकृति से अत्यन्त प्रेम है, इसलिए अन्य सखियों के साथ पुष्पचयन भी करती थी। अंजना अनेक आभूषण पहनती थी, उनमें एक रत्नवलय भी था, जिसमें शुक का चिह्न बना हुआ था।[2] विवाह के बाद युद्ध को प्रस्थान करने के पूर्व पति से बातचीत का भी अवसर नहीं पाती है, किन्तु उसने पति के गमन में किसी प्रकार

१. पृ० ३।११५
२. पृ० ९७।३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की अरुचि प्रकट नहीं की है। इसी प्रकार जब उसकी सास केतुमती ने कलंक लगाकर उसे निकाल दिया, तब भी चुपचाप चली जाती है, किसी प्रकार का विरोध नहीं करती है। इस व्यवहार से उसकी अत्यन्त सरलता व्यक्त होती है। अंजना उस पूर्व दिशा के समान है, जिसे बालसूर्य जैसे सर्वाधिक तेजस्वी ज्योतिपुंज को उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। हनुमान जैसे चरमशरीरी और बचपन में अपने शरीर के गिरने से शिला के टुकड़े कर देने वाले पुत्र को जन्म देने का सौभाग्य अंजना जैसी सती नारी को मिला है। अंजना असद् कर्म से इतना डरती है कि वसन्तमाला के यह समझाने पर भी कि गर्भावस्था में इस भयंकर वन में रहने का क्यों निश्चय करती हो? वन में रहने की कठिन प्रतिज्ञा को तोड़कर महेन्द्रपुर ही चलो, तब केवल रोकर ही अपने ऊपर लगाये गये कलंक की असहनीयता व्यक्त कर देती है।[1] यही उसके शील चरित्र की प्रमुख विशेषता है। वन में साधु के मिलने पर उनको परिक्रमा कर प्रणाम करती है। इस प्रकार दुःख में अपने धार्मिक शिष्टाचार का ध्यान रखती है। यद्यपि अंजना को कोई सुख नहीं प्राप्त हुआ, एक वार जो पति समागम हुआ, वह भी गुप्त मिलन होने से कष्ट की आशंका से भरा हुआ था और वास्तविक कष्ट का कारण बना, किन्तु नायिका के रूप में उसका प्रमुख गुण यही है कि उसे कष्ट की अग्नि में तपने के बाद स्वर्ण की चमक जैसा चरित्र का उज्ज्वल रूप मिला है और उसके सब कष्ट उसमें भस्म हो गये हैं तथा नाटक के अन्त में राज्याभिषिक्त हो जाने वाले पति से स्थायी समागम हो गया, जो कि प्रत्येक स्त्री को एक शिक्षा दे जाता है कि उसे सन्मार्ग पर चलकर दुःखों की परवाह नहीं करनी चाहिए। अन्त में कल्याण का प्रशस्त पथ प्राप्त होगा।

वसन्तमाला :—यह अंजना की सहेली है। नाटक में यह देखने में आया है कि नायिका अंजना की अपेक्षा वसन्तमाला का चरित्र कम आकर्षक नहीं है। वसन्तमाला अपनी सखी अंजना के मनोभाव को पहचानती है तथा हर तरह से अंजना को प्रसन्न करने का उसका प्रयास रहता है। केलीवन में वसन्तमाला पवनंजय का परिचय देकर यह बताती है कि एक बार अंजना पुष्प चयन कर रही थी, वहीं पवनंजय ने अञ्जना को देखा, इसके बाद की कहानी तुम जानती ही हो। यह सब इस प्रकार सुनाती है, जैसे वसन्तमाला एक अन्य व्यक्ति की कथा कह रही हो। वह पवनंजय के प्रति होने वाले अञ्जना के झुकाव को पुष्प चुनने की अवस्था के साथ ही ताड़ गयी थी, इसलिए कृतक स्वयंवर में अञ्जना का अभिनय स्वयं करके पवनंजय की भूमिका ग्रहण करने वाली अञ्जना के गले में वरमाला डाल देती है। अञ्जना ने मुस्कराकर स्वीकार किया था कि वसन्तमाला ने मेरे हृदय में अवगाहन किया है। हृदयसमा सखी के लिए दुरवगाह क्या हो सकता है? अर्थात् कुछ भी नहीं। उसकी विनोद-प्रियता के कई प्रसंग देखने में आते हैं, बल्कि कहना चाहिए कि विदूषक ने पवनंजय का जितना मनोरंजन नहीं किया है, उससे बढ़कर मनोरंजन के स्थल वसन्तमाला द्वारा उपस्थित किये गये हैं। प्रथम अंक के

---

१. पृ० ८१—गद्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्त में जब मज्जन वेला के अतिक्रान्त हो जाने की सूचना द्वारा राजकुमारी अंजना को बुलाया जाता है, तब वसन्तमाला कहती है, भर्ता, अब अञ्जना का हाथ छोड़ दो, कल (स्वयंवर में) ग्रहण करना।

द्वितीय अंक में विदूषक के पेट और पेटूपन को लेकर वसन्तमाला ने जो परिहास किया है, वह विदूषक के चरित्र के प्रकरण में लिखा जा चुका है। विनोदी स्वभाव होने से ही चतुर्थ अंक में पीछे से जाकर युक्तिमती की आँखें बन्द करके थोड़ा-सा विनोद करती है।

वसन्तमाला भी अंजना की आयु की है, क्योंकि उसकी सखी ही है, किन्तु वह अंजना के साथ उसकी ससुराल जाती है। उसे दासी का स्थान नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि द्वितीय अंक के उसके ही कथन से ज्ञात होता है कि महेन्द्रपुर में उसे ऐसा सुख प्राप्त था, जिससे वह महेन्द्रपुर को इन्द्रपुरी अमरावती के तुल्य बतलाती है तथा पवनंजय के यहाँ भी उसे राजकुमारी अंजना जैसा ही सम्मान प्राप्त है। जब विवाह के बाद ही पवनंजय को वरुण के विरुद्ध संग्राम में जाना पड़ता है, तब अंजना को उदासीनता को दूर करने के लिए वसन्तमाला अंजना का हर तरह से शीतोपचार भी करती है। जब अंजना को सास द्वारा कलंक की शंका से या कुल के परिवाद के भय से निर्वासित कर दिया जाता है, तब वसन्तमाला ही ऐसे कठिन समय में अंजना की संगिनी है। यहाँ तक अंजना का साथ देती है कि शेर के झपटने के समय वसन्तमाला सिंह के सामने तीन हाथ की दूरी पर पड़ रहती है। इसका आशय यह हुआ कि वसन्तमाला अपने प्राणों के बलिदान द्वारा भी अञ्जना की रक्षा का उद्योग करती है। सप्तम अङ्क में वसन्तमाला के इस प्रसंग की चर्चा प्रतिसूर्य ने की, तब विदूषक के मुख से ये प्रशंसा के शब्द निकल पड़े कि सखी स्नेह वैसा ही (सच्चा) होता है। विदूषक द्वारा ही उस सखी-स्नेह का मूल्य आँका गया है, क्योंकि आखिर विदूषक सखात्व के कर्तव्य को जानता है। इस प्रकार सर्वाधिक आत्म-समर्पण करने वाली वसन्तमाला का चरित्र बहुत ऊँचा है, किन्तु उसकी प्रशंसा में किसी प्रमुख पात्र ने कुछ भी नहीं कहा है। पवनंजय ने युद्ध से लौट कर वसन्तमाला की कुशलता पूछी थी, किन्तु युक्तमती के शब्दों में वसन्तमाला की कुशलता के पूछने का अभिप्राय अंजना के सम्बन्ध में पूछने से था। इस प्रकार जिसने अपने कौमार्य भाव में अपने लिए किसी प्रेमी के अभाव की कल्पना नहीं की तथा सर्वस्व त्याग के साथ अपनी सखी अञ्जना का साथ दिया, जो इस नाटक में किसी के हृदय में सहानुभूति का पात्र न बन सकी, वह वसन्तमाला पाठकों तथा दर्शकों के हृदय में अवश्य सहानुभूति की पात्र रहेगी।

रत्नचूड़ा—यह मणिचूड़ गन्धर्व की पत्नी है। स्त्री जाति के कारण स्त्रियों की वेदना को पहचानती है। इसलिए अंजना के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति होने से अञ्जना का ध्यान न रखने वाले पवनंजय को ही नहीं, पुरुष जाति को ही निष्ठुर बताती है। वनवास में जब अंजना के समक्ष सिंह आया था, तब वसन्तमाला की आर्तध्वनि सुनकर उसने करुणावृत्ति से पता लगाया। उस विपत्ति को ज्ञात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर अपने पति को प्रेरित किया कि इन दोनों अशरण स्त्रियों की रक्षा की जाय। इतना ही नहीं, पति द्वारा उनकी सिंह से रक्षा हो जाने के पश्चात् रत्नचूड़ा ने इनके पास पहुँच कर उन्हें धैर्य बँधाया और कहा, भय मत करो, हम लोग रक्षक हैं। इस प्रकार स्त्री जाति के प्रति सहानुभूति रखने वाली तथा अपने पति को कर्तव्य की ओर प्रेरित करने वाली रत्नचूड़ा अञ्जना और वसन्तमाला के हृदयों की तरह सबके हृदयों द्वारा स्मरणीय है।

युक्तिमती—यह पवनंजय की माता केतुमति की दासी है। वह अपनी स्वामिनी के स्वभाव से पूर्णतया परिचित है। यद्यपि उसे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि अंजना गर्भवती है और उनको देखकर अपने को कृतकृत्य करना चाहती है, किन्तु जब वसन्तमाला उससे कह रही थी कि मैं अंजना के गर्भवती होने के शुभ संवाद को केतुमती के पास सुनाने जा रही हूँ, तब वह कहती है कि मेरा हृदय कुछ व्याकुल हो रहा है; क्योंकि वह जानती है कि पवनंजय के एकान्त सहवास पर केतुमती विश्वास करने वाली नहीं है। जबकि वसन्तमाला कहती है क्या चन्द्रलेखा विष उगल सकती है? केतुमती ने युद्ध से पवनंजय के लौटने पर मांगलिक स्वागत का कार्य युक्तिमती को सौंपा था। इतना ही नहीं, वह बात को पहचानती है। जब पवनंजय ने वसन्तमाला की कुशलता पूछी, तब वह उत्तर देती है, स्वामिनी अंजना के साथ वसन्तमाला कुशल है, किन्तु अन्य निवेदन भी है। यह कहकर अंजना के महेन्द्रपुर जाने का समाचार कहकर कुछ उदासीन हो जाती है। वह उचित बात पवनंजय से भी कह देती है कि यहाँ आकर माता पिता से मिले बिना आपका महेन्द्रपुर को प्रस्थान करना उपयुक्त-सा नहीं लगता है। इस प्रकार युक्तिमती सार्थक नाम वाली प्रस्तुत नाटक में चित्रित है।

इसके अतिरिक्त कुछ स्त्री पात्र और हैं, जिनका चरित्र महत्त्वपूर्ण न होने से नामोल्लेखन ही पर्याप्त है। उनमें प्रमदवनपालिका मालतिका है, जिसे स्वयंवर के एक दिन पूर्व मांगलिक पुष्पों के चयन का कार्य औषधिमाला के गुम्फन के हेतु सौंपा गया था। उसे राजपरिवार के उत्सव आदि के सम्बन्ध में जिज्ञासा है, क्योंकि वह अपने को उसी परिवार से सम्बद्ध समझती होगी। वह अंजना के भावी वर के सम्बन्ध में भी मधुकरिका से बातचीत करती है।

दूसरी मधुकरिका है जो कि कृतक स्वयंवर में मिश्रकेशी का कार्य करती हुई राजकुमारों का बड़े सुन्दर ढंग से परिचय देती है। वह भी प्रत्युत्पन्नमति वाली है, क्योंकि सहसा कृत्रिम स्वयंवर के हेतु आवश्यक औषधिमाला के स्थान पर मुक्तमाला का सुझाव देती है। इतना ही नहीं, वह कुछ विनोदी स्वभाव की भी है।

वनेचर की पत्नी लवलिका बिल्कुल वनेचर के स्वभाव वाली है। युद्धस्थल में धनुर्ग्रहिणी शरावती प्रतीहारिणी का कार्य करती है तथा प्रतीहारी वैजयन्ती है जो अपना कार्य आज्ञानुसार पालती है।

इनके अतिरिक्त कुछ स्त्री पात्रों का अभिनय नहीं है, किन्तु उनकी सूचना नाटक में है। उनमें राजा विद्याधरराज प्रह्लाद की पत्नी, पवनंजय की माता केतुमती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमुख है। यद्यपि इसका चरित्र अंजना के पति के एकान्त समागम की जानकारी किये बिना अंजना को कलंक लगाकर निकालने के कारण दोषपूर्ण था, किन्तु कंचुकी आदि के कथन से ज्ञात होता है कि कुल वनिताएँ कुलीनता को प्रमुख समझकर कुल के ऊपर आक्षेप के भय से ऐसा कर देती हैं। इसलिए केतुमती विशेष घृणा की पात्र नहीं है और न पवनंजय ने ही अपनी माता के प्रति कुछ दोषारोपण किया है, फिर केतुमती ने महेन्द्रपुर भिजवाया था, वन में नहीं। यदि हम यह सोचें कि रामचन्द्र ने भी सीता का परित्याग केवल जनापवाद के भय से किया था, तब अंजना के निर्दोष चरित्र को जानने वाली केतुमती के प्रति पाठक की घृणा कुछ नहीं रह जायगी। तीसरा कारण अंजना का अपने पूर्व जन्म के कर्म का परिपाक है, जिसे गन्धर्व ने स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त अंजना की माता मनोवेगा का नाम भी नाटक में आया है।

भावपक्ष एवं कलापक्ष

अंजना-पवनंजय रूपकों में नाटक श्रेणी में है। दशरूपक के अनुसार नाटक का अंगी रस शृंगार या वीर होना चाहिए। यद्यपि इसमें दोनों रसों की व्यंजना प्रभूत मात्रा में है, फिर भी इसका अंगी रस शृंगार ही माना जायगा। उसका कारण यह है कि एक तो नाटक का नाम नायक तथा नायिका दोनों के नामों को मिलाकर रखा गया है। नायक और नायिका की प्रमुखता शृंगार रस की प्रधानता की सूचक है। नाटक के प्रथम अंक में दोनों के अनुराग को स्वयंवर के माध्यम से सामाजिक अनुमति प्रदान करायी जाती है, जो शृंगार रस के अनुकूल पृष्ठ-भूमि तैयार कर देती है। द्वितीय अंक में शृंगार रस के अनुकूल समस्त वातावरण तैयार होता है। उद्यानाध्यक्षों के द्वारा प्रमदवन के मध्य बकुलोद्यान को सजाकर उद्दीपक सामग्री इतनी अनुकूल की गयी है कि वहां की सुख सेव्यता के कारण विदूषक की आंखें भी आनन्दमग्न होकर घूर्णित होने लगती हैं। वहां वसन्तमाला अंजना को पहुँचाने का कार्य करती है। पवनंजय अंजना से मिलने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हैं और उन्हें नवसमागम कामिनी के अनेक अनावेद्य भावों से परिचित करा रहा है। नववधू के समागम का उत्सव कामियों के मन को आकर्षित करने वाला कामदेव का विशेष उत्साह ही है। अंजना नायिका अपने अस्पष्ट अवलोकनों, विकसित होने वाली दन्तकिरणों के हास्य, अस्पष्ट तथा अर्ध-निसृत कामवार्ता, सुकुमार चेष्टा आदि ललित भावों और शिथिल आलिंगनों के द्वारा न तो बिल्कुल लज्जा को छोड़ती ही है और न अत्यन्त निश्चिन्तता को ही प्राप्त करती है।[1] इसमें अंजना के अनुभावों का वर्णन उद्दीपन भाव का कार्य कर रहा है। पवनंजय के अंग भी अनेक चेष्टाएं कर अनुभावों को प्रकट कर रहे हैं। उनके नेत्र अंजना के मुखकमल को देखने के लिए उत्कण्ठित हैं, हाथ स्तनतट की क्रीड़ा के लिए अत्यन्त फड़क रहे हैं, कन्धे बलात् अंजना की भुजाओं को अपने ऊपर स्थापित कराना चाहते हैं और उनका चित्त पल भर भी बिना अंजना के नहीं रहना चाहता है।[2]

१. २४।५
२. २५।८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसन्त समय की शोभा से मनोहर प्रमदवन ने डण्ठलों से च्युत पुष्पों के द्वारा लता मण्डपों के भीतर दिशा दिशा में सम्भोग शय्या का निर्माण कर दिया है। मन्द, सुगन्ध तथा शीतल पवन बह रही है तथा विदूषक और वसन्तमाला दोनों ने बहाना लेकर वहां से दूर हटकर एकान्त स्थान का निर्माण कर दिया है। इस प्रकार सम्भोग के अनुकूल पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ था। पवनंजय अंजना से कह रहे हैं, तुम लज्जा रस में इतनी अधिक हठीली क्यों हो, आलिंगन के लिए अपने अंगों को क्यों नहीं सौंपती हो, मुख रूपी चन्द्र का पान करने लिए क्यों नहीं मुख को अर्पण करती हो, मेरी दृष्टि से दृष्टि क्यों नहीं मिलाती हो और रुद्ध कण्ठ वाली कुछ भी बोलती क्यों नहीं हो ?[१]

इस प्रकार सम्भोग शृंगार का अवसर कवि ने उपस्थित किया है, किन्तु विप्रलम्भ शृंगार की गहरी अनुभूति लाने के लिए सहसा पिताजी की प्रस्थान-भेरी का शब्द नायक के कानों में सुनाया गया है, जिससे यह सम्भोग शृंगार का क्षणिक अवसर भी पूरा नहीं होता है और पवनंजय युद्ध के लिए प्रस्थान कर देते हैं।

युद्ध में पहुँचने पर पवनंजय तो युद्ध में तल्लीन हो जाते हैं, अतएव उन्हें वियोग के दुख का कोई अनुभव नहीं होता है। चार मास वाद केवल एक दिन को जब दोनों पक्ष युद्ध बन्द कर देते हैं, तब नदी के किनारे सन्ध्या को विरह-विधुरा चक्रवाकी के दर्शन से उन्हें अंजना के विरह की स्मृति आने से पवनंजय को भी अंजना का वियोग सताने लगता है। इस प्रकार कवि ने तृतीय अंक में युद्ध के प्रसंग में भी विप्रलम्भ के वर्णन का अवसर निकाला है।

एक ओर इलायची को कंपित करती हुई वायु बह रही है, एक ओर चन्द्रमा स्वच्छ चांदनी की वर्षा कर रहा है। इधर कामदेव खुलकर वाणों से प्रहार कर रहा है। इसलिए पवनंजय अपने मित्र से पूछते हैं कि ऐसी स्थिति में तुम निःशंक होकर बताओ कि मुझे कैसे धैर्य बंधाते हो ?[२] पवनंजय की वियोग सम्बन्धी बेचैनी को शान्त करने लिए विदूषक द्वारा किये गये उपचारों की व्यर्थता से पवनंजय की कामवेदना की तीव्रता का आभास मिलता है और उससे विप्रलम्भ शृंगार की पुष्टि होती है।

चन्द्रिका और मलयानिल, दोनों संताप का कारण वन गये हैं। कल्हार और कदली पत्र से क्या शान्ति मिल सकती है ? अर्थात् शान्ति की आशा से उनका नाम लेना भी व्यर्थ है। आश्वासन के लिए विदूषक द्वारा बहुत शब्दों के कहने या बकने से क्या लाभ है, क्योंकि प्रभावहीन आश्वासन के शब्द कहना वकना ही तो है। पवनंजय केवल अंजना के गाढ़ आलिंगन को ही आश्वासन देने वाला मानते हैं।[३]

इधर अंजना, पवनंजय के संग्राम में चले जाने पर विरह से अत्यन्त व्याकुल है। स्वप्न में कई बार उसने प्रियतम के दर्शन किये और उन्हें वास्तविक समझ ठगी

---

१. ३१।१५
२. ४२।८
३. ४४।१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रह गयी है। अंजना की विरहावस्था के दुःख को दूर करने का प्रयास उसकी सखि वसन्तमाला करती है, किन्तु अंजना को पवनंजय के बिना शान्ति कहाँ ? वह कदली-पत्र से चाँदनी के उड़ा देने की बात करती है। कहना चाहिए कि वियोग में उन्माद अवस्था को प्राप्त हो गयी है। वसन्तमाला भी कहती है कि अब और क्या उपचार किया जाय ! शान्ति के उपचारों में भी तो अंजना को अशान्ति के पदार्थ दिखाई देते हैं। मणिदर्पण को इसलिए धारण नहीं करती है, क्योंकि उसे चन्द्रमा का बिम्ब समझती है। पुष्पों की शय्या पर इसलिए नहीं शयन करती है, क्योंकि वह समझती है कि ये तो कामदेव के ही सैकड़ों अस्त्र हैं।[1] इस प्रकार वसन्तमाला के कथन से ही अंजना की असह्य वियोग वेदना विप्रलम्भ शृंगार की गहरी अनुभूति कराती है।

पवनंजय को चक्रवाकी के दर्शन से जो स्मृति आयी, वह उन्हें किसी बहाने से अंजना के पास तक ले आयी, किन्तु अंजना कई बार स्वप्न में भी तो कल्पित पवनंजय को देख चुकी थी। इसलिए प्रत्यक्ष पवनंजय में उसका विश्वास नहीं है। यहाँ तक विप्रलम्भ की व्यंजना कराने के बाद कवि दोनों का एक बार फिर क्षणिक मिलन करा देता है। मृणाल अलंकृत, चन्दन चर्चित, पाण्डुवदना अंजना पवनंजय के समीप है। पवनंजय कहते हैं कि विरह-शान्ति के प्रयास का श्रम क्यों करती हो ? समीपवर्ती मणिमय चन्द्रकान्त गृह में ही हम दोनों चलें। इस प्रकार क्षणिक सम्भोग की सूचना देकर पुनः पवनंजय के युद्ध में चले जाने के पश्चात् और समय पर युद्ध से न लौटने पर गर्भवती अंजना को वन में निर्वासित होना पड़ा। घर में चार मास बाद पवनंजय से मिलन की आशा में अंजना को विरह की कोई अनुभूति ही न थी, किन्तु वन में पहुँचने पर तो वह स्मृति बार बार आना स्वाभाविक थी। दूसरे, गर्भस्थ शिशु की रक्षा का दायित्व। अंजना की विरह व्यंजना का वर्णन तो विशेष नहीं है। केवल पवनंजय के अन्वेषण के समय शुक ने अंजना के सुने हुए शब्दों को ज्यों का त्यों दुहराया है कि हे वसन्तमाले, आर्यपुत्र ने तो मेरी उपेक्षा ही कर दी है। मैं मन्द-भागिनी इस प्रकार कितने समय तक अपने को थामूँ ?[2] ये शब्द वसन्तमाला से अंजना ने वन में विरह काल में कहे थे। उनसे अंजना के विरह दुःख की अनुभूति द्वारा विप्रलम्भ शृंगार की अभिव्यंजना होती है। मणिचूड़ गन्धर्व तथा उसकी पत्नी रत्नचूड़ा के कथन से भी अंजना के विरह दुःख और विप्रलंभ की व्यंजना करायी गयी है। मणिचूड़ के शब्दों में इतने दिन तक विरह सन्तप्त अंजना को छोड़ कर स्थित रहने वाला पवनंजय सचमुच ही उन्मत्त है।[3]

पवनंजय की अंजना के विरह में जो अवस्था है, उसकी अभिव्यंजना के लिए षष्ठ अंक का वह प्रकरण पूरा का पूरा पठनीय है, जिसमें अंजना के अन्वेषण के लिए पवनंजय मातंगमालिनी वन में भ्रमण कर वृक्षों, पशुओं, पक्षियों से उन्मत्त होकर

१. ४८ पृ० का गद्य
२. ९६।३५
३. ८८।३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंजना का पता पूछते हैं। कई स्थानों पर भ्रम में पड़ जाते हैं और अन्त में निराश-से होकर एक लतामण्डप में ध्यान-मग्न होकर अपने आपको भूलकर बैठ जाते हैं। प्रतिसूर्य जब उनकी अवस्था को देखते हैं, तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस शोचनीय अवस्था में पहुँचे हुए तथा पहचान में न आने वाले पवनंजय के प्रत्याश्वासन का अंजना को लाने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।[१] सचमुच अंजना पवनंजय के प्राणों को सचेत करने के कारण प्राणनाथा ही बन गयी।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में सम्भोग श्रृङ्गार के स्थल अत्यल्प हैं। वे भी विप्रलम्भ की तीव्र अनुभूति के लिए हैं। नायिका की अपेक्षा नायक के विप्रलम्भ श्रृङ्गार का वर्णन अधिक है।

अन्य अंगभूत रसों में वीर रस की अभिव्यंजना विशेष है। द्वितीय अंक में ही रणभेरी के बजने पर तथा यह ज्ञात होने पर कि वरुण के विरुद्ध पिताजी को अभियान करना है, पवनंजय के हृदय में जाग्रत हुए उत्साह से वीर रस की अभिव्यक्ति होती है। पवनंजय का उत्साह यहाँ तक बढ़ा हुआ है कि जब मंत्री के द्वारा वरुण की अजेय स्थिति के अनेक प्रमाण दिये गये हैं कि वरुण का स्थान जल-निधि है; उसकी महानता को पार नहीं किया जा सकता; शत्रु-दमन में कुशल उसके सौ पुत्र हैं; विद्याधरराज गण उसकी स्वयं सेवा करते हैं। इतना ही नहीं, विद्याधर राजा लोग उसके यहाँ द्वारपाल का कार्य करते हैं।[२] तब पवनंजय का उत्साह और अधिक बढ़ जाता है। वे कहते हैं, पाताल से हठपूर्वक जड़ से उखाड़ी गयी पातालपुरी को मैं क्रोध से समुद्र के बीच में फेंक दूँगा तथा शत्रुओं के रुधिर, बाणों के मुख से निकली अग्नि की लपटों द्वारा युद्ध में सुखा दिये जायँगे।[३] इसी प्रकार पंचम अंक के आरम्भ के सेनापति के कथन से पवनंजय के उत्साह तथा वीरता की अभिव्यंजना हुई है।

तृतीय अंक में जब अंजना का स्मरण कर पवनंजय अंजना से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो जाते हैं और विदूषक प्रतिपक्षी वरुण के विद्यमान रहते उनके गमन को अनुचित बताता है, तब पवनंजय के क्रोध की अभिव्यक्ति द्वारा रौद्र रस की व्यंजना की गयी है। पवनंजय क्रोध में कह उठते हैं कि मैं अपनी ज्या की टंकारों द्वारा सुरांगनाओं को चकित कर दूँगा, जिससे घबड़ाकर वे अपने पतिदेवों के गले में लिपट जायँगी, वे पति इससे प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करेंगे। ऐसे देवों के कानों को बधिर बनाता हुआ, तथा कान पर्यन्त खींचकर छोड़े गये सैकड़ों पैने बाणों द्वारा दिशाभागों को आच्छादित करता हुआ समस्त शत्रुपक्ष को आज चूर-चूर कर दूँगा।[४]

जिस समय चतुर्थ अंक में गर्भवती अंजना का निर्वासन कर दिया जाता है और वन में चारों और दुःख तथा भय का वातावरण दिखाई देता है, यहाँ तक कि

१. १०२।५५
२. ३५।२१
३. ३५।२२
४. ४४।१४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिंह जैसे हिंसक जन्तुओं के कारण जीवन का सर्वनाश भी दिखाई देता है, तब वसन्तमाला विलाप करती हुई अंजना की रक्षा के लिए जो आह्वान करती है, उससे करुण रस की अनुभूति हुए विना नहीं रहती है। वसन्तमाला का विलाप बड़ा मार्मिक है।[1]

चतुर्थ अंक में क्रूर विद्याधर भैरव के सम्वन्ध में जो वर्णन है, उसकी वेशभूषा, मदिरा पान करके गिरना पड़ना तथा अपने ऊपर ही थूकने आदि से वीभत्स रस की अभिव्यक्ति होती है। चेट के कथन से ज्ञात होता है कि क्रूर विद्याधर भैरव का मद असीम हो गया है। इस समय ये मदिरा का कुल्ला करके वार वार अपने शरीर पर थूक रहे हैं।[2] इतना ही नहीं, कंचुकी को जब क्रूर अत्यन्त भयानक वेष वाले शरीर को धारण किये हुए आता दिखाई देता है, तब उसे यह अनुभव होता है कि यह साक्षात् आरभटी वृत्ति की तरह आ रहा है।[3] वीभत्स रस में आरभटी का वर्णन उचित ही है।

सप्तम अंक में जब प्रतिसूर्य अञ्जना के वनवास वृत्तान्त को सुनाते हैं, तव उनमें अनेक रसों के अनुरूप वृत्तान्तों का गुम्फन है। वन में मिले हुए अमितगति मुनिराज के वर्णन में शान्त रस की अभिव्यक्ति है। वे आत्मा में आत्मा के द्वारा आत्मा का ही पुण्य ध्यान कर रहे थे। समस्त इंद्रियाँ चंचलताहीन थीं। वे पर्यंकआसन से साक्षात् भगवान की तरह आसीन थे। उनके देखने से अंजना आदि भी अपना वनवास का दुःख भूल गयी थीं।

सिंह की आकृति में रौद्र तथा उसे देखकर अञ्जना के भय की अनुभूति व्यक्त होती है। वहीं शरभ का रूप धारण करके सिंह को आकाश मार्ग से ले जाने के मणिचूड़ के वृत्तान्त में तथा शिशु हनुमान के ऊपर से गिरकर भी चोट न लगने, प्रत्युत शिला के कण-कण हो जाने से अद्भुत रस की अनुभूति होती है। इस प्रकार अङ्ग रूप में विविध रसों की अभिव्यंजना यथास्थान है।

सहृदय पाठकों को रस की सच्ची अनुभूति के लिए नाटक पढ़ना अपेक्षित रहेगा, क्योंकि रस का स्रोत तो नाटक में ही है, आलोचना तो उसका प्रतिबिम्ब दिखाकर उसकी ओर संकेत मात्र कर देती है। भारतीय नाटक के मूल उद्देश्य रस की निष्पत्ति की पूर्ति भी मूल नाटक से ही होगी। नाट्य शास्त्र में नाटक को अनुकृतिमूलक काव्य माना गया है, किन्तु केवल अनुकृति ही पर्याप्त नहीं है। अनुकृति का लक्ष्य है दर्शक के हृदय में सुख और दुःख की भावनाओं को उत्तेजित करना। सारांश यह कि रस-निष्पत्ति ही भारतीय नाटक का प्रधान उद्देश्य है।[4] उसकी पूर्ति के लिए मूल नाटक का दर्शन पठन अपेक्षित है।

---

१. ६५ पृ० का गद्य

२. ६१।१३

३. ६३।१६

४. समीक्षायण, डा० कन्हैयालाल सहल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणाभिव्यक्ति—सम्पूर्ण नाटक में प्रसाद गुण विद्यमान है, जिससे पाठक और दर्शक नाटक के भाव को सरलता से अधिगम कर लेते हैं। जिन रचनाकारों में स्वाभाविक कलाकारिता के स्थान पर उन्हें कारीगरी मिली है, रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी रचनाओं को चमत्कारवादी बताकर मध्यम या निम्न कोटि का माना है। इस तरह सरलता और सुबोधता समीक्षा के प्रमुख भावों में से एक है।[1] प्रसाद गुण के कारण इस नाटक में हस्तिमल्ल आलोचना के इस मान पर खरे उतरे हैं, क्योंकि सूत्रधार ने ही उनकी इस रचना को सरलसरला बताया है। उदाहरण के लिए पृष्ठ ४१ के ५वें छन्द को लिया जा सकता है। सामान्य संस्कृत के जानकार भी इनके इस नाटक के अर्थों को हृदयंगम कर लेते हैं।

ओज गुण के उदाहरण के लिए पृष्ठ ३५ के २२वें तथा पृष्ठ ३६ के २३वें छन्द को लिया जा सकता है।

हस्तिमल्ल के छन्दों में माधुर्य गुण भी विशेष रूप से पाया जाता है। उनसे संगीत का आनन्द उठाया जा सकता है। इसके उदाहरण के लिए पृष्ठ ३१ के १५वें तथा पृष्ठ २७ के १०वें और ११वें छन्दों को प्रस्तुत किया जा सकता है।

अलंकार सौन्दर्य—हस्तिमल्ल का युग संस्कृत साहित्य में अलंकार का युग था। अलंकारों से एक ओर कामिनी को सजाने की भूमिका तैयार की जा रही थी और दूसरी ओर कविता कामिनी भी अलंकारों से बोझिल होती जा रही थी। उत्तरकालीन कवियों ने काव्य का उद्देश्य बाह्य शोभा, अलंकार, श्लेष योजना, शब्द विन्यास चातुरी तक ही सीमित कर दिया था; अलंकार कौशल का प्रदर्शन करना तथा व्याकरण आदि के नियमों के पालन में अपनी निपुणता सिद्ध करना उनका प्रधान लक्ष्य हो गया था। ऐसी स्थिति में काव्य का विषय गौण हो गया तथा भाषा और शैली को अलंकृत करने की कला प्रधान हो गयी थी।[2] मुझे हस्तिमल्ल इसके अपवाद दिखाई देते हैं। हस्तिमल्ल के नाटकों में अलंकार प्रचुर मात्रा में होने पर भी उनसे नाटक का सौन्दर्य अभिभूत नहीं हुआ है।

शब्दालंकार—प्रस्तुत नाटक में शब्दालंकारों में अनुप्रास, श्लेष और यमक, ये तीन अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। अनुप्रास तो प्रायः सर्वत्र उपलब्ध होता है, इसलिए उसके निर्देश की अपेक्षा नहीं है। यमक अलंकार को प्रथम अंक के तृतीय छन्द में[3], पंचम अङ्क के २७वें छन्द में[4] तथा ३०वें छन्द में[5] देखा जा सकता है।

श्लेष का प्रयोग तृतीय अङ्क के ९वें छन्द में, चतुर्थ अङ्क के द्वितीय छन्द में, षष्ठ अङ्क के ४७वें छन्द में तथा प्रथम अङ्क के छठवें छन्द में है। इनके प्रयोग की

१. हिन्दी आलोचना की अर्वाचीन प्रवृत्तियां, पृ० ८
२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० ६२
३. निकेतनानि, केतनानि
४. गरं, नगरं, मृगये मृगलोचनाम्
५. ४।५, २७।११, ४०।४, ७५।१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषता यह है कि ये अलंकार प्रयत्नपूर्वक नहीं गढ़े गये हैं। इसलिए पाठक तथा दर्शक को मानसिक आयाम नहीं करना पड़ता तथा नाटकीय सरलता, सरसता तथा सौन्दर्य भंग नहीं होता।

अर्थालंकार :—कवि ने प्रस्तुत नाटक में शब्दालंकारों को विशेष स्थान नहीं दिया है। उसकी अपेक्षा अर्थालंकारों को अधिक स्थान दिया है। अर्थालंकार का इतना महत्त्व है कि उसके विना सरस्वती विधवा ही है।[1]

अर्थालंकारों में अर्थालंकार की मूलभूत या उपजीव्य उपमा सर्वाधिक पायी जाती है। उपमा के लिए द्वितीय अङ्क के १२वें, तृतीय अङ्क के दूसरे, तीसरे, चतुर्थ अङ्क के दूसरे, पंचम अङ्क के ११वें, १७वें, २७वें तथा सप्तम अङ्क के ५वें छन्द दृष्टव्य हैं।

उपमा के अतिरिक्त इस नाटक में रूपक,[2] भाविक,[3] उदात्त,[4] विभावना,[5] भ्रान्तिमान,[6] प्रतिवस्तूपमा,[7] उत्प्रेक्षा,[8] समुच्चय,[9] अतिशयोक्ति,[10] अप्रस्तुत प्रशंसा,[11] दीपक,[12] अर्थान्तरन्यास,[13] परिणाम,[14] विशेषोक्ति,[15] विषम,[16] सन्देह,[17] समासोक्ति,[18] स्मरण,[19] व्यतिरेक,[20] विरोध,[21] मुद्रा[22]—ये अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। हस्तिमल्ल के ये अलंकार भावपक्ष के पोषक हैं।

१. अर्थालंकार रहिता विधवैव सरस्वती। (अग्निपुराण, पृ० ७०३, ३४४।१)
२. ४।५, २७।११, ४०।४, ७५।१५
३. ११२।८
४. ३।३, २३।३
५. १४।११
६. इतः श्यामवहुलपत्रलतया दिवापि शंकितनिशीथैश्चक्रवाकचक्रवालैः परिह्रियमाणपरिसरः नवजलधरोद्गमलुब्धै, मुग्धचातकपोतकै निर्धीयमानमधुनिष्पन्दः शिखण्डिमण्डलैरपिकैकारवमुखरै रितस्ततो दीयमान ताण्डवोपहारः शोभते एष वालतमालः। ९३।२३, ९४।२६
७. पृष्ठ २१—सकलेनपि राजलोकेन प्रतिकूलतां मुक्त्वा सम्भाविता भर्ता भर्तृदारिका च, न खलु कदाचिद् राजसिंहः करिकलभैरभियुक्तो भवेत्।
८. १३।१०, १७।१७, १९।१९
९. ३५।२१, ४२।८
१०. ७।७
११. ३४।१९, ६६।१९
१२. ४१।५,
१३. ६८।६,
१४. ७८।२०, ७८।२१,
१५. ४२।९,
१६. ८८।४,
१७. ४७।१६,
१८. ५।६, ८७।१,
१९. ९४।१०,
२०. ९४।२८,
२१. ४२।९, ४४।१३, ११७।१३,
२२. प्रकृतार्थपरैः शब्दैः सूचनीयं हि सूच्यते यत्रतत्र समाख्यातामुद्राख्यालंकृतिबुधैः। (अलंकार मंजूषा, कारिका १०६ तथा सुभद्रा नाटिका, पृ० ४०।३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छन्द—हस्तिमल्ल ने प्राचीन नाटकों की परम्परा के अनुसार इस नाटक में भी छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया है, किन्तु यथा अवसर गद्य का भी प्रयोग है। इस नाटक में सब मिलाकर १८८ छन्द हैं। उनकी संख्या निम्न प्रकार है :— आर्या[१] (३७), शार्दूलविक्रीडित[२] (३०), अनुष्टुप[३] (२०), उपजाति[४] (१७), शिखरिणी[५] (१६), मालिनी[६] (१२), वसंततिलका[७] (९), तथा स्रग्धरा[८] (६), वंशस्थ[९] (५), मंदाक्रान्ता[१०] (५), वियोगिनी[११] (५), हरिणी[१२] (३), औपच्छन्दसिक[१३] (३), इन्द्रवज्रा[१४] (२), पुष्पिताग्रा[१५] (२) पृथ्वी[१६] (२), शालिनी[१७] (२), द्रुतविलम्बित[१८] (२), उपेन्द्रवज्रा,[१९] प्रहर्षिणी,[२०] रथोद्धता,[२१] प्रमिताक्षरा,[२२] मंजुभाषिणी,[२३]

---

१. (१) ६, १७, (३) ३. ९, १२, १६. १७, १८, १९, (४) १, ४, ६. ७, ८, ११, १५, १९, (५) ९, १३, २०, २१, २२, २७, (६) २, ४, ५, ११, १७, १९, २१, २५, ३१, ३३, ३६, ४०, ४४ = ३७,

२. (१) १, (२) ५, ६, १३, १६, १९, २२, (३) १, ७, १३, (४) १८, (५) १, ४, ५, ७, १०, २३ब, २९ (६) २२, २६, ३८, ४१, ५१, ५२, ५३ (७) २, ३, ७, ८, १४ = ३०

३. (१) १०, १५. (२) ११, १८, (३) ११, २०, (४) १६, (५) ६, ११, ३०, (६) ३, १२, २७, २८, ४५, ४९, ५८, (७) ६, ११, १३, = २०

४. (१) १७, १८, (२) १७, २०, (५) १२, १५, १७, २५, (६) १५, १६, ३०, ३२, ४६, ४७, ५०, (७) ५, १२ = १७

५. (१) २, ५, (२) ७, १४, २१, (३) ५, ८, (४) ५, १७, (५) ३, १८, २८ (६) ६, ३९, ४८, (७) ४ = १६

६. (१) ४, १४, २०, (२) २, ४, (३) ४, (४) ३, १२, (६) ९, २४, ४३, (७) १० = १२

७. (१) ३, १६, १९, (२) १५, (३) १०, (५) २, ८, (६) ३७, (७) १ = ९

८. (१) १०, (२) ९, २३, (३), १४ (६) ५४, (७) १६ = ६

९. (५) १६, २४, (६) १३, १८, (७) ९ = ५

१०. (२) ८, (३) २ (६) २०, ५६, (७)१५ = ५

११. (१) ८, ९, ११, (३) ६, (५) २६ = ५

१२. (२) १०, (४) २, (६) १० = ३

१३. (६) २९, ३४, ४२ = ३

१४. (३) १५, (५) १४ = २

१५. (२) १, ३ = २

१६. (६) ७, ८ = २

१७. (६) ५५, ५७ = २

१८. (५) २३ ब, (६) २३ = २

१९. (४) १४

२०. (२) १२

२१. (५) १९

२२. (१) १२

२३. (६) १ अ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारु,[१] अवलम्बक,[२] तोटक,[३] बैतालीय[४] छन्द एक-एक हैं।[५]

इन छन्दों में गीतितत्व तो है ही, दूसरी विशेषता यह है कि इन छन्दों का प्रयोग रस के अनुकूल किया गया है।

उदाहरण के लिए प्राकृत पैंगलम्[६] के अनुसार वियोगिनी छन्द का प्रयोग करुण रस के अनुकूल होता है। पंचम अंक में २६वां छन्द पवनंजय के द्वारा उसी प्रसंग में प्रयुक्त किया गया है, जबकि उन्हें अंजना के वन में जाने का समाचार मिलता है तथा यह सोचकर व्यथित होने लगते हैं कि हे अञ्जने, वन में मृगांगनाओं द्वारा रुदनपूर्वक देखी गयी तुमने किस प्रकार प्रसूति की होगी। इसके बाद ही विशेष करुणापूर्वक वे वियोगिनी छंद का प्रयोग करते हैं।[७] इसी तरह रस के अनुकूल छन्दों का जो उल्लेख काव्यप्रकाश की टीका[८] में मिलता है, उसके अनुसार प्रस्तुत नाटक में वीर रस की व्यंजना में शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित आदि के प्रयोग प्राप्त होते हैं। नाट्यशास्त्र[९] के अनुसार श्रृंगार में मध्य, करुण में विलम्बित तथा वीर वीभत्स रस में द्रुतलय अपेक्षित होती है। विद्याधर भैरव के प्रसंग में जब वीभत्स रस की अभिव्यंजना है, तब बराबर द्रुत लय के अनुकूल ही वर्ण रचना है।[१०] क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक में उसी छन्द की प्रशंसा की है, जिस छन्द की शब्दावली से ही नहीं, वरन् उसकी गति या लय से रस तथा भाव समझने में सुविधा हो।[११] छन्दों में उपजाति छन्द के अनेक भेद प्रभेद होते हैं।[१२] उनमें से प्रेमा,[१३] हंसी,[१४] जाया,[१५] शाला,[१६] माला,[१७] बाला,[१८] कीर्ति[१९]—इन प्रभेदों का प्रयोग प्रस्तुत नाटक में पाया जाता है।

---

१. (६) १ ब
२. (४) ९
३. (४) १०
४. (४) १३
५. वैतालीय का लक्षण—६ मात्रा, र ग ण, लघु, गुरु, ८ मात्रा र ग ण, लघु, गुरु —छन्दोमंजरी, पृष्ठ १६०
६. प्राकृत पैंगलम्, पृष्ठ २९०
७. पृष्ठ ८४
८. काव्यप्रकाश वामनी झलकीकर टीका, सप्तम उल्लास, पृष्ठ ३३९
९. नाट्यशास्त्रम्, व्हालूम २, १७वां अध्याय, पृष्ठ ३९९
१०. ६०।१०
११. समीक्षा शास्त्र—श्री सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ७७२
१२. वृत्त रत्नाकर, उपजाति प्रकरण
१३. (१) १८
१४ (२) १७
१५. (२) १५
१६. (५) १७
१७. (६) १५
१८. (६) ४६
१९. (७) ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवाद योजना

पाश्चात्य आलोचकों ने कथोपकथन या संवाद को पृथक् नाटकीय तत्व मान-कर इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। भारतीय साहित्य शास्त्र नाटक में रस की अभि-व्यक्ति पर विशेष बल देता है, तथापि उपयुक्त संवाद रस की अभिव्यंजना में ही सहायक नहीं होते हैं, बल्कि संवाद नेता तथा उसके परिवार की चारित्रिक विशेष-ताओं का उद्घाटन करते हैं। साथ ही वार्तालाप के ढंग और शैली द्वारा अपने चरित पर भी प्रकाश डालते हैं[1] और संवादों द्वारा कथानायक भी आगे बढ़ाया जाता है। इन्हीं उपयोगों के कारण संवाद को महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है।

प्रस्तुत नाटक के संवादों में प्रायः नाटक के अनुकूल सभी विशेषताएं हैं। उदाहरण के लिए चतुर्थ अंक के प्रारंभ का वसन्तमाला और युक्तिमती का संवाद है। इनके संवाद इतने छोटे तथा सरल हैं, जिन्हें पाठक या दर्शक सरलता से हृदयंगम कर लेता है। इन संवादों से युक्तिमती, पवनंजय तथा केतुमती के चरित्रों पर प्रकाश पड़ता है तथा वधू अंजना के गर्भवती होने की सूचना और पवनंजय के समय पर न आ सकने के कारण की जानकारी मिलती है। इस संवाद द्वारा अंजना के निर्वासन की भूमिका तैयार हो जाती है और नाटक की घटना आगे बढ़ जाती है। संवादों में जिस रोचकता और चुस्ती की अपेक्षा होती है, वह भी इन संवादों में दिखाई देती है। चतुर्थ अंक के आरंभ में युक्तिमती अंजना की अस्वस्थता देखने जा रही है। वसन्त-माला पीछे से आंखें बन्द कर लेती है।

युक्तिमती—(समझकर और हंसकर) मेरे साथ और कौन इस प्रकार विश्वस्त (क्रीड़ा) कर सकती है, प्रिय सखि वसन्तमाला मैं तुम्हें ताड़ गयी।

वसन्तमाला—(हाथ जोड़कर, हंसती हुई) सखि युक्तिमती ही हो तुम। यह बताओ, तुम कहां जा रही हो ?

युक्तिमती—सखि, अंजना अस्वस्थ है। महारानी केतुमती की आज्ञा से कुशलता पूछने जा रही हूँ।

वसन्तमाला—अरी मुग्धे, वह अस्वस्थ नहीं, वह तो गर्भवती है।

युक्तिमती—सखि, उन्मत्त हो क्या ?

वसन्तमाला—सखि, सुनो तो। एक रात प्रहसित के साथ भर्ता पवनंजय आकर चले गये थे।

युक्तिमती—सखि, हम लोगों को क्यों न ज्ञात हो सका ?

वसन्तमाला—युद्ध का कार्य पूरा किये बिना नगर में आया हूँ, इसलिए वीरोचित लज्जा के कारण अपने आगमन को न प्रकाशित कर केवल रात बिताकर वे बड़े भोर में ही चले गये।

---

१. साहित्य विवेचन, पृष्ठ २२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्तिमती—सखी, उचित है, किन्तु मेरा हृदय व्याकुल-सा है।[1]

संवादों में जहां औद्धत्य अपेक्षित है, वहां वृत्ति भी उसीके अनुकूल समास-बहुला है। द्वितीय अंक में जब अमात्य के साथ पवनंजय की बातचीत पिताजी के प्रस्थानकालीन भेरी के वजाये जाने के सम्बन्ध में हो रही है, तब पवनंजय के संवाद ओज के अनुरूप हैं।[2]

वनेचर तथा वनेचरी और मणिचूड़ गन्धर्व तथा उसकी पत्नी रत्नचूड़ा के कथोपकथन संक्षिप्त होकर अत्यन्त प्रभावक हैं तथा नाटकीय घटना के आगे बढ़ाने वाले और चरित्रों के प्रकाशक हैं।

अंजना-पवनंजय के संवाद अधिकतर छोटे-छोटे हैं, क्योंकि रूपक में बड़े संवाद व्यावहारिक यथार्थता का ह्रास कर देते हैं।[3] इसका ध्यान हस्तिमल्ल ने इस नाटक में रखा है।

यद्यपि कुछ कथन लम्बे हैं, किन्तु वे ऐसे स्थलों पर हैं जहां एक पात्र को कुछ सूचना देने के लिए अपने आप सब कुछ कहना पड़ता है; किन्तु उनमें दीर्घता होने पर भी सरलता है तथा उनमें अनावश्यक या व्यर्थ के पद नहीं हैं। उदाहरण के लिए षष्ठ अंक के पृष्ठ १०० का प्रतिसूर्य का कथन तथा तृतीय अंक के आरंभ में विदूषक का कथन लिया जा सकता है।

संवाद के प्रसाद और कूतूहल, इन दो गुणों[4] में प्रसाद गुण तो उनके छोटे वाक्यों और सरल भाषा में हैं ही, जिसके माध्यम से वक्ता की वात श्रोता के हृदय तक पहुंच जाती है, दूसरा गुण जो कुतूहल है, वह संवाद की अपेक्षा वस्तु की संघटना में दिखाई देता है। अंजना के वन में छोड़ने के बाद की घटना का वृत्तान्त पाठक या दर्शक को नहीं ज्ञात होता है। उसके जानने के प्रति जिज्ञासा बनी रहती है, उसकी योजना सप्तम अंक में करके दूसरे गुण कूतूहल का ध्यान रखा गया है।

भाषा प्रयोग—पुरुष पात्रों में पवनंजय, राजा महेन्द्र का पुत्र अरिन्दम, अमात्य विजय शर्मा, वत्स हनुमान, प्रतिसूर्य, कंचुकी लब्धभूति, पवनंजय का सारथी, पवनंजय का सेनापति, मणिचूड़ गन्धर्व—ये पात्र संस्कृत-भाषी हैं। दशरूपक में उत्तम पात्रों को संस्कृत पाठ्य का विधान है।[5]

अंजना-पवनंजय में प्रयुक्त प्राकृत भाषा अन्य संस्कृत नाटकों की भाषा की अपेक्षा कई दृष्टिकोणों से भिन्न है। इस नाटक में प्राकृत भाषा के तीन रूप उपलब्ध होते हैं—(१) शौर सेनी, (२) मागधी, (३) ढक्की।

---

१ पृष्ठ ५२

२. ३४, ३५ पृष्ठ, १९, २२ छन्द

३. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ २५१

४. संस्कृत आलोचना, पृ० ८९

५. दशरूपक, २।६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शौरसेनी :—विदूषक, अंजना, वसन्तमाला एवं युक्तिमती शौरसेनी भाषा का प्रयोग करते हैं। यह शौरसेनी नाटकीय शौरसेनी है, जैन शौरसेनी नहीं है। यद्यपि हस्तिमल्ल से यह आशा थी कि वे जैन शौरसेनी का प्रयोग करेंगे, किन्तु अन्य संस्कृत नाटकों से प्रभावित होकर हस्तिमल्ल ने भी नाटकीय शौरसेनी का प्रयोग किया है। नाटकीय शौरसेनी की प्रकृति संस्कृत है।

(अ) संस्कृत का इदानीं शौरसेनी में दाणिं हो जाता है।[1] (नाटक का पृ० ३७, ५३)

(आ) संस्कृत के तस्मात् के स्थान पर ता हो जाता है।[2] (पृष्ठ ३०,३१,५३)

(इ) अनादि में वर्तमान असंयुक्त त का द पाया जाता है।[3] जानाति—जाणादि (पृष्ठ ५३), प्रस्तावति—पत्थावेदि, कुतः—कुदो (पृ० १०), नातिदूरे—नादिदूरे (पृष्ठ १०), अर्हंति—अर्हदि (पृष्ठ १२), केतुमती—केदुमदी (पृष्ठ ५३)

(ई) एव के स्थान पर एव्व पाया जाता है।[4] (पृष्ठ ५३)

(उ) यदि संस्कृत में त आदि में हो या संयुक्त हो, तो शौरसेनी में त को द नहीं होता है।[5] आज्ञप्ता—आणत्ता (पृष्ठ ७), ततः—तदो (पृष्ठ ६), मन्त्रयते—मन्तयदि (पृष्ठ ६), पत्रलतया—पत्तलदाए (पृष्ठ ५)

(ऊ) इस नाटक में थ के स्थान पर ह पाया जाता है, जबकि अन्य नाटकों में ध पाया जाता है। थ के स्थान पर ध विकल्प से होता है, पक्षान्तर में ह भी होता है।[6] कथं—कहं (पृ० ११), कथा—कहा (पृ० ११), सर्वथा—सव्वहा (पृष्ठ ३७)

(ऋ) भू धातु के स्थान पर हो आदेश हो जाता है। भवामि = होमि (पृ० ९),

(ए) यावत् के स्थान पर जाव (पृष्ठ ७, ९),

(ऐ) ननु के अर्थ में णं का प्रयोग (पृष्ठ १३),

(ओ) न्य के स्थान में ण्ण का प्रयोग होता है। अन्यथा = अण्णहा (पृ० ६), कन्या = कण्णआ (पृ० ११),

(क) स्त्री के स्थान में इत्थी हो जाता है (पृ० १२),

(ख) इव के स्थान में वि अ होता है (पृ० १५)।

---

१. प्राकृत व्याकरण, अष्टम अध्याय, पृष्ठ १८२
२. तस्मात् ता (सूत्र) ३।२।१३ प्राकृत शब्दानुशासन
३. इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत, चेप्टर ४, पृष्ठ १३
४. एवार्थे एव्व ३।२।१८—प्राकृत शब्दानुशासन
५. अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ ३८२,
६. अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ ३८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मागधी—वनेचर, चेट, क्रूर, लवलिका—ये पात्र मागधी का प्रयोग करते हैं। मागधी की प्रकृति शौरसेनी है।[1] अकारान्त पुल्लिंग शब्दों में प्रथमेक वचन में एकारान्त प्रयोग मिलते हैं।[2] प्रमादः—पमादे (पृष्ठ ६२), एषः—एशे (पृष्ठ ६३), आलेपः—आलेवे (पृष्ठ ७८), प्रदेशो—पएशे (पृष्ठ ७९) इत्यादि।

क्रूर भैरव—विहलेमि, चलेमि खलेमि अले
अहके कुलुले, कुलुले, कुलुले (पृष्ठ ६०।१०)

यहाँ अहं के स्थान पर अहके का प्रयोग मागधी की विशेषता है।[3] दूसरी विशेषता र को ल होने की है। अरे के स्थान पर अले तथा क्रूर के स्थान पर कुलुले का प्रयोग हुआ है।[4] इसी प्रकार पुरुष के स्थान पर पुलिश शब्द का प्रयोग किया गया है।[5]

चमूरक—तदो अ खणं अदिवकमिअ तेण वि पुलिशेण, ले ले लवलिए, शोहणं खु वणवाश शोक्खं।

यहाँ पुरुष के लिए पुलिश शब्द का प्रयोग मागधी का सूचक है, क्योंकि मागधी में र का ल तथा स का श हो जाता है।[6] र को ल तथा स को श के प्रयोग भी मागधी के सूचक हैं।[6] इसी प्रकार अतिक्रमः के लिए अदिक्केम का प्रयोग हुआ है।[7] मागधी में पुल्लिंग में अ का ए हो जाता है।[8] तथा अहं के स्थान पर अहके का प्रयोग हुआ है।[9] अहं के स्थान पर अहके, हगे, हके का प्रयोग मागधी की विशेषता है।[10]

ढक्की—ढक्की मागधी का ही रूप है। चमूरक वनेचर के कथोपकथन में व कार के प्रयोग अधिक हुए हैं तथा स कार और श कार दोनों के प्रयोग भी हैं।[11] इन प्रयोगों के कारण इसे ढक्की भाषा माना जा सकता है, क्योंकि पृथ्वीधर के अनुसार ढक्क विभाषा व कार प्राय होती है और यदि वह संस्कृत प्राय हो, तो स कार और श कार दोनों का प्रयोग होता है।[12]

---

१. अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ ४००
२. अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ ४००
३. प्राकृत व्याकरण, अष्टम अध्याय, पृ० १९५
४. पाइअ सद्द महण्णव, १९२८ का प्रकाशन उपोद्घात, पृष्ठ ३७
५. पृष्ठ ६०
६. स्रोः श्लौ, प्राकृत शब्दानुशासन, ३।२।४५ सूत्र
७. पृष्ठ ८२
८. सौ पुंस्येलतः, प्राकृत शब्दानुशासन, ३।२।३० सूत्र
९. पृष्ठ ८२
१०. प्राकृत व्याकरण, पृ० १९५
११. पृष्ठ ७८
१२. वकारप्राया ढक्कविभाषा संस्कृत प्रायत्वे
दन्ततालव्य सकार शकारद्वय युक्ता च।
(मृच्छकटिक, भूमिका पृ० ५८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मधुकरिका जो अभिनय में मिश्रकेशी की भूमिका ग्रहण करती है, संस्कृत में बोलने लगती है। इस प्रकार भाषा व्यतिक्रम का अपनाना उचित है।[1]

अंजना-पवनंजय के सुभाषित—सुभाषित संक्षिप्त मधुर वाक्य विन्यास होता है, जो हृदय पर एक नीति का प्रभाव संक्रान्त कर देता है। निःसन्देह हस्तिमल्ल के सुभाषित मधुर तथा हृदय को आर्कषित करने वाले हैं। इसीलिए उनका विरुद सूक्तिरत्नाकर था।[2] इनके नाटकों की भाषा को पढ़कर वह उक्ति याद आ जाती है कि भाषाओं में मधुर संस्कृत भाषा है। उसमें भी अधिक मधुर काव्य होता है और उससे भी अधिक मधुर सुभाषित होते हैं।[3] श्री वासुदेव पटवर्धन ने अञ्जना-पवनंजय की भूमिका में उनके सभी सुभाषितों का पृष्ठ ५४, ५५ पर संग्रह किया है। निम्न सुभाषित उनकी दृष्टि से ओझल हो गये थे, वे ये हैं :—

साधु खलु अनुमीयते हृदयम् (पृष्ठ १७)
वैराय कल्पते युद्धमिति नैकान्तिकम् वचः (पृष्ठ ६८)
सर्वथा निष्ठुराः खलु पुरुषाः (पृष्ठ ८८)
विधि रेवात्र उपालभनीयः (पृष्ठ ८८)

संस्कृति और सभ्यता

साहित्यकार समाज को अतीत का इतिहास देता हैं, वर्तमान की स्थिति पर विचार करता है और भविष्य के निर्माण के लिए मार्ग-दर्शन करता है। इस प्रकार कहना चाहिए कि काव्यकार की कृति में अतीत और वर्तमान के समाज के चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं, क्योंकि युग की अपनी विशेषताएं किसी न किसी रूप में उस युग के साहित्य में वर्तमान रहती हैं।[4]

अञ्जना-पवनंजय नाटक के अध्ययन से सामाजिक संस्कृति, दर्शन, आचार व्यवहार का जो रूप दिखाई देता है, वह निम्न प्रकार है :—

वास्तु कला—अञ्जना-पवनंजय के कतिपय प्रसंगों से ज्ञात होता है कि निर्माण कार्य बहुमूल्य धातु से सम्पन्न होते थे। पवनंजय के प्रासाद के अग्रभाग में स्वर्ण का जड़ाव था। उस प्रासाद के स्वर्णमय अग्रभाग पर पड़ने वाली धूप को सूर्य दुगुना चमकदार बना देता था।[5] कई प्रकार के प्रासादों का उल्लेख नाटक में

१. दशरूपक २।६६
२. जैन साहित्य का इतिहास, ३६४
३. सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, पृष्ठ २९, २१४
भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाण भारती
तस्माद्धि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम्। २।१
४. साहित्य विवेचन (सुमन), पृष्ठ २०
५. पृ० २५।७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलता है। पवनंजय युद्ध-स्थल से एक रात जब अञ्जना से मिलने गये थे, तब उनका विमान चतुःशाला के मध्य के कौमुदी प्रासाद के हर्म्यं के नीचे उतरा था।[1]

चतुःशाला के सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि धवल-गृह के भीतर चारों ओर कमरों की पंक्ति होती थी, इसके लिए मूल शब्द चतुःशाल था। एक आँगन के चारों ओर चार कमरे या दालान बनाये जाते थे। गुप्त काल में चतुःशाल को संजवन भी कहते थे।[2] अञ्जना-पवनंजय नाटक में भी संजवन शब्द का प्रयोग आया है, क्योंकि पवनंजय ने अपने सैन्य शिविर से विमान द्वारा प्रस्थान करते समय कहा था कि संजवन में उतरेंगे। यह अञ्जना के लिए पृथक् बना हुआ चतुःशाल था। इस प्रकार अनेक संजवन या चतुःशाल होते होंगे। डा० अग्रवाल ने यह भी लिखा है कि संजवन का आशय उस स्थान से है, जहाँ लोग आज्ञा से पहुँच सकें। चतुःशाल के विशाल आँगन के बीच प्रासाद था, जिसमें राजा रानियों के निवास होते थे। मैं समझता हूँ कि एक तरफ विशाल बरामदा होता था, उसका ही यहाँ हर्म्यं शब्द से उल्लेख किया गया है।

कौमुदी प्रासाद के अतिरिक्त चन्द्रकान्त प्रासाद द्वार का उल्लेख आया है[3], जहाँ वसन्तमाला तथा विरहोत्कण्ठिता अंजना थी। एक ही स्थान पर एक विशाल राजभवन में अनेक प्रासादों का निर्माण किया जाता होगा, जो कि विभिन्न समय तथा ऋतु के अनुकूल होते होंगे। एक प्रासाद में अनेक कक्ष होते थे। विरह-शमन के लिए पवनंजय अंजना के साथ उसी प्रासाद के समीपवर्ती मणिचन्द्रकान्तवासगृह में गये थे।[4]

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में कुमार भवन का उल्लेख आता है। वसन्तमाला सूर्योदय के बाद पवनंजय का पता लगाने कुमार भवन जा रही थी। इस बात की सूचना मिलती है कि इन प्रासादों के अतिरिक्त राजकुमार के लिए और भी स्वतंत्र भवन होते थे। जब पवनंजय के पास उनके आमात्य विजय शर्मा आये थे, तब अंजना पवनंजय ने स्व भवन में जाने के लिए कहा था।

नगर निर्माण में कुछ ऐसी व्यवस्था का पता लगता है कि चाण्डाल जैसे अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों के निवास के लिए अलग से मुहल्ले बसाये जाते थे। क्रूर भैरव जो कि चाण्डाल था, वह शाखानगर में रहता था। उसको बुलाने के लिए कंचुकी शाखा-नगर गया था। यह शाखानगर नगर के द्वार के पार करने के बाद आरम्भ होता है, क्योंकि कंचुकी ने गोपुर (नगरद्वार)[5] पार किया था और उसके बाद शाखानगर में पहुँच गया था।[6] श्री द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने लिखा है कि महानगर

१. पृ० ४७
२. हर्ष चरित सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ ९०
३. पृष्ठ ४८
४. पृ० ४८
५. हलायुधकोश
६ पृ० ५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को हम यदि प्रकाण्ड पादप का तना मानें तो उसके चतुर्दिक इतस्ततः फैले हुए छोटे छोटे नगर शाखानगर हुए।[१] यह शाखानगर की रचना भिन्न भिन्न प्रकार के कार्य करने वालों की पृथक् पृथक् बस्तियों की सूचक है। मूल नगर में समाविष्ट न होने वाले समुदाय को बसाने के लिए नगर के समीप जो दूसरा नगर बनाया जाता है, वह शाखानगर कहलाता है। प्रधान नगर तरु की तरह है और शाखानगर उसकी एक शाखा के समान होने से सार्थक है। शाखानगर भी खेत, उद्यान आदि से युक्त होता है।[२] अंजना-पवनंजय नाटक में भी शाखानगर के जीर्णोद्यान का उल्लेख है।

नाटक में प्रमदवन का उल्लेख है।[३] प्रमदवन वह कहलाता है, जो उत्तम स्त्रियों के लिए होता है।[४] प्रमदवन धनिक घरानों में बनवाये जाते होंगे, जहाँ धनिक पुरुष अपनी पत्नी के साथ मनोविनोद पूर्वक भ्रमण किया करते होंगे। उद्यानों का भी राजघरानों में शौक था। उद्यानों की देखभाल के लिए उद्यानों में उद्यानाध्यक्षों की नियुक्तियाँ की जाती थीं। ये उद्यानाध्यक्ष उद्यान के कर्मचारियों को कार्य की प्रेरणा देते थे और उनका कार्य देखते थे।[५]

प्रमदवन विशाल कृत्रिम उद्यान की भाँति होता था। उस प्रमदवन के मध्य में बकुलोद्यान की स्थिति का वर्णन भी मिलता है[६] तथा बकुलोद्यान के भीतर एक चित्र मण्डप बना हुआ था, जहाँ पवनंजय तथा अंजना का प्रथम समागम होना था। यह प्रदेश इतना मनोरम था कि यहाँ पहुँचते ही विदूषक की आँखें सुख के कारण बन्द-सी होने लगीं थीं। बकुल वन में बकुल वृक्षों का आधिक्य रहता होगा। उसके बीच में चित्र-मण्डप एक छायादार स्थल विश्राम आदि के निमित्त बनाया जाता होगा। प्रमद वन के भीतर भी चित्र-मण्डपों की स्थिति तथा उन चित्र-मण्डपों में मणि की शाल मंजिकाएँ (एक प्रकार की पुतलिकाएँ) शोभा के लिए बनाये जाने का उल्लेख है।[७] उन शालमंजिकाओं के स्तनकलशों पर अनेक प्रकार के लेपन करने का आदेश उद्यानाध्यक्षों ने दिया है। इससे विदित होता है कि तत्कालीन युग में भी साजसज्जा के प्रति प्रेम था। ये प्रमद वन आदि विशेष अवसरों पर विशेष रूप से सुसज्जित किये जाते थे। जब पवनंजय अपनी प्रिया सहित उस वन में जाने वाले थे, तब उस वन की साजसज्जा विशेष प्रकार से की गयी थी। धारागृह में शालभंजिका आदि की साजसज्जा का जैसा विधान बताया गया है[८], वैसी ही

---

१. भारतीय वास्तु शास्त्र वास्तुविद्या तथा पुरनिवेश, पृ० २०८

२. शब्दकल्पद्रुम—मूलनगरेऽसम्मितस्य जनौघस्य स्थानाय मूलनगरस्य समीपे अंके वा यदन्यत् पुरं नगरान्तरं क्रियते तत् शाखानगरम् तरुस्थानीयस्य शाखेव।

वने वा नगरोपान्ते नागरैस्तु जनैर्वृतम्।
क्षेत्रारामकरोपेतं शाखानगरमिष्यते॥

३. पृष्ठ २६

४. हलायुधकोश

५. पृष्ठ २३

६. पृष्ठ २४

७. पृ० २३

८. समरांगण सूत्रधार, पृ० २३ वास्तुशास्त्र, भाग २ (यंत्र विज्ञान), पृ० ५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साजसज्जापूर्वक यंत्र धारागृह का वर्णन प्रस्तुत नाटक में है।[१] उस काल में चन्द्रकांत-मणि के लगाये जाने की स्थिति भी सूचित होती है। चन्द्रमा के उदय होने पर उसकी किरणों के प्रतिफलन से इनमें जल बह उठने की मान्यता की पुष्टि नाटक के उल्लेखों से होती है।[२] उद्यानों में सिंचाई की सुविधा के लिए नहरें बनीं होती थीं।[३] वृक्षों के नीचे चारों ओर जल-सिंचन की सुविधा के लिए आलवाल बनायी जाती थीं। उद्यान के कुछ स्थानों में मरकत मणि के पाटे जाने का भी वर्णन है। इन स्थलों पर अनेक प्रकार की पत्र रचना आदि की चित्रकारी होती थी। इस प्रकार अनेक प्रकार की समृद्ध कला थी।

शालमंजिकाओं के स्तनविलेपन का उल्लेख इस वात की व्यंजना भी कराता है कि राजघरानों की स्त्रियां भी स्तन प्रसाधन में लेप का प्रयोग करती थीं।[४] प्राचीन भारत के प्रसाधन में भी इन्हीं विचारों को उद्धृत किया गया है कि स्तनों पर केसर, कस्तूरी, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का अनुलेपन करके उनपर चित्र कर्म, मकरिका, पत्रभंग आदि बनाये जाते थे। लेप ऋतु के अनुसार भिन्न भिन्न द्रव्यों से किये जाते थे। अंजना-पवनंजय में कर्पूर मिश्रित चूर्ण का उल्लेख है। यह ग्रीष्म ऋतु के अनुकूल भी था।[५]

नाटक में दो मण्डपों का उल्लेख है। एक तो स्वयंवर मण्डप, जो बड़ी साज-सज्जा से सजाया गया था। उसमें अनेक देशों के राजकुमारों के बैठने के लिए अनेक सिंहासन रखे जाते थे। अनेक प्रकार के वाद्य भी उनमें बजाये जाते थे। जिन स्थानों पर सिंहासन रखे जाते थे, वहां की जमीन बहुमूल्य पाषाण से पाटी जाती थी। प्रस्तुत नाटक में रत्न के फर्श का उल्लेख है।[६] दूसरा दुकूलपट मण्डप है। यह मण्डप वस्त्र से बनाये गये तम्बू के रूप का समझना चाहिए। युद्ध के प्रसंग में पवनंजय ने इसी में विश्राम किया था।[७]

उस काल में बालिकाओं को अपनी सहेलियों के साथ खेलने के लिए पृथक् स्थान की व्यवस्था राजघरानों में थी। अंजना के सम्बन्ध में उल्लेख है कि वह केलीवन में संगीतशाला में गयी है।[८] इससे इस बात की सूचना मिलती है कि उस काल में राजकुमारियां संगीत की शिक्षा का अभ्यास करती थीं और उसके लिए संगीतशालाएं होती थीं।

वेषभूषा—केवल क्रूर भैरव और वनेचर की वेषभूषा के संकेत नाटक में मिलते हैं। क्रूर भैरव पैरों में घर्घरिका पहनता था। यह घर्घरिका घर्घर शब्द

---

१. पृ० २३।४
२. पृ० २३।४
३. पृ० २३।४
४. पृ० २३।१, २, ३
५. पृ० २३।२
६. पृ० १५
७. पृ० ४६
८. पृ० ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती थी। क्रूर भैरव रक्त चन्दन का तिलक माथे पर लगाता था तथा कंधे पर त्रिशूल दण्ड धारण करता था।[१] कहना चाहिए कि क्रूर भैरव का उसके क्रूर कर्म के अनुरूप वेश था। कंचुकी शिर पर उष्णीष (पगड़ी) धारण करते थे तथा लम्बा हिलता हुआ ढीला कुरता पहनते थे।[२]

रीति रिवाज—राजाओं के उद्यान, जो विशेष रूप से रमणीक होते थे, उनमें साधारण जनों का प्रवेश नहीं होता था, इसलिए जब महेन्द्रराज के सुन्दर उद्यान में पवनंजय विश्राम करना चाहते थे, तब विदूषक ने कहा था कि आपके पिता प्रह्लाद की महेन्द्रराज से चिरकालीन दृढ़ मैत्री है, इसलिए हम लोग भी विश्वस्त होकर इस उद्यान में विहार कर सकते हैं।[३] स्वयंवर के पूर्व भी या विवाह के पूर्व कन्याओं को वरों के चित्र-दर्शन की सुविधा थी। अञ्जना ने स्वयंवर के पूर्व भी स्वयंवर में आने वाले समस्त राजकुमारों को चित्र में देख लिया था।[४] स्वयंवर प्रथा से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लड़कियों को योग्य वर चुनने का अधिकार प्राप्त था। विवाह के एक दिन पूर्व कन्या को विधिपूर्वक स्नान कराया जाता था। इस स्नान के लिए शुभ वेला नियत रहती थी। इसलिए राजकुमारी को शीघ्र अन्तःपुर में जाने के लिए प्रेरित किया गया था कि कहीं स्नान की वेला बीत न जाय। माताएं स्नान के पश्चात् कन्या का प्रसाधन करती थीं।[५] कन्या को विवाह के पूर्व विवाह के लिए उपयुक्त आभरण पहनाये जाते थे। स्वयंवर मण्डप में कन्या वर के गले में जिस माला को पहनाती थी, उस औषधिमाला के गूँथने के लिए मांगलिक पुष्पों का उपयोग किया जाता था, जिसमें सन्तान (एक प्रकार के कल्प वृक्ष) वृक्ष के पुष्प का प्रमुख स्थान था।[६] स्वप्नवासवदत्ता नाटक में भी मांगलिक पुष्प के गूँथने का उल्लेख है। स्वयंवर मण्डप में बन्दी लोग जय-जयकार के शब्द करते थे।[७] विवाह आदि के अवसरों पर पटवास नामक सुगन्धित चूर्ण बिखराया जाता था।[८] स्वागत सत्कार के लिए दरवाजों पर लोग वन्दनमालाओं को लगाया करते थे।[९] उत्सवों के अवसर पर घरों पर ऊँची पताकाएं लगाते थे।[९] स्वयंवर मण्डप में राजकुमारों के आभरणों की कान्ति से शोभा बढ़ जाने का उल्लेख है। राजाओं के यहाँ अनुचरों का बड़ा परिकर रहता था। स्वयंवर के समय सैकड़ों प्रतिहार कार्य करते थे। विवाह आदि शुभ अवसरों पर स्वस्तिवाचन किया जाता था।[१०] स्वस्तिवाचनव

१. पृ० ५७
२. पृ० १०७
३. पृ० ४
४. पृ० १३
५. पृ० १९
६. पृ० ८
७. पृ० १५
८. पृ० १५
९. पृ० ३।३
१०. पृ० ३।३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस मिष्टान्न रूप उपहार को कहते हैं, जो समय समय पर ब्राह्मणों को दिया जाता था, जिसे पाकर ब्राह्मण दाता की मंगल कामना करते थे।[१] कुछ लोग स्वस्तिवायणक ऐसा पाठ मानते हैं। वायण शब्द उपायन अर्थ का सूचक है। बुन्देलखण्ड में इसे वायनों कहा जाता है। विवाह के बाद पति-पत्नी का प्रथम समागम उद्यान में होने की प्रथा होनी चाहिए; क्योंकि विवाह के बाद अञ्जना तथा पवनंजय पृथक् पृथक् भवनों में ठहराये गये थे। उसके बाद वे उद्यान में मिले थे। बिस्तरों पर चादरा बिछाने का उल्लेख है।[२] शिष्टाचार के लिए राजकुमार वृद्ध अमात्य को अभिवादन करते थे तथा उनके आगमन पर उनके लिए आसन देकर सत्कारपूर्वक बैठाते थे।[३] उस समय दूत रखे जाते थे, जो महत्त्वपूर्ण समाचार ले जाने में कुशल होते थे। रावण ने दूत के माध्यम से ही राजा प्रह्लाद से सहायता की याचना की थी।[४] छोटे बच्चे बड़ों की वन्दना करते थे। हनुमान जब नाना के यहाँ से आया था, तब वह सबको बन्दे कहा करता था।[५] अंजना के विवाह के पश्चात् अंजना की सखी वसन्तमाला भी ससुराल गयी थी। इस घटना से ऐसा आभास मिलता है कि राजकुमारियों की सेवा के लिए जो दासियाँ रहती होंगी, वे ही उस राजकुमारी के मन बहलाव आदि के निमित्त ससुराल साथ भेजी जाती होंगी। वसन्तमाला अपने को कुछ हीन समझती होगी, तभी उसने अंजना की ससुराल में पहुँचकर आदित्यपुर की प्रशंसा की थी, जहाँ कि उसके साथ उसी प्रकार का सम्मानपूर्ण व्यवहार होता था,[६] जैसा कि राजकुमारी अंजना के साथ होता था। स्वयंवरों के समय कलह का वातावरण उपस्थित होने की संभावना रहती होगी, क्योंकि जिस वर को कन्या चुनती होगी, उसके सम्बन्ध में ईर्ष्या रखने वाले स्वभावतः कलह के लिए तैयार रहते होंगे। इसीलिए स्वयंवर में पहुँचने वाले राजकुमार सेनाओं को साथ लेकर स्वयंवर में पहुँचते थे।[७] वसन्तमाला ने पवनंजय की इसी बात में प्रशंसा की थी कि किसी राजपुरुष ने प्रतिकूल रुख न अपनाकर पवनंजय का सत्कार किया है, इसलिए यह समागम अत्यन्त प्रशंसनीय है।[८] मंत्री लोग राजकुमार के अभिवादन करने पर आशीर्वाद देते थे। उस काल में लोगों का मंगल तथा शुभ में विश्वास था, यही कारण है कि स्वयंवर माला में मांगलिक पुष्पों का गुम्फन होता था। जब पवनंजय अंजना से मिलने युद्ध भूमि से गये थे, तो उनके उपस्थित होने के कुछ पूर्व अंजना के वाम नेत्र में फड़कन हुई थी,[९] जिसे ज्योतिष

---

१. स्वस्ति वाच्यते येन तत् स्वस्तिवाचनिकम् (रत्नावली नाटिका, टीका भाग)
२. पृ० २९
३. पृ० ३३
४. पृ० ३४
५. पृ० १०९
६. पृ० २१
७. पृ० ३
८. पृ० २१
९. पृ० ४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्र के अनुसार भी पति-समागम का सूचक माना जाता है।[1] शुभ सूचना के रूप में स्त्रियों के बायें नेत्र के फड़कने के वर्णन अनेक कवियों ने परम्परा से किये हैं।[2] युद्ध से लौटने वालों का भी मांगलिक स्वागत किया जाता था। पवनंजय के मांगलिक स्वागत के हेतु युक्तिमती को नियुक्त किया गया था। ब्राह्मण लोग आशीर्वाद देते थे तथा उनके आशीर्वाद को विश्वास की दृष्टि से देखा जाता था। विदूषक ने अंजना को पुत्र-प्राप्ति का शुभाशीर्वाद दिया था, जो कि आगे नाटक में सफलीभूत दिखाई देता है। ज्योतिष पर भी उस काल में पूर्ण विश्वास था। पवनंजय के शरीर के सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार[3] ललाट पर जो भौंरी का चिह्न (ऊर्णा) था, उसे प्रतिसूर्य ने साम्राज्य लक्ष्मी का सूचक बताया है।[4] उस काल में लोगों को अनेक प्रकार की विद्याएँ सिद्ध थीं। पवनंजय स्वयं विद्याधर थे। विशिष्ट कलाओं की क्षमता प्राप्ति के कारण ये विद्याधर कहलाते होंगे। डा० ज्योतिप्रसाद ने लिखा है कि ये विद्याधर वैज्ञानिक आविष्कारों, लौकिक विद्याओं, कलाओं तथा भौतिक शक्ति में बढ़े चढ़े थे, किन्तु धर्म तथा दर्शन के चिन्तन में तीर्थंकरों के सम्मुख मस्तक झुकाते थे।[5] पवनंजय युद्ध-स्थल से विमान द्वारा अंजना के पास गये थे और यह विमान विद्या से उपस्थित हो गया था।[6] इससे सिद्ध होता है कि उस काल में ऐसे विमान थे, जो कि आकाश मार्ग से शीघ्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचा देते थे।[7] रथ गमन तथा युद्ध दोनों के साधन थे। रथ में मणि की किंकणी लगी रहती थी, जो रथ के चलने पर शब्दायमान होती थी। उस रथ पर विशाल ध्वज भी लगा रहता था। युद्ध नियमपूर्वक होते थे, इसीलिए सन्ध्या को युद्ध बन्द हो जाते थे। दोनों पक्ष कुछ समय के लिये युद्ध बंद कर देने पर सहमत हो जाते थे तब उसका पूर्ण पालन करते थे। जब पवनंजय आवेश में आकर संग्राम में शत्रु पक्ष को चूर्ण कर देने की बात करते हैं, तब विदूषक ने बताया था कि दिन भर के लिए दोनों पक्षों ने युद्ध-बन्दी की घोषणा की है; इसलिए युद्ध करना राजधर्म नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि राज्य का कार्य

---

१. अंगस्फूर्ति फलं वक्ष्ये दक्षिणांगसमुद्भवम् पुरुषाणान्तु तज्ज्ञेयं वामभागे मृगीदृशाभ्। ४।१५८

स्थानात् प्रचलनं नाभौ, कोशवृद्धि रथांत्रके। —दैवज्ञ कल्पद्रुम, पृष्ठ २८।२९

कोशासिरूदरे नार्या नयने पति संगमः। —दैवज्ञ कल्पद्रुम, पृ० २९

२. संस्कृत काव्य में शकुन, पृ० १६८ से

३. सव्यापसव्यभागे शिरसि स्याद् यस्य दक्षिणावर्तः
श्वेतातपत्रलक्ष्मालक्ष्मीः करवर्तिनी तस्य। —३।४

रोमावर्तः स्निग्धौ भ्रूयुगमध्ये प्रदक्षिणोव्यक्तः
यस्योर्णाख्यः पूर्णः सौम्बुधिकांचर्भुवो भर्ता। (सामुद्रिक शास्त्रम्—३।५)

४. पृष्ठ १०२।५४

५. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, पृ० २३१

६. पृष्ठ ४६

७. देशाद्देशान्तरं तद्वद् द्वीपाद् द्वीपांतरं तथा।
लोकाल्लोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुमर्हति
स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्र-विदांवरैः। —वृहद् विमानशास्त्र, भूमिका, पृष्ठ (ई)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म या नीतिपूर्वक होता था।[1] शुभ समाचार सुनने पर लोग खुशी में पारितोषिक देते थे। युक्तिमती ने पवनंजय को अंजना के गर्भवती होने का शुभ संदेश सुनाया था, उसके उपलक्ष्य में पवनंजय ने अपने हाथ से स्वर्णकटक उतार कर दिया था।[2] विदाई के अवसर पर भी उपहार देने की प्रथा थी। युद्ध के पश्चात् मित्रता हो जाने पर वरुण ने पवनंजय की विदाई में कई बहुमूल्य रत्न भेंट किये थे।[3] सन्तानोत्पत्ति होने पर जातकर्मादि संस्कार करते थे, हनुमान के जातकर्मादि संस्कार अंजना के मामा के यहाँ हुए थे।[4] उस समय समाज में कुछ राजाओं को राजर्षि का पद प्राप्त था। राजा प्रह्लाद राजर्षि ही थे। जो राजा होकर धार्मिक जीवन बिताते हैं, वे राजर्षि कहे जाते हैं।[5]

पुरवासियों में राजा के प्रति सहयोग की पूरी पूरी भावना रहती थी। राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना के स्वयंवर में सब पुरवासियों ने अपने यहां साज सज्जा कर ली थी।[6]

उस समय पत्र लेकर दूतों को भेजा जाता था। वरुण से युद्ध समाप्त होने पर दूतों को पत्र लेकर भेज दिया गया था कि कल कुमार आवेंगे।[7]

कुलीन स्त्रियां सदैव परिवाद से डरती थीं। यही कारण था कि केतुमती ने अंजना की गर्भावस्था में परिवाद से शंकित होकर उसे मायके भिजवा दिया था।[8] इधर अंजना भी परिवाद से डरने के कारण मायके न जाकर मार्ग में ही यान से उतर गयी थी।

सेवक स्वामी की प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे। क्रूर चाण्डाल स्वयं स्वीकार करता है कि स्वामी के आदेश अनुलंघनीय होते हैं। वन में अंजना अपने को छोड़ने का हठ करती है, जबकि क्रूर को आदेश था कि क्रूर उसके पिता के यहां पहुंचाकर आये ; तब क्रूर को आदेश की पूर्ति इस रूप में समझनी पड़ती है कि यह भी एक स्वामिनी है।[9]

लड़कियों के वयस्क हो जाने पर ही विवाह होते थे ; इसीलिए विवाह के पश्चात् विवाहिता कन्या को तुरन्त ससुराल विदा कर दिया जाता था। अंजना की अवस्था ऐसी ही थी, जिस अवस्था में उसे अपने भावी वर के सम्बन्ध में समझने की योग्यता थी।

---

१. पृष्ठ ४५
२. पृष्ठ ७३
३. पृ० ६८
४. पृष्ठ ११७
५. विक्रमोर्वशीय नोट्स, पृ० २४०
६. पृष्ठ ३।३
७. पृष्ठ ६८
८. पृ० ५६।१
९. पृष्ठ ८२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोग सन्ध्योपासना के कार्य समय पर किया करते थे।[१] लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते थे, क्योंकि सुख दुःख आदि के होने में जन्मान्तर के कर्म को कारण माना गया है।[२] लोगों की साधुओं के प्रति आस्था थी। वन में साधु के दर्शन होने पर अंजना और वसंतमाला ने उनकी प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया था। उनके दिव्य ज्ञान पर विश्वास भी था। नाटक में जैनेश्वर साधन पर चलने की प्रेरणा दो स्थानों पर की गयी है।[३] इससे प्रतीत होता है कि उस काल में इस धर्म के प्रति जनरुचि थी।

विनोद साधन—मनोविनोद के लिए लोग उद्यानों में घूमते थे। उद्यानों में नाना प्रकार के मण्डप आदि बने होते थे। उनके स्तम्भों पर शालमंजिकाएँ बनी होती थीं।[४] अंजना विद्याधर कन्याओं के साथ सिद्धकूट के बाहर मन्दारवन में पुष्प चयन करती हुई पवनंजय द्वारा देखी गयी थी।[५] प्राचीन भारत में वन या उद्यान में जाकर विविध प्रकार के शृंगार के लिए फूल चुनना स्त्रियों का विशेष मनोरंजन था।[६] प्रस्तुत नाटक के उल्लेख से भी इस बात की पुष्टि होती है।

लड़कियाँ संगीतशाला में संगीत सीख लेती थीं, जो उनके मनोविनोद का साधन रहता होगा।[७] उस काल में वीणा बजाने का विशेष प्रचार था। मणिचूड़ गन्धर्व वीणा बजाता हुआ ही अपनी पत्नी के साथ था।[८] पुरुष चित्रकला का ज्ञान रखते थे तथा उससे अपना मनोविनोद करते थे। अंजना के वियोग में पवनंजय ने चित्रफलक पर अंजना का चित्र बनाकर मन बहलाने का यत्न किया था।[९] स्त्रियाँ अनंग लेख लिखकर अपने प्रियतम के पास भेजती थीं। पवनंजय ने केतकी से वन में पता पूछते समय कहा था कि तुम्हारे पत्ते अनंगलेख के उपयोग में आते हैं।[१०]

छोटी जाति के लोग या क्रूर कर्म करने वाले चाण्डालादि मदिरा का सेवन करते थे। उनमें फूलों का रस डालकर सुगन्धित बनाते थे। मदिरा पीकर ये लोग नाचते भी थे। यद्यपि समाज में इस तरह के लोगों की संगति अच्छी नहीं समझी जाती थी। कंचुकी को इनके साथ बोलना अच्छा नहीं लगता था। जब कंचुकी का काम पूरा हो गया, तो उसे प्रसन्नता हुई थी कि असत्कार्य करने वाले की संगति छूट गयी है।[११]

---

१. पृष्ठ ३८
२. पृष्ठ ८८।४ तथा पृष्ठ १११
३. पृष्ठ ६५।१८ तथा ११९।१६
४. पृष्ठ २३
५. पृष्ठ ६ तथा ११
६. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६६, अंक २, ३, ४ का लेख—प्राचीन भारत में क्रीड़ा एवं मनोरंजन
७. पृष्ठ ८
८. पृष्ठ ८७
९. पृष्ठ ४३
१०. पृष्ठ ९८।४२
११. पृष्ठ ५८ से ६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाद्य—विशेष अवसरों पर लोग स्वस्तिवाचनिक दिया करते थे। उसमें पूड़ी (शष्कुली) का उल्लेख नाटक में मिलता है, जो कि विदूषक को दी गयी थी। प्रातः लोग नाश्ता करते थे। विदूषक को प्रातः जीरा तथा मिर्च की अधिकता वाला दधि दिया गया था।[१] नीच जाति के लोग मदिरा पान करते थे। कभी कभी चषक द्वारा और कभी कभी घड़े से ही खूब सुरा पान करते थे। क्रूर भैरव द्वारा अनेक प्रकार की मदिराएँ एवं उनके नामों का उल्लेख[२] अनेक प्रकार की मदिराओं के प्रचलन का निर्देश करता है। प्राकृत के ग्रन्थ विपाक सूत्र[३] तथा नाया धम्म कथाओं में ६, ७ प्रकार की सुराओं के नाम मिलते हैं। वनेचर लोग करीर के कन्दमूल तथा वंशबीज का भोजन करते थे।[४] शीतलचीनी मुख में सुवासित करने के लिए रखते थे।[५]

वाद्य :—मनोरंजन के साधनों में वाद्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत में बहुत प्राचीन काल से विभिन्न अवसरों पर वाद्यों का प्रयोग किया जाता रहा है। कोई भी शुभ कार्य वाद्य ध्वनि के बिना नहीं होता है। युद्ध के अवसर पर भी वाद्यों का प्रयोग होता था। स्वयंवर के अवसर पर मृदंग तथा वल्लकी (वीणा) बजाने का उल्लेख है।[६]

युद्ध के लिए प्रस्थान करने के पूर्व भेरी बजाने का उल्लेख प्रस्तुत नाटक में है।[७] युद्ध के समय जब किसी पक्ष की विजय होती थी, तब डिण्डिम का घोष किया जाता था। इसकी ध्वनि तेज होती थी, क्योंकि विदूषक ने डिण्डिम के निर्घोष से अपने कर्ण का बहरा होना बताया है।[८] क्रूर भैरव शराब पीकर डमरुक बजाकर नाचा करता था, वह पैरों में घर्घरिका पहनता था, जिससे पैरों से आवाज होती थी और हाथ से डमरू बजाता था।[९]

प्रसाधन और अलंकार :—वनवासी लोग प्राकृतिक वस्तुओं से अपना शृङ्गार करते थे। वे नवकिसलय के वस्त्रों का प्रयोग तथा कस्तूरी का लेप करते थे। गजमुक्ता जंगल में प्राप्त होते थे। इसलिए उनके हार पहनते थे। मयूर पंख के अवतंस, कानों में दन्तपत्र तथा बालों में चमरी के बालों को धारण कर अपनी शोभा बढ़ाते थे।[१०]

---

१. पृ० २२
२. पृष्ठ ६२।१५
३. विवागसुयं (विपाकसूत्र), अध्याय २, पृष्ठ १९
४. पृष्ठ ७८।२
५. अभिधान चिन्तामणि, कक्कोल = शीतल चीनी
६. पृष्ठ १५
७. पृष्ठ ३८
८. पृष्ठ ३८
९. पृष्ठ ५७
१०. पृष्ठ ७८, ७९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस समय सम्पन्न घरानों में दर्पण के स्थान पर मणिदर्पण का उपयोग होता था। शरीर पर ठंडक लाने के हेतु चन्दन रस का उपयोग होता था। यह बात दूसरी है कि वियोग में यही आल्हादकारक वस्तुएँ दुःखदायी होने से इनका उपयोग न होता हो।[१] कर्णमूल में सहकार के नवपल्लव भी लगाये जाते थे।[२] स्त्रियाँ पैरों में अलक्तक लगाती थीं। इसलिए महेन्द्रगोप की रक्तिमा में पवनंजय को अञ्जना के अलक्तक की भ्रान्ति हो गयी थी।[३] स्वयंवर या विवाह के अवसर पर औषधिमाला अपेक्षित थी। कृत्रिम स्वयंवर में उसके स्थान पर मुक्तमाला से काम चलाया गया था।[४] अञ्जना मुक्तमाला पहनती ही थी। वह मणि की मंजीर तथा कटि में काँची पहनती थी।[५] मंजीर को प्रक्षेप्य अलंकार कहा जाता है, क्योंकि यह प्रक्षेपपूर्वक पहना जाता है। मुक्तमाला आरोप्य अलंकार है, क्योंकि इसका वक्षस्थल पर आरोप किया जाता है। काँची को निबंधनीय समझना चाहिए, क्योंकि यह कमर में बाँधकर पहनी जाती है।[६] इससे विदित होता है कि सम्पन्न घरानों में इन अलंकारों के पहनने की प्रथा थी। अंजना प्रकोष्ठ में जो रत्नवलय पहने थी, उस पर शुक का चिह्न था। शोभा के लिए लोग अलंकारों में इस प्रकार की कलाकृति कराते थे।[७] रथ में मणि किंकणी लगी रहती थी, जो हिलने पर शब्दायमान होती थी।[८] पुरुष लोग भी आभूषण पहनते थे। पवनंजय ने अञ्जना के गर्भवती होने का शुभ संवाद देने वाली युक्तिमती कों कटक अपने हाथ से उतार कर दिया था।[९]

युद्ध सामग्री :—युद्ध में अनेक विद्याओं का प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त धनुष-बाण का उल्लेख मिलता है।[१०] क्रूर भैरव अपने पास त्रिशूल दण्ड रखता था।[११] युद्ध में अनेकों प्रकार की व्यूहरचना में सेना का निवेश किया जाता था।[१२] धनुषवाण के अतिरिक्त अन्य शस्त्रों का प्रयोग भी किया जाता था।[१३] वाहनों में घोड़ा तो प्रमुख साधन था ही, क्योंकि पवनंजय स्वयंवर में घोड़े पर ही गये थे।[१४] इसके अतिरिक्त युद्ध में रथ का उपयोग होता था, जिसमें हाथी जुते

---

१. पृष्ठ ४८
२. पृ० ५६।३
३. पृ० ९१
४. पृ० १५
५. पृ० २७।११, पृ० २८।१२
६. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ८१ के वाद
७. पृष्ठ ९७
८. पृ० ७०।१०
९. पृ० ७३
१०. पृ० ३८
११. पृष्ठ ५७
१२. पृष्ठ ६७
१३. पृष्ठ ६७
१४. पृष्ठ ३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते थे।[1] वरुण स्वयं गन्धसिंधुर पर वैठकर युद्ध करता था।[2] धनुष तथा बाणों पर उस वीर योद्धा के नामों के अक्षर उत्कीर्ण रहते थे, जिससे युद्ध में यह पता चल जाता था कि अमुक योद्धा के बाण से इसकी मृत्यु हुई है। पवनंजय के नामयुक्त धनुषबाण को देखकर ही प्रतिसूर्य ने पवनंजय को वन में शंकाकुल होकर पहचाना था।[3]

साहित्य के अध्ययन के हेतु प्रायः सभी विषयों का अध्ययन अपेक्षित रहता है; क्योंकि साहित्य में सभी विषयों से सम्बन्धित कुछ न कुछ पदार्थों का वर्णन आता ही है। इसीलिए तो साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है, क्योंकि दर्पण के समक्ष आने वाली वस्तु का प्रतिविम्व दर्पण में आ जाता है। इसी प्रकार अन्यान्य विषयों के पदार्थों का उल्लेख साहित्य में मिलता है। यद्यपि इनमें कुछ वर्णन तो कवि परम्परा के कारण भी होते हैं, फिर भी इन पदार्थों के उल्लेख को तत्कालीन अस्तित्व का सूचक माना जाता है, क्योंकि जिस काल में जो पदार्थ नहीं हैं, उनका वर्णन करना औचित्य से परे है।

अन्य नाटकों से तुलना

एक काव्यकार के काव्य की वस्तु तथा रचना का साम्य, वैषम्य तथा अन्य प्रकार की प्रत्यभिज्ञात्मक तुलना दूसरे काव्यकार की वस्तु तथा रचना से मिलती है। देखा तो यहां तक गया है कि एक भारतीय कवि तुलसी की कविता का दर्शन तक न करने वाले पाश्चात्य अंग्रेजी कवि मिल्टन के साहित्य में लोग साम्य मानते हैं तथा परस्पर में 'रामचरित मानस' और 'पैराडाइज लास्ट' की तुलना करते हैं। एक प्रकार के विचार दो विभिन्न देशों के, भिन्न कालों के कवियों में उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है। एक ही रामचरित को आधार बनाकर लिखने वाले सैकड़ों कवि और नाटककार अपनी मौलिकता रखते हैं। यदि उनमें परस्पर में मौलिकता तथा भिन्नता न हो, तो उन भिन्न भिन्न रचनाओं का मूल्य ही क्या होगा? आचार्य वामन[4] ने अर्थ दृष्टि को समाधि नामक गुण माना है और वह समाधि नामक गुण दो प्रकार का है। एक तो स्वतः कल्पना-प्रसूत रचना तथा दूसरी वह रचना जिसमें दूसरे कवियों की छाया ली गयी हो, किन्तु उनमें नवीनीकरण हो या अपनी कुशलता से उसको मौलिकता प्रदान की गयी हो। नवीन काव्य प्राचीन काव्य का अनुकरण होने पर भी नूतन संस्कार के द्वारा परिष्कृत किये जाने के कारण चित्र के समान प्रतीत होता है। आनन्दवर्धन की दृष्टि में यह तुच्छात्मक है, किन्तु राजशेखर इसे चमत्कारी, पृथक् शरीर-सम्पन्न सर्वथा उपादेय मानते हैं और इसे वे आलेख्य प्रख्य

१. पृष्ठ ६७
२. पृष्ठ ६७
३. पृष्ठ १०१।५२
४. अर्थदृष्टिः समाधिः ३।२।७ अर्थो द्विविधोऽयोनिरन्यच्छायायोनिर्वा। -३।२।८
अयोनिरकारणः अवधानमात्र कारण इत्यर्थः
अन्य काव्यस्य छाया अन्यच्छाया तद्योर्निर्वा—काव्यालंकार सूत्र, पृ० १५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं।[1] यद्यपि साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने इसे समाधि नामका गुण स्वीकार नहीं किया है[2], किन्तु उन्होंने काव्य का निर्वाहक इसे माना ही है। इससे सिद्ध होता है कि बिल्कुल नवीन रूप में लिखना अथवा दूसरे की वस्तु में नवीनता का पुट देकर लिखना, दोनों ही काव्य के निर्वाहक हैं। प्राचीन काव्य के सदृश नवीन कविकृत काव्य का होना अपवाद नहीं, अपितु नियम है। प्रत्येक कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की साहित्यिक परम्परा का उत्तराधिकारी होता है।[3] इसी बात को ध्यान में रखकर तुलना की जा रही है।

उत्तर रामचरित से तुलना—उत्तर रामचरित की सीता का गर्भावस्था में वन के लिए निर्वासन किया गया है तथा सीता वन में अपनी तेजस्वी सन्तति को प्रसव देती हैं। प्रसव के पश्चात् उनके पुत्र वाल्मीकि के संरक्षण में पहुंच जाते हैं। सीता के वियोग में राम वन में सन्तप्त होते हैं और वन में वासन्ती द्वारा राम को सीता के निर्वासन के सम्बन्ध में उलाहना दिया जाता है।

अंजना-पवनंजय में भी अंजना का गर्भावस्था में निर्वासन होता है। वन में अंजना भी तेजस्वी बालक को जन्म देती है। जन्म देने के पश्चात् अंजना तथा पुत्र हनुमान के संस्कार किये जाते हैं, जैसे कि लव कुश के संस्कार वाल्मीकि के आश्रम में हुए थे। राम को वासन्ती ने सीता के निर्वासन के सम्बन्ध में उपालम्भ दिया था, इसमें पवनञ्जय को मणिचूड़ गन्धर्व की पत्नी रत्नचूड़ा ने परोक्ष में उपालम्भ दिया है[4] कि वह पवनञ्जय उन्मत्त है, जो कि उस अवस्था वाली प्रिया अञ्जना को छोड़कर इतने दिनों तक रह रहा है। राम जब वन में सीता के वियोग में अत्यन्त दुखित होकर मूर्च्छित होते हैं, तब अदृश्य सीता के स्पर्श से उन्हें सान्त्वना प्राप्त होती है। अञ्जना पवनंजय नाटक में अञ्जना की खोज करते-करते जब पवनंजय निराश होकर अचेतावस्था में हैं, तब अञ्जना के आने पर अञ्जना के स्पर्श से ही उन्हें चेतनता प्राप्त होती है। जिस समय राम की मूर्च्छित अवस्था में सीता ने राम का स्पर्श किया था, तब राम ने कहा था कि यह वही सीता का सुन्दर हाथ है, जो कि मैंने पहले परिणय विधि में कंकणधारी हाथ ग्रहण किया था[5]। बाद में जब हाथ छूटता-सा प्रतीत होता है, तब कहते हैं, क्या वह स्वप्न हो सकता है?

अञ्जना-पवनञ्जय में जब अञ्जना पवनञ्जय का स्पर्श करती है, तब पवनञ्जय भी उसके स्पर्श को पाकर कहते हैं कि यह कुसुम सदृश वही (अञ्जना का) बाहुयुगल

---

१. कियता यत्र संस्कार कर्मणा वस्तु भिन्नवद् भाति
तत् कथितं मर्मचतुरैरालेख्य प्रख्यमिति काव्यम्। —भारतीय साहित्य शास्त्र, प्रथम खण्ड, पृ० ३७८

२. साहित्य दर्पण, ८।१६

३. संस्कृत साहित्य में मौलिकता एवं अनुकरण, पृ० १०८

४. पृष्ठ ८८, उत्तर रामचरित, पृष्ठ १९१, तृतीय अंक

५. उत्तर रामचरित—३।४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। वही पीन स्तनतटयुगल है ; फिर क्या मेरे संकल्प इस रूप में परिणत हो गये हैं, अथवा यह मेरी मनोभ्रान्ति है अथवा यह स्वप्न है ?[1]

सीता के वियोग में जब राम की अत्यन्त शोचनीय अवस्था हो जाती है, तब सीता उसका दोष अपने ऊपर लेकर कहती है कि मुझ मन्दभागिनी को लक्ष्यकर (विलाप करने से) आपकी यह अवस्था हो रही है।[2] इधर अञ्जना ने भी पवनञ्जय की अवस्था जब देखी, तो उसके मुख से भी निकला था कि मुझ अधन्या ने आर्यपुत्र को इस अवस्था को प्राप्त करा दिया।[3] सीता को वन में सखी की प्राप्ति हो जाती है, इधर अञ्जना के साथ उसकी सखी वसन्तमाला थी।

इस प्रकार दोनों में उक्त साम्य होते हुए भी दोनों में बहुत भिन्नता है। सीता को वन में स्वयं उसके पति ने प्रजा के एक व्यक्ति के कहने से निर्वासित किया था, किन्तु अञ्जना को उसके पति ने नहीं, किन्तु उसकी सास ने निर्वासित किया था, यद्यपि अञ्जना के निर्वासन का कारण भी वही था। जबकि राम के समक्ष सीता के पातिव्रत धर्म की परीक्षा हो चुकी थी, फिर भी जनानुरंजन के लिए या राजा का कर्तव्यपालन करने के लिए राम को सीता का निर्वासन करना पड़ा। अञ्जना-पवनञ्जय में बेचारी सास केतुमती को अञ्जना के सम्वन्ध में पहिले तो यह जानकारी ही नहीं थी कि पवनञ्जय एक रात युद्ध के स्थल से घर आकर अञ्जना से मिल कर वापस चले गये हैं, ऐसी स्थिति में बदनामी के भय से अञ्जना को अपने यहाँ से उसके पीहर भेजवाने का उपक्रम किया गया। यद्यपि केतुमती को पता लग गया कि एक रात पवनञ्जय आये थे, फिर भी कुलवनिता होने के कारण वह परिवाद के लव मात्र से भी डरती थी।[4] इतने पर भी सास केतुमती ने उसे उसके पीहर भेजा था, किन्तु अञ्जना भी एक कुलवनिता थी और उसने भी उस शंका की स्थिति में माता-पिता को मुख दिखाना उचित नहीं समझा, फलस्वरूप वन में चली गयी। उत्तर रामचरित की सीता ने चित्र देखते समय वन विहार का गर्भावस्था में दोहद किया था, उसकी पूर्ति दूसरे रूप में हो गयी। पवनञ्जय के समय पर न आने के कारण अञ्जना को वन की शरण लेनी पड़ी। पवनञ्जय भी एक आदर्श राजकुमार थे, इसलिए वरुण के विरुद्ध होने वाले संग्राम की समाप्ति के पूर्व वे आदित्यपुर नहीं पहुँच सके। इस प्रकार राम तथा पवनञ्जय, दोनों अपनी पत्नियों के निर्वासन में विवश से हैं ; किन्तु अञ्जना के निर्वासन में पवनञ्जय का हाथ न होने पर भी सबसे बड़ा हाथ है, क्योंकि युद्ध-स्थल से एक रात जाकर अञ्जना से मिलकर युद्ध के लिए चले गये थे ; पुनः समय पर न पहुँचने से ही तो अञ्जना का निर्वासन हुआ है।

---

१. अंजना-पवनंजय, १०३।५६

२. उत्तर रामचरित, तृतीय अंक, पृ० १८२

३. अंजना-पवनंजय, पृ १०३

४. ५६।१—निरवद्यं चारित्रं ज्ञात्वापि निजाभिजात्यपरवत्यः
बिभ्यत् खलु कुलवनिताः परिवादलवादपि प्रायः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाँ तक करुण रस या विप्रलंभ शृंगार की करुणा का सम्बन्ध है, उत्तर रामचरित में वह गम्भीरता लिये हुए एवं व्यापक है; किन्तु उस विप्रलंभ शृंगार की अभिव्यक्ति के लिए जिस सरल संस्कृत की अपेक्षा चाहिए, वह अञ्जना-पवनञ्जय नाटक में अधिक है। उत्तर रामचरित अपनी विशालता तथा क्लिष्टता के कारण अभिनय की उस सफलता तक नहीं पहुँच पाया, जिस सफलता को अञ्जना-पवनञ्जय प्राप्त कर सकता है। यह दूसरी बात है कि भवभूति का नाटक सबके लिए नहीं, किसी लेखक के समानधर्मा दर्शक के लिए लिखा गया हो।[१] आधुनिक अभिरुचि के पाठक को भवभूति अत्यधिक चित्ताकर्षक तब प्रतीत होते हैं, जब वे सरल और स्वाभाविक रूप में आते हैं;[२] क्योंकि भवभूति कभी-कभी सरल और कभी-कभी कठिन रूप में आये हैं। हस्तिमल्ल अञ्जना-पवनञ्जय में तो सदा ही सरल और स्वाभाविक रूप में आये हैं।

विक्रमोर्वशीयम्—विक्रमोर्वशीय की और अञ्जना की कथावस्तु या घटनाएँ बिल्कुल भिन्न प्रकार की हैं। विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क में उर्वशी जब राजा के साथ गन्धमादन पर्वत पर आती है, वहाँ दोनों क्रीड़ा करते हैं। एक दिन एक गन्धर्व बाला को देखने के कारण राजा के प्रति उर्वशी मान कर बैठती है और उस वन में प्रवेश कर जाती है, जिस वन में आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करने वाले कुमार रहते थे। वहाँ प्रवेश करने पर कोई भी स्त्री लता बन जाती थी, क्योंकि उस वन के कुमारों का यही शाप था कि जो स्त्री वहाँ प्रवेश करेगी, वह लता बन जायगी। उर्वशी के लता बन जाने पर राजा पुरुरवा अपनी पत्नी को विकल होकर वन में खोजते हैं। वन में पत्नी को खोजने में जैसा वर्णन कालिदास ने किया है, वैसा ही वर्णन हस्तिमल्ल के अञ्जना-पवनञ्जय में मिलता है।

अंजना-पवनंजय नाटक में दो स्थानों पर इस बात के संकेत मिलते हैं कि अंजना ने पूर्व जन्म में कुछ अशुभ कर्म किया था, जिसके कारण उसे वनवास तथा पतिवियोग जैसे कष्ट उठाने पड़े।[३] इसके सम्वन्ध में पद्म पुराण (रविषेणाचार्य) के सप्तदश पर्व में एक कथा मिलती है[४] कि पूर्वभव में अरुण नामक नगर में राजा सुकण्ठ की कनकोदरी नामक रानी थी। उस समय इसकी (कनकोदरी की) लक्ष्मी नामक सौत थी। वह लक्ष्मी बड़ी धार्मिक महिला थी, इसलिए भगवान जिनेन्द्र की

---

१. मालती माधव १।६, पृ० १३—
ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः
उत्पत्स्यते ऽस्ति मम कोपि समानधर्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

२. संस्कृत नाटक, पृ० २०४

३. (अ) ८८।४ क्वासौ महेन्द्रतनया क्वेदं मातंगमालिनी गहनम्
अनुभाव्य एव बाढं जमान्तर एवं कर्मपरिपाकः।

३. (ब) वत्से अंजने, मास्म शोच, इदं हि ते जन्मार्जितं कर्म यद्भर्तृविरहोऽनुभूयते। पृ० १११

४. पद्मपुराण १७।१६५ से १७२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमा बनवाकर उसकी पूजा करती थी। कनकोदरी ज्येष्ठ रानी थी, इसलिए उसने सौत के प्रति दुर्भाव के कारण जिनेन्द्र की मूर्ति को घर के बाहरी भाग में फिंकवा दिया था। उस समय संयमश्री नामकी एक साध्वी वहाँ आयी और उन्होंने जब उस प्रतिमा को बाहर पड़ा देखा, तब पारणा से उनका मन हट गया। कनकोदरी को समझाकर धर्म का उपदेश दिया। उसके बाद कनकोदरी भी धार्मिक महिला बन गयी थी; किन्तु प्रतिमा को मन्दिर से निर्वासित करने के अशुभ कर्म के कारण उसे भी घर से निर्वासन तथा वनवास के कष्ट उठाने पड़े। इसी प्रकार पुरुरवा के प्रति मान करके उर्वशी को निषिद्ध वन में प्रविष्ट होने से लता रूप हो जाने का फल भोगना पड़ा; जिसके कारण पुरुरवा से वियोग हुआ और पुरुरवा को उर्वशी की खोज में विकल होना पड़ा। अंजना ने सौत की ईर्ष्यावश प्रतिमा को बाहर फेंकने जैसा निषिद्ध कार्य पूर्व भव में किया था; जिसके कारण उसे वनवास तथा पतिवियोग उठाना पड़ा और उस स्थिति में पवनंजय को विकल होकर वन में अंजना का अन्वेषण करना पड़ा। अंजना-पवनंजय नाटक में विरही पवनंजय उन्मत्त होकर अंजना को खोजते समय पेड़, पौधों, पशु, पक्षियों से अंजना का पता पूछते हैं। वही रचना का ढंग विक्रमोर्वशीय नाटिका में मिलता है। निःसन्देह हस्तिमल्ल ने संस्कृत के पूर्वकालीन नाटकों का ही नहीं, सभी प्रकार के साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया होगा तथा विक्रमोर्वशीय की प्रणाली पर उक्त वर्णन होने पर भी विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक की अपेक्षा उसमें हस्तिमल्ल ने नवीनीकरण किया है। विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक का साम्य अंजना-पवनंजय के षष्ठ अंक के निम्न अंशों में देखा जा सकता है।

विक्रमोर्वशीय के प्रवेशक में सहजन्या और चित्रलेखा की बातचीत है। अञ्जना-पवनंजय नाटक के मिश्रविष्कंभक में मणिचूड़ गन्धर्व और उसकी पत्नी रत्नचूड़ा की बातचीत है। मणिचूड़ गन्धर्व ने जलदकाल में उस विरहातुर भ्रमर की बात कही है, जो कि नये जल के बरसने से मुद्रित हो जाने वाले कमल में तिरोहित हो जाने वाली सहचरी का अन्वेषण कर रहा है। यहाँ समासोक्ति अलङ्कार द्वारा इस बात की सूचना दी गयी है कि नया संकट आ जाने से सघन वन में लुप्तपत्नी को विरहातुर पवनंजय चारों ओर खोज रहा है।[1] विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा स्वयं कहता है कि इस वन में मैं उस प्रिया का अन्वेषण कर रहा हूं। आगे पुरुरवा कहता है कि दयिता वियुक्त, अधिक दुःखी विरहयुक्त अतएव मन्दगति वाला थका हुआ गजपति पुष्पशोभित वन में प्रिया का अन्वेषण कर रहा है। यहाँ उसका कथन अन्योक्ति के रूप में है; अतएव गजपति से पुरुरवा का ही अर्थ प्रस्तुत किया गया है।[2]

---

१. अंजना-पवनंजय—८७।१ नवतोयबिन्दुपतनेन मीलिते, सरसीरुहे सहचरींतिरोहिताम्
प्रथमोदये जलमुचां मधुव्रतो विरहातुरो मृगयते समन्ततः

२. विक्रमोर्वशीय—४।१४ चर्चरी की संस्कृत छाया
दयितारहिताऽधिकं दुःखितो विरहानुगतः परिमंथरः
गिरिकानने कुसुमोज्ज्वले गजयूथपतिस्तथा क्षीणगतिः।

१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा सर्वप्रथम मेघ को फटकारता है और उसे भ्रान्तिवश उर्वशी चुराने वाला समझता है।[1] इतना ही नहीं, पुरुरवा मिट्टी का ढेला लेकर मारने दौड़ता है।[2] थोड़ी ही देर में भ्रान्ति दूर हो जाती है और कहने लगता है, यह निशाचर नहीं, मेघ है।[3]

अञ्जना-पवनंजय में पवनंजय मातंगमालिनी वन पर बिगड़ते हैं और कहते हैं कि हे चुराने वाली वनस्थली, यदि तुम मेरे द्वारा खोजे जाने पर भी मेरी सहचरी को नहीं दिखाती हो, तो मेरे बाण के मुख से निकली हुई दावाग्नि तुम्हें जला देगी।[4] यह कहकर धनुष पर बाण चढ़ाते हैं। इसके कुछ क्षण बाद ही जब उनको यह ध्यान आ जाता है कि बेचारी वनस्थली क्या चुरायेगी, तब हँसकर कहने लगते हैं कि अरण्यानी, तुम्हें नहीं डरना चाहिए, यह हमारा अनुचित आवेग कैसा है! हमारी ज्यां के शब्द मात्र से यह अरण्यानी व्याकुल हो रही है। गुहा मुख में प्रसरित होने वाली श्रवणोद्वेजनीय प्रतिध्वनि के द्वारा यह पर्वत क्रन्दन कर रहा है। कण्ठीरव भय से व्याकुल होकर शरभों के साथ शीघ्र ही भाग रहे हैं।[5]

विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा कहते हैं कि उर्वशी इधर गयी होगी, यह कैसे समझा जाय? क्योंकि वह इधर गयी होती तो मेघ से भींगी हुई सिक्ता भूमि पर नितम्ब के भार से पीछे के पैरों के गाढ़ स्पर्श से अलक्तांतिक पाद-पंक्ति दिखाई देती।[6] इसके पश्चात् घूमकर तथा देखकर हर्ष के साथ कहते हैं, मैंने ऐसा चिह्न पा लिया है, जिससे उस कोपना के मार्ग का अनुमान किया जा सके। यह मेरी प्रेयसी का हरे रंग का स्तन का वस्त्र खिसक गया है और उस वस्त्र के ऊपर ओष्ठराग से मिश्रित ये लाल लाल अश्रु बिन्दुएँ गिरी पड़ी हैं। इसके बाद पुनः पहचान कर कहते हैं कि यह तो हरी घास है, जो कि इंद्रगोप (लाल कीट) से सहित है।[7]

इसी का साम्य अञ्जना-पवनंजय में कुछ परिवर्तन के साथ देखिये। पवनंजय कहते हैं, अञ्जना पैदल यहाँ से कैसे गयी होगी, क्योंकि इस वनस्थली पर दर्भ की सुई के काँटे हैं। वसन्तमाला ने उस सुकुमारी को इस कष्टपूर्ण मार्ग से क्यों जाने दिया होगा? इसलिए दूसरी ओर अन्वेषण करता हूं। घूमकर तथा देखकर हर्षपूर्वक कहते हैं कि मैंने प्रिया का मार्ग देख ही लिया, क्योंकि समीप में ही उस अञ्जना की गति

---

१. विक्रमोर्वशीय पृ० १४३—आः दुरात्मन् रक्षस्तिष्ठ तिष्ठ, क्व मे प्रियतमामादाय-गच्छसि

२. (लोष्ठं गृहीत्वा हन्तुं धावन्) विक्रमोर्वशीय, पृष्ठ १४३

३. नवजलधरः संनद्धोयं न दृप्तनिशाचरः सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम्।
अयमपि पटुर्धारासारो न बाण परम्परा, कनकनिकषस्निग्धा विद्युत, प्रिया न ममोर्वशी

४. पृ० ८९

५. पृ० ८९।२

६. विक्रमोर्वशीयम्, पृ० १५१

७ विक्रमोर्वशीयम्, अंक ४, ४।७, छन्द १६ इत्यादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की सूचक रक्त वर्ण की अलोक्तांकित पद-पंक्ति दिखाई देती है। आगे देखकर खेदपूर्वक कहते हैं कि ये तो वर्षा समय के सूचक महेन्द्रगोप हैं।[1]

दोनों नाटकों में वर्षा समय में ही दोनों नायक अपनी अपनी प्रियतमाओं को खोजते हैं। दोनों ही विभिन्न पशुओं, पक्षियों, पौधों तथा वृक्षों से उन्माद अवस्था में अपनी भिन्न भिन्न कल्पनाओं के सहारे अपनी प्रियतमाओं का पता पूछते हैं। विक्रमोर्वशीयम् में पुरुरवा मयूर से भी अपनी प्रियतमा का पता पूछते हैं, किन्तु वह उत्तर न देकर नृत्य करने लगता है। पुरुरवा कहते हैं, मेरी प्रिया के अभाव में मयूर का यह सुन्दर पंखदल (कलाप) प्रतियोगीहीन हो गया है। इसीलिए नाच रहा है। इसे दूसरों के दुःख से सहानुभूति नहीं है, इसलिए अब इससे नहीं पूछता हूं।[2]

अंजना-पवनंजय नाटक में पवनंजय कस्तूरिका मृग से अंजना के जाने का समाचार पूछते हैं। पुरुरवा ने मयूर के कलाप की समानता उर्वशी के केशपाश से बतायी थी, यहाँ कस्तूरिका मृग की नाभि की गन्ध अंजना की निश्वास का अनुसरण करती हुई बतायी गयी है। उधर मयूर प्रश्न का उत्तर न देकर नृत्य आरम्भ कर देता है, अंजना-पवनंजय में हिरण अपने पर्ण ग्रास का स्वाद लेना आरम्भ कर देता है। पवनंजय स्वार्थी हिरण से प्रश्न पूछना छोड़ देते हैं।[3]

विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा भ्रान्तिवश राजहंस के कूजन को प्रिया के चरण के न्यास का सूचक नूपुर का शब्द समझ बैठता है और जब उसके पास पहुँचता है, तब उसे विदित होता है कि यह राजहंसों का कूजन है, नूपुर का शब्द नहीं है।[4]

अंजना-पवनंजय नाटक में पवनंजय गजदन्त को दूर से प्रिया का टूटा हुआ मुक्ताहार समझ लेते हैं, किन्तु जब उसे गौर से देखते हैं, तब वह गजदन्त निकलता है। एक में कर्ण-भ्रम है, दूसरे में चक्षु-भ्रम।

विक्रमोर्वशीय नाटक में पुरुरवा पर्वतराज से उर्वशी का पता पूछते हैं, उन्हें अपनी ही प्रतिध्वनि सुनाई देती है और वे समझते हैं कि पर्वत ने कुछ उत्तर दिया है। दुबारा प्रश्न करने के बाद में उन्हें यह समझ में आता है कि यह तो मेरे ही शब्द कन्दरा में गूँज रहे हैं।

अंजना-पवनंजय में इससे भी सुन्दर कल्पना भ्रान्ति की है। पर्वत की स्फटिक शिला भित्ति पर उन्हें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, जिसे पवनंजय कामदेव समझते हैं और उससे ही अंजना का पता पूछने लगते हैं; किन्तु अच्छी तरह देखने पर उन्हें विदित होता है कि अरे, यह तो मेरा ही प्रतिबिम्ब है। यहाँ भी एक में कर्ण-भ्रम है और दूसरे में चक्षु-भ्रम है।

---

१. अंजना-पवनंजय, पृष्ठ ९०
२. विक्रमोर्वशीयम्—४।२१, ४।२२
३. अंजना-पवनंजय, पृ० ९५, ९५।३२, ९५।३३
४. कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिंजितम्—४।३०—विक्रमोर्वशीयम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा नदी के किनारे तरंगवायु सेवन करते जाते हैं। नदी के सम्बन्ध में पुरुरवा की कल्पना है कि मेरी प्रिया ही रूठ कर नदी के रूप में परिणत हो गयी है, क्योंकि तरंगें भ्रूलताएँ हैं, शब्दायमान पक्षीगण रसना हैं, अस्तव्यस्त फेन वसन है तथा टेढ़ी मेढ़ी चाल से यह चल रही है।[1]

अंजना-पवनंजय नाटक में पवनंजय सरसी के समीप पहुँचकर सरसी से पूछते हैं कि तुम्हारी लहरें उसकी भ्रूलेखाओं का, तुम्हारी विसलता उसकी भुजाओं का, तुम्हारा स्वच्छ जल उसके प्रसन्न चित्त का, तुम्हारा सिक्ता स्थल उसके नितम्ब स्थल का, तुम्हारा कमल उसके मुख का, तुम्हारा नील कमल उसके नेत्र का तथा कमल में स्थित लक्ष्मी उस प्रियतमा अंजना का अनुकरण करती है। क्या वह अबला तुम्हारे पास से गयी है?[2]

इसी प्रकार अनार के वृक्ष पर बैठा शुक अंजना के वनवासकाल के शब्दों को ज्यों का त्यों दुहराता है और यह बिल्कुल रत्नावली की उस मैना जैसा ही है, जिसने रत्नावली के सुसंगता के साथ हुए वार्तालाप के रहस्य को प्रकट कर दिया था, किन्तु इस नाटक के प्रसंग में यह वर्णन अपनी विशेषता लेकर आता है। शुक के दुहराये गये शब्दों में अंजना द्वारा उच्चरित शब्दों का ही भ्रम होता है, किन्तु भ्रम-निवारण के बाद वे शुक का महान् उपकार मानते हैं, क्योंकि उसने प्रिया अंजना की स्थिति की सूचना दी है। उससे वे पूछते हैं—हे शुक, तुम जिस अंजना के बायें प्रकोष्ठ के रत्नवलय में चिह्न रूप में स्थित हो, मेरे कन्धे के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होने वाले उस प्रकोष्ठ पर तुम अत्यन्त शोभित होकर अत्यन्त प्रीति प्राप्त करोगे। मंजुलवाणी से जिस अंजना के तुल्य हो, तुम्हारी चोंच जिस अंजना के नखों की रक्त कान्ति धारण करती है, वह मेरी प्रिया अञ्जना कहाँ है?[3]

वह तोता शब्द दुहराने के बाद दाड़िम का स्वाद लेने में लग जाता है। पवनंजय कहते हैं, बार बार प्रश्न के निर्बन्ध से इसके अभिलाष का भंग न हो, जिसने प्रिया की स्थिति सूचित की है।

इस प्रकार का वर्णन सरल, सरस तथा हृदय में रस की तीव्र अनुभूति कराने वाला है और ये वर्णन किसी भी श्रेष्ठ कवि के श्रेष्ठ काव्य की तुलना प्राप्त करते हैं।

---

१. विक्रमोर्वशीयम्—तरंगभ्रूभंगा क्षुभितविहगश्रेणीरशना
विकर्षन्तीफेनं वसनमिव संरम्भशिथिलम्
यथाविद्धं याति स्खलनमधिसन्धाय बहुशो
नदी भावेनेयं ध्रुवमसहना सा परिणता। —४.५२

२. अंजना-पवनंजय—भ्रूलेखे लहरी, भुजौ विसलता चेतः प्रसन्नं पयः
श्रोणीसैकतमाननं सरसिजं नेत्रे च नीलोत्पलम्
यस्यास्ते तुलयन्ति यां प्रियतमां प्रियोदरस्थायिनी
लक्ष्मीश्चानुकरोति किमबला याता तवोपान्तिकम्। —६।४१

३. अंजना-पवनंजय—यस्यास्त्वं शुक! चारुरत्नवलये वामप्रकोष्ठेस्थितः
शोभां प्राप्य मदंसभागसुहृदि प्रीतिं परांलप्स्यसे
वाचा मंजुलया ययासितुलितो यस्या नखानां रुचिं
धत्ते चञ्चुरियं च ते कथय कान्ता, क्व मे वर्तते। —९।३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तोते की मंजुल वाणी यदि अंजना की वाणी की समानता प्राप्त करती है, तो कवि की मंजुल वाणी तथा वर्णनशैली भी किसी श्रेष्ठ कवि की श्रेष्ठ रचना की तुलना प्राप्त कर सकती है।

मालती माधव—मालती-माधव और अञ्जना-पवनंजय में वैसे कोई तुलना नहीं हो सकती है। मालती-माधव में वीभत्स, हिंसा आदि के प्रचुर दृश्य हैं, जबकि अञ्जना-पवनंजय में युद्ध का वर्णन होते हुए भी हिंसा से अछूता है। दोनों की अपनी कथाएँ बिल्कुल भिन्न प्रकार की हैं। केवल इतनी समानता मानी जा सकती है कि मालती-माधव का नायक माधव जब युद्ध में लगा हुआ था, तब उसकी प्रिया मालती को ईर्ष्यावश कपालकुण्डला श्री पर्वत पर लेकर चली गयी और पति के लिए अदृश्य तथा अन्वेषण का विषय बना दिया। अन्वेषण में माधव भी मालती के सम्बन्ध में मेघ से पता पूछते हैं तथा मयूर, चकोरी, वानर और गज को स्वकार्यरत देखकर उनसे प्रार्थना करना उचित नहीं समझते हैं।

अञ्जना-पवनंजय में जब पवनंजय युद्धरत थे, तभी उनकी प्रिया मातंगमालिनी वन में ले जायी गयी थी। युद्ध समाप्ति पर पवनंजय द्वारा उसका अन्वेषण किया गया। दोनों नाटकों में वर्षा ऋतु ही इस प्रसंग के लिए चुनी गयी है। पवनंजय ने भी प्राकृतिक पदार्थों से प्रिया-वृत्तान्त पूछा था। मालती-माधव में कवि की दीर्घ-समास वाली रचना है, जबकि अञ्जना-पवनंजय की अत्यन्त सरल रचना है।

मालती-माधव में उन्मत्त माधव को यह दिखाई देता है कि उसकी प्रिया के विभिन्न रूप विभिन्न पदार्थों में विभक्त हो गये हैं।[1] इस भ्रम का प्रमुख कारण संसार में ब्रह्मा की रचना में परस्पर प्राप्य सादृश्य की सुलभता है।[2] मैं समझता हूँ कि इसी सादृश्य-सुलभता के कारण हमें भिन्न भिन्न काव्य विधाताओं की काव्य सृष्टि में तद्रूपता का भ्रम होता है। भास के स्वप्नवासवदत्त की उस उक्ति को सत्य मानकर चला जा सकता है जिसके अनुसार दो भिन्न व्यक्ति भी सदृश आकार के हो सकते हैं।[3] उसी प्रकार दो काव्य-सृष्टियाँ समान होने पर भिन्न हो सकती हैं। इतना ही नहीं, एक ही कथावस्तु या वस्तु भिन्न-भिन्न काव्य रूपी आधारों में पहुँचकर भिन्न-भिन्न रूप धारण कर सकती है, जैसे एक ही जल कमलपत्र पर मोती जैसा तथा सीप में पहुँच कर बिलकुल मोती के रूप में और अंगूर की लता में सरस, सुस्वादु रूप में बदल जाता है। अन्य नीम आदि में पहुँचकर वही जल कटु भी बन जाता है।[4] मैं समझता हूं कि साम्य वैषम्य देखते समय इन दो तथ्यों को ध्यान में रखना अपेक्षित है।

---

१. मालती माधव—९।२७ नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्तिर्दृशः कुरंगेषु गतं गजेषु
लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य व्यक्तं विभक्ता विपिन प्रिया मे। —४।२७

२. सुलभानुकारः खलु जगति वेधसो निर्माणसन्निवेशः

३. यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति
परस्पर गता लोके दृश्यते तुल्यरूपता। (स्वप्नवासवदत्तम्—६।१४)

४. सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थित राजते
स्वातौ सागरशुक्ति कुक्षिपतितं तज्जायते मौक्तिकम्
प्रायेणोत्तममध्यमाधमगुणः संसर्गतो जायते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मालती-माधव में माधव की दृष्टि से मालती के प्राणों की रक्षा का आधार आशातंतु है।[१] अंजना-पवनंजय नाटक में पवनंजय अंजना की जीवन के प्रति रुचि का कारण भी अपने दर्शन की रति को मानते हैं।[२]

वस्तु, शैली, कल्पनाओं आदि को आधार बनाकर साम्य खोजें तो न्यूनाधिक साम्य अनेक काव्यों में देखा जा सकता है। मैं बाणभट्ट की शैली के साम्य के एक दो उदाहरण उद्धृत करता हूँ :—

प्रतिसूर्य—इयमंजना महेन्द्रपुरभवगन्तुं प्रोत्साह्यन्त्या वसन्तमालया जीवितनिरपेक्षत्वात्, व्यामुग्धत्वाच्च स्त्रीप्रकृतेः, तादृग्विधत्वाच्च भवितव्यस्य, तदवचनमप्यनभ्युपगच्छन्ती प्रेर्यमाणेव प्रतीपवर्तिनाविधिना तामेव मातंगमालिनीं प्राविक्षत् (अंजना-पवनंजय, पृष्ठ ११०)

कृतप्रणामायां च मयि दुर्लंघ्यशासनतया भगवतः मनोभुवः, मदनजननतया च मधुमासस्य अविनयबहुलतया चाभिनव—यौवनस्य, चंचलप्रकृतितया चेन्द्रियाणां, दुर्निवारितया चाभिलाषाणां, चपलतया च मनोवृत्तेः तथा भक्तिव्यस्य च तस्य वस्तुन........

तमपि तरलतामनयदनंगः (कादम्बरी, महाश्वेता वृत्तान्त, पृष्ठ ४२९)

अहन्तु सकललोक दुर्लंध्यतया जीवित तृष्णायाः क्षुद्रतया च स्त्रीस्वभावस्य तथा च तद्वचनोपनीतया दुराशामृगतृष्णिक्या.... नोत्सृष्टवती जीवितम् (वही, पृष्ठ ५००)

इसी प्रकार अंजना-पवनंजय में चतुर्थ अङ्क के अन्त में वसन्तमाला द्वारा अंजना के रक्षण के लिए जो पुकार है, उसकी शैली पुण्डरीक की मृत्यु के पश्चात् कपिंजल द्वारा किये गये विलाप की शैली से मिलती जुलती है।

काव्य प्रकाश के पंचम उल्लास में अस्फुट व्यंग्य का उदाहरण है।[३] उसी भाव के अनुकरण का छन्द प्रस्तुत नाटक में है।[४] किन्तु इसमें वह अस्फुटता नहीं है, क्योंकि आरंभ के तीन चरण हेतु रूप में उपन्यस्त कर दिये गये हैं।

---

१. मालती माधव—आशातन्तु न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः प्राणत्राणं कथमां. करोत्यायताक्ष्याः स एकः। –९।२६

२. जीवितरुचिं, बलात् तस्या मन्ये नियमयतिमद्दर्शनरतिः। –८५।२८

३. अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विच्छेदभीरुता।
न दृष्टेन नादृष्टेन भवता लभ्यते सुखम्॥

४. भवति ललनां चेतः श्रुत्वा विलोकनसत्वरम्
तदनु भजते दृष्ट्वा चिन्तां सभागमशंसिनीम्
पुनरप्यविरहोपायं वांछत्यवाप्य समागमम्
प्रतिपदमसौ कामोन्मादः क्रमेण विवर्धते॥ –२७।१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिनेयत्व, उद्देश्य एवं उपसंहार

नाटक की प्रमुख विशेषता उसकी अभिनयशीलता मानी जाती है। जो नाटक रंगमंच पर सफल नहीं हो सकता, उसे अंकों, दृश्यों में विभाजित कहानी मात्र समझना चाहिए। नाटक का उद्देश्य यही है कि उसे कार्य, अभिनय, संगीत, नृत्य, वेषभूषा आदि द्वारा रंगमंच पर दिखाया जाय।[1]

दृश्य काव्य में कल्पना पर कम बल देना पड़ता है, क्योंकि उसकी अभिनेयता अधिक सक्रिय तथा प्रभावक होती है। स्वभावतः अमूर्त की अपेक्षा मूर्त का प्रभाव अधिक होता है। जो नाटक अभिनीत नहीं हो सकते हैं, वे दृश्य काव्य की श्रेणी में नहीं होने पर भी हेय नहीं हैं। अब आधुनिक आलोचक उन्हें कक्ष नाटक (Colset Drama) मानने लगे हैं।[2] किसी नाटक का अभिनय नाटक के आदर्शवाद को यथार्थवाद की भूमिका ग्रहण करा देता है। साहित्य के शिव पक्ष पर सत्य और सुन्दर का रंगीन आवरण चढ़ा देता है। इतना ही नहीं, अरस्तू ने कला को जो अनुकरणमूलक माना है, उसका वास्तविक रूप अभिनयशील रूपक में ही देखने को मिलता है। इस प्रकार नाटक की अभिनयशीलता एक अनिवार्य अंग है। संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना से भी विदित है कि उनको अभिनय की दृष्टि से ही लिखा गया था।[3]

उस प्रधान अंग अभिनय के चार प्रकार माने गये हैं—आंगिक, वाचिक, आहार्य (वेषभूषा) तथा सात्विक[4]। अंजना-पवनंजय नाटक के आंगिक, वाचिक तथा सात्विक अभिनय बराबर हो सकते हैं तथा अभिनयशीलता में सरल भाषा के कारण दर्शक को बुद्धि का आयाम नहीं करना पड़ता है तथा वनेचर तथा क्रूर भैरव की भिन्न भाषा उसके वास्तविक वाचिक अभिनय की पोषक है।

नाटक में वस्तु ऐक्य, काल ऐक्य का पालन भी दर्शक की मनोदशा को सत्य पक्ष के प्रति विश्वस्त बनाये रखता है। वेष निर्देश न होने से आहार्य अभिनय में कठिनाई होती है। परन्तु वेशभूषा आदि को नाट्य प्रयोक्ता की सूझबूझ पर छोड़ना चाहिए। कुछ आधुनिक नाटककार वेष तथा रंग का निर्देश करते हैं, परन्तु यह निर्देश नाट्य प्रयोक्ता के लिए समस्या खड़ी कर देता है। इसलिए इन निर्देशों को अवांछनीय माना गया है।[5] इसलिए संस्कृत के नाटकों में वेष निर्देश न करना अच्छा ही है। नाटककार का विश्वास पौराणिक कथावस्तु पर है, इसलिए युद्ध

---

१. समीक्षाशास्त्र (दशरथ ओझा), पृ० २०

२. काव्य के रूप (दृश्य काव्य विवेचन), पृ० ६३

३. भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, पृ० १८०

४, तत्र त्वभिनयस्यैव प्राधान्यमिति कथ्यते
आंगिको वाचिकस्तद्वदाहार्यो सात्विको परः। चतुर्थाभिनयः—अभिनय दर्पण, पृ० ८६

५. भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृ० १५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्धी सूचनाएं तथा वह दृश्य जिसमें सिंह को एक गन्धर्व शरभ का रूप बनाकर आकाशमार्ग में ले गया था, सूच्य बनाया गया है, किन्तु पवनंजय का विमान पर आरोहण करके युद्ध भूमि से आदित्यपुर पहुँचने का दृश्य नाटकीय दृष्टि से अभिनय योग्य नहीं है। यह दृश्य केवल सिनेमा जगत के अनुकूल हो सकता था। इसी प्रकार कालमेघ हस्ती पर विदूषक के साथ आरोहण करके गगन में अवगाहन करके चलने का दृश्य केवल पठनीय है, अभिनय योग्य नहीं है। युद्ध भूमि से रथ पर सवार होकर आदित्यपुर जाने का दृश्य भी इसी श्रेणी का है। महेन्द्रपुर के उद्यान में अनेक पशु पक्षियों के दृश्यों का अभिनय के लिए प्रबन्ध करना कठिन है।

नाटक का विस्तार उतना ही है, जितना कि अभिनय किये जाने पर दर्शक की चित्तवृत्ति को रमाये रखे। कुछ दृश्यों के अनुकूल परदे वनवाकर अभिनय की पूर्ति की जा सकती है। प्रकृति के दृश्यों के अभिनय की व्यवस्था वैसे परदे वनवाकर की जा सकती है। षष्ठ अंक में पवनंजय ने जिनसे अंजना का पता पूछा था, उन पशु पक्षियों तथा वृक्षों के दृश्य इसी प्रकार के हैं।

उद्देश्य—भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के अनेक प्रयोजन माने हैं। नाटक भी दृश्य काव्य की एक विधा है। अतएव काव्य के प्रयोजन ही नाटक के प्रयोजन हैं। विना प्रयोजन के तो कोई कार्य होता ही नहीं है।[1] फिर नाटक के लेखन और योजन का तो विशिष्ट प्रयोजन होना ही चाहिए। मम्मट ने काव्य के प्रयोजन को लेखक की दृष्टि से यश, अर्थ-प्राप्ति आदि बताये हैं तथा पाठक और सामाजिक को रसानुभूति एवं कान्ता सम्मित उपदेश बताया है।[2] आचार्य विश्वनाथ ने चतुर्वर्ग की प्राप्ति को काव्य प्रयोजन माना है।[3] आधुनिक विद्वान् काव्य को कला के अन्तर्गत मानते हैं; इसलिए कला के प्रयोजन ही काव्य के प्रयोजन माने जाते हैं। जे० ई० स्पिनगर्न कला के लिए कला का सिद्धान्त मानते हैं और उनका लिखना है कि कला की नैतिक दृष्टि से समीक्षा करना अन्ध परम्परा है। इनके समर्थक भारतीय कहानीकार इलाचन्द्र जोशी भी हैं। अंग्रेजी लेखक आस्कर वाइल्ड, एस० सी० ब्रेडले भी इन्हीं विचारों के समर्थक हैं। ये कला का उद्देश्य केवल मनोरंजन मात्र मानते हैं। इसके विपरीत कला को सप्रयोजन मानने वालों की संख्या कम नहीं है और उनके तर्क भी सबल हैं। अंग्रेज आलोचक और कवि मैथ्यू आर्नल्ड का सिद्धान्त है कि जो काव्य की नैतिकता के प्रति विद्रोही है, वह स्वयं जीवन के प्रति विद्रोही है। प्रसिद्ध दार्शनिक टाल्सटाय काव्य और कला की कसौटी नीति तथा धर्म को ही मानते हैं। इसी प्रकार अन्य यूरोपीय विद्वान् रस्किन, आइ० ए० रिचर्डस् तथा मिल्टन कला और नैतिकता का घनिष्ट सम्बन्ध मानते हैं।

---

१. न प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोपि प्रवर्तते

२. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये
सद्यः परनिवृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे। (काव्यप्रकाश १।२)

३. चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं दिगद्यते।' (साहित्य दर्पण १।२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी के प्रसिद्ध कथा-सम्राट् प्रेमचन्द साहित्य के द्वारा होने वाले मन के संस्कार को काव्य का प्रमुख उद्देश्य मानते हैं। ब्रेडले तथा क्रोचे ने भी कला में नैतिकता का समर्थन स्वीकार किया है। तुलसी का स्वान्तःसुखाय का सिद्धान्त परहिताय का विरोधी नहीं है। प्लेटो नैतिकता के अभाव में कला को त्याज्य मानता था।

मुख्य बात यह है कि कलाकार एक नागरिक है और नागरिक नैतिक रूप से पृथक् नहीं रह सकता है। नैतिकता के आन्तरिक सौन्दर्य के बिना कला का बाहरी सौन्दर्य विष रस भरे कनक घट की भाँति ही रहेगा। मैथिलीशरण गुप्त ने कला का यही उद्देश्य स्वीकार किया है कि कला उस रूप को बताती है कि किस प्रकार का कर्तव्य होना चाहिए।[1] वैसे यह तो सत्य है कि काव्य का एक प्रयोजन सरसता है, क्योंकि उसके विपर्यय में साक्षरों के राक्षस हो जाने की संभावना है।[2] किन्तु उस सरसता रूपी मिठाई के साथ आरोग्यकारिणी नैतिकता की शिक्षा रूपी दवाई भी है। इसलिए मैं शैली के मत के समर्थन में यही लिखना उपयुक्त समझता हूँ कि काव्य का और समाज-कल्याण का सबसे अधिक सम्बन्ध नाटक में सबसे अधिक दिखाई देता है। दूषित नाटक पतन के सूचक हैं। यूरोप वाले भले ही यथार्थवादी होने का दावा करते हुए यह दिखाने का प्रयत्न करें कि उनका जीवन कैसा है, किन्तु भारतीय व्यक्ति सदैव आदर्शवादी रहे हैं और वे यह दिखाना चाहते हैं कि जीवन कैसा होना चाहिए।

प्रस्तुत नाटक में भले ही एक उदात्त प्रेम की कहानी को नाटकीय रूप दिया गया है, जैसा कि साहित्य दर्पणकार ने काव्य का प्रयोजन चतुर्वर्ग की प्राप्ति बताया है। इसमें यही संकेत मिला है कि काम के साथ धर्म का सम्वन्ध होना अनिवार्य है। पवनंजय युद्ध के धर्म (कर्तव्य) को त्यागकर अञ्जना से मिलते हैं और धर्म से उदासीन काम की ओर उन्मुख हो जाने का परिचय देते हैं, जबकि उनका साथी विदूषक कह देता है कि स्कन्धावार को छोड़कर जाना मुझे अनुचित लगता है[3] और अचानक शत्रु को निषिद्ध युद्ध के काल में मार डालना राजधर्म नहीं है। फिर भी पवनंजय अञ्जना से मिलने चल देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें अञ्जना की खोज में वन-वन भटकना पड़ता है और तब कहीं कष्टों की तपस्या में उस कर्म की शुद्धि होती है। तव अञ्जना की प्राप्ति हो जाने के पश्चात् स्थायी मिलन रूप आनन्द की प्राप्ति होती है। भारतीय दर्शन आशावादी है। उसका दृढ़ मन्तव्य है कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य सत्कर्म द्वारा सदा आनंद के

---

१. हो रहा है जो जहाँ सो हो रहा, यदि वही हमने कहा तो क्या कहा।
किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ, व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ॥
मानते हैं जो कला के अर्थ ही।
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही। (साकेत, सर्ग १, पृ० ३७)

२. साक्षरा विपरीताश्चेद् राक्षसा एव केवलम्
सरसो विपरीतोऽपि सरसत्वं न मुंचति।

३. पृ० ४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निकेतन में पहुँचना है। मार्ग में भले ही नाना प्रकार के विघ्न तथा क्लेशों का सामना करना पड़े, परन्तु गन्तव्य स्थान सदा आनन्दमय होता है।[1]

पति जब युद्ध कर्तव्य में तल्लीन था, तब अञ्जना ने उसके संयोग की आकांक्षा की थी और विरह वेदना में बेचैनी का अनुभव किया था, जबकि उसे वह समय शान्ति से बिताना चाहिए था। उसने भी पति का निषिद्धकाल में गुप्तरूप से सान्निध्य पाया, इसका फल उसे भी निर्वासन तथा जंगलों के भयंकर कष्टों के रूप में भोगना पड़ा। इस प्रकार अर्थ होने पर भी काम का स्वच्छन्द सेवन न करो—इसकी शिक्षा इस नाटक से मिलती है।

नाटक को त्रिवर्ग का साधन माना गया है।[2] इस नाटक में पवनंजय को धर्मपूर्वक अञ्जना की प्राप्ति काम पुरुषार्थ की प्राप्ति का प्रतीक है। लंकेश्वर के द्वारा विजयार्थ राज्य की लक्ष्मी की प्राप्ति अर्थ की प्राप्ति का उपलक्षण है। नायक के द्वारा भरत वाक्य के शब्द धर्म पुरुषार्थ के सूचक हैं। इतना ही नहीं, चतुर्थ अंक में कंचुकी ने लोगों को दुष्कर्म से निर्वृत्त होकर जैन साधन की ओर उन्मुख होने का संकेत किया है। ये शिक्षाएं नाटककार की ओर से ही दी गयी समझना चाहिए, क्योंकि नाटककार अपने पात्रों के रूप में ही हमारे सामने आता है और अपने उद्देश्य को अभिव्यक्त करता है।[3]

आत्मा दूसरे भव में जन्म मरण प्राप्त करती है। पूर्व जन्म के कर्मों को भी लोगों को भोगना पड़ता है। इसलिए सदैव सत्कर्म की प्रेरणा इस नाटक से मिलती है।[4]

पौराणिक बातों पर विश्वास दृढ़ कराना भी नाटक का उद्देश्य है।

जहाँ तक हो इस ढंग से युद्ध करे कि हिंसा का ताण्डव न हो और शान्ति स्थापित हो जाय। वरुण के साथ पवनञ्जय का युद्ध इसी कुशलता से हुआ था।[5]

वसन्तमाला जैसी सहेलियाँ दुःख में भी अपनी सहेली अञ्जना का साथ नहीं छोड़ती हैं, यह आजकल की सहेलियों के कर्त्तव्य की मूक सूचिका है।

सास द्वारा निर्वासन के पश्चात् भी स्त्रियों के लिए एक कठोर कर्त्तव्य की प्रेरणा है कि कितने ही कष्ट आयें, सन्मार्ग पर चलें; अन्त में सुख और सफलता पतिव्रता के चरण चूमेंगे।

रत्नमाला और गन्धर्व के चरित्र दूसरों की दुःखमय अवस्था में सहायता करने की महती प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार नाटक में अनेक प्रकार की उदात्त शिक्षाएँ

---

१. संस्कृत आलोचना, पृ० ७२

२. त्रिवर्गसाधनं नाट्यमित्याहुः करणं च यत्। —अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, पृ० ३३

३. साहित्य विवेचन, पृ० २२७

४. पृ० ८८।४, अनुभाव्य एव बाढं जन्मान्तर एव कर्म परिपाकः

५. पृ० ४८—विद्याबलेन शनैरेव युध्यते वयस्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यंजना रूप से पाठकों को प्राप्त होती हैं, क्योंकि साहित्य सदैव सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर प्रवृत्तियों का दाता माना जाता है।[1]

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य-विलोपि जातम्—नाटक में अनेक विशेषताएँ हैं। वहाँ कुछ दोष भी दिखाई देते हैं। अनेक गुणों के बीच में छिपकर दुर्गुण भी आ जाते हैं, तो उन्हें भी प्रवेश मिल ही जाता है; किन्तु वे दोष उभर कर नहीं आते हैं।

रात्रि वर्णन के प्रसंग में दिवापि इत्यादि शब्दों के द्वारा दिवस का वर्णन समय के विपरीत पड़ता है।[2] कतिपय व्याकरण की अशुद्धियाँ दिखाई देती हैं, किन्तु इसके कारण दूसरे भी माने जा सकते हैं। वर्षा ऋतु में सहकार के अङ्कुर का वर्णन भी काल के औचित्य को भंग करता है।[3] समाचार कथन में भी इस प्रकार का कथन है कि हनुमान के जन्म होते ही अञ्जना के मामा हनुमान को अपने घर ले गये—पाठक को उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि जन्म के दो चार दिन तक तो जच्चा-बच्चा एक ही स्थान पर रहते हैं।

इस प्रकार कुछ ऐसे दोष अवश्य हैं, भले ही उनकी ओर पाठक तथा दर्शक का ध्यान वस्तु की रोचकता के कारण न जाता हो।

---

१. समाज और साहित्य, पृ० ११७
२. दिवापि ज्योत्स्नांकुरशंकिनी............पृ० ४८
३. पृ० ९५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ अध्याय

मैथिली कल्याण नाटक की समीक्षा

कथा वस्तु

आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण में रामभद्र से कल्याण की प्रार्थना की गयी है, यही रामचन्द्र नाटक के नायक हैं।

सूत्रधार और नटी की बातचीत में कवि हस्तिमल्ल का परिचय तथा उनकी विद्वता, सूक्तिसौन्दर्य आदि का परिचय मिलता है।

वसन्त समय को लेकर नटी गीत गाती है। मिथिलापुरी में राम गीत के वचनों को शुभ शकुन मानकर सीता-प्राप्ति की आशा करते हैं और उत्सुकता वश अनेक प्रकार के विचार उनके हृदय में उत्पन्न होते हैं। राम का मित्र विदूषक गार्ग्यायण अयोध्यापुरी से राम के साथ मिथिलापुरी में पहले पहल आया है। मिथिला नगरी में वसन्तोत्सव मनाने की साज सज्जा की जा रही है। इसी वसन्तोत्सव के सिलसिले में मदन पूजा, जलक्रीड़ा, झूला झूलने आदि के कार्यक्रम की पूर्ति के लिए महिला समुदाय तथा प्रेक्षक जन घूम रहे हैं। विदूषक भी यह सब शोभा देखकर राम के पास पहुँचता है। विदूषक के द्वारा मिथिलापुरी की वसन्तोत्सव की शोभा के कथन करने पर राम भी शोभा देखने को विदूषक के साथ चल देते हैं। मार्ग में वेशवाट मिलता है। राम को ज्ञात होता है कि कामदेवायतन के समीपवर्ती उद्यान के दोलागृह में सीता दोलारोहण करेगी, इस समाचार से राम उसी ओर चल देते हैं तथा वहाँ छिपकर कामदेव गृह में बैठ जाते हैं।

सीता रत्न के झूले पर आरोहण करती है। सखियाँ गीत गाती हैं। सीता भी सखि विनीता के. कहने से गीत गाती है। विनीता कहती है कि झूले पर आरोहण करने से सब कुछ शोभन है, केवल वह दर्शनीय नहीं दिखाई देता है। सीता विनीता के इस कथन से अपने मन में सोचती है कि उस राम के सम्बन्ध में मेरा मन कौतुक-पूर्ण है, जिसके सम्बन्ध में मैं पहले ही सुन चुकी हूँ। राम के स्मरण से उसे कुछ खिन्नता होती है और झूले से उतर जाती है। सखि विनीता सीता का भाव समझकर उसे बहलाने के लिए कामदेवगृह में ले जाती है और कहती है कि वहाँ चलकर कामदेव से तुम्हारे अभिलषित की प्रार्थना करें। जब सीता और विनीता कामदेवगृह में प्रवेश करती हैं, तब पहले से प्रविष्ट राम को देखकर चकित हो जाती हैं। राम को कामदेव समझकर सीता के योग्य वर की प्रार्थना विनीता करती है। राम क़ामदेव में रूप में अभिलषित वर के साथ आनन्द करने की बात कहते हैं। विनीता उसके गर्भित अर्थान्तर को समझकर तथा उनके हाथ में राम नाम अङ्कित अँगूठी को देखकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझ जाती है कि यही राम है तथा सीता से कान में कह देती है। उधर सखीजनों की बातचीत सुनाई पड़ती है, जिससे सीता को अनिच्छापूर्वक जाना पड़ता है।

राम भी कामदेवगृह की तथा उसके पूर्व दोलागृह में सीता के दर्शन तथा गायन की घटना को स्मरण कर उत्सुक हो जाते हैं।

द्वितीय अंक—विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि राम ने अयोध्यापुरी में जब सीता के प्रशस्त रूपादि के सम्बन्ध में सुना था, तभी से राम उत्सुक हैं। सीता की चिन्ता के कारण उन्हें शान्ति नहीं है। राम विदूषक को सीता के विहार स्थानों में सीता का पता लगाने भेजते हैं, किन्तु विदूषक को सीता का पता नहीं चलता, इसलिए वह राम के पास आ जाता है। राम सीता के विरह में बेचैनी का अनुभव करते हैं तथा कामदेव आदि को उपालम्भ देते हैं। फिर अपनी वेदना का मूल कारण सीता को ही समझते हैं। राम विदूषक से सीता दर्शन का उपाय पूछते हैं। विदूषक कुछ व्यंग्य की बातचीत के बाद माधवी वन को राम के विनोद योग्य प्रदेश बतलाता है। राम विदूषक के साथ वहाँ पहुँचते हैं। माधवी वन में वसन्त की शोभा लहलहा रही है। वहाँ की समस्त प्रकृति सीता के बिना राम को उद्दीप्त करती है। माधवी वन के सहकार के वृक्ष, मधुप, पवन, मंजरी, कोकिल आदि सब राम की विरह वेदना को उद्दीप्त करते हैं। राम की वेदना को शान्त करने के लिए अनेक शिशिरोपचार किये जाते हैं। पुष्पतल्प की व्यवस्था प्रकृति ने ही कर दी है। मृणाल और कदली पत्र की व्यवस्था विदूषक के द्वारा कर दी जाती है, किन्तु ये सब शीतलोपचार राम के अंगों में सन्ताप ही बढ़ाते हैं।

इधर सीता तथा उसकी सखी विनीता भी उसी माधवी वन में पहुँच जाती हैं। सीता को भी राम-वियोग के कारण शीर्ष वेदना है। सीता विनीता से उस स्थान का पता पूछती है, जहाँ शिरो-वेदना दूर हो सकती है। विनीता भी हास परिहास में यही कहती है कि जहां वह राम मिलें, वहीं शीर्ष-वेदना शान्त हो सकती है।

विनीता राम की आवाज सुनकर सीता को संकेत करती है कि तुम्हारा हृदयवल्लभ यहां है। राम को देखने से सीता को अनेक अनुभाव तथा सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं। सीता और विनीता, दोनों राम तथा विदूषक की बातचीत छिपकर सुनती हैं।

विदूषक कह रहा था कि सन्ताप के निराकरण के लिए किसी शिशिरोपचार की सामग्री को छोड़कर केवल सीता को सन्ताप के दूरकरण का उपाय समझते हो। राम अन्यमनस्क थे। विदूषक की बात का उत्तर न देने पर तथा दुबारा पूछने पर कह देते हैं—'किं तया'। इस बात को सुनकर सीता उदासीन हो जाती है, क्योंकि सीता इस उक्ति से यह समझी कि राम को सीता से कुछ प्रयोजन नहीं है। सीता जाने को तैयार ही है कि इतने में मूर्च्छित हो जाती है। विनीता के सान्त्वना के शब्दों को सुनकर राम तथा विदूषक सीता के पास पहुँच जाते हैं। राम द्वारा सान्त्वना दिये जाने पर सीता आश्वस्त होती है। सीता राम की ओर से सरोष मुख फेर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेती है। राम ने जब सीता के कोप का कारण पूछा, तब ज्ञात हुआ कि 'किं तया' वाली उक्ति का भ्रम से अन्य अर्थ समझ लेने से सीता को कोप हो गया था। राम उसका समाधान कर देते हैं। वनपालों द्वारा सन्ध्या के समय की घोषणा कर दिये जाने से सीता अरुचिपूर्वक चली जाती है।

तृतीय अंक—तृतीय अङ्क के आरंभ में वामन तथा कुब्ज का परस्पर हास परिहासपूर्ण वार्तालाप है, जिससे ज्ञात होता है कि राजपरिवार में कुब्ज, वामन, मूक, बर्बर, किरात आदि लोग हैं। एक वर्षधर (षण्ढ) भी है, जो पुरुष तथा स्त्री दोनों रूपों में है। कलावती सीता की महत्तरिका ऐसा ही पात्र है, जो सीता की विरह वेदना की पराकाष्ठा की समस्त जानकारी के पश्चात् राम के पास दूती का कार्य करने जाती है। उधर राम भी माधवी वन में सीता के विरह में अनेक प्रकार की भावभंगिमाओं में मग्न हैं। पर कलावती से सीता की विरह वेदना का समाचार उन्हें ज्ञात होता है। कलावती यह भी सुनाती है कि सीता भावनावशात् अपने सामने राम की उपस्थिति समझ लेती है और जब उठकर सामने पहुँचती है, तब अपने को ठगा हुआ पाती है, सखि के द्वारा किये हुए, शिशिरोपचार को व्यर्थ बताती है। विरह के कारण सीता की इतनी क्षीण अवस्था हो गयी है कि सीता का प्रकोष्ठ वलय अब केयूर बन गया है। सीता के द्वारा केतकी पत्र पर लिखा हुआ प्रेमपत्र कलावती राम को देती है। राम उसे बार बार पढ़ते हैं, जिसमें लिखा था कि दर्शन मात्र से अङ्कुरित, संतापों से पल्लवित और सुख से कुसुमित हुआ काम फलित हो रहा है। राम के पूछने पर कलावती बतलाती है कि माधवी वन से दक्षिण की ओर पुष्प वाटिका के उत्तर में पीछे के प्रमदवन के पक्षद्वार से प्रविष्ट होकर तमालवीथि से होकर चुपचाप चन्द्रकान्त-धारागृह में पहुंचना है। इसी समय दोपहर को सब भोजन करने चले जाते हैं।

चतुर्थ अंक—कौमुदिका नाम की चेटी को धारागृह की साजसज्जा का कार्य सौपा गया है। उसने सब शिशिरोपचार की सामग्री यथास्थान सजा दी है। दूसरी चेटी सुकुमारिका को सीता की सखी विनीता ने सीता के पास भीड़ भाड़ न हो, इस दृष्टि से सखियों को प्रमदवन के द्वार पर रोक देने का काम सौंपा है।

सीता और सखी विनीता सीता के सन्ताप की शान्ति के लिए चन्द्रकान्त धारागृह में पहुँचती हैं। चन्द्रकान्त धारागृह में क्रमशः एक एक उपचार किया जाता है। उससे सीता की वेदना शान्त नहीं होती ; प्रत्युत और बढ़ जाती है। तब दूसरा उपाय किया जाता है। क्रमशः चाँदनी, बकुल वाटिका की छाया, तमाल पत्र, चन्दनपल्लव रस, कर्पूर चूर्ण, मुक्ता फल चूर्ण युक्त कदली पत्र का व्यजन, कल्हार दल से वायु करना, कमलिनी पत्रों का रखना, मृणालिनी पत्र, एलादल का रस, चन्दन का तिलक, विविध प्रकार से अलंकृत चन्द्रकान्तपुत्रिका का आलिंगन आदि अनेक उपाय किये जाते हैं, किन्तु सब व्यर्थ होते हैं।

इधर विदूषक के साथ राम उसी संकेतित मार्ग से ज्योत्स्ना के सम्बन्ध में अनेक कल्पनाएं करते हुए चन्द्रकान्त धारागृह में पहुँचते हैं। मेरे सम्बन्ध में सीता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकान्त में क्या कहती है? यह सुनने की इच्छा से राम अभी सीता के समीप न पहुँचकर कुछ दूर पर सीता और विनीता की बातचीत सुनते हैं। सीता प्रतीक्षा करते करते निराश हो जाती है, तब विनीता माधवी वन की घटना के अभिनय के द्वारा मनोविनोद करके कुछ समय बिताने का उपाय सुझाती है। उस अभिनय में विनीता राम का तथा सीता राजपुत्री सीता का ही अभिनय करती हैं। उस अभिनय के करते करते जब सीता 'किं तया' के सुनने के पश्चात् मूर्च्छा का अभिनय करती है, तभी राम माधवीवन की तरह अवसर पाकर यहां समाश्वासन के लिए पहुँच जाते हैं।

विनीता चन्द्रकान्त की धारा के प्रवाह को मोड़ने के बहाने, तथा उसी कार्य के सहायक के रूप में विदूषक चला जाता है। थोड़े समय की भेंट के उपरान्त चेटी कौमुदिका समाचार सुनाती है कि सीता की शिरोवेदना का समाचार सुनकर माता वसुधा ने शीघ्र बुलाया है। सीता अनिच्छापूर्वक चली जाती है।

पंचम अंक—सीता के विवाह के लिए सभा-भूमि सजायी गयी है तथा राजाओं के बल परीक्षण के लिए वज्रावर्त धनुष सभाभूमि के मध्य में रखा गया है। धनुष को ज्यायुक्त करके सीता को विवाहने के लिए अनेक राजा लोग आये हुए हैं। सभी लोग सभाभूमि में पहुँच गये हैं। राम लक्ष्मण भी सभाभूमि में पहुँचे। बाद में महाराज जनक भी सभाभूमि में पहुँच जाते हैं। गुरुदत्त कंचुकी विनीता के साथ सीता को सभाभूमि में ले आता है। सीता आते साथ ही सभाभूमि में राम के आने के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लेती है।

कंचुकी घोषणा करता है कि सीता-प्राप्ति के लिए धनुष पर डोरी चढ़ा कर राजा लोग अपना यश लोक में प्रख्यात करें। घोषणा के उपरान्त कुछ लोग धनुष के पास पहुँचकर पुरुषार्थहीन रहे। कुछ लोग कुछ पग आगे चलकर अपने स्थान पर लौट गये। कुछ लोगों ने धनुष उठाया और अपने मान के साथ छोड़ दिया। कुछ लोग उठकर वहीं बैठ गये और कुछ लोग खड़े ही नहीं हुए।

लक्ष्मण के कहने पर राम जाकर विश्वास के साथ धनुष को उठाकर उस पर डोरी चढ़ाकर धनुष को झुका देते हैं।

जनक कंचुकी को सीता के वैवाहिक कार्य करने का आदेश देते हैं।

ज्या आरोपण के पश्चात् कुछ लोग युद्ध के लिए तैयार हुए; किन्तु युद्ध की स्थिति आने के पूर्व देवों के द्वारा गीयमान राम की कीर्ति को सुनकर कि ये अष्टम बलभद्र हैं तथा इनका प्रभाव महान है, सब शान्त हो राम को प्रणाम करते हैं।

जनक के द्वारा राम के लिए कन्यादान-विधि पूरी की जाती है और प्रभूत मात्रा में याचकों को दान दिया जाता है।

अन्त में भरत वाक्य में सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चरित्र रूप रत्नत्रय की प्राप्ति की कामना के साथ नाटक समाप्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तु तत्व की समीक्षा

धनुभंग में प्राप्त सफलता के कारण रामचन्द्र के सीता के साथ हुए विवाह की प्रख्यात कथा को आधार बनाकर अनेक महाकाव्य, नाटक आदि रचे गये हैं।[1] इसलिए इस नाटक की कथा वस्तु प्रख्यात ही नहीं, बच्चे-बच्चे की जानकारी के कारण अति प्रख्यात है। केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं, लौकिक जीवन में भी यह कथा प्रख्यात है। यद्यपि कुछ काव्यों में राम को दिव्य रूप में भी चित्रित किया गया है, किन्तु प्रस्तुत नाटक में उनका मर्त्य रूप है और वह भी श्रृंगारी नायक के रूप में वर्णन होने से सर्व साधारण रूप में। इस दृष्टि से कथा वस्तु का मर्त्य रूप ही नाटक का विषय है।

अर्थ प्रक्रिया

बीज—प्रथम अंक की प्रस्तावना में नटी के द्वयर्थक आर्या छन्द को सुनकर राम उसके अवितथवादिनी होने की बात कहते हैं एवं इन श्रुति सुखकर[2] वचनों को सुनकर प्रारम्भिक शुभ शकुन मानकर अपने मनोरथों को पूर्ण-सा समझते हैं।[3] अतएव यहाँ से बीज नामक अर्थ प्रकृति है, क्योंकि सीता और राम का सामाजिक अनुमति पूर्वक या धार्मिक कौतुकबंध पूर्वक मिलन ही रूपक का मुख्य फल है। इसका हेतु यहीं उपन्यस्त है और जो आगे जाकर क्रमशः राम और सीता के हृदय में अनुराग रूप में विकसित होता है।

बिन्दु—तृतीय अंक के प्रवेशक में वामन तथा कुब्ज का पारस्परिक हास परिहास पूर्ण वार्तालाप प्रस्तुत कथा से सम्बन्ध नहीं रखता है और उससे प्रस्तुन कथा विच्छिन्न होती चली जाती है। दोनों षण्ढ को आता हुआ देखकर उसके पास चले जाते हैं। षण्ढ सीता की विरह की विषम स्थिति की सूचना राम के पास देने जा रहा था। इस प्रकार षण्ढ के प्रसंग से पुनः कथा मूल कथा से जुड़ जाती है। अतएव यहाँ बिन्दु नामक अर्थप्रकृति समझनी चाहिए।

पताका—राम और सीता से सम्बन्धित कथा आधिकारिक कथा है, क्योंकि सभाभूमि में बज्रावर्त धनुष को ज्या सहित करके सीता प्राप्त करना मुख्य फल है और उसके अधिकारी राम से सम्बन्धित कथा आधिकारिक कथा है। इस नाटक में घटना का निबन्धन उचित ढंग से नहीं है, घटनाओं में वैविध्य व गतिशीलता नहीं दिखाई देती है, जिससे नाटकीय संविधान में गतिरोध ही दिखाई देता है। इस नाटक में कोई सानुबन्ध कथा दिखाई ही नहीं देती है, जिसे पताका के अन्तर्गत

---

१. संस्कृतरूपकेषु गृहीतं कथावस्तु परम्पराक्षुण्णम्।
न संस्कृतरूपककारो नवनवकथाग्रहणेऽभिरुचिं दर्शयति।
नाट्य संस्कृति सुधा, पृ० २९

२. स अचिरात् आरामः कृतशोभ एव मधुरससुखया
सीतया एतया अवतीर्णवसन्तलक्ष्म्या। —पृ० ४।६

३. पृ० ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझा जाय। पञ्चम अंक की सभाभूमि के वज्रावर्त धनुष पर ज्या आरोपण की घटना या कथा को पताका समझा जा सकता है, जिसमें अन्य राजाओं को बल परीक्षण का अवसर दिया जाता है और वह घटना नायक को सीता रूपी फल की प्राप्ति में सर्वाधिक सहायक है। ऐसी स्थिति में राजा जनक को पताका-नायक मानना होगा; उसके दो कारण हैं—एक तो वे राम को सीता प्रदान कर नायक को फल प्राप्ति कराते हैं एवं राम द्वारा धनुष पर डोरी चढ़ाये जाने से उनकी जो चिन्ता थी कि इस वज्रावर्त धनुष पर जो ज्या आरोपण करेगा उसी को सीता प्रदान करनी है, धनुष की विकटता देखकर वे चिन्तित थे कि सीता का विवाह कैसे होगा।[1] इस आयोजन से उनकी कामना पूरी हुई है। दूसरी बात यह है कि नाटक के उपसंहार में जनक ने ही राम से पूछा है कि हे महाभाग, मैं आपका और क्या प्रिय करूँ? तब राम जनक के साथ होने वाले सम्बन्ध को ही बहुत महत्त्वपूर्ण उपहार मानते हैं।[2] अतः जनक को पताका-नायक माना जा सकेगा।

प्रकरी—चतुर्थ अंक में माधवी वन में सीता और विनीता द्वारा किये गये अभिनय को ही प्रकरी के अन्तर्गत मान लेना चाहिए। इसमें पूर्व में घटित घटना ही अभिनीत होती है, जिसमें विनीता राम की भूमिका ग्रहण करती है। वहाँ उसी 'किं तया' वाले कथन को सत्य जान कर सीता दुःखी होती है, जिससे राम को समीप में पहुँचने का अवसर मिल जाता है।

कार्य—मुख्य कार्य पर अर्थ प्रकृति की परिभाषा घटित नहीं होती है, क्योंकि प्रयोजन सिद्धि के हेतु को अर्थ प्रकृति कहा जाता है।[3] मुख्य प्रयोजन अङ्गी है, इसलिए वह किसी प्रयोजनान्तर का हेतु नहीं हो सकता है। मुख्य प्रयोजन पूरा होने पर राम ने स्वयं कहा है कि मेरे मनोरथ सम्पूर्ण हुए।[4] अवान्तर कार्य जो मुख्य प्रयोजन की सिद्धि के कारण हैं, नाटक में तीन स्थान पर हैं। प्रथम अङ्क में दोलारोहण के पश्चात् कामदेवगृह में सीता के लिए अनुकूल भर्ता से संयोजित करने की प्रार्थना कामदेव से की जाती है, जहाँ कि राम ही कामदेव के रूप में थे। रत्नावली नाटिका में भी उदयन को इसी प्रकार सागरिका ने देखा था। वहाँ राम सीता का प्रथम मिलन परस्पर के अनुराग के बीज को अङ्कुरित होने की भूमिका उपस्थित कर देता है। द्वितीय अङ्क के अन्त में दोनों के मिलन का पुनः अवसर आता है। चतुर्थ अङ्क में राम को सीता से मिलने का पुनः अवसर मिलता है, जो कि एक सुनियोजित था, यद्यपि यह मिलन भी क्षणिक था, फिर पिछले दो बार के मिलन की अपेक्षा अधिक समय का था। ये सभी मिलन एक ओर काम को सफल बना रहे थे,

---

१. दातव्या दुहितेत्यनेन च मनः क्लिष्टं च हृष्टं च नः। —पृ० ८७।२३
२. पृ० ९५
३. अर्थप्रकृतयः = प्रयोजनसिद्धिहेतवः (दशरूपक, पृ० १३)
४ पृ० ९५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो दूसरी ओर इनके स्थायी मिलन रूप फल की भूमिका तैयार कर रहे थे,[१]—ऐसा मानना चाहिए। इसलिए ये मिलन, कार्य नामक अर्थप्रकृति के अन्तर्गत आते हैं।

अवस्थाएँ

आरम्भ--प्रथम अङ्क की प्रस्तावना के बाद से ही आरम्भ अवस्था का आरम्भ हो जाता है, क्योंकि वहीं से सीता के प्रति राम के क्रमशः बढ़ते हुए औत्सुक्य की अभिव्यञ्जना है। जिन दुर्निवार सन्तापों का कारण कान्ता होती है, उन्हीं दुर्निवार सन्तापों की शान्ति के लिए उसी कान्ता को कामी लोग खोजा करते हैं।[२] इस कथन के साथ राम स्वीकार करते हैं कि सीता के सम्बन्ध में सुनकर ही स्मर-गोचर हो जाने वाला मुझ से अधिक मत्त और कौन होगा ?[३] दुर्लभदर्शना सीता के सम्बन्ध में उत्कण्ठित होने वाला मैं अपने आप में क्यों लज्जित नहीं होता हूँ।[४] इस प्रकार उनका औत्सुक्य उसी प्रकार हो जाता है, जैसा एकनिष्ठ स्नेही चातक का औत्सुक्य प्रारंभिक वर्षाकाल में होता है।[५] इस प्रकार यह औत्सुक्य वाली आरम्भ अवस्था प्रथम अङ्क के अन्त तक चलती है, जहाँ दोनों औत्सुक्यपूर्वक बिछुड़ते हैं।

यत्न—यद्यपि दूसरे अङ्क से यत्नावस्था आरम्भ हो जाती है, किन्तु प्रस्तुत नाटक के नायक राम की प्रकृति धीरोदात्त होते हुए भी वे कुछ ऐसा साहसपूर्ण उदात्त कार्य करते हुए दिखाई नहीं देते हैं, जो उनके उदात्तत्व को प्रकट करे। श्रृंगारी नायक के रूप में भी वे स्वयं विरह में जितने सन्तप्त हैं तथा जितना अपना सन्ताप प्रकट करते हैं, उनकी ओर से कोई प्रयत्न सन्ताप के दूर करने का नहीं दिखाई देता है। दूसरे अङ्क में विदूषक से यह पूछना कि बताओ सीता कहाँ दिखाई देगी ? क्योंकि मेरा जीवन अब उसी सीतामय है।[६] और यदि राम को सीता का दर्शन हो जाय, तो राम के कृतित्व में कुछ शेष ही न रहे।[७] राम के ये कथन हैं तथा विदूषक का यह कथन है कि राम सीता के विहार स्थलों को देखने के लिए मुझे कई स्थानों पर भेजते हैं; किन्तु सीता का अन्वेषण करता हुआ मैं केवल श्रम मात्र करता हूँ, वह सीता दुःसाधित देवी की तरह कभी मिलती ही नहीं है[८]—यत्नावस्था का आभास

---

१. दंसणमेत्तकुरिओ सल्लावेहिं सदा अ पल्लविओ
पस्स सुहेण कुसुमिओ, अपि णाम फलेज्जई कुसुमसरो। —पृ० ५।४०

२. सन्तापानां कान्ता निबन्धनं, यैव दुर्निवाराणाम्
तामेव किलान्विच्छति तेषामिच्छन् प्रतीकारम्। —पृ० ५।१०

३. पृ० ६।११

४. पृ० ६।१२

५. प्रारम्भाभिमुखे पयोदसमये या चातकस्योत्कता। (पृ० ९।१८)

६. कथय क्वेदानीं द्रक्ष्यते सीता ?
तन्मया मम संकल्पास्‌........तन्मयं मम जीवितम्। (पृ० २०।७)

७. यदि भवति ममासौ स्वैरमद्यापि दृश्या किमिव मम कृतित्वे शिष्यतेऽन्विष्यते वा। (पृ० २१।८)

८. पृ० १८ गद्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देते हैं; किन्तु यत्नावस्था का स्पष्ट रूप तृतीय अङ्क में दिखाई देता है, वह भी नायक की ओर से कम और नायिका की ओर से अधिक। षण्ढ सीता की ओर से राम के पास पहुँचता है, विदूषक उधर सीता की खोज में आ रहा था; मार्ग में षण्ढ से भेंट हो जाने पर उसको वह काम भो नहीं करना पड़ता है; क्योंकि अब सीता की ओर से षण्ढ स्वयं आ पहुंचा है।[1] इस प्रकार षण्ढ राम को सीता की अवस्था से सूचित कर देता है एवं माधवी वन के दक्षिण में पुष्प वाटिका से उत्तर की ओर प्रमद वन के पक्ष द्वार से प्रविष्ट होकर प्रदोष समय में चन्द्रकान्त धारागृह में पहुँचने की बात कहकर[2] मिलन का उपाय बता देता है। इस प्रकार तृतीय अङ्क के अन्त तक यत्नावस्था है।

प्राप्त्याशा—तृतीय अङ्क में षण्ढ द्वारा सुझाये गये मिलन के स्थान से ही प्राप्त्याशा अवस्था आरम्भ हो जाती है। चतुर्थ अङ्क में इसी संकेतित स्थान पर मिलन होता है, किन्तु माता द्वारा सीता के बुला लिये जाने से वह मिलन शीघ्र ही विच्छिन्न हो जाता है। इस प्रकार चतुर्थ अङ्क में प्राप्त्याशा अवस्था है। जैसा कि लिखा जा चुका है; नाटक में द्वन्द्वात्मक या संघर्षात्मक घटनाओं का निवेश न होने से ये सब अवस्थाएँ स्पष्ट रूप से अभिव्यंजित नहीं हो सकी हैं।

नियताप्ति—चतुर्थ अङ्क के अन्त में रात्रि के अन्त होने के वातावरण से चक्रवाकों के विरह दुःख से निर्वृत्त हो जाने एवं वधुओं के साथ विकसित पद्मों का सेवन करने की बात कही गयी है। चक्रवाक से कामी अर्थ लेकर, कामिनी के साथ स्वच्छन्द भोग की व्यंजना मान सकते हैं। इस प्रकार यहाँ से मिलन के वातावरण की सूचना आरम्भ हो जाती है। पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में सभाभूमि में धनुष के आ जाने से तथा वहाँ पहुँच कर राम के उत्साहपूर्ण वचन से यह विश्वास हो जाता है कि राम धनुष पर ज्या आरोपण कर लेंगे और उन्हें सीता की प्राप्ति निश्चित है। राम धनुष पर डोरी चढ़ाने रूप पण को कृपालु समझते हैं[3] और उनके जो मनोरथ सीता के सम्बन्ध में शिथिल थे, इस प्रतियोगिता के कारण अब वे मनोरथ पुनः एकत्रित हो गये हैं;[4] क्योंकि अब वे सीता को अपने हाथ में ही समझते हैं।[5] इस प्रकार धनुष पर डोरी चढ़ाने के बाद जब कुछ लोग युद्ध के लिए तैयार होते हैं, तब सीता कुछ भयभीत होती हैं; किन्तु विनीता कह देती है कि राम का जैसा धनुष पर ज्या आरोपण पौरुष का प्रमाण है, वैसा ही उनका समर सम्बन्धी शौर्य समझो। आकाशवाणी से राम का महानुभाव प्रकट किये जाने तक नियताप्ति अवस्था है।

---

१. विदूषकः (सहर्ष) तेण हि विरमेमि इमादो परिब्भमादो। (पृ० ५०)
२. पृ० ५८ गद्य
३. कृपालुः प्राप्तोऽसौ सपदि धनुरारोपणपणः। —८६।१८
४. पृ० ८६।१९
५. अतश्च पाणौ कृतामेव मन्ये विदेहराजात्मजाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फलागम—आकाशवाणी के पश्चात् जब सब लोग राम को प्रणाम करते हैं, तब से लेकर अन्त तक फलागम अवस्था है, जिसमें जनक के द्वारा जलधारा पूर्वक सीता प्रदान की जाती है।

पताका स्थानक—प्रथम अंक की प्रस्तावना में नटी के द्वारा शीतल वसन्त लक्ष्मी के द्वारा सुशोभित आराम (बगीचे) के अर्थ वाली गाथा द्वारा सीता से सुशोभित राम के अर्थ की व्यंजना करायी गयी है।[1] अतएव यह श्लेषमय पताका स्थानक है। दूसरा समासोक्ति रूप पताका स्थानक चतुर्थ अंक के अन्त में है, जहाँ रात्रि के बीतने से चक्रवाकों की निर्वृत्ति एवं वधुओं के साथ स्वच्छन्द विलास के कथन द्वारा मिलन की बाधाओं की समाप्ति और राम सीता के निश्चिन्त मिलन की सूचना दी गयी है।[2]

सन्धियाँ

मुख सन्धि—प्रथम अंक में बीज की उत्पत्ति होने से मुख सन्धि है। इसका बीज न्यास रूप उपक्षेप अंग छठवें छन्द में, बीजन्यास का बाहुल्य रूप परिक्रिया अंग ७वें छन्द में, और बीज निष्पत्ति रूप परिन्यास अंग ८वें छन्द में है। सुखागम रूप प्राप्ति अंग २१वें छन्द में है। आश्चय की भावना रूप परिभावना अंग सीता द्वारा कामदेवगृह में कामदेव के रूप में स्थित राम के दर्शन किये जाने पर है।[3] इस मुख सन्धि में वसन्त काल में वगीचे में दोलारोहण, गीत गायन, तथा कामदेव से अभीष्ट वर की याचनादि रूप नाना भाव एवं अर्थ हैं।

प्रतिमुख सन्धि—द्वितीय अंक में प्रतिमुख सन्धि है। प्रथम अंक का अंकुरित अनुराग यहाँ फूट पड़ता है। राम, सीता के वियोग में विरह अग्नि को उद्दीप्त करने वाले पदार्थों को समाप्त करना चाहते हैं।[4] सीता भी लज्जावश अपना राम के प्रति होने वाला अनुराग छिपाना चाहती है, किन्तु वह भी उद्भिन्न हो जाता है। इस प्रकार यहाँ प्रतिमुख सन्धि है। राम के द्वारा 'किं तया' का अन्य अर्थ समझकर सीता को अरति उत्पन्न होती है।[5] इसलिए विधूत नामक अङ्ग है।

गर्भ सन्धि—तृतीय अङ्क में राम विदूषक द्वारा फल के मूल कारण रूप बीज (सीता) का अन्वेषण कराते हैं और षण्ढ राम का अन्वेषण करता हुआ राम

१. सो अइरा आरामो कऊसोहयेव महुरस सुहाए
सीदाए एदाए औतिण्णवसंतलच्छीए।

२. भवत भवत सर्वे निर्वृताश्चक्रवाकाः दिवसकरकराग्रैस्ताः निरस्ता तमिस्राः
भजत सह वधूभिः स्वैरसंभोगयोग्यान्, विकचदलकरंडानाशु तान् पद्म खण्डान्
(पृ० ८०।१७)

३. पृ० १५

४. पृ० २७।२०

५. पृ० ३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के पास पहुँचता है। यह अन्वेषण की प्रक्रिया चतुर्थ अङ्क के संकेत मिलन तक चलती है, इसलिए गर्भ सन्धि तृतीय और चतुर्थ अङ्कों में माननी चाहिए। गर्भ सन्धि को नाटकीय संविधान का केन्द्रबिन्दु समझा जाता है, क्योंकि पाँच सन्धियों में यह मध्य में परिगणित है। किन्तु जैसा कि लिखा जा चुका है, नाटकीय संविधान में कोई ऐसी विरोधी घटना नहीं है जो नायक के चरित्र के उत्कर्ष को कसौटी पर कसकर खरा दिखा सके और नाटकीय उतार चढ़ाव को बनाकर उसमें चैतन्य ला सके। द्वन्द्वात्मक स्थिति के बिना घटनाओं में सजीवता नहीं है। गर्भ सन्धि में इस द्वन्द्वात्मक स्थिति की अत्यन्त आवश्यकता थी। पाठक के हृदय में कोई मनोवैज्ञानिक आधार नहीं पहुँचता है कि राम और सीता किस प्रमुख बाधा के कारण परस्पर में मिल नहीं पाते हैं। नाटक का एक प्रधान नियम है, जो नाटक को काव्य तथा उपन्यास से अलग करता है—"मुख्य चरित्र कभी सरल रेखा में नहीं जाता"[1]; परन्तु इस नाटक में द्वन्द्वात्मक स्थिति के अभाव में प्रधान चरित्र सरल रेखा में है, जिससे गर्भ संधि की योजना शिथिल है।

विमर्श सन्धि—विमर्श सन्धि नाटक में अत्यल्प रूप में है। पंचम अङ्क के शुद्ध विष्कंभक के बाद राम का सीता एवं धनुष के सम्बन्ध में जो अवमर्श है, या विचार विमर्श है, वही विमर्श सन्धि के अन्तर्गत है।

निर्वहण सन्धि—सभाभूमि में धनुष की स्थिति के बाद राजा जनक के पहुँच जाने से धनुष पर ज्या आरोपण का कार्य आरम्भ करने के लिए जो घोषणा की जाती है, वहाँ से निर्वहण सन्धि आरम्भ होकर नाटक के अन्त तक चलती है। राम के मनोरथ पूर्ण होने से आनन्द अङ्ग, "पुनः क्या उपहार दूँ?" जनक के इस कथन से काव्यसंहार और भरत वाक्य से प्रशस्ति नामक अङ्ग मानना चाहिए।

नाटक का नामकरण—नाटकों के कुछ नाम प्रधान घटना या व्यापार के आधार पर रखे जाते हैं। इस नाटक की अन्तिम व प्रधान घटना मैथिली (सीता) का कल्याण (परिणय) है, इसलिए इसका नाम 'मैथिली कल्याण' है। द्वितीय अङ्क का विदूषक का कथन कि "तुम भी शीघ्र सीता के परिणय सम्बन्धी कल्याण को प्राप्त करो"[2] महत्त्वपूर्ण माना गया है। इन्हीं शब्दों के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है।

पात्रों का परिचय और उनका चरित्रांकन

प्रस्तुत नाटक में नायक राम के अतिरिक्त उनका सहायक मित्र विदूषक, राजघराने के कर्मचारी वामन, कुब्ज, षण्ढ, कंचुकी, विट, राम के भाई लक्ष्मण, सीता के पिता जनक और वैतालिक,–ये पुरुष पात्र हैं। स्त्री पात्रों में नायिका सीता, उसकी सहेली विनीता, प्रथमा चेटी कौमुदिका, द्वितीया चेटी सुकुमारिका हैं।

१. कालिदास और भवभूति, पृ० ८२
२. त्वमपि अचिरेण तत्रभवती परिणयनकल्याणं लभस्व। –पृ० २२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम—प्रस्तुत नाटक श्रृङ्गार रस-प्रधान है। इसलिए नायक राम जीवन के उतार में या अन्त में भले ही आत्मगुण-प्रधान व्यञ्जित समझे जायँ, क्योंकि उनकी महानता बताने हेतु आकाश से जो वाणी हुई है, उसके अनुसार वे अष्टम (बलभद्र) हैं। पुराणों के अनुसार बलभद्र या वलदेव ऊर्ध्वगामी (स्वर्ग या मोक्ष जाने वाले होते हैं), ये लोग पाँच रत्न या आयुध धारी होते हैं तथा क्रीड़ा मात्र से शत्रुओं का मान मर्दन करते हैं। कवि ने एक ओर नाटक का नायक बनाकर सीता के वियोग में अत्यन्त सन्तप्त दिखाया है और दूसरी ओर उन महापुरुष को सर्वोत्कृष्ट मोक्ष लक्ष्मी का पाने वाला बताकर उनसे नाटक के मंगलाचरण में कल्याण की कामना की ग[ई] है। इतना ही नहीं, उन नायक के भावी माहात्म्य को आकाशवाणी द्वारा कहलाया गया है, जिसके अनुसार वे चरमदेहधारी अर्थात् उसी भव से मोक्षगामी हैं तथा सच्चरित्र ज्ञानवान मुनिगण भी राम की ओर निहारते हैं, जिन मुनियों को कैवल्य-प्राप्ति की इच्छा होती है।[१] राम लक्ष्मण दोनों को पुष्पदन्त बताया गया है।[२] पुष्पदन्त शब्द का प्रयोग सूर्य और चन्द्र के लिए आता है।[३] श्रृङ्गार रस के नाटक का नायक तरुण होना चाहिए। राम में सहज एवं अन्यून तारुण्य है।[४] राम पुरुष-प्रकाण्ड (पुरुष-श्रेष्ठ) हैं।[५] उन[के] पराक्रम की पर्याप्ति केवल धनुष पर ज्या आरोपण से नहीं जानी जा सकती है, क्योंकि वे तो मनुष्य रूप-धारी देव हैं।[६]

रामचन्द्र महासत्त्व हैं, क्योंकि भरत वाक्य में कहे गये उनके वाक्य उनकी उच्च सात्त्विक विचारधारा के प्रतीक हैं और इसी कारण सभा में गंभीरता दिखाई पड़ती है। धनुष के ऊपर ज्या आरोपण के लिए सीता प्राप्ति की त्वरा के कारण उत्साह है, किन्तु जब सब लोग अपनी शक्ति का परीक्षण कर चुकते हैं, तब लक्ष्मण के कहने पर कि 'हे आर्य, विलम्ब क्यों करते हैं?' वे उठकर ज्या आरोपण कर धनुष झुका देते हैं। क्षमावान होने का कोई प्रसंग नहीं है, फिर भी धनुष पर ज्या आरोपण के पश्चात् जब कुछ लोग युद्ध के लिए तैयार होते हैं, तब अपना कुछ कोप प्रकट करते हैं, क्योंकि गूढ़ अहंकार तो धीरोदात्त प्रकृति के नायक में भी होना चाहिए, परन्तु जब लक्ष्मण उन्हें कोप न करने को कहते हैं तथा राजा जनक विरुद्ध होने वाले लोगों को समझा देते हैं कि राम के साथ युद्ध करना उचित नहीं है, तब राम शान्त रह जाते हैं। इस व्यवहार से उन्हें क्षमावान् समझा जा सकता है। आकाश वाणी से उनकी

---

१. पृष्ठ ९४

२. अन्योन्यमन्यूनमनोज्ञकान्ती, सह प्रयान्ताविव पुष्पदन्तौ।
इन्द्रप्रतीन्द्राविव चावतीर्णौ, नेत्रे इव द्वे जगतां त्रयस्य ॥ —पृष्ठ ८३।९

३. अभिधानचिन्तामणि २।३८

४. स तावदन्यून सहज तारुण्यविक्रमो। —पृष्ठ ८८

५. समं शिरोभिर्नमयत्यमीषां
कोदण्डकाण्डं पुरुषप्रकाण्डः। —(पृष्ठ ९१।३२)

६. स खलु सर्वथा मनुष्यरूपधारी देव इति
समर्थयस्व तस्मान्न खलु तस्यैतदपि
चापजीवारोपणं विक्रमश्लाघायाः पर्याप्तिः। —पृष्ठ ८८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशंसा होने पर और देवों के द्वारा उनकी कीर्ति गान होने पर और अंजलिबद्ध राजाओं द्वारा नमस्कार किये जाने पर राम का शान्त होकर सुनना उनके अविकत्थन भाव को व्यक्त करता है, क्योंकि कहीं नाटक में किसी स्थल पर उनके वचन से उनके उदात्त चरित्र पर प्रकाश नहीं पड़ता है; केवल दूसरों के वचनों से ही उनके चरित्र की व्यंजना है। इस प्रकार धीरोदात्त प्रकृति के नायक के सभी गुणों[1] के साथ श्रृंगारी नायक के गुण भी उनमें विद्यमान हैं। प्रस्तुत नाटक में नायक का चरित्र नायक के द्वारा किये गये किसी महत्त्वपूर्ण कार्य द्वारा नहीं उद्घाटित हुआ है, केवल दूसरे पात्रों के कथन द्वारा उद्घाटित किया गया है, यह एक बड़ी कमी है, जिसके कारण नाटक में गतिशीलता का अभाव है, क्योंकि घटनाओं के द्वारा जहां नाटक की वस्तु आगे बढ़ती है, वहां रोचकता रहती है और नायक का उत्कर्ष दिखाई देता है। प्रारंभ से नायक को सीता के वियोग में और सीता को राम के वियोग में सन्तप्त चित्रित किया गया है, केवल राम के द्वारा जो वज्रावर्त धनुष पर ज्या आरोपण करके उसके झुका देने की घटना है, वही राम का एक महत्त्वपूर्ण काम है और उसी के कारण उन्हें दृढ़व्रती आदि कह सकते हैं। एक अन्य सार्वजनीन घटना होती, जिसमें किसी असत् कार्य का नियंत्रण होता तो पाठकों की दृष्टि में राम का चरित्र विशेष आदर्शमय होता। परन्तु इस नाटक में ऐसी घटनाओं का अभाव है।

वैसे वज्रावर्त धनुष पर ज्या आरोपण करके उसको झुका देने की घटना भी राम के चरित्र का उत्कर्ष सिद्ध करती है, क्योंकि जिसे कोई व्यक्ति नहीं कर सका था, जिसके कारण सीता का भविष्य अन्धकारमय था और जनक को अत्यन्त चिन्ता थी। वज्रावर्त धनुष के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि यह धनुष रथनूपुर चक्रवाल नगर में देवों द्वारा रक्षित था, ज्योंही सुभट धनुष की ओर बढ़ते थे, वह धनुष बिजली की कान्ति के समान सर्पों के श्वासों की भाँति तेज अग्नि छोड़ता था, स्फुरायमाण सर्पों के समुदाय को देखकर कुछ राजा लोग कांपने लगते थे और कुछ फुत्कार से आहत एवं मूर्च्छित हो जाते थे।[2] अन्य पुराण के अनुसार देव लोग इस धनुष की रक्षा करते थे, यह रथनूपुर चक्रवाल नगर से मिथिला में विद्याधरों द्वारा लाया गया था। वज्राग्नि की भाँति कान्तिमान व तेज के कारण दुर्निरीक्ष्य था, धनुष में भयंकर सर्प हुंकार मारते थे तथा समीप पहुँचने पर धनुष अग्नि छोड़ता था।[3] यद्यपि नाटक में यथार्थ की प्रतीति के लिए धनुष का उक्त पौराणिक रूप नहीं दिखाया है, फिर भी धनुषयुक्त सभा-भूमि को शेष नाग के फणामण्डल वाले भुजगालय की शोभा वाला[4] बताने से उक्त पौराणिक घटना का प्रभाव अवश्य प्रतीत होता है। उस धनुष को वही व्यक्ति उठा सकता था, जिसकी अचल भुजा मन्दराचल पर्वत को धारण करने

---

१. महासत्वोऽतिगंभीरः क्षमावानविकत्थनः
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः। (दशरूपक २।४,५)

२. पउमचरिय (विमलसूरि) २८।७४ एवं २८।१०५

३. पद्मपुराण २८।१६९

४. पृष्ठ ८२।५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में समर्थ हो।[1] इस प्रकार मात्र धनुष-नमन की घटना राम के शौर्य सत्व आदि की सूचक है।

लक्ष्मण—ये राम के छोटे भाई हैं। केवल अन्तिम अंक में राम के साथ सभाभूमि में उपस्थित होते हैं। इनकी कान्ति को राम की कान्ति के समान बताया गया है। राम को इन्द्र और इन्हें प्रतीन्द्र की उपमा दी गयी है। इन्द्र राजा के समान और प्रतीन्द्र युवराज के समान माने जाते हैं।[2] लक्ष्मण राम से छोटे हैं, किन्तु दर्शनीय वस्तु को सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं। सभाभूमि के धनुष का रूप तथा अन्य जानकारी लक्ष्मण को राम से अधिक है; इसलिए राम सभाभूमि में लक्ष्मण को आगे प्रवेश कराते हैं। राम जब धनुष-नमन के बाद असहनशील लोगों के प्रति क्रोध करना आरम्भ करते है, तब लक्ष्मण राम को क्रोध न करने की सम्मति देते हैं।

जनक—सीता के पिता हैं, किन्तु वे ऐसी पुत्री के पिता है जो गंगा और लक्ष्मी की भाँति है। इसलिए वे हिमवान् पर्वत और समुद्र की भाँति स्थिर और गंभीर हैं। जब राम ने सभाभूमि में धनुष-नमन कर दिया, तब अन्य असहिष्णु लोगों के युद्ध के लिए तैयार हो जाने पर जनक विक्रान्त-कौरव के महाराज अकम्पन की तरह मध्यस्थ नहीं रहे; बल्कि राम का पक्ष लेकर विरोधियों को समझाया था।[3]

विदूषक—राम के वयस्य विदूषक का नाम गार्ग्यायण है। वह ब्राह्मण के अनुरूप सन्ध्योपासनादि के कार्य पूर्ण करता है। राम को उसके नियम अनुष्ठान की जानकारी थी।[4] वह अपने मित्र राम के बिना क्षण भर भी नहीं रहता है[5] एवं विरहकाल में राम के शीतलोपचार का पूरा प्रयत्न करता है। जैसा कि विदूषक के संबंध में कहा जाता है कि वह भोजन का लालची एवं वचन आदि से हास्यकारी हो,[6] प्रस्तुत नाटक के विदूषक में ये बातें मिलती हैं। राम उसे आत्मंभरि शव्द का प्रयोग करते हैं।[7] उसे कदली पत्र पर रखे हुए मृणाल, अन्य वस्तु की नहीं, बल्कि भोजन की याद दिलाते हैं।[8] तृतीय अंक में दोपहर की गर्मी के प्रसंग में जब षण्ढ धारागृह में पहुँचने की बात कहता है, तब विदूषक मध्याह्न के भोजन के समय के बीतने की बात कहता है। ये प्रसंग विदूषक की भोजन के प्रति लालची प्रकृति को व्यक्त करते हैं। नाटक में हास्य के प्रसंग नहीं हैं, केवल सामान्य नर्म का प्रयोग विदूषक की बातचीत में है। द्वितीय अंक में राम पूछते हैं, सीता कहाँ दिखाई देगी ? तब विदूषक उत्तर देता है, ध्यान में ! इसी प्रकार तृतीय अंक में जब राम षण्ढ

---

१. पृष्ठ ८३।८
२. इन्दा रायसरिच्छा जुवरायसमा हुवंति पडि इन्दा तिलोयपण्णत्ति। —३।६५
३. पृ० ९३।४२
४. पृ० ८६
५. पृ० १८
६. पृ० ४१, उज्ज्वल नील मणि, नायक सहायक भेद
७. पृ० ७
८. पृ० २८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का परिचय पूछते हैं, तब विदूषक कह देता है, यह तुम्हारे सिर-दर्द की दवाई है। जब राम उसका स्पष्ट आशय समझाने को कहते हैं, तब विदूषक कहता है कि यह तुम्हें सीता से मिलाने वाली दूती है। इस प्रकार उसके मनोरंजक स्वभाव का परिचय मिलता है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत एवं प्राकृत उभयभाषी पात्र षण्ढ है, जो दूती के कार्य में बड़ा चतुर है, उसका नाम कलावती है और स्त्री पुरुष दोनों जैसा रूप है। उरभ्रक नामक वामन जिसका कार्य रात में रत्नदीप धारण करना है, और दासेरक नामक कुब्ज जो तालवृन्त से हवा करता था, दोनों का परस्पर का बड़ा उपहासपूर्ण कथोपकथन है। राजा जनक का सेवक गुरुदत्त कंचुकी है, जो वृद्ध है। मिथिला के वेशवाट में भ्रमण करने वाला विट है। इनका चरित्र विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है।

स्त्री पात्र

सीता—नाटक की नायिका है। सीता के पिता का नाम राजा जनक तथा माता का नाम वसुधा है। वह अत्यन्त सुन्दरी है। सौन्दर्य सीता से तादात्म्य प्राप्त कर निश्चय ही प्रशंसनीय बन गया है। उसकी सौन्दर्य के अनुरूप युवावस्था है।[१] वह गायन कला में चतुर है। राम ने उसके गीत के आभिजात्य की प्रशंसा की है।[२] वह मुग्धा नायिका है।[३] उसे गंगा तथा लक्ष्मी के समान बताया गया है, जिससे सीता का पूतचरित्र तथा सौन्दर्य व्यंग्य है। मुग्धा नायिका होने के कारण लज्जावती है; जिसके कारण राम के प्रति होने वाले आत्म-स्नेह को सखी विनीता से भी स्पष्ट नहीं कह पाती है। राम के प्रति उसका अनन्य अनुराग है, जिससे राम के वियोग में वह अत्यन्त सन्ताप का अनुभव करती है। षण्ढ द्वारा बताया गया विरह का चित्र अत्यन्त मार्मिक है। दोला क्रीडा उसके क्रीडा भाव को प्रकट करती है।

विनीता—सीता की प्रिय सहेली है। वह भी गीत की कला से परिचित है।[४] वह सीता के मनोभाव को भलीभाँति पहचानतो है, इसलिए उसे सीता की आत्मा ही कहना चाहिए, क्योंकि सीता ने स्वयं स्वीकार किया है कि यदि कोई बात मैं अपने हृदय से छिपाती हूँ, तब कहीं तुमसे छिपा सकती हूँ।[५] वह प्रत्युत्पन्न बुद्धिवाली है। वसन्तोत्सव में कामदेव रूप में उपस्थित राम की अंगूठी देख लेती है और राम को पहचान जाती है। राम ने अनुरूप वर की अभ्यर्थना के उत्तर में जो द्व्यर्थक[६] बात कही थी, उसे भी पहचान लेती है और इसीलिए ताड़ गयी थी

---

१. पृ० १२
२. पृ० १२।२३
३. पृ० ५२
४. पृ० १३।२६
५. पृ० १४
६. पृ० १६।२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि यह केवल मन्मथ (कामदेव) नहीं है। सीता की राम के वियोग में बेचैनी देखकर पूर्व घटना का अभिनय का सुझाव देती है, जिससे सीता का मन भी बहल जाता है और उस अभिनय की घटना के कारण राम के मिलन का अवसर मिल जाता है। कलावती (षण्ढ) द्वारा संकेतित स्थल पर राम को बुलवाने की युक्ति में भी विनीता का हाथ है। जब राम सीता के पास पहुँच जाते हैं, तब विनीता चन्द्रकान्त द्रव के प्रवाह के आधिक्य को दूसरी ओर मोड़ने के बहाने से निकल जाती है। वह राम के शौर्य से पूर्ण परिचित है। इसलिए सीता को आश्वासन देती है कि तुम राम को साधारण मनुष्य जैसा क्यों समझती हो।[1] सीता के विरह सन्ताप काल में हर प्रकार से शिशिरोपचार आदि की व्यवस्था करती है एवं मनोविनोद के अन्य उपाय सुझाती है। इस प्रकार वह हर प्रकार से नायिका के अनुकूल है।

इनके अतिरिक्त प्रथमा चेटी कौमुदिका है, जो दूसरी चेटी से अधिक जानकार है। वह सीता की विरह वेदना का कारण जानती है। दूसरी चेटी सुकुमारिका है जो पहले चन्द्रकान्त धारागृह का पता लगाने गयी थी और बाद में प्रमदवन के द्वार पर अनावश्यक लोगों को भीतर जाने से रोकने का काम करती है।

रसाभिव्यंजना एवं शब्द-सौन्दर्य

भारतीय साहित्यशास्त्र के अनुसार नाटक के वस्तु, नेता और रस—इन तीन तत्वों में रस का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। रस को तो काव्य की आत्मा ही नहीं माना जाता है, बल्कि नाटक या काव्य का मूल उद्देश्य ही रस माना जाता है।

प्रस्तुत नाटक का अंगी रस शृंगार है। उसमें भी व्यापक स्थान विप्रलंभ शृंगार का है। हास्य की व्यंजना तृतीय अंक के वामन और कुब्ज के वार्तालाप में, धनुभंग के पश्चात् अन्य राजाओं के युद्धार्थं तत्पर होने पर जनक के द्वारा उन्हें दी गयी फटकार में[2] रौद्र रस की व्यंजना, धनुभंग के साथ ही उसकी गंभीर ध्वनि से भयभीत हो जाने वाले दिव्य लोगों के मुख से साधुवाद की ध्वनि नहीं निकल सकी एवं उनकी बुद्धि निःसंज्ञ-सी हो जाने पर उनके हाथ से पुष्पवृष्टि के पुष्प अपने आप छूट गये, हाथियों का मदजल सूख गया[3] इत्यादि अनुभावों से भयानक रस की अभिव्यंजना होती है।

---

१. पृष्ठ ८८

२. पर्जन्यं प्रति गर्जतां मदनदस्रोतोमुचां दन्तिनाम्
संघर्षेण मुधैव यत्किल मुहुः प्रार्गजितं गर्जितम्
तत्किं कर्तुमलं बलाद्गजरिपो दन्तार्पितांघ्रिद्वये
मस्तिष्काहरणाय मस्तकतटं स्वच्छन्दमुच्छिदति। —९४।४३, ९२।३७

३. दिव्यानां भयपूर्णमनसां नो साधुकारध्वनिः
निर्यात्याननतो हनुष्ककरुणं संताडितानामिव
नाद्याऽपि प्रभवन्ति मूच्छितधियः पुष्पाणिते वर्षितुम
तेषां त्रासविधूनितेषु गलितं हस्तेषु पुष्पैः स्वयम्
दिग्नागा दृढमीलितेक्षणपुटाः शुष्यन्मदाम्भप्लवाः
विस्मृत्येव च कर्णतालनमपि त्रासान् मुहूर्तं स्थिताः। इत्यादि ९२।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये सब रस रामचन्द्र के अनुभाव, उत्साह और शक्ति को प्रकट करते हैं। इसलिए उनकी वीरता के अभिव्यंजक हैं।

यह कृति शृंगार रस से परिपूर्ण, अतएव तदनुकूल कैशिकी वृत्ति वाली है। इसकी सूचना सीता के सम्बन्ध में विमर्श करते हुए राम से प्रस्तुत नाटक में मिल जाती है।[1] कैशिकी वृत्ति के अनुकूल गीत, दौलाक्रीडा आदि के प्रसंग प्रथम अंक में हैं।

प्रस्तुत नाटक के वियोग वर्णन के चित्र बड़े संश्लिष्ट तथा हृदय को स्पर्श करने वाले हैं, जो किसी भी उच्च काव्य की भावभूमि की समता प्राप्त कर सकते हैं। राम सीता के वियोग में मदमाती कोकिला की मधुर तान सहन नहीं कर पाते हैं, इसलिए विदूषक से अपने ही कान बन्द कर देने को कहते हैं।[2] वे पुष्पायुध कामदेव से तंग हैं। उसके शक्तिहीन करने का उपाय मित्र को बताते हैं कि इन नवीन आम्र की कोरकों को काट डालो, जिससे मलयानिल का दर्प नष्ट हो जायगा, और उससे कामदेव प्रायः क्षीण और निरायुध हो जायगा।[3] राम इतने अधीर हो गये हैं कि अब उन्हें धैर्य शब्द का अर्थ भी समझ में नहीं आता है, फिर धैर्य धारण करना तो दूर की बात है।[4]

विदूषक राम के कहने पर ही अनेक शीतलोपचार करता है, किन्तु शयन-कुसुमों से उनका अंग चारों ओर अत्यन्त सन्तप्त होता है। कदलीपत्र की वायु से उनका चित्त उड़ने लगता है। विरहदाह से झुलसे हुए हार के सूत्र यहाँ वहाँ गिरने लगते हैं। इतना ही नहीं, मृणाल तन्तुओं के साथ उनका वक्षस्थल भी खोलने लगता है,[5] जिससे वे इन शीतलोपचार के उपायों को हटवा देते हैं।[6]

---

१. रामः (सोत्कण्ठं) सा खलु
श्लाघा विभ्रमलक्ष्या शृंगाररसाधिदेवता साक्षात्
संचारिणी पदाभ्यां मूर्तिमती कैशिकी वृत्तिः। —५।२०

२. प्रियसखा न शृणोषि त्वं किमेतानि शीघ्रं
श्रवणयुगमिदं मे गाढगाढं पिधेहि
इह खलु सहकारोद्यानभूमौ वसन्तान्
मदकलकलकण्ठीकण्ठनिष्कूजितानि। —२६।१८

३. एता नूतन चूतकोरकशिखास्ताः कृन्तनिस्तन्द्रितो
येन स्यान्मलयानिलस्य सुमहान् सौभाग्यदर्पो हृतः
सद्यो मुद्रितकुंचिका च मदनज्या भृंगमाला भवेत्
क्षय्यः सोऽपि निरायुधश्च भवति प्रायेण पुष्पायुधः। —२७।२०

४. अवधीरितधैर्योऽहमधीराक्ष्या कृतस्तया
धैर्यशब्दार्थबोधोऽपि दूरे क्वास्यावलम्बनम्। —२७।२१

५. समन्तादंगं मे शयनकुसुमैस्तुद्यत इतः
परं चैतच्चेतश्चलति कदलीपत्रमरुता
पतन्तीतः प्लोषद्विशिथिलगुणा मौक्तिकगुणाः
बिसैः सार्धं वक्षः क्वथति मम गाढव्यथमितः। —२८।२३

६. किं किं दुःशिशिर क्रियाव्यतिकरैरायासयस्यद्य नः
क्षोण्यां रूषय पुष्पतल्परचनां रम्भादलं पारय
छित्वा विक्षिप दिक्षु मंक्षु चुटुकैराच्छिद्य मुक्तागुणान्
हस्ताभ्यां शमदाननिर्दयमताः सुग्धा मृणालीलताः। —२९।२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ तक स्थिति होती है कि वे कहते हैं कि मेरे अन्तःकरण की गति भी ठिकाने नहीं है और यदि सीता आ जायगी तो वह मनस्थिति भी ठिकाने आ जायगी।

षण्ढ ने राम को जो सीता की स्थिति सुनायी है, वह भी हृदय में विरह के दुःख की तीव्र अनुभूति कराती है।

कामदेव के द्वारा मुख्य रूप से लक्ष्य बनायी गयी वह बाला कवियों के द्वारा कल्पना से वर्णित वचनों को कल्पित नहीं रहने देती है, बल्कि उन्हें यथार्थ बनाती है।[१] उसके सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाय, सब सखियों को राम नाम से ही तन्मय होकर पुकारने लगती है।[२] सीता के शरीर पर की गयी शिशिर क्रिया भी जब उसे सह्य नहीं है, तब वह अधिक शीतल उपचार का ढंग करती है और बताती है कि चन्द्रमा को चन्द्रकान्त के जल से अभिषिक्त कर दो, चाँदनी को चन्दन से पोत दो तथा वसन्त की हवाओं को कदली पत्रों से स्वयं (पंखा) झलने दो।[३] इतना ही नहीं, सीता अपनी सखी को उपेक्षा करती हुई समझ रही है और वियोग में सन्तापदायक शीतल वस्तुओं को हटाने के लिए एक उन्माद भरा हुआ उपाय बताती है। दमयन्ती ने चन्द्रमा के सामने दर्पण करके उसमें प्रतिबिम्ब रूप में उतर आने वाले चन्द्रमा को दर्पण के भीतर कुचल देने की बात कही थी।[४] सीता कैरवों को मुद्रित कराना चाहती है, भ्रमरों को कहीं भगवा देना चाहती है, चन्द्रमा को पाताल में पहुँचाने का, चाँदनी को समुद्र में ले जाने का तथा मन्द हवाओं को गन्धहस्ती के स्तम्भों के स्कन्ध में जकड़ देने की अव्यावहारिक वात कहती है।[५] कालिदास का यह

---

१. विरमत विरमत सख्यो नलिनी दलताल-वृन्तपवनेन
हृदयगतो यं वह्निर्झटिति कदाचिज्ज्वलयत्येव।
रात्रिर्मे दिवसायते हितरुचिश्चण्डांशु लक्षायते
तारापंक्तिरपि प्रदीप्तवडवा वह्निः स्फुलिंगायते
धीरो दक्षिणमारुतोऽपि दहनज्वालावलीढायते
हा हा चन्दनविन्दुरद्य जलवत् संचारिरंगायते।
(संस्कृत सूक्तिसागर से वियोगिनी विप्रलाप, पृ० ३२३ से ३२९)

२. अंगाकर्णय मन्मथ शरासारैकलक्ष्यीकृता
नो मिथ्या कुरुते वचांसि विरहे बाला कवीनामपि
किं वा सम्प्रति कथ्यते बहुतरं यत्सत्यमत्रान्तरे
सर्वस्याऽपि सखीजनस्य भवतो नामैव नामाभवत्। —५३।२७

३. मा मैवं सखि किं पुनः पुनरपि व्यर्थैः क्रिया कौशलैः
वक्ष्येहं शिशिरोपचारमपरं दत्तावधाना भव
चन्द्रं स्नापय चन्द्रकान्तसलिलैश्चन्द्रातपं चन्दन—
क्षोदेन क्षिप वीजयार्द्रं कदलीपत्रेण चैत्रानिलान्। —५५।३४

४. नैषध —४।५९

५. किं मामित्थमुपेक्ष्यसे सखि मुधा निर्व्याजमुत्थीयताम्
सद्यो मुद्रय कैरवाणि मधुपान् कुत्राऽपि विद्रापय
पाताले शशिनं निधेहि जलधौ ज्योत्स्नां समावर्जय
स्कन्धे बन्धय गन्धसिन्धुरपदस्तंभेषु मन्दानिलान्। (५६।३७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथन सत्य है कि कामार्त लोग चेतन अचेतन का ध्यान नहीं रखते हैं।[1] सखियाँ, चन्द्र, चाँदनी, वसन्त वायु के निवारण का उद्योग भी करें, किन्तु यहाँ तो और भी उल्टी बात होती है। सीता के अंग-अंग में प्रतिबिम्बित एक चन्द्रमा एक से भी अधिक रूपों में दिखाई देता है। चांदनी दाँतों की स्वच्छ कान्ति से मिलकर बढ़ जाती है तथा निःश्वासों से वसन्त की हवाएं भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती हैं। सखियाँ सीता को धैर्य बंधावें, तो कैसे ?[2]

इस प्रकार विरह के कारण उसकी यह स्थिति हो गयी है कि स्तन अत्यन्त शिथिल तथा शरीर कान्तिहीन हो गया है और दुर्बलता की सूचना का प्रमाण यह है कि मध्य भाग का तो पता ही नहीं, प्रकोष्ठ (कलाई) का आभरण अब केयूर (भुजाओं के ऊपर) का आभरण बन गया है, क्योंकि दुबली हो जाने से कलाई का गहना बाजू के ऊपर तक खिसक जाता है।[3] इसमें हिन्दी के रीतिकालीन कवि बिहारी जैसा ऊहात्मक वर्णन नहीं है, जिसमें कि उनकी नायिका अपनी शक्तिहीनता से सांस की वायु के धक्के से छह सात हाथ आगे पीछे हट जाती है या मृत्यु को चश्मा लगाने पर भी अत्यन्त क्षीणता के कारण पूरी नायिका ही नहीं दिखाई देती है।[4]

हाँ, इतनी निश्चेष्ट अवश्य है कि यदि राम उसके पास पहुँच रहे हों तो उसका पति-मिलन-सूचक वायाँ नेत्र भी नहीं फड़क सकता है। इसी में सारी कृशता का भाव छिपा हुआ है। इस तरह विरह वेदना की गहरी अनुभूति करा सकने की क्षमता प्रस्तुत नाटक में है, जिसमें राम का हृदय विरहाग्नि से जलता है, किन्तु उसी हृदय में मग्न कामदेव के बाण नहीं जलते हैं।[5]

अलंकार--सौन्दर्य

शब्दालङ्कार

शब्दालंकारों में अनुप्रास अलंकार तो विभिन्न रूपों में सर्वत्र मिलता है, जो अपने वर्णसाम्य के कारण श्रुति सुखकर होता है। एक दो उद्धरण नीचे दिये

---

१. कामार्ता: हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। (मेघदूत, पूर्वमेघ ५; पृष्ठ १६)

२ अंगेषु प्रतिविम्बतस्तव शशी संख्यामसौ लंघते
ज्योत्स्नेयं तव दन्तकुन्दमुकुलच्छायाभिराम्रेडिता।
निश्वासैस्तव वर्द्धिता सुरभयो वासन्तिका वायवः
कष्ट मो कथमित्थमत्रभवतीमाश्वासयामो वयम्॥ (५७।३८)

३. संवृत्तौ कठिनेतरौ स्तनतटौ, कान्त्यावशिष्टं वपुः
मध्यः क्वापि गतः प्रकोष्ठवलयं केयूरतामागतम्। (५७।३९)

४. इत आवति चलि जाति उत चली छ सातक हाथ।
चढी हिंडौरे सी रहे लगी उसासन साथ॥
(बिहारी सतसई—छन्द ३१७, पृ० १३३)

५. चित्रं नः स्फुरतीदं हृदयमनेनाऽपि विरहदहनेन।
कुसुमशरस्याऽपि शरा निर्मग्ना नैव दह्यन्ते॥ (५१।२५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाते हैं।[१] इसके अतिरिक्त यमक[२], श्लेष[३], भाषासम श्लेष[४] और वक्रोक्ति[५] शब्दालंकार भी हैं।

अर्थालङ्कार

अर्थालंकारों में सादृश्य विधान या उपमान योजना होती है। यह ऐसा माध्यम है, जो पाठक को कवि की मनोभूमि तक पहुँचाता है। जिस सौन्दर्य को चर्मचक्षु से ग्रहण नहीं किया जा सकता है, वह सौन्दर्य उपमानों द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता है।[६] प्रस्तुत नाटक में सहोक्ति[७], तुल्ययोगिता[८], एकावली[९], अपह्नुति[१०],

---

१. शीतांशुवदनां सीतां स्पृष्ट्वैव स्पर्शशीतलाम्।
अपास्ततापमंगं मे शीतीभावमवाप्स्यति ॥ (३४।२८ तथा २०।७)
विरतस्त्वार्यविश्वासः सख्याः शठ दुःसहो निश्वासः।
न कुतोऽपि समुच्छ्वासः कथय कथं तावदाश्वासः ॥ (५६।३६)

२. स चापस्त्वच्चेतोमृगमृगयया श्लाघितबलः।
य एवाविश्रान्तो मदनमृगयुस्त्वां मृगयते ॥ (२३।९)
स एव खलु सीतायाः जनको जनको नृपः। (८७।२२)

३. अंगेष्वनङ्गस्य शराशरव्येष्वापुंखमग्नास्सफलास्तुदन्ति
सीतार्थिनो मे विफलाश्च जाता विश्वास्यमेषां न च सौमनस्यम्। —१९।३

४. पृ० ५४।३०, एक ही छन्द में संस्कृत प्राकृत दोनों भाषाएँ हैं।

५. वामन—गच्छन्ति कलभा इव
कुब्ज—अरे उरभ्रक कलभगमनं स्वच्छतमानां पुरुषाणां गमनं प्रशस्यते।
वामन—अन्यथा भणितमपि अन्यथा व्याख्यायसे मया खलु
कलभ इति श्रृंखल एव भणितं, न पुनर्विवके। —पृ० ४१

६. श्रीमद् भागवत का काव्यशास्त्रीय अध्ययन (टंकित), पृ० ४३५

७. नेत्राभ्यां सह विभ्रमव्यतिकरं मद्येन सार्थक्रमं।
हारेण स्खलितं सहैव भजते कम्पं कुचाभ्या सह
स्रस्तं सामि सहस्तनांशुकदशाप्रान्तेन चाकृष्यते
चित्रं सम्प्रति दोलया सह पुनर्दोलायते मे मनः। —१३।२५

८. युगपदुरसि बद्धं मन्मनश्चांजलिश्च। —१७।२८

९. अहो रूपानुरूपं वयः, वयोऽनुरूपं लीला, लीलानुरूपं विभ्रमो, विभ्रमानुरूपं सौष्ठवम्। —१२

१०. विसृजति मधुविन्दुच्छद्मना वाष्पविन्दून्। —२४।१०
न सोऽयं शीतांशुर्जरठतपतप्तो रविरसौ
न चैषा ज्योत्स्ना या शिखिसुहृदसावातपशिखा
न चैते हारा यन्त्रणमणिमाला स्फुटमिमा
न चेदंगान्येवं प्रियसखे तपेयुः कथमिव ॥ ७१।३
वक्त्रं ते प्रतिबिम्बितं मरकतस्निग्धेऽम्बरे नो शशी
दन्तांशु विशदैरपांगकिरणैर्मिश्रो न चन्द्रातपः
निश्वासाः प्रसरन्ति तापविषमा दीर्घं न मन्दानिलाः
कष्टं किं प्रति सम्प्रति प्रियसखि त्वं विक्लवा क्लाम्यसि ॥ —५६।३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरोधाभास[1], विशेषोक्ति[2], तद्गुण[3], उत्प्रेक्षा[4], निदर्शना[5] और उपमा[6] इत्यादि अर्थालंकारों का प्रयोग है।

छन्द

प्रस्तुत नाटक में छन्द गीतिलय युक्त हैं, किन्तु मुद्रण तथा लेखन सम्बन्धी अशुद्धि के कारण कतिपय स्थलों पर छन्दोभंग भी पाया जाता है। इसमें शार्दूल विक्रीडित[7], आर्या[8], अनुष्टुप[9], उपजाति[10], शिखरिणी[11],

---

१. न खलु भजते भद्रां निद्रां न च प्रतिबुध्यते ।
स्मरति न पुनः किंचित्तं न स्मरत्यधिकस्मरा ॥ —४४।७

२. चित्रं न स्फुरतीदं हृदयमनेनाऽपि विरहदहनेन ।
कुसुमशरस्याऽपि शरा निर्मग्ना नैव दह्यन्ते ॥

३. तस्याः स्तनौ यन्नवकुंकुमाद्रौ चादिलष्य हारोऽप्यनुरक्त आसीत् । —५१।२२

४. पुलकित इव मुग्धैः कोरकैरेष चूतः —२४।१०
अन्योन्यमन्यून मनोज्ञकान्ती, सहप्रशान्ताविव पुष्पदन्तौ । (उपमा)
इन्द्रप्रतीन्द्राविव चावतीर्णौ, नेत्रे इव द्वे जगतां त्रयस्य ॥ —८३।९
किसलयतलसमर्पितदेहायाः मदनदहनतप्तायाः
हाराः स्वदेहनिहिता जनयन्ति स्फोटकाशंकाम् ॥ —४७।१५

५. अनर्घ्यरूपामपि यः सुतां नयेद् धनुर्गुणारोपणमात्रशुल्कताम्
रजस्तृणेन क्षितिभृत्सु कौस्तुभं विमुह्य विक्रेतुमना भवेद्ध्रुवम् ।

६. निस्यन्दधारा स्रवती प्रणाल्या, सुरसुवन्तीव हिमाचलाग्रात् । —७।१९
हिमवानिव गंगायाः लक्ष्म्या इव पयोनिधिः (उपमा)
स एव खलु सीतायाः जनको जनको नृपः । —८७।२२

७. (१) २, ३, ११, १५, १८, १९, २२, २५, २९,
(२) १३, १७, २०, २५, ३५, ३७,
(३) ८, १४, १६ २४, २७, २८, २९, ३१, ३२, ३४, ३५, ३७, ३८, ३९, ४३,
(५) ६ ७ ११ १५ १६, १७, २०, २३, ३१, ३६, ३७, ३८, ४२, ४३,
और ५० = ४५

८. (१) ५, ६, १०, २१,
(२) ६, ११, २७, ३०, ३४,
(३) १, २, ८, व ९, ११, १५, २०, २५, ३०, ३६, ४०, ४२, ४४
(४) ६,
(५) ४, २५, ३३ = २८ (इसमें प्राकृत की गाथाएँ भी हैं)

९. (१) ८ १२, १३,
(२) २९, ३२, ३६,
(३) १९,
(४) ७, ८, ९, १६,
(५) ३, ९, २१, ३२, ४५ = १६

१०. (१) २२,
(२) ७, १४, २१, २४, २८, ३३,
(३) २३,
(५) १०, २२, ३०, ३४, ४६, ४९ = १४

११. (१) ४, ९, १६, १७, २०,
(२) ५, ९, २२,
(४) २, ३,
(५) १८, २७ = १२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मालिनी[1], हरिणी[2], स्रग्धरा,[3] वसन्ततिलका,[4] वशंस्थ,[5] इन्द्रवज्रा,[6] मन्दाक्रान्ता,[7] पृथ्वी,[8] औपच्छन्दसिक,[9] द्रुतविलम्बित,[10] अपरवक्त्र,[11] वियोगिनी,[12] वैतालीय,[13] भुजंग विजृंभित,[14] आदृतनया,[15] एकावली,[16] मारकृति[17], रुचिरा[18] छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

सुभाषित

पूर्व कालीन साहित्य में नीति के वाक्यों को विशेष स्थान मिलता था, क्योंकि काव्यकार उन कृतियों से समाज को एक शिक्षा भी दिया करते थे। सत्साहित्य भी वही कहा जाता है, जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष ही नहीं, जन समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर हो[19]। संस्कृत नाटकों का लक्ष्य दर्शकों का केवल मनोरंजन करना मात्र नहीं है, वरन् समाज के नैतिक स्तर की रक्षा एवं उसको समुन्नत करना भी है।[20]

---

१. (१) २८,
(२) ८, १०, १६, १८, १९,
(३) १८,
(४) ४, १४, १७,
(५) ३३ = ११

२. (१) २४,
(२, ४, २२,
(३) ७, २१,
(५) २, ४०, ४७, ४८ = ९

३. (१) १, १४, (४) ४, (५) ८, २८, २९, ४१, ४४ = ८

४. (२) १, २, १२, (३) १०, (४) १५ और (५) १ = ६

५. (४) १०, १२, १३, (५) १२, २६ = ५

६. (२) ३, (३) १३, २२, (५) ५, २५ = ५

७. (१) २७, (३) २६, ३३, (४) १ = ४

८. (३) १७,४५, (५) १४, ३९ = ४

९. (३) ३, (५) १३, १९ = ३

१०. (२) २६, (३) ४१, (४) ११ = ३

११. (१) ७, (२) १५ = २ लक्षण के लिए हेमचन्द सूरी का छन्दोऽनुशासन —३।१५

१२. (२) ८ ब = १

१३. (३) ४ = १ लक्षण छन्दोऽनुशासन —३।५३

१४. (३) ९ ब

१५. (१) ५ ब

१६. पृ० ११ दसण समुसुओ संपइ इत्यादि। छन्द संख्या इस पर नहीं है।

१७. (१) २६, लक्षण के लिए छन्दोऽनुशासन —६।२६

१८. (२) ३१

१९. साहित्य समीक्षांजलि में निबंध साहित्यकला
लेखक—श्री निवास चतुर्वेदी, पृ० ९

२०. स्वतंत्र कला शास्त्र, पृ० ४०८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस बात का ध्यान भारतीय साहित्य में विशेष रहा है। यही कारण है कि उन नाटकों में मंगलाचरण, भरतवाक्यों की अनिवार्य योजना के साथ आदर्शवाद पर चलने वाले को फलप्राप्ति अवश्य दिखाई जाती है। इतना अवश्य है कि इस शैली से काव्य प्रत्यक्ष में उपदेशात्मक ढंग अपनाता हुआ दिखाई देने लगता है। प्रस्तुत नाटक में सम्यकदर्शन (भक्ति), सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र (सत्कर्म) की प्रेरणा भरत वाक्य द्वारा की गयी है। कुछ नीति के वाक्यों का प्रयोग करके भी नीति की शिक्षा प्रच्छन्न रूप से देते हैं। हस्तिमल्ल स्वयं सुभाषित-प्रिय थे। उनके नाटकों में इस प्रकार के अनेक प्रमाण हैं; बल्कि वे तो सुभाषित को कविजन को वश में करने वाला समझते हैं।[1] क्योंकि कवि इन सुभाषितों के द्वारा ही काव्य व्यसन में अपना मनोविनोद करता है।[2] सभी सुभाषित शिक्षाप्रद नहीं होते हैं, किन्तु वे एक नीति बतला कर व्यक्ति को लोक व्यवहार का प्रशस्त मार्ग देते हैं।

प्रस्तुत नाटक के सभी सुभाषितों का संग्रह मुद्रित अंजना-पवनंजय नाटक की भूमिका में श्री पटवर्धन ने किया है। केवल दो सुभाषित रह गये हैं।[3]

संवाद योजना एवं भाषा

प्रस्तुत नाटक में कथावस्तु तो केवल प्रेम के वातावरण मात्र से सम्बद्ध है। इसमें अधिकतर संवाद राम एवं विदूषक के बीच एवं सीता और विनीता के बीच हैं। संवाद सरल एवं छोटे हैं। कतिपय स्थानों पर सरसता के लिए वक्रोक्तियों का प्रयोग भी है। उदाहरण के लिए सीता और विनीता के बीच वार्तालाप है—

सीता—प्रिय सखि विनीते! मेरी यह शिरोवेदना कहाँ शान्त होगी?

विनीता—जहां वह दिखाई दे।

सीता—कौन?

विनीता—जो तुम्हारी इस (वेदना का) कारण है।

सीता—क्या यह मेरा अंग सन्ताप?

विनीता—जो उस (अंग सन्ताप) का भी कारण है।

सीता—उसका क्या कारण है?

---

१. वशीकरोति खलु कविजनं सुभाषितम्। —पृ० २

२. कविः सूक्तिभिरेवात्मानं काव्यव्यसने विनोदयति

३. (अ) शरदुत्सुको न तृप्यति कलहंसः शरदि विप्रकृष्टायाम्। —पृ० ७६

(आ) रजस्तृणेन क्षितिभृत्सु कौस्तुभम्
विमुह्य विक्रेतुमना भवेद् ध्रुवम्। —पृ० ८४।१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता—जिसकी तुमने अंजलि बाँधकर अभ्यर्थना की थी।[1]

सीता—अपने सन्ताप के हेतु की अभ्यर्थना कौन करता है ?

विनीता—सौख्य के लिए अभ्यर्थना की थी, किन्तु वह सन्ताप का कारण बन गया।

सीता—यदि सन्ताप का कारण हो गया, तो किस कारण आज मेरी शीर्ष वेदना को शान्त करेगा ?

विनीता—अदृष्ट होने पर सन्ताप का कारण होता है और दिखाई देने पर सुख का कारण। जैसे, पृथिवी के लिए वर्षा का समय।[2]

इसी प्रकार का संवाद आगे भी है। पृष्ठ ३० का राम विदूषक का संवाद भी ऐसा ही है। सीता विनीता से सन्ताप निवारणार्थ किसी स्थान पर जाने के लिए कहती है। विनीता कहती है, आराम (उद्यान) की ओर चलें। उसके द्वारा ऐसा शब्द का प्रयोग किया गया है, जो राम के पास तक चलें—अर्थ का वाचक भी है। सीता झट पूछ उठती है, वह राम कहाँ है ? तब विनीता कहती है, मैंने तो यह कहा था कि आराम की ओर चलें। इसी प्रकार के एक दो प्रसंगों के सम्बन्ध में विदूषक के चरित्र के प्रकरण में लिखा जा चुका है।

हस्तिमल्ल के इस नाटक में षण्ढ, जिसे स्त्रीलिंग में कलावती नाम से निर्दिष्ट किया गया है, कभी संस्कृत में और कभी प्राकृत में बोलता है; जिस प्रकार उसके शरीर से दोनों के बीच की (नपुंसक) प्रकृति है, उसी प्रकार दोनों भाषाओं का प्रयोग करता है। इतना ही नहीं, एक गाथा ऐसी है[3], जो प्राकृत तथा संस्कृत दोनों

---

१. संस्कृत छाया :—

सीता—प्रियसखि विनीते कस्मिन्नेषा मे शीर्षवेदनोपशमिष्यति

विनीता—यत्र सः दृश्यते

सीता—कः

विनीता—यस्ते अस्याः हेतुः

सीता—किमेष मे अंगसन्तापः

विनीता—यस्तस्यापि हेतुः

सीता—को वा तस्य हेतुः

विनीता—यस्त्वया बद्धोऽञ्जल्यभ्यर्थितः ३०

२. सीता—को वात्मनः सन्तापहेतुमभ्यर्थते

विनीता—सौख्यःहेतुरिति खलु प्रार्थितः सन्तापहेतुर्जातः

सीता—यदि सन्तापहेतुर्जातः कथं कीदृशोऽद्य शीर्षवेदनामपनेष्यति

विनीता—अदृष्टः खलु सन्तापहेतुः दृष्टः पुनः सौख्याय महाइव प्रावृट् समये

३. किसलयलीलातरला विसवलयविलासकोमलच्छाया

सा कुसुमवाणवाणासारेण सदा समाविद्धा। —पृ० ५४।३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाषाओं में एक रूप वाली है। इसे लोग भाषा श्लेष अंलकार के अन्तर्गत मानते हैं।[1] इस नाटक की कथा वस्तु में वैसी गतिशीलता नहीं है, जैसी गतिशीलता उसके संवादों में है। तृतीय अंक के आरम्भ में वामन और कुब्ज का पहले एक दूसरे के परिहास से संबंधित और बाद में परस्पर की प्रशंसा से संबंधित कथोपकथन बड़ा मनोरंजक बन गया है।[2] उसका पूरा कथोपकथन मनोरंजक है।

कथोपकथन के गद्य की ही नहीं, छन्दों की भाषा मधुर, समासहीन अथवा अल्प समास वाली एवं गीति तथा लय के अनुरूप है। भाषा सौष्ठव के कारण प्रस्तुत नाटक का विप्रलंभ श्रृंगार का वर्णन मार्मिक बन गया है, जिसकी अनुभूति रसाभिव्यंजना वाले परिच्छेद से की जा सकती है।

नाटक में राम, लक्ष्मण, जनक, कंचुकी एवं विट, ये संस्कृत-भाषी पात्र हैं। विदूषक, सीता और उसकी सखी विनीता शौरसेनी प्राकृत बोलते हैं। षण्ढ संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में समय समय पर बोलता है।

वामन और कुब्ज की गद्य की भाषा मागधी है एवं पद्य की भाषा महाराष्ट्री है। मागधी एवं महाराष्ट्री की विशेषताएं अंजना-पवनंजय एवं विक्रान्त-कौरव नाटक के अध्याय में दिखायी गयी हैं।

सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अवस्थाओं की झलक

साहित्य में सामाजिक भावों, विचारों तथा अन्य कार्यकलापों आदि की प्रतिच्छाया रहती है। साहित्य में प्रतिबिम्बित या साहित्य द्वारा प्रसारित भावों से समाज प्रभावित भी होता है।[3] इन्हीं कारणों से साहित्य में उल्लिखित सामाजिक सांस्कृतिक झलक को भी आलोचनात्मक अध्ययन में स्थान मिलता है।

सामा[ज]िक प्रथाएं—वसन्त के दिन उल्लास के दिन होते हैं। लोग इस मादक काल में वसन्तोत्सव मनाया करते थे, जिसमें मनोविनोद के अनेक कार्यक्रम होते थे। पुष्पों के विकास के लिए स्त्रियाँ अपने हाथों से वृक्षों का सिंचन आदि करती थीं तथा दोहद आदि से सत्कार भी करती थीं। वसन्तोत्सव के प्रसंग में कामदेव का पूजन होता था। कुमारी बालिकाएं, जो युवावस्था में प्रवेश कर रही होती थीं,

---

१. काव्य प्रकाश, नवम उल्लास

२. वामन :—अरे प्रियवयस्याः दासेरका यूयं विरूपका खलु
उपहसनीयाः, तथाहि
गच्छन्ति करभा इवात्र न शयत्रं लभन्त उत्तानम्
उपगूहनं रतौ च निरन्तरं वक्रहृदयकाः। —पृ० ४१।१ संस्कृत छाया

कुब्ज :— आसनसदृश स्थितिभिरर्थंत उत्थितं पतद्भिः
चटुलनिकुब्जांगे गम्यते कच्छपैरिव। —पृ० ४२।२

३. काव्य के रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने योग्य वर की अभ्यर्थना इस उत्सव में कामदेव-पूजन के समय करती थीं। कुसुमित उद्यानों का भ्रमण, दर्शन, पुष्पचयन और दोलारोहण की क्रियाएं सचमुच एक उल्लास पैदा करती होगीं।[१] प्राचीन काल में झूले पर झूलना मनोविनोद का सार्वजनीन साधन था। राजकुमारी से लेकर सामान्य स्त्रियाँ तक झूले से अपने मन को हरा बना लेती थीं। कालान्तर में शुद्ध मनोविनोद का यह साधन पुरुषों और स्त्रियों के साथ झूलने के कारण उनकी काम प्रवृत्ति को सहलाने का साधन बन जाने से[२] अपनी पवित्रता खो बैठा होगा। हरिवंश (१४-२०) के अनुसार झूलते समय हिन्दोल राग अलापने का उल्लेख है।[३] प्रस्तुत नाटक में झूलने के साथ गीत का भी वर्णन आया है। कवि के समय के आस-पास चालुक्य वंश का अन्तिम शासक सोमेश्वर तृतीय स्त्रियों सहित वन-क्रीडा को जाता था। उस समय भी आन्दोलनोत्सव या झूले की क्रीडा को स्त्रियों के मनोरंजन का विशेष साधन माना जाता था।[४] ऋतुराज के आगमन पर झूलों का आयोजन होता था। पौर्णमासी की रात्रि को चन्द्रोदय होने पर राजा शृङ्गारयुक्त सुन्दरियों के साथ झूलता हुआ आनन्द लेता था।[५]

स्त्रियाँ वसन्त ऋतु के अनुकूल सुकुमार वासन्तिक वेष धारण करती थीं। वेश्याओं के वेशवाट एक स्थान पर होते थे। ये वेश्याएं भी इस प्रकार के उत्सवों में जाती थीं।[६] नर्तकियाँ नृत्य करती थीं।[७] ताड़ के पत्र के पंखे हवा करने के लिए उपयोग में लाये जाते थे।[८] राजा के यहाँ कुब्ज वामन एड, मूक, किरात, षण्ढ आदि लोग भी किसी कार्य के निमित्त आश्रय पाते थे।[९] धीरे-धीरे वे लोग राज परिवार के सम्पर्क से अनेक बातों के जानकार हो जाते थे। कुब्ज और वामन जैसे लोग भी परस्पर में अच्छा हास परिहास कर सकते थे। इससे विदित होता है कि ये लोग निश्चिन्त और सुखी रहते थे।

सीता के द्वारा लिखे गये प्रेम पत्र के वर्णन से प्रतीत होता है कि स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं। उनके विवाह, विवाह योग्य अवस्था में होते थे। उस समय रथ, हाथी और घोड़े सवारी के मुख्य साधन थे। राजा लोग जनकपुरी में इन्हीं पर सवार होकर पहुँचे थे।[१०] वंशवाट के पास धूर्तों का जमाव रहता था। धूर्त

---

१. पृ० ६
२. प्राचीन भारतीय मनोरंजन, पृ० ३०७
३. हिन्दोल ग्राम रागेण रक्तकण्ठाधरश्रियः दोलाद्यान्दोलन क्रीडाव्यासक्ताः
   कोमलं जगुः। —हरिवंशपुराण १४।२०, पृ० २२?
४. ऋतुराजे परिप्राप्ते वसन्तेऽति मनोहरे
   आन्दोलनं प्रकुर्वीत पृथुस्तम्भ द्वयान्वितम्। —मानसोल्लास, ३।१६८
   पृ० १८८, १८९
५. हिन्दुस्तानी पत्रिका, त्रैमासिक, भाग १२, अङ्क ३, ४, पृष्ठ ५२
६. पृ० ९।१६
७. पृ० ९।१७
८. पृ० ४०
९. पृ० ४३
१०. पृ० ८२।७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोष्ठी से दृष्टि बचा कर लोग निकलने का प्रयत्न करते थे।[1] वृक्षों के आजूबाजू क्यारियाँ बनायी जाती थीं, जिससे वृक्षों का सिंचन अच्छी तरह होता था। क्यारियों में पानी अधिक हो जाने पर बहाव मोड़कर उसे दूसरी ओर कर दिया जाता था।[2] विवाह आदि के अवसरों पर रंगीन, सुगन्धित चूर्ण बिखराया जाता था, और गर्मी होने पर यंत्रों (फव्वारों आदि) से जल का छिड़काव किया जाता था, जिससे हवा में कुछ ठंडक हो जाती थी।[3] वेश्याएं मधुपान भी किया करती थीं।[4]

वेष-भूषा, प्रसाधन, अलंकरण—स्त्रियों द्वारा चीन वस्त्र के धारण किये जाने के उल्लेख हैं। स्त्रियाँ नीचे पैरों तक स्पर्श करता हुआ वस्त्र पहनती थीं, जो उनके नूपुर को स्पर्श करता था।[5] अर्धोरुक का भी उल्लेख है। इसे संभवतः नर्तकियाँ पहनती होंगी। डा० मोतीचन्द ने इसे जांघिया या घघरी की तरह सिला हुआ कोई वस्त्र माना है।[6] कोशे का संव्यान वस्त्र भी स्त्रियाँ धारण करती थीं। यह एक प्रकार का दुपट्टा या चादर है[7], जिसे स्त्रियाँ स्तनों के आवरण के लिए धारण करती होंगी। कंचुकी द्वारा कंचुक (एक प्रकार का कुरता) धारण किये जाने का उल्लेख है।[8] जब कोई उत्साह या वीरता का काम करना होता था, तब कमर को बांध लिया जाता था। आजकल भी कुछ लोग श्रम का कार्य करते समय कमर को बांध लेते हैं। स्वयंवर में वज्रावर्त धनुष को उठाते समय राजाओं ने कटि बांध ली थी।

विलासिनी स्त्रियां सुगन्धित लेप किया करती थीं एवं मालाओं को धारण करती थीं, जिससे हवाएँ तक सुगन्धित हो जाती थीं। यह प्रसाधन अधिकतर सन्ध्या-काल में किया जाता था। केशपाश को इस तरह बांधती थीं कि उनका जूड़ा कन्धे तक लटका रहता था। बालों में सुगन्धित चूर्ण का प्रयोग किया जाता था।[9] स्तनों पर पत्र-रचना की जाती थी।[10] सहकार मंजरी से वर्णावतंस बनाने की रीति कन्याओं में थी। वसन्तोत्सव के अवसर पर कामदेव के मन्दिर के ऊपर मकर चिह्नित ध्वज लगाया जाता था।[11] स्तनों पर कुंकुम का लेप करके[12] भाल पर विशेषक[13] (एक प्रकार का तिलक) लगाकर प्रसाधन किया जाता था। विरहकाल

---

१. पृ० ४६
२. पृ० ७७
३. पृ० ९५।४७
४. पृ० ८।१५
५. पृ० ९।१९
६. प्राचीन भारतीय वेषभूषा, पृ० २३
७. प्राचीन भारतीय वेषभूषा, पृ० १५७
८. पृ० ८१
९. पृ० ८।१३ एवं ८।१५
१०. पृ० ९।१९
११. पृ० ९।१६
१२. पृ० ५१।२२
१३. पृ० १२।२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में सन्तप्त अंगों पर कर्पूर चूर्ण के प्रयोग[1] एवं चन्दन के पल्लवों के रस के प्रयोग[2] का वर्णन है, किन्तु ये वर्णन कवि परम्परा के अनुसार भी हो सकते हैं।

स्त्रियां नूपुर[3], तुलाकोटि[4], कांची दाम मणिमय नूपुर[5], हार[6], वलय, मणिमयहार, कर्णावतंस[7], मुक्ताहार, रशना[8], प्रकोष्ठ वलय, केयूर[9] और मंजीर[10] पहनती थीं।

पुरुष भी अलंकार धारण करते थे। राम के हाथ में राम नाम अंकित मुद्रिका (अंगूठी)[11] थी। वे मोती का हार वक्षस्थल पर धारण करते थे।[12] हाथों में कटक भी कतिपय राजकुमार पहनते थे।[13]

वास्तु निर्माण—वृक्षारोपण आदि व्यवस्थित ढंग से किये जाते थे, जिससे एक प्रकार के गृह बन जाते थे जो कि विभिन्न अवसरों पर उपयोग में आते थे। दोलागृह का उल्लेख उसकी स्थायी व्यवस्था का सूचक है, उत्सव के अवसर पर उसे फूलों आदि से सजा दिया जाता था।[14] प्रमदवन की व्यवस्था उच्च घराने की स्त्रियों के लिए होती थी। उनमें धारागृह बने होते थे, जिनसे पानी के छिड़काव आदि का काम होता होगा।[15] महलों में खिड़कियों की व्यवस्था रहती थी, इनमें पूर्वाभिमुख खिड़कियां अवश्य होती थीं। प्रातःकाल सूर्य की किरणें फूटते ही इन खिड़कियों में से महलों के भीतर पहुंचने लगती थीं। महलों में स्वच्छ सूर्यकान्त मणियाँ लगी रहती थीं। सूर्य की किरणें इन मणियों के सम्पर्क से और भी प्रज्वलित हो उठती थीं। ऐसी वीथी (मार्ग) का उल्लेख है, जिसे कुसुमायण कहा जाता था। इस मार्ग में फूलों की लगातार पंक्ति होने से ही इसका नाम कुसुमायण होना चाहिए।[16] इसी प्रकार उद्यानों में पुष्पवाटिकाएँ होती थीं। प्रमदवन में अनेक द्वार होते थे। राम को सीता से मिलने के लिए पश्चिम दिशा के पक्ष द्वार से प्रविष्ट होने की सूचना दी गयी थी।

---

१. पृ० ५५।३२
२. पृ० ६५
३. पृ० ८।१५
४. पृ० ९।१९, ४८ तथा ८९।२६
५. पृ० १२।२४
६. पृ० १३।२५, ४७।१४, १५
७. पृ० १७।२८
८. पृ० ४५
९. पृ० ५७।३९
१०. पृ० ८९।२५
११. पृ० १६
१२. पृ० २८।२२
१३. पृ० ९०।२९
१४. पृ० १०
१५. पृ० ४४
१६. पृ० ४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुसुमायण वीथी की भांति तमाल वीथिका का भी उल्लेख है, जिसमें लगातार तमाल के वृक्ष होंगे और वहाँ कुछ अंधकार-सा रहता होगा। घरों में दीर्घिका या वापिका का निर्माण और उनमें कमलों का उत्पादन किया जाता था।[१] ये वापिकाएँ समय अवसर पर जलक्रीडा के काम आती होंगी। मार्गों को सुनियोजित ढंग से बनाया जाता था, जिनमें हाथी जैसे विशालकाय वाहन भी निकल जाते थे। धारागृह के द्वारों पर कदली के गुल्मों को लगाकर स्थायी तोरण का निर्माण धारागृहों की स्थायी व्यवस्था के सूचक हैं।[२] धारागृहों में चन्द्रकान्तमणि जड़ी होने के उल्लेख मिलते हैं, जिनके कारण चन्द्रोदय होने पर स्वयं जल का स्रोत फूट पड़ता था।

आर्थिक स्थिति—नाटक में उल्लिखित सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस काल में आर्थिक स्थिति अच्छी थी। वैसे राम का राज्य तो सम्पूर्ण जनसमुदाय की सुख-समृद्धि के लिए प्रसिद्ध है। जनता के अपाहिज या विकलांग व्यक्ति भी राज्याश्रय पाये हुए थे। यही कारण था कि वामन और कुब्ज जैसे लोग भी प्रसन्न रहते थे। रत्न के झूले के निर्माण,[३] रत्नों के चूर्ण द्वारा वसन्त की पूजा,[४] मणि के नूपुर[५], मणि के हार, मुक्ताहार आदि के अलंकरण, रत्नों के दीपों का उपयोग, फर्श पर रत्नों का जड़ाव, माधवी वन में भी मणि के फर्श का वर्णन[६] यह व्यंजना कराते हैं कि वह वैभव-सम्पन्न युग था। क्रीडा के हेतु जो पुतलिका थी, वह भी चन्द्रकान्त मणि की बनी थी और उसका भी प्रसाधन अनेक मूल्यवान पदार्थों से किया गया था।[७] भवनों में चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त मणियों की स्थिति तत्कालीन सुदृढ़ आर्थिक दशा की परिचायक है। विवाह के अवसर पर जलधारा के लिए रत्न का भृंगार उपस्थित किया जाता है।[८] इतना ही नहीं, विवाह के अवसर पर याचक लोग अभिलषित अर्थ को प्राप्त करते थे। कहीं दीनता की बात ही नहीं थी।[९]

धार्मिक तथा अन्य विचारधारा—समाज की आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता और सभी वर्गों का सौख्य उस काल की जनता की नैतिकता पर निर्भर करता है। देश में कितना ही धन क्यों न हो, यदि देश की जनता में छल, कपट, भ्रष्टाचार व्याप्त हो जाय, तो कुछ लोगों का प्रयत्न सुख के साधन नहीं जुटा सकता है। आज के भारत में यही बात दिखाई दे रही है, जहाँ प्रत्येक प्रकार के वर्ग में अपने कर्तव्य के प्रति असावधानी और नैतिकता का ह्रास दिखाई देता है, जिसके कारण सभी

---

१. पृ० ४०
२. पृ० ७३
३. पृ० ११
४. पृ० १०
५. पृ० ४०
६. पृ० २८
७. पृ० ६९
८. पृ० ९४
९. समभिलषितानर्थानेते समाददतेऽर्थिनो
न कृपणकथा क्वापि प्रासावकाशमिहोत्सवे। —९५।४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योजनाएँ विफल होती चली जाती हैं। प्रस्तुत नाटक के वामन और कुब्ज भी जो कि साधारण-सा कार्य करते हैं, एक व्यक्ति रात में रत्नदीप धारण करता है और दूसरा तालवृन्तधारी है। दोनों अपना कार्य अपने उचित समय पर छोड़ कर घर जाते हैं। आजकल तो यदि राजकीय कर्मचारी या अधिकारी का निरीक्षण न किया जाय तो वे अपना कर्तव्य पूर्ण समय तक नहीं पालते हैं।

विदूषक को राम के पास पहुँचने में देर होने का कारण उसकी सन्ध्योपासना थी। राम भी स्वीकार करते हैं कि मैं तुम्हारी नियमानुष्ठान की लगन को जानता हूँ। यह ब्राह्मणों की धर्मानुष्ठान-प्रियता का प्रतीक है। दान देने की प्रथा भी लोगों के शुभ कार्य की द्योतक है। लोग जब तक राम की आध्यात्मिक महिमा से अपरिचित थे, तब तक उनके प्रतियोगी ही नहीं थे; बल्कि उनसे युद्ध करने के लिए तत्पर होकर उनके विपक्षी हो गये थे। जब उन्हें यह विदित हो जाता है कि ये चरमदेहधारी पुरुष हैं, कैवल्य-प्राप्ति इनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग से हो सकती है, तब सभी राजा लोग अंजलि बाँध कर नमस्कार करने लगते हैं। यह राम को नमस्कार नहीं, बल्कि उनके आध्यात्मिक गुणों के प्रति आदर भाव समझना चाहिए। भरत वाक्य में दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्राप्ति को जो कामना की गयी है, वह सबका निचोड़ है। उससे ही प्रत्येक मंगल और सुख प्राप्त हो सकता है। आज ज्ञान का विकास तो दिखाई देता है, किन्तु उसके आधार-स्तंभ भक्ति और कर्म का ध्यान न रखने से वह ज्ञान विकास की अपेक्षा पतन की ओर ले जा रहा है। राम का इन तीनों बातों पर विश्वास उस समय की धार्मिकता का प्रमाण है।

लोगों का शकुन पर भी विश्वास था। राम ने अनुकूल वचन सुन कर अपने मनोरथ को सफल मान लिया था और उनका मनोरथ सफल भी हुआ।[१] षण्ढ ने राम को सुनाया था कि सीता का वाम चक्षु भी फड़कने की क्षमता नहीं रखता है।[२] यह बात शकुन-मान्यता की पुष्टि करती है, क्योंकि ज्योतिष के अनुसार स्त्रियों का वाम चक्षु का स्पन्दन प्रिय-मिलन का सूचक है।

अभिनेयत्व उपसंहार

नाटक में अभिनय द्वारा यथार्थता लायी जाती है और यह यथार्थता, जो कि जीवन की सत्यता से भी अधिक यथार्थ हो उठती है, नाटक की आत्मा है।[३] सत्यं, शिवं और सुन्दरं, इन तीनों के समन्वय से ही उत्तम काव्य की सृष्टि होती है।[४] उनमें सत्यता का सबसे निखरा हुआ रूप नाटक में ही मिलता है। यही सत्य कर्तव्य पथ में जाकर शिव बन जाता है और वह भावना से संबन्धित होकर सुन्दरम् के रूप में दर्शन देता है। सुन्दर सत्य का ही परिमार्जित रूप है। सौन्दर्य सत्य को ग्राह्य

१. पृ० ५१७
२. पृ० ५८।४२
३. आलोचना के सिद्धान्त—लेखक, व्यौहार राजेन्द्रसिंह, पृ० १६५
४. सत्यं शिवं सुन्दरं, प्रथम भाग, पृ० २३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनाता है।[1] नाटक में काव्य और अनुकरणात्मक रूप के कारण सुन्दरम् का सबसे परिष्कृत रूप मिलता है और अभिनय की सफलता से वह सत्य होकर दर्शकों के लिए प्रेरणाप्रद बन कर शिव की ओर अभिमुख कराने वाला होता है।

प्रस्तुत नाटक में अभिनय सम्बन्धी सुविधा इनके सभी नाटकों से अधिक है। अन्य नाटकों की घटनाएं भिन्न-भिन्न प्रकार की तथा भिन्न स्थानों पर होती थीं। वे सब बातें इस नाटक में नहीं हैं, अतएव अभिनय की सफलता की दृष्टि से यह नाटक चारों में पहला स्थान प्राप्त करेगा। नाटक की प्रशस्ति में स्वयं इसे द्वितीय होने पर अद्वितीय बताया गया है।[2] संभवतः काव्यात्मक आनन्द और अभिनय की सफलता की दृष्टि से ऐसा माना जा सकता है। संस्कृत के नाटक के लिए अनुकूल प्रसाद गुण तथा भाषा की सरलता भी अभिनय के अनुकूल है तथा नाटक इतना छोटा है, जो दो तीन घंटे की अवधि में अभिनीत किया जा सकता है। जबकि भवभूति के बाद के नाटकों के आकार में वृद्धि करके यह प्राचीन एवं लाभप्रद चेतावनी विस्मृत कर दी गयी थी कि नाटक एक दृश्य और सुघटनीय रूप से व्यक्त कृति है।[3] घटनाओं की विविधता का अभाव होने से दर्शक की कुतूहल वृत्ति अवश्य जाग्रत नहीं हो सकेगी। पाठक काव्यात्मक आनन्द और रसात्मक अनुभूति अवश्य प्राप्त करेंगे।

उपसंहार—संस्कृत में राम के चरित को लेकर अनेक नाटक, काव्य, महाकाव्य लिखे गये हैं। आदिकाव्य रामायण स्वयं राम के चरित्र से सम्बद्ध है। राम के चरित की इतनी लोकप्रियता है कि उनका चरित स्वयं एक काव्य है, इसलिए उसके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जाय, वही काव्य है और लिखने वाला कवि है।[4] फिर भी रामचन्द्रिका के लिखने वाले महाकवि केशवदास भी उस काव्य में वह सौन्दर्य नहीं ला सके, जो अपेक्षित था। इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक में राम के जीवन के एक अंश को नाटककार ने जिस रूप में दिखाने का प्रयत्न किया है, वह काव्यात्मक कल्पना और लेखक की नाटक लिखने की सरणि के अनुरूप भले ही हो, किन्तु राम के साधारण कामी जैसे चरित के कारण यह नाटक उतनी लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सकेगा, जितनी लोकप्रियता उनके जीवन के दूसरे अंश की कथावस्तु से नाटक प्राप्त कर सकता था। बात यह है कि हस्तिमल्ल सभी नाटकों में श्रृंगार रस का निवेश करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने राम के जीवन के वैवाहिक प्रसंग को चुना है; पर ऐसा करने के लिए दूसरे पुरुष के इतिवृत्त को भी चुना जा सकता था, किन्तु उस चुनाव में राम के लोक प्रसिद्ध चरितका मोह बाधक रहा होगा।

---

१. सिद्धांत और अध्ययन, पृ० ९५

२ एतन्नाटकरत्नमुत्तमगुणं विभ्राजते मैथिलीकल्याणं
भृशमद्वितीयमपि सत्तेषु द्वितीयं मतम्। (पृ० ९६)

३. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, पृ० ३७४

४. राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है॥ —साकेत, मुखपृष्ठ के बाद का पृष्ठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम अध्याय

सुभद्रा नाटिका की समीक्षा

कथावस्तु

आशीर्वादात्मक मंगलाचरण में भगवान ऋषभनाथ से कल्याण-प्राप्ति की प्रार्थना करने के पश्चात् सूत्रधार श्लेष से सुभद्रा नाटिका (सुभद्रा नायिका) की प्रशंसा करता है। इसके पश्चात् राजा और विदूषक की बातचीत से ज्ञात होता है कि भरत चक्रवर्ती दिग्विजय के लिए निकले हुए हैं। उस दिग्विजय के प्रसंग में अनेक स्थानों के भ्रमण से अपूर्व, सुन्दर, दृश्यों के दर्शन का सौभाग्य तथा ज्ञान प्राप्त हुआ है।

दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में देखे गये अनेक मनोरम स्थलों का वर्णन और यात्रा का क्रम सूचित किया है, जिनमें गंगासागर, दक्षिणापथ, मलयाचल, वेलावन, तमिस्रागुहा, उत्तर भारत, मन्दाकिनी-विजयार्थ संगम तथा काण्डकप्रपातगुहा है।

काण्डकप्रपात गुहा के समीप वेदीवन में शिविर लगा हुआ है। विदूषक और राजा भरत विजयार्थ पर्वत के स्थलों पर विहार करते हैं; तब अशोक के वृक्ष के नीचे लाक्षारस से चिह्नित पदपंक्ति दिखाई देती है। इसी सम्बन्ध में राजा भरत विदूषक के साथ विचार विनिमय करते हैं, जिससे यह निश्चय हो जाता है कि ये किसी विद्याधर सुन्दरी के पद चिह्न हैं, जो अशोक वृक्ष में पाद-ताडन के द्वारा पुष्पोद्गम की अभिलाषिणी रही है। राजा पदपंक्ति का अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ सुभद्रा और उसकी सखी मन्दारिका है।

मन्दार वृक्ष की ओट से छिप कर राजा सुभद्रा को देखकर उसकी प्रशंसा भी करता है। सुभद्रा सखी मन्दारिका से अन्य सहेलियों के खोजने की एवं अपने द्वारा ताडित पुष्पित बाल अशोक (पुत्र) तथा सखी मन्दारिका द्वारा ताडित पुष्पित मालती लता (कन्या) के परस्पर विवाह की बातचीत करती है। सुभद्रा सखियों के खोजने के प्रसंग में ज्योंही आगे बढ़ती है, राजा भरत के दर्शन हो जाते हैं। दर्शन के पश्चात् राजा भरत के प्रति उत्सुक हो जाती है। इसी बीच सखी मन्दारिका द्वारा आवाज लगाये जाने पर वह यह सोचती हुई कि पुनः इस सौभाग्यशाली के दर्शन होंगे, चली जाती है। राजा भी सुभद्रा के चले जाने से उत्कण्ठित होता है। इसके पश्चात् राजा की ज्येष्ठा पत्नी वैलाती पदपंक्ति का अनुसरण करती हुई राजा के पास पहुँच जाती है। वैलाती अपनी चेटी रतिषेणा के साथ यह शंका करती चली जाती है कि राजा इसी पदपंक्ति का अनुसरण करता गया होगा।

विदूषक वैलाती के सामने राजा को निर्दोष प्रमाणित करने के हेतु रानी वैलाती से कहता है कि क्या यह आपकी ही पद-पंक्ति नहीं है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी समय दोपहर हो जाने से वैतालिक लोग राजा को अभिषेक की सूचना देते हैं। सभी चले जाते हैं।

द्वितीय अंक—दूसरे अंक के आरंभ में विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि सुभद्रा के दर्शन के पश्चात् राजा सुभद्रा के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित है। राज्य का सारा कार्य मित्र को सौंप दिया है और स्नान, भोजन, शयन आदि की व्यवस्थित दिनचर्या नहीं है, केवल सुभद्रा का ध्यान करते हैं।

इसके पश्चात् राजा का प्रवेश होता है। मित्र विदूषक के राजा के समीप पहुँचने पर राजा विदूषक से सुभद्रा के सौन्दर्य तथा उसके प्रति उत्कण्ठा होने के कारण अपने हृदय के सुभद्रा द्वारा हरण किये जाने की बात करते हैं। सुभद्रा का जिसमें प्रथम दर्शन हुआ था, उसी रमणीय वेदीवन में मनोविनोद करने का सुझाव विदूषक राजा को देता है। राजा मनोविनोद के लिए विदूषक के साथ वेदीवन में प्रवेश करते हैं। उसी मन्दार वृक्ष के नीचे पहुँचते हैं, जहाँ दोनों का परस्पर दर्शन तथा अनुराग हुआ था। वहीं मन्दार वृक्ष के नीचे शिलातल पर राजा बैठ कर चित्र-निर्माण की सामग्री मँगवा कर सुभद्रा के चित्र-लेखन का प्रयत्न करते हैं। पहले तो हृदय के मोह के कारण लिखने में राजा असमर्थ होते हैं, केवल कल्पना से चित्र बनाते हैं, बाद में प्रयत्न करके सुन्दर चित्र बना लेते हैं।

इधर सुभद्रा और उसकी सखी मन्दारिका भी आ जाती है और मन्दारिका भी सुभद्रा के मनोविनोद के लिए द्वयर्थक शब्दों द्वारा बाल अशोक की चर्चा करती है, जिसमें भरत के अनुराग का अर्थ भी निकलता है।

सुभद्रा और मन्दारिका इसी मन्दार वृक्ष के समीप पहुँच जाती हैं, जहाँ राजा और विदूषक पहले से बैठे हुए हैं। सुभद्रा और मन्दारिका वृक्ष की ओट से देखती हैं कि राजा सुभद्रा का चित्र बनाकर इस चित्र से आत्म-विनोद कर रहे हैं। दूसरी ओर राजा की ज्येष्ठा पत्नी वैलाती अपनी चेटी के साथ वहीं पहुँचकर दूसरी ओर से ओट में होकर देखती है कि राजा चित्रफलक के द्वारा मनोविनोद कर रहा है। रानी पहुँच कर उस चित्रफलक को देख लेती है और बाद में कुपित होकर चली जाती है।

विदूषक उस चित्र को हरिचन्दन के लतागृह में रखने जाता है, किन्तु वहाँ सुभद्रा दिखाई दे जाती है। राजा पहुँच कर सुभद्रा के बहे हुए आँसुओं के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट करता है कि ये आँसू किस कारण निकले हैं? तब राजा को ज्ञात होता है कि रानी वैलाती की घटना सुभद्रा ने छिपकर देखी है और उसके कारण आँसू आये हैं। सुभद्रा दूसरी ओर जाना चाहती है, राजा प्रसादनार्थ सुभद्रा का हाथ ग्रहण करता है; इसी बीच सखियों द्वारा पुकार ली जाती है। उसी समय सन्ध्या हो जाती है। सब लोग चले जाते हैं।

तृतीय अंक—मंजरिका नाम की चेटी जिसे पुष्पित बाल अशोक और पुष्पित मालती लता की विवाह विधि सम्पन्न करने के लिए मन्दाकिनी से अर्घ कमल लाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का कार्य सौंपा गया है और दूसरी चेटी तरंगिका को सखियों के बुलाने का कार्य सौंपा गया है। दोनों तृतीय अङ्क के प्रवेशक में बातचीत करती हैं, जिससे ज्ञात होता है कि सुभद्रा किसी महाभाग के दर्शन के बाद से कुछ अन्यमनस्क रहती है।

इसके पश्चात् सुभद्रा और उसकी सखि मन्दारिका प्रवेश करती हैं। सुभद्रा अत्यन्त काम-पीड़ित है। मन्दारिका प्रेमी के मिलन का आश्वासन देती है। सुभद्रा हरिचंदन रस से अशोक के पत्ते पर अनंग लेख नखों द्वारा लिखती है। मन्दारिका उस अनंग लेख को अशोक वृक्ष के स्कन्ध पर रख आती है। राजा और विदूषक भी अशोक वृक्ष की शोभा देख रहे हैं। वहीं छिपकर सुभद्रा और मन्दारिका की बातचीत सुनते हैं। बातचीत से तथा सुभद्रा की शारीरिक स्थिति से राजा को सुभद्रा की काम-पीड़ित अवस्था ज्ञात होती है। मंजरिका अर्घ कुसुम लेकर आ जाती है। अपने द्वारा पुष्पित की गयी मालतीलता रूपी कन्या का दान जब अशोक के लिए दिया जा रहा है, उसी में सुभद्रा कन्या का दान राजा के लिए दिया जा रहा है, इस प्रकार का अर्थ भी गर्भित है। राजा अवसर पाकर सुभद्रा के समीप पहुँच जाता है। सुभद्रा ने जब देवी वैलाती की आशंका के कारण राजा के अधिक देर तक रहने में सन्देह किया, तब विदूषक ने उत्तर दिया कि राजा का वास्तविक प्रेम तो तुम्हारे (सुभद्रा के) प्रति है, रानी के प्रति तो शिष्टाचार मात्र है। इस बातचीत को रानी और उसकी चेटी छिप कर सुन रही थीं। रानी वैलाती चेटी के साथ जब पास में पहुँच जाती हैं, तब राजा सुभद्रा के हाथ से अपने हाथ को हटा लेता है। मन्दारिका के कहने से सुभद्रा हरिचन्दनलतागृह में चली जाती है। राजा, रानी वैलाती के प्रति अनुनय विनय करता है, किन्तु रानी कुपित होकर चली जाती है।

इसके बाद विदूषक को अशोक के तने पर वही अनंग लेख मिल जाता है, जो सुभद्रा ने लिखा था। राजा पत्र को पढ़ कर निश्चय करता है कि यह प्रिया सुभद्रा द्वारा लिखा हुआ है।

उधर मंजरिका चेटी आकर कहती है कि मैं शुभ समाचार सुनाने आयी हूँ कि महाराज नमि ने अपनी बहिन सुभद्रा को चक्रवर्ती भरत के लिए देने का निश्चय किया है। सुभद्रा इस समाचार से उदासीन हो जातो है, क्योंकि वह समझती है कि भरत मेरे प्रेमी व्यक्ति से कोई भिन्न व्यक्ति है। सुभद्रा इसी चिन्ता में मूर्च्छित हो जाती है। मन्दारिका सुभद्रा की मूर्च्छा देख कर रक्षा करने के हेतु आवाज लगाती है। आवाज सुनकर राजा भरत और विदूषक उधर पहुँच जाते हैं। राजा के समाश्वासन पर सुभद्रा आश्वस्त होती है। जब सुभद्रा की मूर्च्छा का कारण पूछा जाता है, तब नेपथ्य में राजा भरत के पूर्ण परिचय और प्रशंसा के गीत की आवाज सुनाई देती है। विदूषक के यह कहने से कि आपकी यशोगाथा ही किन्नरमिथुन गा रहे हैं, सुभद्रा और मन्दारिका को निश्चय हो जाता है कि ये वही राजा भरत हैं, जिन्हें महाराज नमि ने सुभद्रा देने का निश्चय किया है। सखियों का वार्तालाप सुनकर सुभद्रा चली जाती है। इधर राजा भी विनोद के लिए उसी मार्ग से चल देते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ अंक—अयोध्य सेनापति चार म्लेच्छ खण्डों को जीतकर आता है। राजा एक ओर सुभद्रा का समागम निकट होने पर भी मन्मथ व्यथा से पीड़ित है, दूसरी ओर वैलाती के कोप शान्ति के सम्बन्ध में चिन्तित हैं। उसी समय तार्क्ष्यदत्त दूत आकर उपस्थित होता है, जो यह समाचार सुनाता है कि नमि आदि विद्याधर सुभद्रा प्रभृति स्त्री रत्न को लेकर आ रहे हैं। राजा इस संवाद से कि भविष्य में पुनः प्रेयसी मिलन होगा प्रसन्न हो जाते हैं; किन्तु देवी वैलाती के अप्रसन्न होने की चिन्ता बनी रहती है। ठीक इसी समय विदूषक राजा को यह समाचार सुनाता है कि देवी वैलाती प्रसन्न हो गयी हैं, क्योंकि राजा नमि ने रानी वैलाती के पास समाचार भेजा है कि मैं अपनी बहन सुभद्रा को विवाह संस्कार द्वारा राजा भरत को देना चाहता हूँ। सत्यज्ञाताओं ने ऐसी भविष्यवाणी की थी कि सुभद्रा चक्रवर्ती की रानी होगी। रानी ने इस प्रस्ताव के लिए अपनी सम्मति भी दे दी है। सुभद्रा तथा देवी वैलाती जो अब तक एक दूसरे के विरुद्ध-सी थीं, एक दूसरे की हितैषिणी बन जाती हैं। इस शुभ समाचार को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा ने रानी वैलाती के पिता राजा विलात को पश्चिमोत्तर खण्ड का तथा रानी के भाई चक्रसेन को पश्चिम खण्ड का राज्य प्रदान किया।

नमि विद्याधरों के साथ आकर विधिपूर्वक अपनी बहन राजा भरत को सौंप देते हैं। भरत वाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है।

कथा वस्तु-स्रोत

कवि हस्तिमल्ल ने सुभद्रा नाटिका में कथावस्तु का जो कुछ भी कलेवर प्रस्तुत किया है, वह सब हस्तिमल्ल की अपनी कल्पना और प्रतिभा की देन है। आदिपुराण के ३२ वें पर्व के १८० वें श्लोक से लेकर १८४ वें श्लोक तक इतनी-सी घटना का उल्लेख है कि भरत जब दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की दिग्विजय यात्रा के पश्चात् विजयार्थ पर्वत की तराई में गंगा-विजयार्थ संगम पर रुके हुए थे, तब विद्याधरों के राजा नमि विनमि उपहार की सामग्री के साथ राजा भरत के दर्शनार्थ आये। उन्होंने कन्या रत्न भी उपहार में दिया। नमि की बहिन सुभद्रा कन्या रत्न के साथ राजा भरत का मंगलाचारपूर्वक विवाह हुआ। भरत उस सुन्दरी सुभद्रा को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

नाटककार ने आदिपुराण की इस घटना का आधार बनाकर सुभद्रा नाटिका की रचना की है।

(क) भरत की दिग्विजय यात्रा का जो वर्णन आदिपुराण के २८ से ३२ वें पर्व तक है, उसी के अनुरूप संक्षिप्त परिचय नाटिका के आरम्भ में है।

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में तमिस्रा गुहा को पूर्व दिशा में बताया गया और खण्ड-प्रपात गुहा को पश्चिम में बताया गया है, जबकि सुभद्रा नाटिका में तमिस्रा गुहा की भौगोलिक स्थिति सिन्धु नदी के ऊपर तथा काण्डकप्रपात गुहा की स्थिति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंगा के ऊपर आदिपुराण के अनुसार है। इसलिए भी निश्चय होता है कि कवि हस्तिमल्ल ने आदिपुराण को ही अपनी नाटिका के मूल स्रोत के रूप में चुना है।

(ग) जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति आदि पुराण ग्रन्थों में जिस गुफा को खण्डप्रपात नाम दिया गया है, वहाँ सुभद्रा नाटिका और आदिपुराण में दोनों का नाम काण्डकप्रपात गुहा ऐसा समान है।

(घ) सूक्ष्म रूप से मिलान करने पर कुछ समानताएँ और भी सुभद्रा नाटिका तथा आदिपुराण में मिलती हैं। जैसे, सुभद्रा नाटिका के चतुर्थ अङ्क के १५ वें श्लोक में इस घटना का उल्लेख है[१] कि विजयार्थ देव ने भरत को सिंहासन, एक छत्र और चमर प्रदान किये। ठीक इसी बात का उल्लेख आदिपुराण के पर्व ३१, श्लोक ४९ में भी है।[२] इसी प्रकार आदिपुराण पर्व ३०, श्लोक १२ में लिखा है[३] कि दिग्विजय यात्रा के छल से अनेक देशों में परिभ्रमण कर लिया था। इसी बात का उल्लेख राजा ने सुभद्रा के प्रथम अंक के चौथे श्लोक में किया है।[४]

सुभद्रा नाटिका के तीसरे अङ्क में २५ वें और २६ वें श्लोक को नैपथ्य से किन्नरयुगल द्वारा पढ़ा जा रहा है। उसमें भरत का वही सब परिचय है, जो भरत ने आदिपुराण के २२ वें पर्व के १४६, १४७ और १४८ वें श्लोक में अपनी प्रशस्ति में बताया है। सुभद्रा नाटिका के प्रथम अङ्क, पृष्ठ चार में मलयाचल पर्वत और उसकी चन्दन वायु का वर्णन है। वायु का मिलता-जुलता-सा वर्णन आदिपुराण के ३० वें पर्व के २७ वें, २८ वें श्लोक में है। इसके पश्चात् इलायची, लौंग आदि वाले प्रदेश का वर्णन सुभद्रा और आदिपुराण दोनों में कुछ समानता के साथ उपलब्ध है।

(ङ) अयोध्य नामक सेनापति तथा विद्याधर नमि आदिपुराण के ही पात्र सुभद्रा में हैं।

उपर्युक्त कतिपय समानताओं के आधार पर यह निश्चित है कि कवि हस्तिमल्ल ने नाटिका का मूल स्रोत आदिपुराण को माना है।

नाटिका का रूप एवं सुभद्रा का नाटिकात्व

उपरूपकों में जो संकीर्ण भेद नाटिका है, सुभद्रा उसके अन्तर्गत आती है। कवि ने इस रचना में स्वयं ऐसे संकेत किये हैं, जिससे इसे नाटिका स्वीकार करने में विप्रतिपत्ति नहीं है एवं नाटिका के लक्षण भी पूर्णतया इस कृति पर चरितार्थ होते हैं।

---

१. यस्मै कृतांजलिरदाद् विजयार्थ एव। सेनानिनादचलितः स्वयमभ्युपेत्य।
एकातपत्रमवते भरतं समस्तं। सिंहासनं चमरद्वयमातपत्रम्। (सुभद्रा ४।१५)

२. स तस्मै रत्नभृंगारं सितमातपवारणम्
प्रकीर्णकयुगं दिव्यं ददौ च हरिविष्टरम्। (आदिपुराण ३१।४९)

३. इत्थंजेतव्यपक्षोऽपि यदयं दिग्जयोद्यतः।
तन्नूनं भक्तिमात्मीयां तद् व्याजेन परीयिवान्। (आदिपुराण ३०।१२)

४. द्रष्टव्यं ननु दृष्टमेव सकलं दिग्जैत्र यात्राच्छलात्। (सुभद्रा १।४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा कृति के संबंध में स्व० नाथूराम 'प्रेमी' ने यह कल्पना की थी कि हस्तिमल्ल के अनुपलब्ध नाटकों में जिस भरत-राज नामक नाटक का उल्लेख मिलता है, वह पृथक् नाटक नहीं है, सुभद्रा का ही दूसरा नाम होगा।[१] चूंकि सुभद्रा नाटिका है, इसलिए इसका नाम स्त्री लिंग पर ही होना चाहिए। अतः भरतराज नामक नाटक उनका पृथक् रहा होगा। सुभद्रा नाटिका का नाम भरतराज नहीं हो सकता है।

पृष्ठ २ पर सूत्रधार से नटी पूछती है कि कौन-सा प्रयोग तुम्हें रसानुभूति द्वारा सभा का आराधक दिखाई देता है ? सूत्रधार उत्तर देता है कि भट्टार गोविन्द स्वामी के पुत्र भट्ट हस्तिमल्ल की रचना सुभद्रा नाटिका ही ऐसी है।[२] इसी प्रकार तृतीय अंक, पृष्ठ ५८ पर मन्दारिका सुभद्रा से कहती है कि विवाह विधि सम्पन्न बालाशोक तुम्हारी उद्वाह विधि रूपी नाटिका का पूर्वरंग होगी। इस प्रकार दो स्थानों पर नाटिका का उल्लेख किया गया है।[३] नाटिका के लक्षण भी पूर्णरूप से सुभद्रा नाटिका में प्राप्त होते हैं।[४]

कथा वस्तु—दशरूपक के अनुसार नाटिका में इतिवृत प्रकरण की तरह कल्पित होता है। सुभद्रा नाटिका में कथावस्तु कवि-कल्पित है, क्योंकि आदिपुराण तथा अन्य त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र आदि जिन ग्रन्थों में राजा भरत की पट्टरानी सुभद्रा का उल्लेख है, उनमें कहीं भी सुभद्रा नाटिका की कथावस्तु नहीं पायी जाती है। इसी प्रकार भरत की ९६,००० रानियों की संख्या का उल्लेख होते हुए भी ज्येष्ठा पत्नी का नाम तक कहीं नहीं आया है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र के नियमानुसार सुभद्रा नाटिका की वस्तु का पल्लवन कवि-कल्पना से ही हुआ है।

नायक—नाटिका का नायक नाटक के नायक की भाँति प्रख्यात हुआ तथा धीर ललित होता है। जहाँ तक नायक राजा भरत के प्रख्यात होने का सम्वन्ध है, राजा भरत का उल्लेख जैन साहित्य में अनेक ग्रन्थों में है। वैसे भी वे

---

१. हस्तिमल्ल के अभी तक चार नाटक प्राप्त हुए हैं—(१) विक्रान्तकौरव, (२) मैथिलीकल्याण, (३) अंजनापवनंजय, (४) सुभद्रा। इनके सिवाय (१) उदयनराज, (२) भरतराज, (३) अर्जुनराज और (४) मेघेश्वर—इन चार नाटकों का उल्लेख और मिलता है। इनमें भरतराज सुभद्रा का ही दूसरा नाम मालूम देता है। (जैन साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७६)

२. सूत्रधार—आर्ये किमन्यत् ननु भट्टारगोविन्दसूनोर्भट्टहस्तिमल्लस्य कृतिर्नाटिका सुभद्रा (सुभद्रा नाटिका, अंक प्रथम, पृष्ठ २)

३. मन्दारिका : येन स एव सुनिर्वतितस्तवोद्वाहसम्पत्तिनाटिकायाः पूर्वरंगविधिर्भविष्यति।

४. अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम् (दशरूपक ३।३९) तत्र (नाटके) अभिगम्यगुणैर्युक्तोधीरोदात्तः प्रतापवान् (३।२२) कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः प्रख्यातवंशी राजर्षि दिव्यो वा यत्र नायकः (३।२३) लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये तत्र वस्तु प्रकरणान् नाटकान्नायको नृपः (३।४३) प्रख्यातो धीरललितः श्रृंगारोऽङ्गी सलक्षणः (३।४४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ के पुत्र हैं तथा प्रथम चक्रवर्ती सम्राट हैं। नाटक के नायक के सभी गुण राजा भरत में उपलब्ध हैं।[१]

रस—नाटिका में प्रधान रस शृङ्गार होता है। सुभद्रा नाटिका का प्रधान रस शृङ्गार है। कवि ने स्वयं सुभद्रा के प्रथम अंक में शृङ्गार रस की मुख्यता दिखा कर नाटिका के प्रधान रस शृंगार को अभिव्यंजित किया है।[२] नाटिका में स्त्री पात्रों का प्राधान्य होता है, क्योंकि शृङ्गार रस की अभिव्यंजना के लिए ऐसा आवश्यक भी है।[३] इसमें नायिका सुभद्रा, उसकी सखि मन्दारिका, ज्येष्ठा पत्नी देवी वैलाती, उसकी चेटी रतिषेणा, सुभद्रा की प्रथम चेटी मंजरिका, द्वितीय चेटी तरंगिका, प्रतिहारी जित्वरिका—इस प्रकार सात स्त्री पात्र हैं। प्राधान्य भी स्त्री पात्रों का ही है, जो चारों अंकों में हैं। जबकि अधिकांश पुरुष पात्र केवल चतुर्थ अंक में आते हैं और तुरन्त दर्शकों की दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। नाटिका में दो नायिकाएँ होती हैं। उनमें ज्येष्ठा नायिका देवी होती है, जो राजवंश में उत्पन्न प्रगल्भ प्रकृति की होती है। नायक का कनिष्ठा के साथ समागम कठिनाई से होता है।[४] सुभद्रा नाटिका में ज्येष्ठा पत्नी वैलाती है, जो कि नृपवंशोत्पन्न भी है। गम्भीर, मानिनी इत्यादि विशेषताएँ पात्र परिचय वाले अध्याय में स्पष्ट की गयी हैं। देवी राजा महाराज विलात की पुत्री है तथा युवराज चक्रसेन की भगिनी है।[५]

नायिका समागम—नाटिका में ज्येष्ठा नायिका कनिष्ठा के साथ नायक के समागम में बाधक बनती है। देवी वैलाती भी सुभद्रा के समागम में विघ्न उपस्थित करती है। प्रथम अंक में देवी के आगमन से ही राजा चिन्तित होता है और सोचता है कि देवी को क्या उत्तर देगें।[६] विदूषक कहता है कि मित्र भय मत करो, मैं तुम्हारा बचाने वाला हूँ।[७] रानी इसी अंक में जब विदूषक से पूछती है कि क्या राजा का अभिलषित व्यक्ति के साथ समागम सम्पन्न हुआ ? तब विदूषक कहता है

१. सुभद्रा नाटिका, पृष्ठ ७०, अंक ३, श्लोक २५-२६
२. शृंगारमालोक्य रसेषु मुख्यं। तस्योचितं पात्रमियन्नु सृष्टा।
अस्याविशिष्टान्नु गुणान् विलोक्य। (शृंगारनामारस एप सृष्टः, सुभद्रा १-२८)
३. स्त्रीप्रायचतुरंकादिभेदकं यदि चेष्यते (दशरूपक ३।४४)
तत्र नाटिकेति स्त्रीसमाख्यौचित्यप्राप्तं स्त्रीप्रधानत्वं कैशिकी वृत्याश्रयत्वाच्च तदंगसंख्ययाऽल्पावमर्शत्वेन चतुरंकत्वमप्यौचित्य प्राप्तमेव (दशरूपक ३।४४ की धनिक की वृत्ति)
४. देवी तत्र भवेज्जेष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा (३।४५ दशरूपक) गंभीरा मानिनी कृच्छात् तद्वशान्नेतृसंगमः (३।४६ दशरूपक)
५. विदूषकः सुभद्रा (पृष्ठ ८२) का प्राकृत तथा संस्कृत छाया हंसदत्तनाम कंचुकिना विज्ञप्ता भट्टिनी देवी अहंखलु तव ज्येष्ठभ्रातुः युवराजचक्रसेनस्य देव्या....... पुत्रस्नेहः (पृ० ८३)
६. तत् किमत्रोत्तरम् —पृ० १८
७. वयस्य मा विभेहि अह ते निस्तारयिता —पृ० १८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि मैं यज्ञोपवीत की शपथ लेकर कहता हूँ कि न कोई यहां देखी गयी और न किसी से बातचीत हुई है।[1] द्वितीय अंक में जब राजा अपने द्वारा चित्रित सुभद्रा के चित्र को ध्यान से देखता है, तब भी देवी उपस्थित होकर समागम में बाधा उपस्थित करती है, जिससे सुभद्रा हरिचन्दन लतागृह में चली जाती है, यहां तक कि देवी विदूषक के वचाव वाले बहानों को सुनकर विदूषक के बाहुयुगल को बंधवा देती है।[2]

तृतीय अंक में बालाशोक और मालती लता के विवाह विधि के समय प्रच्छन्न रूप से राजा भरत भी विवाह विधि देख रहे हैं तथा अवसर पाकर सुभद्रा के समीप पहुँच जाते हैं और सुभद्रा के कर-ग्रहण का अवसर मिलता है। इसी बीच पुनः देवी वैलाती पहुँच जाती है, जिससे सुभद्रा को भी अपना हाथ सकोड़कर चला जाना पड़ता है। इस प्रकार कनिष्ठा नायिका के साथ राजा भरत के समागम में देवी के कारण कठिनाई उपस्थित होती है। राजा भरत को यद्यपि यह ज्ञात हो गया है कि महाराज नमि ने अपनी बहन सुभद्रा मुझे विवाहने का निश्चय कर लिया है, फिर भी उन्हें देवी के रोष की चिन्ता बनी रहती है, क्योंकि सुभद्रा की प्राप्ति देवी की प्रसन्नता के आधीन है। राजा चतुर्थ अंक में स्वगत विचार करता है कि यद्यपि प्रियतमा सुभद्रा के आगमन को सुनकर मुझे धीरज बंधा है, किन्तु देवी की प्रसन्नता के सम्बन्ध में मेरी मति स्थिर नहीं है।[3]

नायिका—नाटिका में नायिका मुग्धा, अतिसुन्दरी तथा नृपवंशजा होती है।[4] पात्र परिचय वाले प्रकरण में सुभद्रा के चरित्र से विदित होता है कि नायिका सुभद्रा मुग्धा, नृपवंशजा तथा अतिसुन्दरी है। अन्तःपुर आदि के सम्बन्ध के कारण नायिका को देखने सुनने का अवसर राजा प्राप्त करता है तथा अनुराग क्रमशः विकसित होता है एवं राजा देवी-भय के कारण शंकित रहकर कनिष्ठा के प्रति अनुराग चेष्टाएं प्रकट करता है।[5]

राजा भरत मनोविनोद के हेतु भ्रमण करते हुए बालाशोक के समीप पहुँचते हैं। वहीं सुभद्रा को देख लेने पर अनुराग उत्पन्न होता है। यह अनुराग क्रमशः दूसरे तीसरे अंक में विकसित होता है। किन्तु राजा को देवी का त्रास तथा शंका दोनों बराबर बनी रहती है। दूसरे अंक में राजा अपने द्वारा आलिखित सुभद्रा का चित्र देखते हैं। सुभद्रा भी छिपकर राजा के भाव को समझ रही है। विदूषक कह देता

---

१. पृ० १९
२. पृ० ४१
३. सुभद्रा, पृ० ७९, अंक ४, श्लोक २२
४. नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चाति मनोहरा। (दशरूपक, ३।४६)
५. अन्तःपुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुति दर्शनैः
अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् (३।४७)
नेता तत्र प्रवर्तेत देवो त्रासेन शंकितः। (३।४८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, यह वेला.......! तभी राजा वैलाती समझ कर शंकित हो जाता है। विदूषक बात बदल देता है कि मैं तो यह कह रहा था कि यह वेला (सीमा) है चित्रकला की।[1]

नाटिका गठन—नाटिका में चार अंकों की योजना होती है[2] तथा कैशिकी वृत्ति के भी चार अंगों का प्रयोग होता है।[3] सुभद्रा नाटिका भी चार अङ्क युक्त है तथा कैशिकी वृत्ति के चारों अङ्गों का प्रयोग इसमें हुआ है। उनमें पहला अङ्ग नर्म है। नायक या नायिका के चित्त को प्रसन्न करने वाला विलास या परिहास-पूर्ण व्यापार नर्म कहलाता है। वह तीन प्रकार का होता है—(१) हास्य नर्म, (२) शृङ्गार नर्म और (३) भय नर्म। इनके भी वचन, वेष और चेष्टाओं के कारण अवान्तर भेद हो जाते हैं।[4] सुभद्रा नाटिका में नर्म के अवसरों की योजना की गयी है, क्योंकि नाटिकाकार कवि हस्तिमल्ल ने नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन करने का पूरा प्रयत्न किया है, किन्तु हास्य की सृष्टि में हस्तिमल्ल पूर्ण सफल नहीं दिखाई देते हैं। उनकी प्रकृति हास्य रस के अनुकूल नहीं दिखाई देती। इसलिए हास्य की योजना न होने पर भी वाक् कौशल के कारण नर्म के अङ्गों द्वारा कैशिकी वृत्ति की समायोजना उनकी नाटिका में है। इस नाटिका में वचन नर्म के ही प्रसंग प्राप्त हैं।

वचोहास नर्म—प्रथम अंक में मन्दारिका से सुभद्रा कहती है कि तुमने मालतीलता में असमय में पुष्पोद्गम करने वाला जो दोहद किया है, यदि यह मालती-लता बालाशोक के साथ कुसुमित हो जाय तो इन दोनों की उद्वाह विधि को अपन पूरा करेंगे। तब मंदारिका उत्तर देती है कि जिससे वह ही तुम्हारी (सुभद्रा की) उद्वाह विधि की प्रस्तावना हो जाय।[5]

इस प्रकार तीसरे अंक में सुभद्रा साध्यपूर्वक जाना चाहती है, तब विदूषक सुभद्रा से कहता है कि जिस राजा भरत के लिए चार समुद्र पर्यन्त व सुधा समुचित कर (टैक्स) देती है, उसी राजा भरत को तुम (सुभद्रा) कर (हाथ) नहीं देती हो।[6]

---

१. सुभद्रा, पृ० ३५—एषा वेला ....दृ............
क्व देवी वैलातीं, वयस्य मा भैषीः एवं खलु अहं वक्तुकामः
एषा वेला दृश्यते आलोख्यविज्ञानस्येति

२. कैशिक्यंगैश्च चतुर्भिश्च युक्तांकेरिव नाटिका। (दशरूपक ३।४७)

३. वृत्तिश्चतुर्धा तत्र कैशिकी, गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुश्रंगार चेष्टितैः
नर्मतत्स्फिज तत्स्फोट तद् गर्भैश्चतुरंगिका

४. वैदग्ध्यक्रीडितं नर्म प्रियोपच्छन्दनात्मक (२।४८—दशरूपक)
हास्येनैव सश्रृंगारमयेन विहितं त्रिधा। आत्मोपक्षेप सम्भोगमानैः श्रृंगार्यपि त्रिधा (२।४९)
शुद्धमंगं भयं द्वेधा त्रेधा वाग्वेषचेष्टितैः। सर्वं सहास्यमित्येवं नर्माष्टादशधोदितम्। (२।५०)

५. पृ० १३—सुभद्रा।

६. पृ० ७१ (सुभद्रा ससाध्वसमन्यतो गन्तुमिच्छति)
विदूषक—यस्य तावच्चतुरुदधिपर्यन्तया मह्या समुचितः करो दीयते तस्य कथं त्वया करो न दीयते?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शृङ्गार नर्म—द्वितीय अंक में सुभद्रा मन्दारिका की बातचीत होती है। सुभद्रा कहती है, सखि मन्दारिके, क्या वह बालाशोक इस समय मुकुल के फूटने से प्रकट राग (लालिमा अनुराग) वाला होगा ?[1]

मन्दारिका—प्रिय सखि, वह (बालाशोक, प्रियजन) हर तरह इस समय तुम्हें राग (लालिमा अनुराग) दिखायेगा।[2]

सुभद्रा—सखि, क्या तुम्हारी मालतीलता भी मुकुल के उद्भेद से पीली हो जायगी, जिससे तुम शीघ्र ही दोनों की उद्वाह विधि होने की बात कहती हो ?[3]

मन्दारिका—हमारी भी वह (मालतीमाला, सखी सुभद्रा) अभी अभी दिखाई गयी पाण्डिमा से सुन्दर तथा अपूर्व (जन) के समागम के कारण दुगुनी शोभावाली प्रफुल्लित होकर इस (बालाशोक, प्रियजन) के स्कन्ध (तने, कन्धे) से शीघ्र मिलने ही वाली है।[4]

सुभद्रा—वह बालाशोक कितनी दूर है ? यदि पास में है, तो सखियों की परवाह न कर वहाँ चलें।

मन्दारिका—वह (बालाशोक, प्रियजन) इधर समीप में ही है, जो तुम्हारे नेत्रों को आनंदित करेगा और जिस (बालाशोक तथा प्रियजन) के प्रति तुमने अपना महान अनुराग प्रकट किया था।

सुभद्रा—वहां उस सखीजन (सहेलीजन या प्रियजन) को देखा था ?

मन्दारिका—न केवल उसे देखा था, अनुरागपूर्वक बातचीत भी की थी।

सुभद्रा—असंगत बोलने वाली तुम क्या असम्बद्ध बातें करती हो ![5]

इसी प्रकार प्रथम अंक में जब सुभद्रा लज्जावश राजा के पास से जाने लगती है, तब विदूषक कहता है—यह शिष्टाचार के विपरीत है कि आप इस अभी दिखाई दिये अपूर्व व्यक्ति का समादर न कर अपने सखी समुदाय को खोजने चल दीं।[6]

---

१. सुभद्रा, पृ० २९—सुभद्रा—सखि किमिदानीं स बालाशोकः मुकुलोद्भेद निष्पतित रागो भविष्यति

२. मन्दारिका—प्रिय सखि सर्वथा तवेदानीं दर्शयिष्यति स रागम् येन उद्वाह सम्पत्तिरचिराद् भविष्यति

३. सुभद्रा—सखि किं सा मालती माला मुकुलोद्भेदपाण्डुरिता भविष्यति यत उद्वाह विधिरविलम्बितं कथयसि

४. मन्दारिका—अस्मदीयापि प्रत्यग्रदर्शितपाण्डिमरमणीया अपूर्व समागम द्विगुण शोभासंफुल्लति एतस्य स्कन्धे चिराल्लगत्येव।

५. सुभद्रा, पृ० ३० के उपर्युक्त अंश

६. पृ० १५—अहो अदक्षिणत्वमत्रभवत्या यत् तत्क्षणदृष्टमपूर्वजनमसंभाव्य आत्मनः सखीजनमन्वेष्टुं गम्यते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय अंक में जब सुभद्रा मान करके जाना चाहती है, तब राजा सुभद्रा को हाथ से पकड़कर कहते हैं—प्रिये, प्रसन्न हो जाओ (सुभद्रा हाथ छुड़ाना चाहती है)। राजा—जिस तुमने मेरे समस्त धैर्य को उखाड़ कर मेरा मन चुरा लिया है, वह तुम भाग्य से प्राप्त हुई हो, अब यों ही कैसे छोड़ दी जाओगी।[1]

सुभद्रा में मान नर्म भी कई स्थलों पर अभिव्यक्त हुआ है।

मान नर्म—द्वितीय अंक में सुभद्रा वैलाती के विघ्न की शंका के कारण मान करके अन्यत्र जाना चाहती है, तब राजा सुभद्रा की सखि मन्दारिका से कहते हैं कि भद्रे, तुम अपनी कोपयुक्ता सखि को क्यों नहीं प्रसन्न करती हो ?

मन्दारिका—(सुभद्रा से) सखि, तुम्हारा अनुकूलता का व्यवहार कहाँ चला गया ? (राजा से) राजन्, आपही हाथ पकड़कर मना लीजिये न ![2]

भय नर्म—द्वितीय अंक में राजा जिस समय अपने द्वारा चित्रित सुभद्रा का चित्र प्रसन्नता पूर्वक देख रहे हैं, विदूषक एकाएक कह देता है यह वेला..........!

राजा—(वेला शब्द से ज्येष्ठा वैलाती समझ कर डर जाता है) देवी वैलाती कहाँ है ?

विदूषक—मित्र, मत डरो। मैं तो यह कहना चाहता था कि यह तो वेला (सीमा) दिखाई देती है चित्रकला की।

राजा—तो फिर हम कुशल हैं ?[3]

नर्म गर्भ[4]—किसी प्रयोजन से नायक के छिपकर प्रवेश करने पर नर्म गर्भ कहते हैं।

तृतीय अङ्क में जब मालतीलता एवं बालाशोक की उद्वाह विधि सम्पन्न हो रही है, तब राजा छिपकर देख रहा है। विवाह विधि में यह ध्वनि भी निकलती है कि मन्दारिका अपनी मालतीमाला की तरह अपनी सखी को भी प्रदान कर रही है। राजा विधि सम्पन्न होते ही अवसर पाकर वहाँ पहुँच जाता है।

राजा—(मन्दारिका से) भद्रे, जिस मेरे लिए तुमने अपनी प्रिय सखी सुभद्रा प्रदान की है, वह मैं अत्यन्त कृतार्थ हूँ। तुम्हारी ग्रहण करने की प्रार्थना व्यर्थ है, क्योंकि (मैं सुभद्रा का तथा बालाशोक मालतीलता का) हम स्वयं इच्छुक हैं तथा

---

१. राजा—(सुभद्रां हस्ते गृहीत्वा) प्रिये प्रसीद प्रसीद (सुभद्रा मोचयितुमिच्छति)
उन्मूल्य धैर्यसर्वस्वं यया मे चोरितं मनः, सेयं देवान्मया
दृष्टा कथमद्य विमुच्यसे (२।२४)

२. पृ० ३५-३६

३. छन्ननेतृप्रतीचारो नर्म गर्भोऽर्थ हेतवे
अंगे सहास्य निर्हास्यैरेभिरेषा अत्र कैशिकी (दशरूपक २।५२)

४. पृ० ६२ का आरम्भ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैंने इस सुभद्रा के लिए भी अपने को अर्पण कर दिया है (इस मालतीलता के लिए बालाशोक ने अपनी आत्मा अर्पण की है)

(मन्दारिका हँसकर सुभद्रा को देखने लगती है)
सुभद्रा लज्जा से मुख नम्र कर लेती है।[1]

नर्म स्फोट—सात्विक आदि भावों के लेशमात्र से जहाँ किंचित मात्र रस की सूचना कर दी जाय।[2]

द्वितीय अङ्क में उपरिनिर्दिष्ट अंश के पश्चात् राजा सुभद्रा को लज्जा से नम्र-मुखी देखकर कहता है—यह तुम्हारा शरीर मुरझाये मृणाल की तरह कोमल तथा अत्यन्त सन्तप्त हो रहा है। इसलिए लज्जा की आदत छोड़कर तुम मेरे हाथ का अवलम्बन लो।[3]

यहाँ लज्जा, शरीर की म्लानता से सुभद्रा के हृदय की रति अभिव्यंजित हो रही है। अतएव नर्म स्फोट है।

नर्म स्फिज[4]—जहाँ नायक नायिका को पहले सुख तथा बाद में भय लगा रहता है, वहाँ नर्म स्फिज होता है।

जैसे तीसरे अङ्क में उपर्युक्त प्रसंग के बाद राजा सुभद्रा को हाथ में ग्रहण कर लेता है। सुभद्रा लज्जापूर्वक मन्दारिका का अवलम्बन लेती है। मन्दारिका हँसकर कहती है—इन्हीं का सहारा लो न!

इस पर सुभद्रा कहती है कि क्या ये पराधीन राजा इतनी देर तक यहाँ रुक सकते हैं?[5]

यहाँ सुभद्रा के नवसंगम में आनंद का अनुभव तो होता है, किन्तु राजा की देवी विषयक पराधीनता के कारण उनके बिछुड़ने का भय लगा रहता है। अतएव नर्म स्फिज है।

इस प्रकार कैशिकी वृत्ति के प्रायः सभी अंगों का रूप हमें सुभद्रा नाटिका में प्राप्त होता है। नर्म में हास्य की स्थिति अनिवार्य न होने से उपर्युक्त उदाहरण कैशिकी वृत्ति में आ जाते हैं। यद्यपि इन नियमों का पालन नाटिकाकार के लिए सर्वथा अनिवार्य नहीं मानना चाहिए, फिर भी नाटिका के लक्षण में जो बातें नाट्य-शास्त्र के ग्रन्थों में मिलती हैं, वे सभी सुभद्रा नाटिका में उपलब्ध हैं। अतएव हस्तिमल्ल ने नाट्यशास्त्र के लक्षणानुसार नाटिका की रचना की है, यह निर्विवाद सिद्ध है।

---

१. पृ० ६२ का आरम्भ
२. नर्मस्फोटस्तु भावानां सूचितोऽल्परसो लवैः। (दशरूपक २।५१)
३. सुभद्रा—६२ पृष्ठ, १७ श्लोक
४. नर्मस्फिजः सुखारम्भो भयान्तो नवसंगमे। (दशरूपक २।५१)
५. पृ० ६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथावस्तु का गठन और उसकी शास्त्रीय समीक्षा

कवि हस्तिमल्ल के रूपकों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उन्हें नाट्य-शास्त्र, काव्यशास्त्र तथा कवि समय का ज्ञान था। इसीलिए उनके नाटक नाट्य सिद्धान्तों के अनुरूप हैं।

कथा वस्तु के प्रकार—दशरूपक में कथावस्तु के प्रारम्भ में फलाधिकार की दृष्टि से दो भेद किये हैं : एक आधिकारिक और दूसरा प्रासंगिक।[1] सुभद्रा नाटिका में राजा भरत तथा सुभद्रा की कथावस्तु आधिकारिक है, क्योंकि राजा भरत तथा सुभद्रा का मिलन रूप जो फल है, उससे सम्बद्ध दोनों की कथा आधिकारिक कथा है।

प्रासंगिक कथा[2] के पताका और प्रकरी, ये दो भेद हैं। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक नाटक नाटिका में इन दोनों का समावेश हो। किसी किसी नाटक में एक की जगह दो दो पताकाओं और प्रकरी कथाओं की योजना देखी जाती है।[3] सुभद्रा नाटिका में बालाशोक और मालतीलता के विवाह की जो कथा है, उसे ही पताका मानना चाहिए; क्योंकि उन दोनों की कथा सुभद्रा नाटिका में प्रथम अंक से तृतीय अंक तक बीच बीच में अपना रूप लेकर चलती है और दोनों की उद्वाह विधि सुभद्रा तथा राजा भरत की उद्वाह विधि की भूमिका तैयार करती है। पताका-नायक कोई चल प्राणी ही हो, ऐसा नियम नहीं है। अभिज्ञान शाकुन्तल में निर्जीव अंगूठी को भी पताका-नायक माना गया है।[4] इस प्रकार बालाशोक और मालतीलता की कथा आधिकारिक कथा की सहायक है तथा उनका परस्पर का मिलन ही उसका अपना प्रसंग से प्राप्तफल है। संस्कृत नाटककारों ने अपने प्रेम को इतना व्यापक बनाया है कि वे प्रकृति में पूर्णरूप से मानवता की प्राण-प्रतिष्ठा मानते थे। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल तथा मेघदूत में प्रकृति के साथ बिल्कुल मानवीय सम्बन्ध का व्यवहार है। इस दृष्टि से हस्तिमल्ल ने बालाशोक को पताका-नायक तथा उसकी कथा को पताका बनाया है, इसे उचित ही माना जायगा।

चतुर्थ अङ्क में भरत राजा के सेनापति अयोध्य द्वारा विद्याधरराज नमि के पास भेजे गये दूत तार्क्ष्यदत्त की कथा प्रकरी है। तार्क्ष्यदत्त दूत की कथा राजा नमि के सुभद्रा आदि रत्नों को उपहार लेकर आने की योजना द्वारा राजा की सुभद्रा-प्राप्ति की कार्यसिद्धि की साधिका है तथा उस लघु कथा के नायक तार्क्ष्यदत्त दूत को

---

१. दशरूपक १।११

२. प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः। (दशरूपक १।१३)

३ एक कथा में एक ही पताका होना चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है। अभिज्ञान शाकुन्तल में विदूषक और अंगूठी, दोनों वृत्तान्तों को पताका माना जाय, तो कोई दोष नहीं होगा। (अभिज्ञान शाकुन्तल, भूमिका, पृ० ८)
(श्री कान्तानाथ तैलंग शास्त्री)

४. पताका में कोई सजीव पुरुष ही नायक हो, ऐसा भी नियम नहीं बनाया जा सकता। (वही)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी दूताध्यक्ष का पद एवं दश स्वर्णभार पुरस्कार में प्राप्त होता है। इस प्रकार उक्त अल्प प्रदेशी कथा को प्रकरी मानना उचित है।

स्रोत की दृष्टि से सुभद्रा की कथा आदिपुराण पर आधारित होने से, प्रख्यात तथा नाटिका के अनुरूप कल्पना से गठित किये जाने के कारण कल्पित है। अतएव मिश्र कथावस्तु है।

इतनी बात अवश्य है कि यह कथावस्तु मर्त्य है, किन्तु इसके पात्र पौराणिक है। चक्रवर्ती के दण्डरत्न से वज्रकपाटों का उद्घाटन करना, किन्नर युगल द्वारा चक्रवर्ती भरत के गुणों का इन्द्र की सभा में गाया जाना, चक्रवर्ती भरत के एक बाण से समुद्र को और दूसरे बाण से दूसरी ओर हिमवतपर्वत को लक्ष्य बनाना और विद्याधरों का आकाश मार्ग में उड़ना आदि घटनाएं कथावस्तु को आंशिक रूप से दिव्यता भी प्रदान करती हैं। इस प्रकार सुभद्रा नाटिका की कथावस्तु दिव्यादिव्य (दिव्य मर्त्य) कही जा सकती है।

अभिव्यक्ति की दृष्टि से—कथावस्तु का एक और प्रकार होता है कि कुछ कथावस्तु या कथोपकथन सर्व श्राव्य होते हैं। कुछ नियत श्राव्य और कुछ अश्राव्य होते हैं। सुभद्रा में सर्वश्राव्य के अतिरिक्त नियत श्राव्य के भी कुछ स्थल हैं, जो अपवार्य में आते हैं। तृतीय अंक में जब बालाशोक और मालतीलता की उद्वाह विधि पूर्ण हो जाती है, तब विदूषक ब्राह्मण स्वस्तिवाचनिक का प्रसाद लेने पहुँचता है। उस समय मन्दारिका अन्य पात्र (विदूषक) की ओर रोकने का संकेत कर सुभद्रा से राजा के भी आगमन की बात करती है। उसी प्रकार प्रथम अंक में सुभद्रा मन्दारिका से राजा के द्वारा अशोक-ताड़न की घटना के देखे जाने की बात अन्य लोगों के श्रवण से बचा कर अपवार्य के रूप में कहती है।

अश्राव्य या स्वगत या आत्मगत कथन के तो अनेक अवसर श्रृंगार रस की नाटिका में आना स्वाभाविक हैं। सुभद्रा नाटिका में दो स्थलों पर आकाश-भाषित का प्रयोग भी हुआ है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में विदूषक राजा की सुभद्रा के प्रति उत्कण्ठा से परिचित कराकर आकाशभाषित द्वारा जित्वरिका प्रतिहारी से महाराज का पता पूछता है और अपने आप उत्तर की कल्पना कर लेता है। चतुर्थ अंक में सेनापति अयोध्य आकाशभाषित द्वारा कंचुकी पुरुषदत्त से अपने आगमन की सूचना राजा को देने के लिए कहते हैं और स्वयं उत्तर का आक्षेप कर लेते हैं कि 'क्या यह कहते हो कि रत्नवलभी में उपस्थित राजा को सूचना दे दी गयी है?'

कथांशों की सूचना के लिए सुभद्रा नाटिका में दो अर्थोपक्षेपकों के प्रयोग हैं। तृतीय अंक के आरम्भ में प्रवेशक का प्रयोग किया गया है।

चतुर्थ अंक में शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है, जिसमें संस्कृत-भाषी एकाकी पात्र पुरुषदत्त कंचुकी है। इसमें सेनापति के सम्बन्ध में सूचना दी गयी है, जिसने नमि विद्याधरों के पास दूत को भेजा था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थप्रकृतियां

बीज—सुभद्रा नाटिका में मुख्य कार्य चक्रवर्ती भरत और सुभद्रा का मिलन है। उसकी हेतु रूप बीज नामक अर्थप्रकृति प्रथम अंक के छठवें श्लोक से आरम्भ होती है, जिसमें राजा दिग्विजय के प्रसंग में देखे गये अनेक सुन्दर प्राकृतिक स्थानों के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं। उन सभी वर्णनों में एक पुल्लिग के साथ स्त्रीलिंग के संयोग की सूचना बीज की निर्देशक है।

उन प्रकृति वर्णनों में समुद्र गंगा (ज्येष्ठा) का आलिंगन करता है। वही समुद्र दक्षिणापथ में ताम्रपर्णी (कनिष्ठा नायिका) का आलिंगन करता है। एला से लवंग सन्नद्ध है। उन्मग्नजला नदी नव प्रिया की भांति मन को अवनमित करती है। इसी प्रकार बालाशोक और मालतीलता की उद्वाह विधि की वार्ता राजा भरत और सुभद्रा के भविष्य के वैवाहिक मिलन के हेतु रूप से न्यस्त होने के कारण बीज प्रकृति का निर्देशक है।[1] बीज नामक अर्थप्रकृति प्रथम अंक के १६वें श्लोक तक चलती है।

बिन्दु—जहां कथा दूसरे प्रसंग से विच्छिन्न होने लगती है, वहां उसको मूल कार्य से संयोजन करने वाला कारण बिन्दु कहलाता है। इस नाटिका में बिन्दु अनेक स्थलों पर है।

प्रथम अंक में ही देवी वैलाती और उसकी चेटी रतिषेणा के आगमन से सुभद्रा और राजा के मिलन रूप कार्य की कथा विच्छिन्न हो जाती है। दूसरे अंक के आरम्भ में विदूषक आकर सुभद्रा के प्रति उत्कण्ठित राजा की बेचैनी की सूचना देता है तथा राजा चित्र द्वारा सुभद्रा का दर्शन करते हैं। दूसरे अंक के १५वें श्लोक तक चित्र सम्बन्धी घटना चलती है। चित्र को देख कर विदूषक कहता है कि चित्र की सुभद्रा ऐसी लगती है, जैसे साक्षात् सुभद्रा ही उपस्थित हो गयी हो। विदूषक के यह कहने पर राजा को स्मरण आ जाता है कि सुभद्रा की सखी ने कल पुनः आगमन का प्रस्ताव रखा था, इसलिए वह आने वाली हो। इसके बाद ही सुभद्रा के प्रवेश से पुनः कथा प्रस्तुत कार्य के निर्वाह से सम्बद्ध हो जाती है। यह बिन्दु नामक अर्थप्रकृति दूसरे अंक के अन्त तक चलती है।

पताका—जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बालाशोक और मालती के विवाह की घटना तीसरे अंक के १६ वें छन्द तक चलती है और वही इस नाटिका की पताका है।

प्रकरी—चतुर्थ अंक में विद्याधर राजा नमि के पास समाचार भेजने और विद्याधरों के उपहार लेकर आगमन की सूचना देने वाले दूत की कथा प्रकरी है। यह कथा चतुर्थ अंक के २१ वें श्लोक तक चलती है।

कार्य—चतुर्थ अंक में विदूषक के कथन से कि देवी प्रसन्न हो गयी है, मिलन कार्य का श्रीगणेश हो जाता है। अन्त में नमि के द्वारा राजा को किये गये बहन

१ स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतु र्बीजं विस्तार्यनेकधा। (दशरूपक १।१७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा का ज्ञान तक कार्य नामक अर्थ प्रकृति है। राजा सुभद्रा का वैवाहिक विधि-पूर्वक मिलन हो जाना ही अन्तिम कार्य है।

अवस्थाएं—नायक की कार्य के प्रति मनोदशा अवस्था कहलाती है।

आरम्भ—नायक या नायिका आदि प्रमुख पात्र की फल के प्रति उत्सुकता को आरम्भ कहते हैं। प्रथम अंक में सुभद्रा को देखने से ही नायक भरत के हृदय में औत्सुक्य जागृत होता है। उनके औत्सुक्य की व्यंजना उनके इस कथन से होती है कि अरे, संसार में ऐसा उत्कृष्ट रूप भी सम्भव है तथा प्रथम अंक के ३० वें श्लोक में राजा अपने राज्य वैभव, युवावस्था आदि को व्यर्थ ही समझता है, यदि यह अमूल्य कन्या-रत्न उनके वक्षस्थल को भूषित न करे।[1] इसी तरह उसी अंक में सुभद्रा राजा का प्रथम दर्शन करती है, तब राजा के प्रति उत्कण्ठा से अपने हृदय में यह विचारती है—यह अत्यन्त सुन्दर कौन है? इस प्रकार दोनों के औत्सुक्य की व्यंजना के कारण यहां से आरम्भ अवस्था प्रारम्भ होती है। यह आरम्भ अवस्था द्वितीय अंक के उस स्थल तक समझनी चाहिए, जहां तक राजा और विदूषक को बातचीत से राजा की अत्यन्त उत्सुकता व्यक्त है और द्वितीय अंक के २७वें छन्द में राजा सुभद्रा की उत्सुकता के चिह्न भी प्रस्तुत करता है।

यत्न—राजा सुभद्रा के दर्शन के लिए चित्र बनाने का उपक्रम आरम्भ करता है। यहाँ से यत्न नामक अवस्था का आरम्भ है। सुभद्रा भी राजा के प्रति उत्कण्ठित है। सखी मन्दारिका के सुझाव के अनुसार प्रियदर्शन से रमणीय मन्दार वृक्ष के समीप मनोविनोद के लिए चल देती है और वहाँ राजा को अपना चित्र दर्शन करते हुए देखती है। यह यत्न नामक अवस्था द्वितीय अंक में उस कथन के पूर्व तक है, जबकि विदूषक देवी वैलाती के आगमन की बात परिहास में उठा देता है, जिससे राजा और सुभद्रा दोनों ही शंकित हो जाते हैं।

प्राप्त्याशा—द्वितीय अंक में जब रानी वैलाती राजा को सुभद्रा का चित्र दर्शन करते हुए देख लेती है, तब सुभद्रा भी समझ जाती है कि राजा इसीसे भयभीत होता है। रानी वैलाती राजा द्वारा वस्त्र ग्रहण करने पर भी अप्रसन्न चली जाती है। इसीसे राजा और सुभद्रा के मिलन में बाधा की अभिव्यंजना होती है। विदूषक के यह पूछने पर कि अब क्या करें, राजा उत्तर देता है कि चलो, अब जाकर रानी वैलाती को मनावें। यहाँ से प्राप्त्याशा अवस्था आरंभ होती है, क्योंकि रानी के कुपित हो जाने से सुभद्रा-मिलन की आशा क्षीण हो गयी है।

तृतीय अंक में बालाशोक और मालतीलता की विवाह विधि के पश्चात् राजा को सुभद्रा के कर-ग्रहण का क्षणिक अवसर मिल जाता है और उसी समय पुनः

१. षट्खंडेश्वरतां बिडम्बनसमां पश्यामि सारोज्झिताम्
तारुण्यं वयसश्च निष्फलतया कारुण्यमेवार्हति
वैदग्ध्यं दयितानुवर्तनविधै वैयर्थ्यशोच्यं च मे
कन्यारत्नमनर्घ्यमेतदचिराद् वक्षो न चेद् भूषयेत्। (१।३० सुभद्रा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रानी वैलाती पहुँच कर उस मिलन को भंग कर देती है। राजा के चरणों में प्रणाम करने पर भी रानी के कुपित होकर चले जाने से पुनः मिलन की आशा धूमिल हो जाती है। इधर सुभद्रा जब यह सुनती है कि मेरे भाई ने मुझे चक्रवर्ती भरत को देने का निश्चय किया है और अपने प्रणयी को उससे भिन्न व्यक्ति समझती है, तब वह और भी निराश होकर मूर्च्छित हो जाती है; किन्तु जब किन्नर युगल के द्वारा गायी गयी राजा भरत की कीर्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि यही राजा भरत है, तब पुनः सुभद्रा के हृदय की मिलन-बाधा दूर हो जाती है। किन्तु रानी के कोप से राजा के हृदय में जो मिलन-बाधा है, वह बराबर चतुर्थ अंक में उस समय तक रहती है, जब राजा २२वें श्लोक में यह कहता है कि प्रियतमा सुभद्रा को नमि के साथ आता हुआ सुनकर मेरी बुद्धि धैर्य को प्राप्त होकर भी देवी की प्रसन्नता के सम्बन्ध में अत्यन्त चक्कर में पड़ी है। यहाँ तक प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति—चतुर्थ अंक में जब विदूषक राजा को यह समाचार सुनाता है कि विद्याधरराज नमि के द्वारा हंसदत्त कंचुकी रानी वैलाती के पास भेजा गया और नमि ने अपनी बहन सुभद्रा के सम्बन्ध में समाचार भी भेजा कि सिद्धादेश के अनुसार सुभद्रा चक्रवर्ती की रानी होगी। उसी सम्बन्ध को सम्पादित करने के लिए सुभद्रा को लेकर नमि आ रहे हैं। रानी वैलाती सुभद्रा को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई हैं। राजा रानी के समाचार को सुनकर इतना प्रसन्न हैं कि हर्ष उसके हृदय में नहीं समा रहा है।[1] यहाँ राजा तथा सुभद्रा, दोनों की सभी बाधाओं के दूर होने से विशेषकर रानी वैलाती के प्रसन्न हो जाने से मिलन के होने का निश्चय हो जाता है। अतएव नियताप्ति अवस्था है।

फलागम—यद्यपि राजा तथा सुभद्रा दोनों को अस्थायी दर्शनरूप मिलन के तीन अवसर पहले भी मिले; किन्तु चतुर्थ अंक में नमि द्वारा जलदानपूर्वक राजा को जब सुभद्रा दे दी जाती है, तब राजा को पूर्णरूप से अभीष्ट की प्राप्ति हो जाने से फलागम अवस्था है।

सन्धियाँ और उनके अङ्ग

मुख सन्धि—प्रस्तावना में ही श्लेष द्वारा सुभद्रा के द्वारा राजा भरत के चित्त को आकर्षित करने की सूचना दी गयी है। राजा का चित्त सुभद्रा की ओर आकर्षित हो, यही मिलन का प्रमुख बीज है। उसकी उत्पत्ति के कारण यहीं से मुख सन्धि आरम्भ हो जाती है। यही मुख सन्धि का उपक्षेप अंग है, क्योंकि इसमें बीज का न्यास किया गया है।[2] यह मुख सन्धि प्रथम अंक के अन्त तक चलती है।

प्रतिमुख सन्धि—द्वितीय अंक के आरम्भ में विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि राजा भरत उस सुभद्रा के प्रति इतने उत्कण्ठित हैं कि उन्होंने राज्य के

---

१. श्रुत्वा सुभद्रां स्वगृहं प्रविष्टां विलातपुत्रीमपि सुप्रसन्नाम्।
न भाति दुष्प्रापमवाप्य योगं देहे ममाप्यस्मिन्नयमद्य हर्षः॥ (८३।२३ सुभद्रा)

२. सुभद्रा, २।३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्यादि त्याग दिये हैं और विदूषक राजा के इस नवीन प्रेमरूपी रहस्य के भंग होने के भय से चतुर चेटियों से घिरी रानी के पास नहीं जा पाता है। इसके बाद राजा की आकृति और उसकी बातचीत से उसका अनुराग प्रस्फुटित होने लगता है तथा इसी दूसरे अंक में राजा द्वारा चित्र में सुभद्रा का दर्शन किये जाने को रानी देखकर बिना प्रसन्न हुए चली जाती है। तब राजा का अनुराग पुनः अलक्ष्य हो जाता है। सुभद्रा भी कुछ क्षीण आशा वाली हो जाती है और तब उसकी आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं। इस प्रकार उनका अनुराग विघ्नयुक्त हो जाने से अलक्ष्य हो गया है। अनुराग के लक्ष्यालक्ष्य हो जाने से दूसरे अंक में प्रतिमुख सन्धि की योजना है।

सुभद्रा की सखि मन्दारिका के कथन से ज्ञात होता है कि राजा के दर्शन के बाद से उदासीन रहती हुई सुभद्रा को अब रमणीय पदार्थों में रति नहीं है। रात में नींद भी नहीं आती है। इस प्रकार सुभद्रा की अरति की व्यंजना होने से प्रतिमुख सन्धि का विधूत नामक अंग है।

मन्दारिका मन्दार वृक्ष के पास छिपकर जब सुभद्रा को राजा के दर्शन करा देती है, तब सुभद्रा कहती है—हे हृदय, आश्वासन प्राप्त करो, यही तुम्हारे मनोरथ का पात्र है। इस कथन से सुभद्रा की अरति के शान्त होने की सूचना मिलती है। अतएव यहाँ प्रतिमुख सन्धि का शम नामक अंग है।

इस तरह प्रतिमुख सन्धि दूसरे अंक के अन्त तक चलती है।

गर्भसन्धि—तीसरे अंक में बालाशोक और मालती की उद्वाह विधि रूप पताका का वर्णन है। उसी अवसर पर राजा के लिए मन्दारिका द्वारा सुभद्रा के भी दिये जाने के अर्थान्तर से राजा तथा सुभद्रा का मिलन अवसर आने से बीज दर्शन पुनः हो जाता है, किन्तु उसी समय रानी वैलाती के आगमन से वह मिलन का अवसर भंग हो जाता है। इस प्रकार वह मिलन बीज पुनः अदृष्ट हो जाता है। सुभद्रा जब अपने भाई द्वारा अपने को अपने प्रणयी से भिन्न व्यक्ति को देने के निश्चय को समझती है, तब मूर्च्छित हो जाती है। उसकी रक्षा के लिए मन्दारिका द्वारा पुकार सुनकर राजा को पुनः सुभद्रा के पास पहुँच कर उसे सान्त्वना देने का अवसर मिल जाता है। उस समय किन्नर मिथुन द्वारा राजा भरत के सम्बन्ध में जो गीत गाया गया था, उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह सुभद्रा का प्रेमी वही व्यक्ति है, जिसे सुभद्रा के भाई ने सुभद्रा देने का निश्चय किया है। इस तरह बीज के अन्वेषण के कारण यहाँ तीसरे अंक तक गर्भ सन्धि है।

जब रानी वैलाती राजा को सुभद्रा का हाथ ग्रहण किये हुए देख लेती है तथा विदूषक को यह कहते हुए सुन लेती है कि राजा का तुम सुभद्रा के प्रति सच्चा अनुराग है, रानी के प्रति तो शिष्टाचार मात्र है। रानी कुपित होकर 'मेरा यह अन्तिम प्रणाम है। मैं तुम्हें स्पर्श करने में भी समर्थ नहीं हूँ। मैं यह जाती हूँ।'—इस प्रकार कह कर चली जाती है। यहाँ क्रोधपूर्ण वचन होने से गर्भ सन्धि का तोटक अंग माना जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रानी के कुपित होने पर राजा रानी के प्रति नम्रता का व्यवहार करता है और मृदु वचन कहता है कि 'मैंने तुम्हारे सामने ही अपराध किया है, तब केवल दाक्षिण्य ही मेरा शरण है। मैं तुम्हारे चरण स्पर्श में भी संकोच का अनुभव करता हुआ दूर से पृथ्वी तल का स्पर्श करता हूँ।' इस तरह तोटक के विपरीत नम्रता के होने से यहाँ गर्भ सन्धि का अधिबल नामक अंग है।

सुभद्रा की चेटी मंजरिका के कथन से जब यह समझ में आता है कि मेरे भाई ने मुझे राजा भरत को देने का निश्चय किया है और ये राजा भरत मेरे प्रेमी से भिन्न व्यक्ति है, तब वह अपने आप यह कह उठती है कि 'हे कठोर हृदय, अब निःशंक होकर नष्ट हो जाओ।' इस कथन से सुभद्रा के त्रास तथा शंका की व्यंजना होती है। अतएव यह गर्भ सन्धि का संभ्रम नामक अंग है।

विमर्श सन्धि—नाटिका चार अंकों की होती है। संक्षिप्तता के कारण उसमें विमर्श सन्धि के विकास का अवसर नहीं रहता है। नाटिका में विमर्श सन्धि अल्प रूप में पायी जाती है।

चतुर्थ अंक में राजा मदनावस्था में विमर्श कर रहा है कि नमि मेरे लिए अपनी बहिन सुभद्रा प्रदान करेंगे, इससे चित्त में शान्ति प्राप्त हुई है; किन्तु कामदेव मुहूर्त भर का विलम्ब भी सहन नहीं कर रहा है। दूसरी ओर रानी वैलाती के सम्बन्ध में भी विमर्श कर रहे हैं कि प्रारम्भ में रानी को तर्क-संगत उत्तर देकर कनिष्ठा के प्रति प्रेम व्यापार निश्चित होकर किया, बाद में रानी के हृदय में कालुष्य पैदा करने वाला कार्य करके उसके चित्त को क्रोधयुक्त बना दिया है, जिससे यह नहीं समझ पड़ता कि क्या करें? इस प्रकार यहाँ अवमर्श नामक सन्धि है। इस सन्धि के केवल दो तीन अंग इसमें प्राप्त होते हैं।

चतुर्थ अंक के आरम्भ में कंचुकी आकर सेवा की पराधीनता के कारण सेवा को हेय मानता है, किन्तु सेव्य के गुणों की उत्कृष्टता की प्रशंसा के प्रसंग में गुरुओं का कीर्तन कर रहा है। अतः वहाँ प्रसंग नाम का विमर्श सन्धि का अंग है।

विदूषक राजा को रानी वैलाती के प्रसन्न होने का समाचार सुनाता हुआ यह भी कह रहा है कि विद्याधरराज नमि ने रानी वैलाती के पास संदेश भेजा है कि सिद्धों ने बताया था कि सुभद्रा चक्रवर्ती राजा की पट्टरानी होगी, उसी सम्बन्ध को करने के हेतु सेनापति ने हमें बुलाया है। इस प्रकार सिद्धों द्वारा बताये गये भविष्य की सूचना होने से इसे विमर्श सन्धि का प्ररोचना नामक अंग समझना चाहिए।

निर्वहण सन्धि—राजा को विदूषक द्वारा रानी वैलाती के प्रसन्न होने की सूचना देने के बाद से निर्वहण सन्धि आरंभ होती है और नाटक के अन्त तक चलती है। सुभद्रा को देवी वैलाती के पास पहुँचा दिया गया है। कन्यादान का जल छोड़ने वाले विद्याधर राजा नमि भी उपस्थित हो गये हैं तथा रानी भी प्रसन्न हो गयी, इस प्रकार मुख्य कार्य भरत सुभद्रा मिलन के हेतु रूप बीज जो इधर उधर थे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे सब कार्य-सिद्धि के लिए एकत्र हो गये हैं। इसलिए यहां निर्वहण सन्धि की योजना है। विदूषक के इस कथन से भी इसकी पुष्टि होती है कि सब कुछ तैयार है, इस समय निर्वहण में महाराज नमि के आगमन की प्रतीक्षा की जा रही है।[1]

नमि बहिन का दान करने के बाद कहते हैं कि तुम्हारा पुनः क्या प्रिय उपहार भेंट करें?—इस तरह काव्यार्थ का उपसंहार करने से यहां काव्य संहार नामका अंग है।

राजा उत्तर में कहते हैं,—यह तुम्हारी अनुजा जो उत्तम रत्न है, वह मुझे प्राप्त हुई तथा रानी वैलाती भी अपनी छोटी बहन को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हैं। इससे अधिक और क्या उपहार हो सकता है? तो भी यह हो कि पृथिवी निर्भय होकर सुख प्राप्त करे, सज्जनों के गुणों में स्वाभाविक प्रेम हो, धनी लोग सुपात्र में दान दें तथा जिन शासन का कल्याण हो। इस तरह शुभाशंसा द्वारा यहां निर्वहण सन्धि के प्रशस्ति नामके अंग की योजना है।

यद्यपि सन्ध्यंगों की प्रतिष्ठा नाटक नाटिका के उत्तम होने की कसौटी नहीं है तथा ये सन्धियों के अंग अनिवार्य भी नहीं माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य नाटकों की भांति इसमें भी इनका व्युत्क्रम देखा जाता है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इस नाटिका में भी नाट्य सन्धियों में अधिकांश की योजना कवि ने की है।

पताका स्थानक—किसी घटना की सूचना जहां तुल्य इतिवृत्त या तुल्य विशेषणों से दी जाती है, वह पताका स्थानक कहलाता है। सुभद्रा नाटिका में भी पताका स्थानकों का प्रयोग कवि ने किया है।

प्रस्तावना में सूत्रधार ने भारतीवृत्ति के अंग प्ररोचना में समान विशेषणों तथा समान कार्यों के द्वारा इस बात की सूचना दी है कि सुकुमार भावों से रम्य, असाधारण कान्ति को धारण करने वाली सुभद्रा (नाटिका, नायिका) भरत (अभिनयकर्त्ता, चक्रवर्ती राजा) के उत्कण्ठित चित्त को हरण कर रही है। इस प्रकार नाटिका के समान विशेषणों द्वारा सुभद्रा नायिका द्वारा भरत के चित्ताकर्षण की व्यंजना की गयी है।[2]

समान कार्य के द्वारा भी यह सूचना कई स्थानों पर हस्तिमल्ल ने देकर दूसरे प्रकार के पताका स्थानक की भी योजना की है। हिमवन् पर्वत के कटक से आने वाली गंगा को, तरंग रूपी भुजाओं को प्रसारित करता हुआ समुद्र आदर से आलिंगित करता है। इसमें भी विजयार्ध पर्वत से आने वाली सुभद्रा के चक्रवर्ती राजा द्वारा आलिंगन किये जाने की सूचना है।[3]

---

१. गद्य खण्ड, पृ० ८४, सुभद्रा
२. सुभद्रा २।३
३. क्षोणीभृतो हिमवतः कटकादुपेतां
दूरं प्रसारिततरंगभुजः स्खलन्तीम्
उच्छ्वास विद्रुमलतांशुकमेत्य गंगां
आलिंगतीव सरितां पतिरादरेण। (३।६—सुभद्रा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तमिस्रागुहा पर देखी गयी दो नदियाँ हैं, जिनमें एक का जल ऊपर को उछलता है, दूसरी का जल नीचे को जाता है। यहाँ उपमा द्वारा नवीन नायिका से सुभद्रा और परा नायिका से रानी वैलाती की व्यंजना करायी गयी है। एक के कारण राजा भरत का मन उत्कण्ठित होता है और दूसरी के द्वारा बाधा आने से मन चिन्ता से संकुचित होता है।[1]

दूसरे अंक में सुभद्रा और मन्दारिका का बालाशोक तथा मालतीलता के उद्भेद के सम्बन्ध में जो कथोपकथन है, उसमें भी अर्थान्तर का बोध होता है। यहाँ तुल्य कार्य तो है ही, कहीं-कहीं तुल्य विशेषण भी हैं।

सुभद्रा—सखि किमिदानीं स बालाशोको मुकुलोद्भेदनिपतितरागो भविष्यति।

मन्दारिका—प्रिय सखि सर्वथा तवेदानीं दर्शयिष्यति स रागम् येन उद्वाह संपत्ति-रचिराद्भविष्यति।

सुभद्रा—किं युष्मदीयाऽपि सा मालतीलता मुकुलोद्भेदपाण्डुरिता भविष्यति। यत उद्वाहविधेरविलम्बं कथयसि।

मन्दारिका—अस्मदीयाऽपि प्रत्यग्रदर्शित पाण्डिमरमणीया—
अपूर्वसमागमद्विगुणः शोभा संफुल्लति एतस्य स्कन्धेऽचिराल्लगत्येव।

सुभद्रा—सखि कियद् दूरे स बालाशोकः यदि प्रत्यासन्नो भवेत् सखिजनमन-प्रेक्ष्य तमुपसर्पावः

मन्दारिका—इतः प्रत्यासन्न एव स तव लोचने सुखयिष्यति यत्र त्वया गुरुर्दर्शितोऽनुरागः।

यहाँ बालाशोक के वर्णन से राजा भरत की समीपता तथा लोचनों को दर्शन द्वारा सुख देने की बात की सूचना है। राग शब्द भी लालिमा और अनुराग, दोनों का वाचक है। तृतीय अंक में मन्दारिका मालतीलता रूपी कन्या का दान बालाशोक के लिए करती है; इसमें भी भविष्य में राजा के लिए दी जाने वाली सुभद्रा की सूचना है।

मन्दारिका—अहो पार्थिवराज एषा मे प्रिय सखि तव दत्ता। अहो बालाशोक यथैषा नवलाम्यति यथा च लतांत्तरैः न भेदं नीयते तथैतां संभावय।

यहाँ पार्थिवराज (वृक्षराज तथा चक्रवर्ती राजा) दोनों का वाचक है तथा दूसरे वाक्य से यह सूचना दी गयी है कि यह सुभद्रा अन्य नायिकाओं से भेद को प्राप्त न हो। इस प्रकार इसे पटरानी बनाने की सूचना है।

इस तरह हस्तिमल्ल ने पताका स्थानकों द्वारा भावी घटनाओं की सूचना देने की भी योजना की है।

---

१. सुभद्रा—५।१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नान्दी पाठ—नान्दी में कवि ने आशीर्वादात्मक मंगलाचरण किया है, जिसमें भगवान ऋषभनाथ से (लेखक, पाठक, अभिनेता, दर्शक) सभी के कल्याण की, पुष्टि की प्रार्थना की गयी है। नान्दी में काव्यार्थ की सूचना करना चाहिए, ऐसी मान्यता को ध्यान में रखें तो कृतीवृषभ से नाटिका के नायक कृती भरत का, सिद्धि श्री से सुभद्रा का, त्रिजग के पद से आर्य खण्ड के मनुष्यों, म्लेच्छ खण्ड के म्लेच्छों और विजयार्थ के निवासी विद्याधरों का बोध मान कर चक्रवर्ती पद को स्वीकार किया, ऐसा मानना चाहिए।

आमुख—प्रस्तावना में सूत्रधार ने अपनी सहायिका नटी के साथ प्रवेश किया है। प्रस्तावना में भारती वृत्ति के अंग आमुख द्वारा वस्तु, पात्र दोनों की सूचना दी है। श्लेष के द्वारा ऐसी सूचना होने से इसे मुख सूचना भी कहा जा सकता है। इस छन्द के पहले नटी ने सूत्रधार से प्रश्न किया था कि तुम्हें हस्तिमल्ल की कृति नाटिका सुभद्रा ही क्यों अच्छी लगती है ? इसके उत्तर में सूत्रधार ने—

सुकुमारभावरम्या कान्तिमसाधारणीमसौ दधती
आवर्जयति सुभद्रा भरतस्य समुत्सुकं चेतः।—२।३

इस आर्या छन्द का प्रयोग किया है। इसमें कृति नाटिका की प्रशंसा होने से दर्शकों को उन्मुख होने की प्रेरणा भी मिलती है। अतएव इसमें भारती वृत्ति के प्ररोचना अंग की भी योजना की गयी है।

इस प्रकार कवि हस्तिमल्ल ने नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार वस्तु योजना सुभद्रा नाटिका में की है।

पात्रों का शीलनिरूपण

नाटकों में कथावस्तु के पश्चात् जो नाटक-रचना के लिए अनिवार्य तत्व है, वह है पात्र। वस्तु के समान पात्र भी दृश्यकाव्य के उपादान कारण हैं। पात्रों का रूपक के सौंदर्य में महत्त्वपूर्ण स्थान होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि चलचित्र जगत में दर्शक लोग जितनी जानकारी कथा-निर्माता के सम्बन्ध में नहीं प्राप्त करते हैं, उससे अधिक जानकारी उस चलचित्र के अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों के सम्बन्ध में प्राप्त करते हैं। योग्य अभिनेता के कारण उदात्त गुण से हीन वस्तु भी सरस प्रतीत होने लगती है। यही कारण है कि लोग किसी साहित्यकार के आगमन पर उसके दर्शनार्थ नहीं पहुँचते हैं, किन्तु यदि चलचित्र जगत का कोई ख्याति-प्राप्त या योग्य अभिनेता अथवा अभिनेत्री किसी नगर में पहुँचते हैं तो उनके देखने के लिए संमर्द-जनक समुदाय एकत्रित हो जाता है। योग्य अभिनेता के गुणों के अनुसार गुणवान पात्र ही नाटक के शोभाधायक होते हैं।

संस्कृत के नाट्यशास्त्रियों के अनुसार चार प्रकार के नायकों में से नाटिका का नायक श्रृंगार रस के पोषण के लिए धीरललित प्रकृति के अनुरूप चित्रित किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है। जो नायक सचिव आदि पर राज्य का कार्य का दायित्व छोड़कर निश्चिन्त, कलाप्रिय, सुखी और मृदु होता है, वह धीर ललित कहलाता है।[१]

राजा भरत नवनिधियों[२] के स्वामी हैं। अतएव उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।[३] दूसरे अंक में विदूषक की उक्ति से ज्ञात होता है कि राजा ने अपना राज्य कार्य का चिन्तन अपने मित्र (विदूषक) कात्यायिन को सौंप दिया है[४] तथा दिग्विजय यात्रा में भी विजय सम्बन्धी कार्य की चिन्ता राजा को नहीं, बल्कि उसके सेनापति अयोध्य को करनी पड़ती है। चतुर्थ अंक के श्लोक ४ के अनुसार दिग्विजय यात्रा में भरतक्षेत्र के चार खण्डों की विजय सेनापति द्वारा की गयी है।[५] भरत ने यद्यपि उसके पूर्व दो खण्ड की विजय कर ली थी, किन्तु वह विजय नायक नायिका के परस्पर दर्शन के पूर्व की है। प्रथम अंक में देवी वैलाती राजा से कहती है—दूसरे कार्य में व्यस्त आपको कैसे बुलाया जाता ? तब राजा के उत्तर से ज्ञात होता है कि प्रतिपक्षी राजाओं के अभाव में युद्ध नहीं करना है तथा सभी प्रजाएं रक्षित हैं। इससे राजा की निश्चिन्तता व्यंग्य है।

राजा भरत निश्चिन्त हैं। अतएव कला ज्ञान के लिए उन्हें अनुकूल वातावरण मिलना स्वाभाविक है। दिग्विजय यात्रा तो उनकी दृष्टि में केवल बहाना है। विभिन्न स्थानों के सौन्दर्य का दर्शन ही राजा की दृष्टि में मुख्य है।[६] राजा भरत ने नाना देशों के भ्रमण से दर्शनीय देश प्राप्त किये हैं, कलाओं सहित (या समस्त) अन्यान्य भाषाएं सम्यक् रीति से सीखी हैं। पुरुषों के तत्तत देश के अभ्यस्त परिकर्म तथा विभिन्न देशों की स्त्रियों का अनुवर्तन करना भी जान लिया है।[७] राजा मानिनी नायिका को मनाने की कला में भी विदग्ध है।[८] इसके साथ ही जब प्रथम अंक में प्रथम दर्शन के अवसर पर लज्जावश सुभद्रा सखीजन के अन्वेषणार्थ जाने के लिए कहती है, तब राजा यह भी कहते हैं कि मुझमें तुम्हारे चरणों की थकान होने पर संवाहन के कार्य का नैपुण्य भी प्राप्त है।[९] द्वितीय अंक में सुभद्रा के प्रथम दर्शन के पश्चात् उसके पुनः दर्शन के लिए उत्कण्ठित राजा सुभद्रा का चित्र बना कर विनोद प्राप्त करने का प्रयत्न करता है; चित्र भी साधारण श्रेणी का नहीं है, बल्कि चित्रलिखित सुभद्रा ऐसी प्रतीत होती है, जैसे वह वहां स्वयं उपस्थित हो गयी है।[१०]

---

१. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः। (दशरूपक—२।३)
२. (१) काल, (२) महाकाल, (३) माणवक, (४) पिंगल, (५) नैसर्प, (६) पद्म, (७) पांडुक, (८) शंख, (९) सर्व रत्न। (त्रिकालवर्ती महापुरुष, पृष्ठ १८२)
३. सुभद्रा—अंक ३।२६ श्लोक
४. सुभद्रा, पृष्ठ २३
५. पृ० ७४।४ तथा ७८।१७—सुभद्रा
६. द्रष्टव्यम् ननु दृष्टमेव सकलं दिग्जैवयात्राछलात् (पृ० ४—सुभद्रा)
७. सुभद्रा अंक १—४
८. पृ० १३।३०—सुभद्रा
९. सुभद्रा—१।३३ तव चरणयोः श्रान्तौ संवाहनेषु विदग्धता
१०. सुभद्रा—२८ अहो दर्शनीयता आलेख्यस्य अहं पुनः समर्थये स्वयमेवेहागतेति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी अंक में विदूषक एक बार पुनः कहता है कि यह चित्रकला की उत्कृष्ट सीमा है।[1] इस प्रकार राजा कलाप्रिय भी है। धीरललित नायक सुखी भोगपरायण होता है। हम राजा को नाटिका के प्रारंभ से ही भ्रमणसौख्य प्राप्त करता हुआ पाते हैं। राजा को सभी सुख तथा भोगों की सामग्री प्राप्त है, इसकी व्यंजना राजा के कथन से स्वयं प्रतीत होती है कि सुभद्रा के बिना षट् खण्ड का राज्य, आयु का यौवन व्यर्थ है। राजा के पास अन्तःपुर में ऐसी सुन्दरियां हैं, जिन्होंने अपने सौन्दर्य से देवियों के सौन्दर्य को भी जीत लिया है, फिर भी राजा भोग के सम्बन्ध में तृप्त नहीं है।[2] तृतीय अंक में वैतालिकों के नेपथ्य कथन से विदित होता है कि यह राजा भरत जलधिपर्यन्त पृथ्वी का भोग करने वाला था।[3] अतएव राजा भरत सुखी ही नहीं, पूर्ण सुखी होने से भोग-प्रवण भी था। भोगों के कारण ही उन्होंने तत्तत् देश की स्त्रियों का अनुवर्तन सीखा था। पुराणों के अनुसार तो इनके ९६,००० रानियाँ थीं।[4]

श्रृंगार रस की प्रधानता के अनुकूल राजा भरत का मृदु या सुकुमार स्वभाव नाटिका के अनेक स्थानों पर अभिव्यंजित है। दिग्विजय यात्रा प्रसंग में भरत को प्रकृति के दृश्यों में अपने सुकुमार तथा सुहृदय स्वभाव के कारण नायक नायिका का रूप दिखाई देता है। समुद्र (नायक) गंगा (नायिका) का आलिंगन करता हुआ दिखाई देता है।[5] दक्षिणा पथ में भी समुद्र ताम्रपर्णी का आलिंगन करता हुआ दिखाई देता है।[6] वायु संभोगियों के रतिश्रम को हरण करती है तो वियोगियों को मूर्च्छा प्रदान करती हुई समझ में आ रही है।[7] उन्मग्नजला नदी जल को ऊपर की ओर उछालती है, जिस तरह नवागत प्रिया युवक के मन को उत्कण्ठित करती है।[8] राजा के हृदय की मृदुता का परिचायक उसका निम्न कथन है कि हे नितम्बिनि, कर्कश अशोक वृक्ष के स्कन्ध पर ताडन के लिए रखा गया प्रवाल की तरह सुकुमार तुम्हारा चरण कुशल तो है ?[9] वैलाती जब राजा के पास वेदीवन

---

१. ३५ एषा वेलादृश्यते आलेख्य विज्ञानस्य।
२. पृ० २३
३. जलधि वसनामेनां भुजन्नसौ भरतावनीं, जयति भरतः श्रीमानिक्ष्वाकुवंशशिखामणिः (७०।२५—सुभद्रा)
४. त्रिकालवर्ती महापुरुष (पृ० १८६)
५. क्षोणीभृतो हिमवतः कटकादुपेतां
दूरं प्रसारिततरंगभुजः स्खलन्तीम्।
उच्छ्वासि विद्रुमलतांशुकमेत्य गंगाम्
आलिंगतीव सरितां पतिरादरेण ॥ (सुभद्रा—३।६)
६. पर्यन्तपर्यस्ततरंगभंगस्तनांशुकामाकुलमीननेत्राम्।
अम्भोधिरालिंगति ताम्रपर्णी संमर्दविच्छिन्नविकीर्णमुक्ताम् ॥ (४।७—सुभद्रा)
७. वहन्ननंगस्य पुरःसरोऽसौऽमन्दो मरुच्चन्दनगन्धसान्द्रः
रतिश्रमं हन्ति समागतानां ददाति मूर्च्छामसमागतानाम् (४।८—सुभद्रा)
८. पृ० ५।१०—सुभद्रा
९. कर्कशे पादपस्कन्धे निहितस्य नितम्बिनी।
प्रवालसुकुमारस्य कुशलं चरणस्य ते ॥ (१४।३१—सुभद्रा)

१४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में पहुँचती है, तब राजा का कथन है कि सुतनु स्वयं आकर अपने सुकुमार शरीर को क्यों कष्ट पहुँचाया, इस (मुझ) व्यक्ति को किसी सेवक के द्वारा क्यों न बुलवा लिया ?[1] राजा का मन इतना सुकुमार है कि कामदेव को सुभद्रा द्वारा राजा के मन पर प्रहार करने के लिए राजा को सुभद्रा का बार-बार दर्शन अपेक्षित नहीं है। राजा को प्रिया का दर्शन यदि स्वप्न में भी प्राप्त हो जाता है, तो क्षणदा (उत्सव देने वाली होकर) रात्रि क्षण भर में ही बीत जाती है ; किन्तु यदि स्वप्न में भी प्रिया दुर्लभ हो गयी, तब त्रियामा (रात्रि) भी सहस्रयामा, हजार पहरों वाली हो जायगी अर्थात् दुष्कर हो जायगी।[2] राजा अपनी मृदुता के कारण ज्येष्ठा से इतना भयभीत है कि अपनी नवीन उद्दण्डता के कारण देवि वैलाती के चरण को स्पर्श भी करने में भयभीत होकर केवल शिर से महीतल का स्पर्श करता है और उसमें दृष्टि भी ऊपर नहीं उठाता है। विदूषक के यह कहने पर उठता है कि क्या अब आकाश (शून्य) में प्रणाम कर रहे हो ?[3]

इस प्रकार राजा भरत में शृंगारी नायक धीरललित के निश्चिन्तता, कला-परायणता, भोगप्रवणता तथा सुकुमार भाव आदि सभी गुण पाये जाते हैं।

नायक के सामान्य गुण भी भरत में दशरूपक के अनुसार प्राप्त होते हैं। नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोगों का रंजक, पवित्र मन वाला, बातचीत में कुशल, कुलीन वंशोत्पन्न, मन आदि से स्थिर, युवावस्था सम्पन्न, बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त होता है। शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक भी होता है।[4] सुभद्रा नाटिका के नायक राजा भरत चराचर के गुरू आदिनाथ तथा यशस्वती माता[5] के पुत्र हैं। नवनिधियों के स्वामी हैं। अन्तिम मनु हैं तथा चक्रायुध सम्पन्न हैं।[6] किन्नर स्त्रियाँ राजा भरत के गुणों का गान करती रहती हैं। गुण-सम्पन्न होने के सम्बन्ध में किन्नरयुगल के गीत से विदित होता है कि इन्द्र भी राजा के गुणगान में आसक्त था। वे राजा समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का उपभोग करते थे।[7] राजा भरत ने वर्ण और आश्रम के सम्बन्ध में सर्व-प्रथम उपदेश दिया है। इतना ही नहीं, वे चरमदेहधारी अर्थात् उसी भव से मोक्ष जाने वाले हैं। वे भरतक्षेत्र के छहों खण्डों पर विजय पाने वाले चक्रवर्ती सम्राट

---

१. स्वयमागमनेन तनुः सुकुमारा किमिति खेदिता सुतनु
ननु नाहूतः कस्मादयं जनः परिजनमुखेन (१८।३६—सुभद्रा)

२. स्वप्नेऽपि दृश्येत यदि प्रियासौ क्षणेन तुल्या क्षणदापि याति ।
स्वप्नेऽपि मे सम्प्रति दुर्लभा चेत् सहस्रयामा भवति त्रियामा ॥ (४५।३६—सुभद्रा)

३. पृ० ६५।१९—सुभद्रा

४. दशरूपक—३।१२

५. सुभद्रा, पृ० ८५

६. वृषभतनयः पूर्वश्चक्रायुधश्चरमो मनुर्नवनिधिपतिः पायात् पृथ्वीं चिरं भरतेश्वरः ।
(७१।२६—सुभद्रा)

७. पृ० ७०।२५—सुभद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं।[1] इनके छोटे भाई वृषभसेन भगवान आदिनाथ के अनेक गणधरों में से एक थे तथा इनके समान शौर्य-सम्पन्न १०० भाई थे। इनका यश तीनों लोकों में विख्यात था।[2]

नायक में जो सामान्य गुण बताये गये हैं, वे सभी गुण भरत में पाये जाने के संकेत सुभद्रा नाटिका में प्राप्त हैं। धीरललित नायक वैसे भी नम्र प्रकृति का होता है। उसके मधुर या प्रियदर्शन होने के कारण ही सुभद्रा विद्याधर कन्या राजा को देखकर सहसा चकित रह जाती है। सुभद्रा की सहेली मन्दारिका भी कहती है कि साधारण मनुष्य को सरलता से अप्राप्य रूपसौन्दर्य से इस संसार को सुशोभित करने वाले ये कौन हैं ?[3] राजा भरत त्यागी हैं। चतुर्थ अंक में तार्क्ष्यदत्त नामक दूत जब विद्याधरों के साथ उपहार लेकर आने वाले विद्याधरराज नमि का समाचार सुनाता है, तब उसे स्वर्णभार देने का आदेश देते हैं।[4] राजा के दक्ष (क्षिप्रकारी) होने की व्यंजना राजा के अनंगपत्र पठन से होती है। सुभद्रा द्वारा आलिखित प्रेमपत्र के सम्बन्ध में विदूषक राजा से कहता है कि तुम ही पढ़ो, तब राजा बड़ी शीघ्रता से पढ़कर भांप जाता है कि यह पत्र प्रिया द्वारा लिखित है। राजा की क्षिप्रकारिता देखकर विदूषक कहता है कि आप का कैसा महान नैपुण्य है कि पलभर देखने मात्र से सभी अक्षर आपके मुख में आ गये, जबकि बहुत समय तक देखने पर भी मेरी जीभ हिली-डुली तक नहीं।[5]

धीरललित नायक शृंगारी होता है। अतएव उसमें प्रियवादिता स्वाभाविक होती है। सुभद्रा जब राजा को देखकर लज्जावश सखिजन के अन्वेषण के लिए जाने का बहाना लेती है, तब राजा कह उठते हैं,—सुन्दरि, सखित्व साप्तपदीन होता है। क्या मेरे सम्बन्ध में पर्याप्त सखित्व नहीं ?[6] मैं निरन्तर तुम्हारी सेवा कर सकता हूं। तुम्हारे चरणों के थक जाने पर संवाहन की योग्यता है। तुम्हारी श्लाघ्य आज्ञा सिर पर धारण करता हूं। मुझे भी नवीन सखित्व प्रदान करो। मैं यह अंजलि बांधता हूं।[7] इसी प्रकार देवी वैलाती से भी उसके वेदीवन में पहुंचने पर राजा कहते हैं—हे

---

१. श्रोता पुराणपुरुषाद् बहुशः श्रुतीनां वर्णाश्रमस्थितिषु तत्प्रथमोपदेष्टा।
साक्षाच्चराचरगुरोर्वृषभस्य सूनुरन्त्यो मनुश्चरमदेहधरः स्वयं च॥
(७।१३—सुभद्रा)

२. यस्यानुजो भगवतो गणनायकोऽभूत सुभ्रातरश्च शतमात्मसमानवीर्याः।
आज्ञा सुरैरपि शिरोभिरुपासनीया कीर्तिः प्रसर्पति गुणाभिरतां त्रिलोकीम्॥
(८।२८—सुभद्रा)

३. मन्दारिका (सविस्मयं) क एषो साधारणमनुष्यसुलभेन
रूपसौभाग्येन इमं लोकमलंकरोति॥ (पृ० १४–सुभद्रा)

४. पृ० ७९—राजा—जित्वरिके दीयतामस्मै स्वर्णभार इति कोशाध्यक्षं ब्रूहि।

५. पृ० ६७—अहो अत्र भवतो मेधावित्वं येन क्षणदर्शनात् पत्रगतान्यक्षराणि मुखे संक्रमितानि, मम पुनः सुचिरं पश्यतो जिह्वाऽपि न परिस्पन्दिता।

६. पृ० १५ राजा—सुन्दरि साप्तपदीनं सख्यं नाम, तत् किमस्मासु न पर्याप्तं सख्यं।

७. पृ० १५।३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुतनु, स्वयं आकर अपने सुकुमार शरीर को क्यों कष्ट पहुंचाया ? मुझे किसी परिजन द्वारा क्यों न बुलवा लिया ? इस प्रकार भरत की प्रियवादिता अनेक स्थलों पर व्यक्त की गयी है। राजा भरत के व्यवहार का चित्रण हस्तिमल्ल ने इस प्रकार किया है, जिससे व्यक्त होता है कि लोग राजा भरत के प्रति अनुरक्त थे। प्रथम अंक में देवी वैलाती से राजा ने कहा था कि सभी प्रजाजन सुरक्षित हैं। इससे यही व्यंजना हुई कि प्रजाजन में असन्तोष न होने से किसी कार्यान्तर की उकताहट नहीं है।[1] चतुर्थ अंक में यद्यपि कंचुकी सेवावृत्ति को तुच्छ समझता है, किन्तु राजा के सद्व्यवहार के कारण राजा के प्रति अनुरक्त है। अतएव कहता है कि यद्यपि यह सेवावृत्ति रमणीय नहीं है, किन्तु सेव्य राजा भरत के गुणों के उत्कर्ष के कारण मेरा पुरुषार्थ व्यर्थ नहीं है।[2] राजा नमि के कथन से भी यह ज्ञात होता है कि त्रिलोक के प्राणी राजा भरत के गुणों में अनुरक्त हैं तथा भरत की कीर्ति त्रिभुवन में प्रसारित हो रही है।[3] राजा भरत के शुचित्व के प्रमाण में यही कहा जा सकता है कि उनके मन में शुभ भावनाएं निहित हैं। भरत वाक्य में वे पृथिवी के निर्भय सुख की कामना करते हैं। राजा भरत जैसा प्रियंवद है, वैसा वाग्मी भी है। सुभद्रा के प्रति पारस्परिक कथन का श्रीगणेश करने के लिए राजा कहता है कि कर्कश अशोक के स्कन्ध पर निहित तुम्हारे प्रवाल की तरह सुकुमार चरण की कुशलता तो है ? और हे वाभोरू, तुम्हारे चरण-कमल से अर्चित इस वृक्ष में अशोकता (शोकाभाव, अशोक संज्ञा) उचित है, किन्तु तुम्हारे चरणस्पर्श के सौभाग्य के पूर्व इस वृक्ष की अशोकता चिन्तनीय है।[4] इस कथन को सुनकर सुभद्रा भी आत्मगत राजा के संभाषण की कुशलता की सराहना करती है।[5]

नायक भरत के प्रख्यातत्व के सम्बन्ध में जैसा कि ज्ञात हो चुका है ये आदिनाथ के पुत्र होने से प्रख्यात कुल के हैं। नैपथ्य में किन्नर मिथुन के गीत में भी कहा गया है कि लक्ष्मी-सम्पन्न इक्ष्वाकुवंश के शिरोमणि राजा भरत की जय हो। इस प्रकार राजा भरत का प्रख्यात वंश होना सिद्ध है।[6]

स्थिरता भी नायक के सामान्य गुणों में से एक है। विदूषक की उक्ति से ज्ञात होता है कि राजा भरत का हृदय कुलपर्वत से भी अधिक स्थिर है, यद्यपि उस कन्या सुभद्रा के द्वारा राजा का हृदय विचलित कर दिया गया है।[7] राजा के सेनापति ने भी तार्क्ष्यदत्त के द्वारा महाराज नमि के पास समाचार भेजा था कि जिस

---

१. राजा—रक्षिताश्च प्रजाःसर्वाः कस्मिन् कार्यान्तरे त्वरा। (१९।३७)
२. पृष्ठ ७४—ममासौ (सेवा) प्रकृत्यरमणांयाऽपि सेव्यगुणोत्कर्षन्न जातु पुरुषार्थव्यपायः
३. कीर्तिः प्रसर्पति गुणाभिरतां त्रिलोकीम्। (८५।२८)
४. अनेन तावच्चरणाम्बुजेन कामेन वाभोरु तवार्चितस्य
युक्ता तरोः काममशोकतैव शोच्या तु सा प्रागपि तस्य रूढा। (१४।३२)
५. सुभद्रा—अहो संभाषणेऽपि कौशलम्। (पृ० १५)
६. पृ० ७०।२५
७. अद्भुतचरिता सा कन्यका यया सागरादपि गभीरं कुलाचलादपि स्थिरं सर्वस्माद् व्यावृत्य संचालितं च तत्र भवतो हृदयम्। (पृ० २३—सुभद्रा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरत ने समुद्र को गंभीरता गुण से, हिमाचल को स्थैर्य गुण से जीत लिया था, उन लवणसमुद्र तथा हिमवान पर्वत का बाण के द्वारा जीतना पुनरुक्त-सा है।[1] इस प्रकार भरत स्थिर प्रकृति के चित्रित हुए हैं।

नायक युवावस्था का होना चाहिए, शृंगार रस के नाटक तथा नाटिका में तो नायक का युवा होना अत्यन्त अनिवार्य है। राजा भरत भी यौवन-सम्पन्न हैं, इसका रूप राजा के स्वगत-कथन से ज्ञात होता है, जबकि राजा ने सुभद्रा के प्रथम दर्शन किये थे। राजा सोचता है कि यदि यह कन्यारत्न हृदय को सुशोभित न करे तो आयु का तारुण्य व्यर्थ है और करुणा का पात्र है।[2] राजा की समस्त चेष्टाएं यौवन-सम्पन्नता सूचित करती हैं, क्योंकि उसके द्वारा प्रकृति का जो भी वर्णन प्रथम अंक के आरम्भ में हुआ है, सभी में नायक नायिका वृत्तान्त की ध्वनि निकलती है।

नायक में बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला, मान आदि गुणों का सहभाव विभिन्न स्थलों पर दिखाई देता है। नायक में बुद्धि और प्रज्ञा-सम्पन्नता का प्रमाण यह है कि प्रथम अंक में ही जब सुभद्रा के लाक्षारंजित चरण को अशोक स्कन्ध पर देखता है, तभी अनुमान कर लेता है कि यह चरण किसी सुन्दरी द्वारा अशोक-ताड़न के प्रयत्न का सूचक है तथा राजा यह भी विशेष रूप से परोक्ष में अनुमान लगा लेता है कि वह सुन्दरी यहां प्रकृष्ट छाया वाले आम्र के वृक्ष के नीचे लकटती हुई शाखा का अवलम्बन लेकर विश्राम के हेतु मुहूर्त भर खड़ी रही है, क्योंकि जघन भार की थकान से दीर्घ निश्वास वाली उस सुभद्रा के थकान दूर करने के सूचक दोनों चरण हैं, जिनमें एक तो पृथिवी पर स्थिरता से रख दिया गया था, जिसमें लाक्षारस अधिक सघन था तथा दूसरा पैर जिसमें लाक्षारस अल्प था, वहीं प्रथम पैर के बगल रखा हुआ था। विश्राम में प्रायः ऐसा होता है कि एक पैर जमीन पर ढीला तथा एक स्थिर रख लेते हैं। आम्र के विभिन्न वर्ण के पल्लव को देखकर भी राजा अनुमान लगा लेते हैं कि पसीने के पोंछने से जहां पसीना पत्ते में लग गया है तथा जहां पत्ता पोंछते समय कुचल-सा गया है, वहां दूसरा रंग है तथा अन्यत्र भाग में दूसरा रंग है। इसके द्वारा कपोल के पसीने के पोंछने का अनुमान भी लगा लेते हैं।[3]

चतुर्थ अंक में राजा कंचुकी के द्वारा सेनापति अयोध्य को बुलवाते हैं तथा आने पर आदर के साथ बैठाते हैं और इसके पश्चात् कहते हैं, आर्य उत्तरार्ध को जीत लिया और दक्षिणार्ध के प्रति विलम्ब कैसा ? इससे प्रतीत होता है कि राजा को दिग्विजय आदि के सम्बन्ध में उत्साह बना हुआ है।[4] द्वितीय अंक में सुभद्रा का दर्शनीय चित्र बनाने के पश्चात् उन्हें बराबर यह स्मरण आ जाता है कि कल सुभद्रा की सखी ने

१. गाम्भीर्येणैव जलधिः स्थैर्येणैव हिमाचलः
जितावेव शरेणाऽपि पुनरुक्तमुभौ जितौ ॥ (७७।१६—सुभद्रा)

२. तारुण्यं वयसश्च निष्फलतया कारुण्यमेवार्हति। (१३।३०)

३. पृ० १०।२५-२६

४. आर्य जितमुत्तरार्धं कुत इदानीं दक्षिणार्धगमनं प्रति विलम्ब्यते। (पृ० ७६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां आने का प्रस्ताव किया था; इसलिए वह सम्भवतः आ जावे और उसके बाद सुभद्रा वहां आ भी जाती है।[1] इससे राजा की स्मृति-सम्पन्नता सूचित होती है। चित्र आलेखन से कला-प्रवणता व्यक्त है। विद्याधरराज नमि के कथन से ज्ञात होता है कि राजा की आज्ञा देव लोग भी अपने शिर पर धारण करते हैं। इससे राजा का मानयुक्त होना सूचित होता है। यहीं चतुर्थ अंक में विद्याधर नमि के कथन से भरत का शौर्यसम्पन्न, दृढ़ तथा तेजस्वी होना अभिव्यंजित है, क्योंकि भरत की प्रतापाग्नि सर्वत्र निर्बाध रूप से दैदीप्यमान है, जिस प्रतापाग्नि के कारण विद्याधर जैसे विद्या-सम्पन्न लोग भी नम्र बना दिये गये हैं। इतना ही क्यों, विद्याधर की विजय तो विशेष महत्त्व नहीं रखती है। राजा भरत ने दिग्विजय के प्रसंग में एक ही वाण छोड़ा, जिससे कि एक ओर हिमवान पर्वत तथा दूसरी ओर लवण समुद्र, ये इस प्रकार क्षण भर में एक ही वाण के दोनों लक्ष्य बनाये गये।[2]

राजा ने पुराणपुरुष आदिनाथ भगवान से अनेक बार श्रुतियों का श्रवण किया है तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में उपदेशदान भी दिया है।[3] इससे राजा शास्त्रचक्षु है, यह प्रमाणित होता है। राजा की धार्मिकता राजा के भरतवाक्य से व्यक्त है, जिसमें जिन शासन के कल्याण की कामना की गयी है।

राजा में इन विशेषताओं के अतिरिक्त क्षमाशीलता है, जो कि नमि के कथन से ज्ञात होती है, क्योंकि नमि ने कहा है कि राजन् प्रमाद के कारण जो अतिक्रम हुआ है, उसे क्षमाधन वाले आप क्षमा करें।[4] राजा के ९६,००० रानियां होना आदि जो बातें आज के मानव के प्रतिकूल हैं, उनका वर्णन नाटिका में नहीं किया है।

श्रृंगारी नायक के, जिसकी एक से अधिक प्रियतमाएँ होती हैं, दशरूपक में तीन भेद किये गये हैं। उनमें से राजा भरत दक्षिण नायक के रूप में सुभद्रा नाटिका में चित्रित किये गये हैं। राजा भरत की उक्ति से प्रथम अंक के आरम्भ में ही ज्ञात हो जाता है कि उन्हें अनेक देशों की स्त्रियों के प्रसादन का ज्ञान है। इस प्रकार भरत अनुकूल नायक तो हैं ही नहीं, क्योंकि अनुकूल नायक तो एक नायिका वाला होता है।[5] यद्यपि राजा भरत एकाध स्थान पर इस प्रकार का व्यवहार करते

---

१. राजा (स्मृत्वा) कृता च तत्सख्या पुनरागमनप्रस्तावना अपि नाम सा प्रत्यागच्छेत्।

२. नमि – अहो लोकोत्तरः प्रभावश्चक्रपाणेः। तथाहि
ज्वलत्यस्य प्रतापाग्निः सर्वत्र विशृंखलः।
आवर्जिता महीपृष्ठे येन विद्याधरा अपि॥ (८४।२६)
अथवा कियानमुष्य क्षुद्रविद्याधरजयः
येनैक एव विशिखश्चतसृष्वपि दिक्षु दिग्जये मुक्तः।
एकत्र तुषाराद्राविततरत्र तु पाथसां पत्यौ॥ (८४।२७)

३. पृ० ७३।३

४. यदैव वृत्तं विजयार्धदर्शनं तदैव दैवं न वयं यदागताः।
प्रमादजातं प्रणयादतिक्रमं क्षमाधनः क्षन्तु ममुं ममार्हसि॥ (८५।३०)

५. अनुकूलस्त्वेकनायिकः। (दशरूपक २।७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिखाई देते हैं, जैसे ज्येष्ठा पत्नी के प्रति गूढ रूप से अप्रियता का व्यवहार कर रहे हों। द्वितीय अंक में जब विदूषक सुभद्रा के आँसुओं के आने का कारण पूछता है, तब उसकी सखी मन्दारिका कहती है कि जिस (वैलाती) के कारण तुम्हारे द्वारा किये गये चित्र-दर्शन में विघ्न उपस्थित हुआ था, उसीके कारण सुभद्रा के आँसू निकल आये हैं। तब राजा कहता है कि मेरी उत्कण्ठा तो एक ही स्थान पर (तुम्हारे प्रति) लगी हुई है, जैसे हजारों अप्सराओं में शचीपतित्व तो एक ही अप्सरा को प्राप्त रहता है[1]। इससे राजा का नवीन नायिका में प्रेमाधिक्य तथा ज्येष्ठा के प्रति सामान्य स्नेह अभिव्यंजित है। तीसरे अंक में विदूषक की उक्ति से भी ज्ञात होता है कि तुम्हारे (सुभद्रा) प्रति राजा का वास्तविक अनुराग है; देवी वैलाती के प्रति तो उनका शिष्टाचार मात्र है, यह मैं जानता हूँ।[2] रानी भी इस बात को छिप कर सुन रही है और अपनी चेटी से कहती है कि वह (विदूषक) राजा के सम्बन्ध में वास्तविकता को समझता है।[3] इस प्रकार गूढ विप्रिय कर्तृत्व राजा में दिखाई देता है, किन्तु राजा भरत सम्पूर्ण नाटिका में दक्षिण नायक के रूप में ही चित्रित हैं तथा उनका चरित निष्कर्ष रूप में पूर्णतया दक्षिण नायक की श्रेणी में है। दशरूपक के अनुसार दक्षिण नायक अपनी ज्येष्ठा पत्नी के प्रति सहृदय होता है।[4] भरत को कनिष्ठा नायिका के प्रेम को प्राप्त करने के लिए यह भी कहना पड़ता है कि मेरा मन तो तुम्हारे प्रति ही संसक्त है, फिर भी उसका व्यवहार ज्येष्ठा के प्रति प्रारम्भ से अन्त तक सहृदयतापूर्ण है। प्रथम अंक में जब देवी आकर अपनी शंका व्यक्त करती हैं कि क्या राजा का अभिलषित सुन्दरी के साथ समागम हुआ है? तब विदूषक शंका का निवारण अपनी कुशलता से कर देता है। फिर भी राजा देवी की ओर से भयभीत हैं, यह उसके कथन से ज्ञात होता है कि हे मानिनि, यदि तुम इस व्यक्ति के अपराधी होने की शंका करती हो, तो मुझे भय होना उचित ही है।[5] द्वितीय अंक में विदूषक जब यह वेला''''''''कह देता है, तभी यह वैलाती समझकर भयभीत हो जाता है। राजा को भयभीत देखकर विदूषक समाधान करता है कि तुम भय मत करो, मैंने तो यह कहा था कि यह वेला (सीमा) है आलेख्य विज्ञान की। जब रानी राजा को उत्सुकतापूर्वक सुभद्रा का चित्रदर्शन करते देखती है और राजा के समीप पहुँच जाती है, तव राजा रानी के समक्ष यही कहता है कि देवि, जैसा तुम समझती हो, वैसा मेरा अपराध नहीं है। तीसरे अंक में देवी वैलाती की चेटी रतिषेणा के कथन से भी ज्ञात होता है कि हे स्वामिनि, वे राजा तुम्हारे

---

१. अन्यत्र दाक्षिण्यवतोऽपि पुंसः संसक्तमेकत्र समुत्सुकत्वम्।
कामं कि सत्यप्सरसां सहस्रैर्विशिष्टमिन्द्रस्य शचीपतित्वम्। (४३।२३)

२. ननु भणामि, अहमप्येतज्जानामि त्वय्येवासाधारणोऽत्रभवतोऽनुरागः देव्यां पुनर्दाक्षिण्यमात्रमिति। (पृ० ६४)

३. देवी—जानाति खलु स यथार्थम्। (पृ० ६४)

४, दक्षिणोऽस्यां सहृदयः। (दशरूपक २।७)

५. विशंकसे मानिनि यद्यमुं जनं कृतव्यलीकं ननु युज्यते भयम्।
व्यलीकसंकल्पनिरुत्सुके जने करोति शंका मनसः परां रुजम्॥ (२०।३८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रति असाधारण अनुराग प्रकट करते हैं, इसलिए क्षमा करने योग्य हैं, क्योंकि पुरुषों की दृष्टि प्रायः सभी ओर जाती है, विशेषतया राजाओं की दृष्टि। इससे ज्ञात होता है कि राजा ज्येष्ठा के प्रति भी अनुरागयुक्त है और राजा का दक्षिणनायकत्व सिद्ध करता है। इसके पश्चात् जब देवी राजा को सुभद्रा का करग्रहण किये हुए देखती है और रुष्ट होकर अन्तिम प्रणाम है—ऐसा कहकर तथा प्रणाम कर ईर्ष्यापूर्वक जाने लगती है, तब राजा स्वयं कहता है—सुन्दरि, नवीन अविनय के कारण मुझे स्वयं भय है और मैं तुम्हारे चरणों का स्पर्श करने में डरता हूँ; अतएव शिर से महीतल का ही केवल स्पर्श कर लेता हूँ—ऐसा कहकर प्रणाम करता है। यह व्यवहार राजा का ज्येष्ठा के प्रति सहृदयता का ही सूचक है। देवी वैलाती के चले जाने पर राजा को इस बात का दुःख है कि देवी अप्रसन्न होकर चली गयी, तो उसके प्रसन्न हो जाने के सम्बन्ध में निराश ही हूँ। राजा को हृदय में रानी को प्रसन्न करने का ध्यान बना रहता है। जब राजा को ज्ञात होता है कि नमि विद्याधर अपनी बहिन सुभद्रा को साथ लेकर आ रहे हैं तथा राजा अपने मन में यह सोचते हैं कि यद्यपि प्रिया को आता हुआ सुनकर जहाँ मेरी मति धैर्य को प्राप्त हुई है, वहाँ देवी को प्रसन्न करने के सम्बन्ध में बुद्धि चक्कर में पड़ी हुई है।[१] जब विदूषक राजा को देवी के प्रसन्न हो जाने की सूचना देता है, तब उसे अत्यधिक प्रसन्नता होती है[२] और प्रसन्न होकर देवी के पिता तथा भाई को मध्योत्तर तथा पश्चिम खण्ड का अधिपति पद प्रदान कर देता है।[३] इस प्रकार राजा को सदैव ज्येष्ठा का ध्यान ही नहीं रहता है, बल्कि वह ज्येष्ठा के इतना अधीन है कि ज्येष्ठा के प्रसन्न हुए बिना सुभद्रा के साथ राजा का समागम होना कठिन है। राजा का दाक्षिण्य स्वयं नाटककार ने कई स्थानों पर दाक्षिण्य शब्द से स्पष्ट कर दिया है। यद्यपि यह अनेक स्थानों पर दाक्षिण्य शब्द का प्रयोग निर्दोष नहीं कहा जा सकता। द्वितीय अंक में जब सुभद्रा मन्दारिका से कहती है कि राजा चित्र देखते-देखते वैलाती नाम से भयभीत हो गया है, अतएव राजा को किसी नायिका की ओर से भय होना चाहिए, तब मन्दारिका उत्तर देती है कि जिसके हृदय का तुमने हरण किया है, वह अन्य में अपना चित्त लगाये हुए भी दाक्षिण्य की रक्षा करता है, ऐसा समझो, क्योंकि इस प्रकार के महापुरुष कभी दाक्षिण्य का त्याग नहीं करते हैं।[४]

द्वितीय अंक में सुभद्रा के आंसुओं का कारण जब राजा को ज्ञात होता है कि यह मेरी ज्येष्ठा पत्नी वैलाती से शंकित है, तब कहते हैं, मुग्धे! कहीं भी दाक्षिण्य का त्याग करना उचित नहीं होता है, इत्यादि।[५] रानी के द्वारा सुभद्रा का करग्रहण

१. प्रत्यागतां प्रियतमामाकर्ण्य परांधृतिं प्रपन्नापि।
देवीप्रसादनं प्रति मतिः प्रकामं परिभ्रमति ॥ (७९।२२)

२. पृ० ८३।२३

३. पृ० ८३ गद्य

४. पृ० २६ गद्य

५. पृ० ४३ गद्य तथा श्लोक संख्या २३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि चेष्टा देख लेने पर राजा देवी के प्रति स्वयं स्वीकार करता है कि मुझे केवल दाक्षिण्य मात्र की शरण अवशेष है, जबकि आपके समक्ष मेरा इतर नायिकाजनक अपराध प्रकट हो गया है।[1] इसके अतिरिक्त दाक्षिण्य शब्द का प्रयोग विदूषक ने भी किया है।[2] रानी भी राजा से यही कहती है कि मैंने तुम्हारे हृदय को न जानते हुए तुम्हारे साथ ज्यादती की है। दाक्षिण्य वाले आप उसे क्षमा करना।[3] इस प्रकार सुभद्रा नाटिका के नायक भरत दक्षिण प्रकृति के हैं।

नाटकों में चरित्र-चित्रण नाटककार प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता है। नाटक में तो चरित्र-चित्रण के लिए परोक्ष या अभिनयात्मक ढंग का सहारा लिया जाता है। या तो दूसरे पात्रों के कथोपकथन से या स्वयं उसी पात्र के कथन से अथवा पात्र के अपने कार्यों से चरित्र का उद्‌घाटन होता है।[4] हम भरत के चरित्र में देख चुके हैं कि हस्तिमल्ल ने चरित्र के उद्‌घाटन के लिए इन्हीं मार्गों का अवलम्बन लिया है।

राजा और विदूषक के अतिरिक्त इस नाटिका में यद्यपि चार पुरुष पात्र और हैं, किन्तु नाटिका में वे केवल चतुर्थ अंक में आते हैं तथा अपना कर्त्तव्य पूरा कर, अपनी क्षणिक रेखा चमका कर राजा के कार्य को कुछ गति या सहायता देते हैं। उन चार पात्रों में विद्याधरराज नमि, चक्रवर्ती भरत के सेनापति अयोध्य, दूत तार्क्ष्यदत्त तथा कंचुकी पुरुषदत्त हैं।

विद्याधरराज नमि—नाटिका में स्त्री पात्रों का बाहुल्य होता है, अतएव इन पुरुष पात्रों का उतना व्यापक स्थान नहीं है, फिर भी नमिराज का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि एक तो ये राजा भरत के साले हैं ; कन्यादान का जल महाराज नमि ने ही छोड़ा है तथा नाटिका के उपसंहार में नमि ने ही राजा से यह कहा था कि 'तुम्हारा अत्यन्त प्रिय उपहार मैं क्या भेंट करूं ?' इसके उत्तर मं राजा कहते हैं कि 'मुझे रत्न-श्रेष्ठ तुम्हारी बहन सुभद्रा प्राप्त हुई तथा अपनी छोटी बहन को पाकर देवी को शान्ति प्राप्त हुई।'

नमि भी विद्याधर राजा होने से आभरण पहनते हैं तथा शिष्टाचार के नाते राजा भरत के दूत को पारितोषिक रूप में अपने शरीर के आभरण देकर उसका सत्कार भी करते हैं।[5] राजा नमि की आज्ञा में अनेक विद्याधर रहते हैं। इस प्रकार नमि एक ओर शिष्टाचार के पालक, दानी तथा प्रभावशाली हैं; दूसरी ओर चक्रवर्ती

---

१. का नाम सम्प्रति मम प्रतिपत्तिरत्र
प्रत्यक्षमेव तव योऽस्मि कृतापराधः
भूयोऽनुभूतमनुपात्त विलोमनं ते
दाक्षिण्यमेव शरणं मम शिष्टमास्ते ॥ (६५।१८)

२. पृ० ६४

३. पृ० ६५

४. काव्य के रूप, पृष्ठ ४६

५. पृ० ७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा भरत के समक्ष अत्यन्त नम्र हैं, क्योंकि सेनापति के कथन से ज्ञात होता है कि नमि दूर से ही मस्तक झुकाये अन्य विद्याधरों के साथ चले आ रहे हैं। नमि अपने सामने भरत के महान् प्रताप तथा प्रभाव को मानते हैं[1] और स्वयं को उनके प्रताप का महत्त्व बताने के हेतु तुच्छ विद्याधर समझते हैं। नमि का बचपन से राजा भरत के साथ पालन-पोषण किया गया था। नमि राजा भरत के मामा कच्छ के पुत्र थे तथा भरत नमि की फुआ यशस्वती के पुत्र थे और इस समय अपनी बहन के सम्बन्ध के कारण भरत के साले हैं। नमि के भरत के साथ इस प्रकार अनेक सम्बन्ध होने से उनका चित्त भी अनेक भावों से युक्त हो रहा है।[2] नमि जहां अपने वचन द्वारा राजा को क्षमाशील बताते हैं, वहां क्षमा मांग कर अपनी नम्रता तथा विनयसम्पन्नता भी सूचित करते हैं[3], किन्तु नमि अपने आपको इतना क्षुद्र बताते हैं कि राजा भरत के अनुचरों के समान ही समझते हैं। नमि का चरित्र राजा भरत के चरित्र की उत्कृष्टता का साधक है, क्योंकि नमि के ये वचन कि यह विद्याधर लोक तो पहले से आपका ही है, हम तो केवल आपकी ओर से अधिकृत मात्र हैं, तथा हमें जो विद्याधरों का राज्य प्राप्त हुआ, उसकी रक्षा आप भरत के अधीन है। इससे भरत की वैभवसम्पन्नता तथा प्रभाव तथा नमि का अपना नम्र भाव सूचित होता है। किन्तु आधुनिक आलोचक विद्याधरराज द्वारा अपनी इतनी तुच्छता प्रकट करना उपयुक्त नहीं मानेगा, वह तो अपने को परिजन तथा तुच्छहृदय तक मानते हैं।[4] अथवा नमि का यह कथन चापलूसी की व्यंजना करता है। नमि का भी शकुन तथा ज्योतिष में विश्वास है, तभी तो वे कहते हैं कि यही प्रदान की सुन्दर वेला है।[5] नमि का विश्वास सिद्ध वाणियों में होने से उन्होंने हंसदत्त नामक कंचुकी के द्वारा रानी वैलाती के पास समाचार भेजा था कि सिद्ध वाणी हुई थी कि सुभद्रा चक्रवर्ती की पटरानी होगी, इसीलिए इस सम्बन्ध को करने के लिए हम लोग बुलाये गये हैं।[6] इस प्रकार नमि अपने व्यवहार से राजा के चरित्र को उज्ज्वल बनाते हैं, जिससे उनका चरित्र भी उज्ज्वल हो जाता है। वैवाहिक विधि में कन्यादान की विधि पूर्ण करके नमि ने राजा के सुभद्रा के प्रति विकसित प्रेम को सुसंस्कृत बना दिया है। लोक व्यवहार के ज्ञाता नमि ने देवी वैलाती के पास समाचार भेज कर उसकी अनुमति बड़े ढंग से प्राप्त कर ली है, जिससे देवी वैलाती सौत के दुःख का

---

१. पृ० ८४।२६

२. आबाल्यात् सहवर्धनात् सुहृदिति प्रेम्णा सुतः स्वामिनी।
लोकानामिति गौरवान्मम पितुः स्वस्रीय इत्यादरात्॥
जामातेति च संमदादचरमश्चक्रीति चान्तर्भयात्।
चेतो नैकरसाकुलं भवति मे सम्प्रत्यमुं पश्यतः। (८५।२९)

३. पृ० ८५।३०

४. अनाहूताः स्वयं षट्खण्डायाः पतिं भुवः।
निर्विशेषाः पदातिभ्यः के नाम क्षुद्रका वयम्॥ (८५।४९)

५. पृ० ८२

६. पृ० ८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभव न करे और विवाह सम्बन्ध में किसी प्रकार की बाधा न हो, बल्कि देवी जो पहले सुभद्रा के प्रणय में बाधक थी, वह साधक हो गयी है। नमि ने देवी के पास यह समाचार भेजा कि तुम्हारे पिता विलात की मेरे ऊपर वैसी ही स्नेहदृष्टि थी, जैसी तुम्हारे भाई चक्रसेन (पुत्र) पर थी, अतएव मैं भी तुम्हारा भाई हुआ। मेरी बहन सुभद्रा के लिए तुम एक बहन मिल गयी, मानो उसे पीहर की ही संगिनी मिल गयी है।[१] इस प्रकार के समाचार भेजने के उल्लेख से नमि की व्यवहार कुशलता प्रतीत होती है।

सेनापति अयोध्य—राजा भरत का सेनापति भी अत्यन्त प्रभावशाली है, संभवतः इसके युद्ध में पहुँचते ही शत्रु लोग अधीनता स्वीकार कर लेते हैं। सेनापति को युद्ध करने का अवसर ही नहीं आता है; इसीलिए इनका नाम अयोध्य पड़ा अथवा ये किसी के लिए जेय न होने से अयोध्य कहलाये, क्योंकि राजा भरत ने जब सेनापति से कहा कि उत्तरार्ध की विजय हो गयी दक्षिणार्ध के प्रति जाने में क्या विलम्ब है ? तब सेनापति ने कहा था कि उसे जीत लिया है, वह भी जीतना क्या है ? शत्रुओं के अभाव में उत्तरार्ध में भ्रमण कर लिया—ऐसा समझिये।[२] सेनापति भी राजा के अनुरूप प्रभावशाली है। कंचुकी के कथन से ज्ञात होता है कि चक्रवर्ति के सेनापति का भी बड़ा प्रभाव है, जिसने चक्रवर्ती राजा भरत की दिग्विजय यात्रा में चार खण्डों पर विजय प्राप्त कर, राजा को छह खण्ड का विजयी बना दिया। इस प्रकार अपनी विजय द्वारा राजा को निश्चिंतता देने वाला है तथा राजा के संकेत बिना ही अपनी सूझबूझ से ही दक्षिणार्ध की ओर विजय के लिए प्रयाण कर देता है। राजा जब कहते हैं कि दक्षिणार्ध की ओर जाने में विलम्ब क्या है, तब उत्तर देता है दक्षिणार्ध तो विजित हो गया। इसी प्रकार नमि को बुलाने आदि के कार्य के लिए स्वयं ही सोचविचार कर दूत भेज कर राजा की सुभद्रा-प्राप्ति में सहायक बनता है।[३] सामन्तों का समुदाय राजामात्य अयोध्य को अंजलि बाँध कर प्रणाम करते हैं तथा सेनापति अयोध्य राजा के दूसरे विजयी चक्र की तरह ही हैं।[४] सेनापति अयोध्य की महिमा तार्क्ष्यदत्त दूत के उन शब्दों से ज्ञात होती है, जो शब्द उसने नमि को सेनापति के द्वारा प्रेषित समाचार सुनाते हुए कहे थे। सेनापति अयोध्य चक्रवर्ती के सेनापतियों में प्रधान हैं। राजा भरत की सहायता करने में तो भरत की दक्षिण बाहु ही हैं। विद्याधरों के पर्वत विजयार्ध का भेदन सेनापति ने ही दण्ड द्वारा किया था, जिससे गुफा के कपाट खुल जायँ और सेना पर्वत के उस पार पहुँच सके।[५] इस प्रकार सेनापति दिग्विजय में राजा का प्रमुख सहायक

---

१. पृ० ८२

२. अश्रुतप्रतिपक्षं तज्जितं नाम कथं भवेत्।
उत्तरार्धपरिभ्रान्तं मर्यादेतीह केवलम्॥ (७७।१४)

३. पृ० ८२

४. बद्धप्रणामांजलिना समन्तात् सामन्तचक्रेण समं समेत्य।
आयाति दूरादनुगम्यमानो जैत्रं प्रभोश्चक्रमिव द्वितीयम्॥ (७४।५)

५. तस्यायोध्य इति प्रतीतमहिमा सेनापतिष्वग्रणी-
र्जेता खण्डचतुष्टयस्य विजयी बाहुः प्रभोर्दक्षिणः,
दण्डेनैव गुहाकवाटपुटयो र्विद्याधराणां गिरे-
र्भेत्ता दर्शयितुं दिशामधिपतिं त्वामाह्वयद् गम्यताम्॥ (७८।१७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। सुभद्रा-प्राप्ति में भी कारण होकर राजा की फल-प्राप्ति में सहायक है तथा इसके कथोपकथन राजा के चरित्र को भी प्रकट करते हैं। जैसे सेनापति ने कहा था, नमि राजा भरत की पराक्रमशालिता को समझते हैं।[१]

तार्क्ष्यदत्त—यह एक दूत है। राजा भरत के पास अनेक दूत हैं, विद्याधर भी उनके दूत थे। तार्क्ष्यदत्त एक विद्याधर ही था और विद्याधर दूतों में मुख्य था। सेनापति के कथन से ज्ञात होता है कि यह विद्याधर दूतों में प्रमुख था।[२] दूत ने विद्याधरराज नमि के पास से आकर विद्याधरों के साथ स्त्रीरत्न प्रभृति उपहार लेकर आने वाले नमि का प्रिय समाचार सुना कर राजा को आनन्दित किया था।[३] इसके चरित्र में दक्षता तथा उत्साह दिखाई देता है। इसी दक्षता को दिखाने के लिए मनुष्यों में से दूत न चुनकर कवि ने विद्याधरों में से दूत चुना है। विद्याधर होने के कारण वह आकाशगामी माना गया है, जैसा कि उसने स्वयं कहा है कि यहाँ से मैंने विजयार्घ पर्वत पर उड़ कर महाराज नमि की सभाभूमि में पहुँच कर सेनापति का आदेश उच्चस्वर में कहा।[४] इसके कथन की शैली तथा शब्द प्रयोग उसके उत्साह को व्यक्त करते हैं। उसका पहुँचकर समाचार लेकर शीघ्र आ जाना दूत के प्रमुख गुण दक्षता तथा चातुर्य को व्यक्त करता है। वह विद्याधरों की दोनों श्रेणियों से आने वाली सेना का ऐसा वर्णन करता है कि सुनने वाले को उसके ठाटबाट से आगमन की प्रतीति होने लगती है। सेना ने आकाश को व्याप्त कर तथा सूर्य की किरणों को अवरुद्ध कर समस्त दिशाओं को व्याप्त कर राजाओं को असमय में रात्रि का भ्रम पैदा कर दिया है एवं दबाव से बिखरे हुए शरत् काल के बादलों से ही सैन्य धूलि उठा कर विद्याधरों की सेना ने प्रस्थान कर दिया।[५] मैं आगे ही समाचार देने चला आया। राजा ने उसके कार्य से प्रसन्न होकर उसको केवल दूताध्यक्ष ही नहीं बनाया, बल्कि पुरस्कार में दश स्वर्णभार भी देने की आज्ञा दी।[६] दूत की कहानी नाटिका में प्रकरी का स्थान ग्रहण करती है।

कंचुकी—चतुर्थ अंक के आरम्भ में विष्कम्भक में कंचुकी उपस्थित होता है। वह अवस्था में वृद्ध है, जैसाकि संस्कृत नाटकों में कंचुकी प्रायः वृद्ध होता है। वह दृढ़ता को अधीरता का नियंत्रक मानता है, क्योंकि वृद्धावस्था में शरीर लड़खड़ाने

---

१. जानाति नमिर्देवस्य पराक्रमवत्ताम्। (पृ० ७८)

२. पृ० ७५

३. तृप्तिविश्वासदूराय लघुने हृदयाय नः।
प्रियागमनवृत्तान्तं पुनः पुनरुदीरय॥ (७८।१८)

४. पृ० ७७

५. व्याप्य व्योमतलं विरोचनकरान् व्याहृत्य विश्वा दिशो
व्यारुध्य क्षणदामकाण्डजनितां कृत्वा क्षमावर्तिनाम्
क्षुण्णैरेव शरत्पयोधरलवैरुत्थाप्य सेनारजः
प्रस्थातुं सकलं प्रवृत्तमचिराद्विद्याधराणां बलम्। (७९।२१)

६. पृ० ७९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगता है। युवावस्था में उन विषय भोगों में चित्त आसक्त था, जो विषयभोग भविष्य में दुखकारक होते हैं। अब वृद्धावस्था में उसे हृदय के पश्चाताप का अनुभव होता है तथा तपस्या के लिए मन चाहता है।[1]

कंचुकी यद्यपि सेवाकार्य करता है, किन्तु वह सेवाकार्य को एक निकृष्ट कार्य ही समझता है, जिसमें परतन्त्रता रहती है और दूसरों के वशवर्ती होने से अनेक पाप के कार्य भी करने पड़ते हैं। इस प्रकार सुभद्रा नाटिका का कंचुकी एक विचारक के रूप में उपस्थित होता है, जिसे पर-परिचर्या के सम्बन्ध में जानकारी है तथा वह यह भी समझता है कि परलोक में कल्याण कैसे हो सकता है। कंचुकी दूसरी ओर अपने कथन द्वारा भरत चक्रवर्ती के चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालता है कि भरत राजा के गुणों के कारण ऐसे स्वामी की सेवा करने में पुरुषार्थ व्यर्थ नहीं है। दूसरी ओर सेनापति के चरित्र पर भी कंचुकी के कथन से प्रकाश पड़ता है कि सेनापति ने चार खण्ड की दिग्विजय कर राजा को षट् खण्ड विजयी बना दिया है तथा सेनापति को समस्त सामन्त प्रणाम करते हैं। इस प्रकार कंचुकी सेवाकार्य के अवगुण और स्वामी भरत तथा अमात्य के चरित्र पर प्रकाश डाल कर तथा अपनी विषयविमुख वृत्ति का परिचय देकर दर्शकों की आँखों से ओझल हो जाता है।

विदूषक—संस्कृत के नाटकों में विदूषक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दशरूपक में तो विदूषक को केवल हास्यकृत् कहकर छोड़ दिया गया है[2], किन्तु संस्कृत नाटकों के इस महत्त्वपूर्ण पात्र विदूषक में अनेक विशेषताएं पायी जाती हैं। हास्य और व्यंग की रचना द्वारा विदूषक नाटकीय मनोरंजन का साधन बनता है, यद्यपि कवि हस्तिमल्ल की प्रकृति विशेष हास्य की नहीं दिखाई देती है। इसलिए सुभद्रा नाटिका का विदूषक नाटिका में हास्य की उत्पत्ति कम कर पाता है, फिर भी विदूषक के कथोपकथन के कुछ स्थल ऐसे हैं, जिनसे मनोरंजन अवश्य होता है। तृतीय अंक में विदूषक सुभद्रा से कहता है कि जिस राजा के लिए चारों समुद्र पर्यन्त की पृथिवी (नायिका) समुचित कर (टैक्स) देती है, उसको भी तुम कर (हाथ सामान्य भी) नहीं देती हो।[3] इसी प्रकार जब देवी वैलाती राजा के चरण प्रणाम करने पर भी चली जाती है और राजा जमीन में नीचे मुख किये अपना शिर रखे रहते हैं, तब विदूषक का यह कथन मनोरंजक है कि क्या मित्र आकाश में प्रणाम कर रहे हो? जब राजा कहते हैं कि क्या देवी अप्रसन्न ही चली गयी है? विदूषक कहता

१. अये वार्धकं च किंचिदनुशासकमनिसर्गं धीराणाम्
यदेव मे वैषयिकेषु पूर्वं सुखेषु दुःखाभिमुखेषुसक्तम्
तदेव सम्प्रत्युपजातपश्चात्तापम् तपस्यां विचिनोति चेतः।
(७३।१)

२. हास्यकृच्च विदूषकः। (दशरूपक २।९)

३. यस्य तावच्चतुरुदधि पर्यन्तया मह्या समुचितः करो दीयते
तस्य कथं त्वया करो न दीयते (पृ० ७१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है—अरे अकृतज्ञ, यह देवी का बड़ा प्रसाद है कि हम दोनों जीवित बचा दिये गये।[१] इस प्रकार से हृदय को गुदगुदाकर आनन्द देता है और सामान्य श्रेणी के दर्शकों को भले ही अतिहसित अवस्था में न ले जाय। विदूषक के संवाद से जिस तीक्ष्ण बुद्धि की अपेक्षा संस्कृत नाटकों में की जाती है, सुभद्रा नाटिका के विदूषक में वह तीक्ष्ण बुद्धि दिखाई देती है और इस प्रकार विदूषक एक ओर ज्येष्ठा नायिका के रोष से नायक का बचाव करता है, दूसरी ओर कनिष्ठा नायिका के प्रति अनुराग-विकास में नायक की सहायता करता है। प्रथम अंक में जब वैलाती राजा के प्रति अन्य सुन्दरी के समागम की शंका करती है, तब विदूषक कह देता है—मैं इस यज्ञोपवीत की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि न तो यहाँ कोई सुन्दरी देखी है और न बातचीत ही किसी के साथ हुई है। जब रानी सुभद्रा की पद-पंक्ति को विदूषक के असत्य भाषण के प्रमाण में उपस्थित करती है, तब (राजा को कुछ उत्तर नहीं सूझता है, वह विदूषक का मुँह ताकने लगता है) विदूषक उत्तर देता है कि क्या यह आप (वैलाती) की पद-पंक्ति के चिह्न नहीं हैं? हम लोग तो आपकी ही पद-पंक्ति समझकर आपकी ही पद-पंक्ति का अनुसरण कर आपको खोजते हुए यहाँ आये थे और अब भाग्य से आप यहीं दिखाई भी दे गयीं। राजा ने विदूषक के इस चातुर्यपूर्ण उत्तर के उपलक्ष्य में हृदय में धन्यवाद दिया था।[२] दर्शक भी इस युक्ति से विदूषक की प्रत्युत्पन्न मति की तथा उससे होने वाले मनोरंजन के लिए राजा की तरह हृदय में धन्यवाद दिये बिना न रहेगा।

द्वितीय अंक में भी जब राजा स्वनिर्मित सुभद्रा के चित्र का उत्कण्ठापूर्वक दर्शन कर रहा था, तभी रानी वहाँ पहुँच जाती है। राजा रानी को देखकर चित्र-फलक विदूषक के हाथ में छोड़कर उठ खड़ा होता है। विदूषक शीघ्रता से अपने उत्तरीय से चित्रफलक को ढककर उठ खड़ा होता है। जब रानी पूछती है कि यह क्या है? तब विदूषक कहता है—यह वाचनाफलक है, जिस पर मैं सन्ध्योपासना का मंत्र लिखकर पढ़ा करता हूँ। जब चेटी उस चित्र को हठपूर्वक लेकर रानी को दिखा देती है, तब भी विदूषक तुरन्त दूसरी युक्ति सोचकर कह देता है कि मैं आचमन के लिए गंगा किनारे गया हुआ था, वहाँ मैंने लतागुल्म में इस चित्र को देखा और कुछ न समझते हुए लाकर वयस्य (राजा) को दिखा दिया कि यह क्या है? राजा ने कहा कि किसी विद्याधर ने प्रशंसा के लिए किसी देवी का चित्र बनाया होगा। इसका गोपन इसलिए कर लिया कि कहीं आप अन्यथा शंका न करने लगें।

इसके पश्चात् जब राजा के अश्रुबिन्दुओं को लक्ष्यकर देवी कहती है, क्या ये आर्यपुत्र के अश्रु-बिन्दु नहीं हैं, तब दूसरा बहाना भी तुरन्त उसके हृदयकोश से निकल

१. विदूषकः—वयस्य किमाकाशे प्रणम्यते!
राजा—कथमप्रसन्नैव गता?
विदूषक—अकृतज्ञ, एष खलु देव्याः सुमहान् प्रसादो यत् सजीवितौ मुक्तौ स्वः। (पृ० ६६)

२. राजा—(आत्मगतम्) साधु वयस्य साधु! (पृ० २०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़ता है और कहता है—वायु के साथ मन्दार वृक्ष की पराग आकर राजा के नेत्र में पड़ गयी थी, जिससे ये आंसू निकल आये हैं।[1] विदूषक की इस तात्कालिक सूझबूझ तथा सयुक्तिक उत्तर से राजा भी अपने मन में विदूषक की प्रतिभा की प्रशंसा करने लगते हैं।[2] दर्शक, पाठक, आलोचक भी उन शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं।

इस प्रकार सुभद्रा का विदूषक अपने उत्तरों के द्वारा तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दे देता है। सुभद्रा नाटिका का विदूषक राजा के प्रेम व्यवहार में सहायक भी होता है, जो कि नाटिका के विदूषक का गुण है। इसी प्रकार जब राजा को अपने सुभद्रा के प्रति होने वाले प्रेम के कारण रानी से भय का अनुभव होता है, तब विदूषक राजा से कह देता है—मित्र, भय मत करो। मैं तुम्हारा उद्धारक हूं।[3]

प्रथम अंक में प्रथम दर्शन के अवसर पर सुभद्रा लज्जावश सखिजन के अन्वेषण के लिए जाने का बहाना करती है, तब राजा का कुछ समय तक सानिध्य कराने के हेतु कहता है—यह आपका शिष्टाचार नहीं है कि अदृष्ट पूर्व व्यक्ति का सत्कार किये बिना अपनी सखियों को खोजने चल दीं।[4]

चतुर्थ अंक में भी विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि उसे जब रतिसेना के मुख से ज्ञात होता है कि देवी राजा के प्रति प्रसन्न हो गयी है और देवी स्वयं राजा के साथ सुभद्रा का संबंध कराने वाली हैं, तो वह प्रसन्न होकर समाचार देने वाली रतिसेना को दर्भग्रन्थि नामक अपना आभरण पारितोषिक रूप में दे देता है।[5] इसी अंक में विदित होता है कि राजा के रहस्य का भंग होने के भय से भूखा होने पर भी रानी के पास भोजनार्थ नहीं जाता है।[6]

विदूषक राजा का विश्वासपात्र व्यक्ति होता है, अतः राजा उसे अपने हृदय की सभी बातें बता देता है। इसी कारण विदूषक को राजा की प्रत्येक दशा का ज्ञान है। दूसरे अंक के आरंभ में विदूषक राजा तथा राजा के अन्तःपुर में आलोचक के रूप में भी हमारे सामने उपस्थित होता है। संस्कृत नाटकों में विदूषक राजा के अन्तःपुर आदि के आलोचक के रूप में भी आते हैं। राजा को उचित मंत्रणा भी देते हैं तथा विरह दुःख के समय विनोद के साधन भी जुटाते हैं। ये सभी विशेषताएं सुभद्रा नाटिका के विदूषक कार्त्यायन में प्राप्त होती हैं।

दूसरे अंक के आरंभ में वह आलोचक के रूप में दिखाई देता है। वह कहता है कि याचक ब्राह्मण की तरह, जिसके लाभ का निश्चय नहीं, इस प्रकार का राजा का आग्रह है; जिससे कि ऐसी सुन्दरी के प्रति उत्कण्ठित हो रहे हैं, जिसके सम्बन्ध में

---

१. पृ० ३९
२. राजा (आत्मगतं) भोः सखे, साध्वी प्रतिभा। (पृ० ४०)
३. वयस्य मा बिभेहि अहं तेऽत्र निस्तारयिता। (पृ० १८)
४. पृ० १६
५. पृ० ८२
६. पृ० २३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभी विश्वास नहीं हुआ है तथा जिसके निवास का भी परिचय नहीं है। राजा के अन्तःपुर में देवियों के सौन्दर्य को भी अतिक्रान्त करने वाली रानियां हैं, फिर भी राजा उसी कन्या के प्रति अत्यन्त उत्कंठित होकर सन्तप्त हो रहे हैं। जब से उस कन्या में आसक्त हुए हैं, तब से राज्य का कार्यभार मेरे ऊपर सौंपकर न न्यायासन पर बैठते हैं, न अन्य कार्य करते हैं और मैं राजा के रहस्य के भंग होने के भय से भोजन करने भी रानी के पास नहीं जा पाता हूँ। वहीं यह भी कहता है कि राजा लोग असन्तुष्ट होते हैं। ये राजा अनेक सुन्दरी स्त्रियों के रहते हुए भी एक कन्या के प्रति आसक्त हैं।[1] उसी अंक में राजा को विरह-व्यथित देखकर राजा से कह देता है—वयस्य, समस्त पृथिवी मण्डल को जीतने वाले आप किसी स्त्री के द्वारा जीत लिये गये—यह अत्यन्त अनर्थ की बात है।[2] इस प्रकार एक ओर आलोचक बनकर आता है, तो दूसरी ओर राजा के विरह विनोद के लिए सुभद्रा के भेंट के स्थान का सुझाव, सुभद्रा के चित्र आलेखन के लिए सामग्री सहित पटिया आदि ला देता है। इस प्रकार राजा के विरह विनोद में तो सहायक बनता ही है। जब राजा चक्रवर्ती दिग्विजय को निकले हैं, वहां भी प्रकृति दर्शन में आनन्द का अनुभव करने वाले राजा का आनन्द, योग्य साथी के कारण बढ़ जाता है। वह राजा को बराबर दर्शनीय स्थल दिखाता रहता है। वह प्रथम अंक में कहता है—मन्दाकिनी विजयार्ध संगम पर काण्डकप्रपात गुहा पहले नहीं देखी है, वह आज देखिये।[3] वह राजा के मनोरंजन का सहायक है; इसके प्रमाण में ज्येष्ठा देवी के शब्द भी उद्धृत किये जा सकते हैं कि उस बेचारे (विदूषक) को छोड़ दो, क्योंकि राजा के अनुकूल रहकर राजा का मनोविनोद करना इन लोगों के लिए उचित ही है।[4]

सुभद्रा नाटिका के विदूषक का नाम कात्यायन है। रानी ने प्रथम अंक में विदूषक को इसी नाम से सम्बोधित किया है। वह आयु में राजा के समान आयु का होना चाहिए, क्योंकि उसमें जो चंचलता दक्षता पायी जाती है, वह उसकी युवावस्था को सूचित करती है। उसकी मनोरंजक बातचीत से पता चलता है कि वह बातचीत में चतुर है तथा प्रत्युत्पन्नमति भी है। राज्य के समस्त कार्यभार को सम्हालने के संकेत से उसके गुरुत्तर कार्य करने की क्षमता व्यक्त होती है। वह उत्तरीय धारण करता है। देवी ने उसी उत्तरीय से उसके बाहुयुगल को बंधवा दिया था। उसने स्वयं भी कहा था कि इस बन्धन से तो यह समझना चाहिए कि मैं स्वयं अपने बन्धन के लिए यह उत्तरीय धारण किये हुए हूँ।[5] वह जाति का ब्राह्मण है, क्योंकि राजा को जब सुभद्रा के प्रथम दर्शन होते हैं, तभी राजा के साथ समीप पहुँच कर

---

१. पृ० २३
२. वयस्य भवानपि नाम निर्जितसकलमहीपृष्ठः कयाऽपि स्त्रियैव जितमित्याहितम्। (पृ० २६)
३. पृ० ६
४. अथवा मुंच तं वराकं राजानुवर्तनं खल्वेतादृशानां युक्तम्। (पृ० ४१)
५. पृ० ४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा को आशीर्वाद देता है कि चक्रवर्ती की प्राणवल्लभा बनो[१] तथा दूसरे अंक में वह स्वयं कहता है कि पतिव्रता नारी की तरह भूख इस ब्राह्मण को ही कण्ठ में ग्रहण कर रही है।[२] तृतीय अंक में भी अशोक तथा मालती की उद्वाह विधि में पहुँच कर यही कहता है—यह मैं ब्राह्मण हूं, जो गंगा किनारे व्रत पालन करता है तथा तुम्हारे उत्सव में स्वस्तिवाचन ग्रहण करने आया है। ब्राह्मण के अनुरूप सन्ध्योपासना का कार्य भी किया करता है, आचमन करने के लिए गंगा किनारे जाया करता था। इसीलिए चित्र-प्राप्ति में गंगातीर आचमन करने जाने की बात का उल्लेख कर सकने में समर्थ है। इसके अतिरिक्त वह भी भ्रमणप्रिय है। इसलिए वह राजा से प्रथम अंक में कहता है कि अनेक देशों का भ्रमण करना ही पुरुष के लिए एक प्रमुख सुख है।[३] दर्भग्रन्थि नामक अंगूठी भी अपनी अंगुली में पहनता था, जो कि उसने पारितोषिक में चेटी रतिसेना को दे दी थी। वह यज्ञोपवीत भी धारण करता था, क्योंकि अपनी बात का विश्वास दिलाने के लिए उसने देवी के सामने उसकी शपथ खायी थी। परन्तु विदूषक में यह बात दिखाई देती है कि राजा के अनुवर्तन के लिए अपने धार्मिक आचार विचार को, असत्यता को सत्य प्रमाणित करने के लिए उपस्थित कर देता था। अतएव वह उन धार्मिक चिह्नों—यज्ञोपवीत, सन्ध्योपासना आदि के प्रति पूर्ण निष्ठावान् नहीं प्रतीत होता—क्योंकि उसका प्रमुख कार्य राज-मित्रता निभाना है। इन सब बातों के अतिरिक्त विदूषक का पेटू होना प्रसिद्ध है, वह रूप कात्यायिन में भी पाया जाता है। प्रथम अंक में ही जब दिग्विजय के प्रसंग में अनेक देशों के भ्रमण के आनन्द की बात चल रही है, तब विदूषक अपने भोजन के आनन्द को ही स्मरण करता है कि उन उन देशों में सुमधुर भोजन किया; पेय, सरस शर्बत आदि का पान किया, अनेक प्रकार के मोदक खाये तथा अन्यत्र दुष्प्राप्य चटनी को भी चाटा। इस प्रकार की बातचीत सुन कर राजा कह देता है—यह पेटूपन की बात रहने दो। जहां राजा को भोजन का स्मरण नहीं रहता, वहां बेचारे कात्यायिन को राजा का भोजन का स्मरण न करना दिन पर दिन अपने शोषण के लिए प्रतीत होता है। उसे राज-मित्रता से सबसे बड़ा कष्ट यही लगता है कि खाने को देवी के पास नहीं पहुँच पाता है। तृतीय अंक में राजा को जब एक ओर अप्रसन्न होकर देवी वैलाती छोड़ कर चली जाती है और दूसरी ओर सुभद्रा भी हाथ से निकल जाती है तथा जहां राजा अपने को दोनों ओर से ठगा हुआ समझते हैं, वहां विदूषक को आमंत्रण की लालसा से भिक्षा छोड़ देने वाले ब्राह्मण के लिए आमंत्रण शाला में गल पकड़ हो जाने की सूक्ति स्मरण आती है।[४] अशोक और मालतीलता की उद्वाह विधि के अवसर पर ब्राह्मण विदूषक पहुँच कर स्वस्ति-वाचन के रूप में केवल भरपेट भोजन की इच्छा प्रकट करता है।[५] उसके चरित्र से कथा की गति में

१. पृ० १४
२. इयं च पतिव्रतैव इममेव ब्राह्मणं कण्ठे गृह्णाति बुभुक्षा गृहिणी। (पृ० २३)
३. पृ० २
४. विदूषक—एतत् खलु आमंत्रणलालसया विमुक्तभिक्षापरिभ्रमणस्य-आमंत्रणशालायां गलहस्तनम्। (पृ० ६७)
५. पृ० ६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याप्त सहायता मिलती है, तथा चरित्र-चित्रण में भी उसका कथोपकथन सहायक है। फिर भी उसके सम्बन्ध में एक न्यूनता यह दिखाई देती है कि उस तीक्ष्ण बुद्धि, राजा के मनोरंजक विदूषक को देवी के प्रसन्न होने पर स्वयं की ओर से पुरस्कार देना पड़ता है। यहां तक कि उसे स्वयं पूर्ण भोजन न करने तक का कष्ट राजा के लिए उठाना पड़ा तथा कार्य पूरा हो जाने के समय उसका कुछ भी ध्यान नहीं रखा गया है।

स्त्री पात्र

सुभद्रा—सुभद्रा नाटिका की नायिका है। सुभद्रा नायिका के आधार पर ही नाटिका का नाम सुभद्रा रखा गया है। सुभद्रा महाराज कच्छ की पुत्री और नमि विद्याधर की बहन है। ये महाराज कच्छ भरत के पिता भगवान आदिनाथ के साले थे। इस प्रकार सुभद्रा राजा भरत के सगे मामा की पुत्री है।[1] सुभद्रा के सम्बन्ध में सिद्ध लोगों ने भविष्यवाणी की थी कि यह चक्रवर्ती की पट्टरानी होगी।[2] चक्रवर्ती भरत के पास चौदह रत्न थे, उनमें स्त्री-रत्न सुभद्रा ही थी।[3]

सुभद्रा नवयुवती है। वह बाल्यावस्था को छोड़कर युवावस्था में प्रवेश कर रही है। उसमें यौवन सम्बन्धी भावनाएं प्रकट हो रही हैं। इसीलिए बालाशोक और मालतीलता के परिणय द्वारा आत्मपरिणय की व्यंजना करा रही है। सुभद्रा अपने शरीर के श्रृंगार के लिए पैरों में यावक लगाती है।[4] कानों में कर्णोत्पल, वक्षस्थल में मुक्तावली[5] तथा पैरों में नूपुर धारण करती है।[6] वैसे एक स्थान पर सुभद्रा द्वारा एक उत्तरीय के प्रयोग का भी उल्लेख आता है।[7] हो सकता है, कवि ने अपने समय की वेषभूषा के अनुरूप ऐसा वर्णन किया हो। नेत्रों में अंजन का प्रयोग सुभद्रा करती थी। इस प्रकार सुभद्रा का जहाँ स्वाभाविक सौन्दर्य अनुपम है, वहाँ वह इतना ही अलंकरण धारण करती है, जो अलंकरण उसके सौन्दर्य को बढ़ा दे।

सुभद्रा इतनी सुन्दरी है कि विदूषक के मुख से सुभद्रा के देखने पर सहसा ये शब्द निकल पड़ते हैं कि अरे, संसार में इतना सुन्दर रूप भी सम्भव है?[8] इसकी

---

१. ७६।१०, पृ० ७२ और ७३
२. पृ० ८२
३. पृ० ८३
४. पृ० ८
५. स्तनतटसमुत्क्षिप्ता मुक्तावली परिवर्तिता
सुनिहितमपि स्पृष्टं कर्णोत्पलं प्रहितः करः
नमितवदनं सख्या न व्याजमन्तरितं मुहुः
मयि च निपतद्दृष्टौ न्यस्तौ दृशौ स्तनचूचुके। १६।३४
६. पृ० ११
७. पृ० २७।१२
८. अहो ईदृशमपिरूपमस्मिन् लोके संभाव्यते। (पृ० १२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवयुवावस्था भी इसके सौन्दर्य को बढ़ा रही है।[1] राजा भी उसके सुन्दर रूप को निहारकर एक ओर अपने नेत्रों को सफल मानता है, दूसरी ओर उसकी प्राप्ति न होने पर अपने राज्य, युवावस्था तथा अन्य श्रृंगारिक गुणों को निष्फल समझता है।[2] उसके सौन्दर्य का यही प्रमाण है कि जहाँ वनिता पदविन्यास मात्र से मन को हरण करती है[3], वहाँ सुभद्रा पदविन्यास के चिह्न मात्र से राजा को आकर्षित कर लेती है, जिसका अनुगमन करते हुए जाकर राजा ने सुभद्रा को देखा था।

नाटिका की नायिका दिव्या और मुग्धा तथा अतिमनोहरा होती है।[4] इस नाटिका की नायिका असाधारण कान्तिमती तथा सुकुमार भावों से भी मनोहर है।[5] नायिका के प्रथम दर्शन पर राजा भरत के मुख से विस्मयपूर्वक यह निकल पड़ता है कि विधाता की रचना का चातुर्य कैसा विस्मयावह है कि उसने श्रृंगार रस के अनुकूल यह उचित पात्र सुभद्रा रची है। सुभद्रा यद्यपि मुग्धा नायिका है, किन्तु वह अपना मुग्धात्व क्रमशः त्यागती हुई मध्यात्व की ओर बढ़ रही है। मुग्धात्व को त्यागने से उसकी शोभा और भी बढ़ती जा रही है।[6] सुभद्रा इस नाटिका की कनिष्ठा नायिका है, जो रानी वैलाती (ज्येष्ठा) की कनीयसी (छोटी बहन) है।[7] सुभद्रा में अनेक गुण हैं, उनमें कतिपय गुण तो श्रृंगार रस के अनुकूल ही हैं। इसीलिए इसके गुणों की विशेषता को श्रृंगार रस की सृष्टि का कारण बताया गया है।[8]

भारतीय आदर्श लज्जा तो सुभद्रा में कूट-कूट कर भरी हुई है। राजा के प्रथम दर्शन के अवसर पर ही लज्जावश सखीजनों के खोजने का बहाना लेकर जाना चाहती है। दूसरे अंक में भी जब राजा भरत सुभद्रा के चित्र को उत्कण्ठापूर्वक देख रहे हैं, इस समय उत्सुकतावश राजा के अपने प्रति औत्सुक्य भाव की जिज्ञासा रखती हुई भी सखि मन्दारिका से कहती है कि राजा की गोद में अपने चित्र को देखकर मैं यहाँ रुकने में लज्जा का अनुभव करती हूँ।[9] विवाह के समय तक उसमें लज्जा का भाव विद्यमान है और इसीलिए रानी वैलाती को कहना पड़ता है कि अत्यन्त लज्जालुके, मेरी ओट में रहती हुई इधर आ जा।[10] सुभद्रा

---

१. पुष्णाति च परं लावण्यमस्या वयोऽवस्था। (पृ० १२)

२, पृ० १३।३०

३. तया कवितया किंवा तया वनितया च किम्।
पदविन्यासमात्रेण यया न ह्रियते मनः॥

४. नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा। (दशरूपक ३।४६)

५ पृ० २।३

६. कुमुद्वतीं चन्द्रमसेव दृष्टां, ज्योत्स्नाभिरिन्दोरचिरोदितस्य
मुग्धत्वमेनां जहतीं क्रमेण, स्पृशत्यसौ सम्प्रति कापि शोभा॥

७. पृष्ठ ९०।२६

८. श्रृङ्गारमालोक्य रसेषु मुख्यं, तस्योचितं पात्रमियम्भु सृष्टा
अस्या विशिष्टान्नु गुणान् विलोक्य श्रृंगारनामा रस एप सृष्टः॥ १२।२८

९. पृ० ३५

१०. पृ० ८९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का प्रकृति के प्रति स्वाभाविक प्रेम है। बालाशोक का वृक्ष सुभद्रा के द्वारा अपने ही हाथों से संवर्धित हुआ है और उसके पुष्पित होने के दोहद का कार्य पूरा करने के बाद बड़ी उत्सुकता से उसके पुष्पोद्गम की प्रतीक्षा करती है तथा सखी के द्वारा दोहद की गयी मालतीलता के साथ उसके प्रणय सम्बन्ध का निश्चय कर लेती है। सुभद्रा की अनेक सखियां हैं, जिनमें मन्दारिका तो उसकी हृदय निर्विशेषा सखी है। सुभद्रा बुद्धिमती भी है। अनंगलेख लिखने के हेतु वहीं की सामग्री को उपकरण बना लेती है। सखि मन्दारिका के यह पूछने पर कि यहां लेख उपकरण कहां है? अपनी सूझबूझ से तुरन्त कहती है—अशोक पल्लव को ले आओ, वह कागज हो जायगा; आंसू के कारण आद्र हो जाने वाला स्तन के अंगराग का हरिचन्दन का रस स्याही बन जायगी तथा नखाग्र ही लेखनी बन जायगी। मन्दारिका भी इन अनंग लेख के साधनों को सुन्दर वताती है।[1] सुभद्रा का शारीरिक सौन्दर्य जैसा अन्य कवियों की नायिकाओं में पाया जाता है, वही है। प्रवाल की भांति सुकुमार उसके चरण हैं।[2] विशाल नेत्र हैं, शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति उसका मुख है, भौंहें नम्र हैं, स्तनों के भाराधिक्य से वह झुकी हुई है तथा शरीर से कृश है। सुन्दर नाभि, रम्भा की तरह ऊरु हैं और जघन भुजयुगल में समाने योग्य विशाल हैं![3]

शरीर से जिस प्रकार सर्वांग सुन्दरी है, उसी प्रकार वह वचनों के व्यंग्य को सरलता से पहचानने के कारण सहृदया है और चतुर भी है। मन्दारिका श्लेष से जब वालाशोक के राग दिखाने के सम्बन्ध में कथन करती है, तभी वह समझ जाती है कि इसके वचन अर्थान्तर से गर्भित हैं।[4] इस प्रकार पूरी बातचीत में ही कौशल भरा हुआ है। सुभद्रा मुग्धा है, इसीलिए कोप के सम्बन्ध में सुकुमार भाव वाली है। राजा के द्वारा सुभद्रा का किया जाने वाला चित्र-दर्शन जब देवी वैलाती के द्वारा बाधित कर दिया गया, तब सुभद्रा वैलाती के जाने के पश्चात् अपनी आंखों से आंसू गिराने लगती है। राजा जब सुभद्रा के रुदन का कारण पूछता है, तब उसकी सखी देवी वैलाती से राजा के भयभीत होने की बात कह देती है। राजा उत्तर देता हुआ सुभद्रा के लिए मुग्धे शब्द से सम्बोधित करता है, इसके बाद भी जब सुभद्रा अन्यत्र जाना चाहती है, तव मन्दारिका के परिहास कथन से राजा स्वयं हाथ ग्रहण कर प्रसन्न करता है, तभी इसका कोप भाग जाता है।[5] इस प्रकार राजा के प्रति पूर्वानुराग का वर्णन होने से पहले इसे परकीया अनूढा कन्या ही माना जायगा और अनूढा कन्या को नायिका बनाकर उसके आधार पर अंगीरस श्रृंगार

---

१. पृ० ५२
२. पृ० १४।३१
३. इयं सा दीर्घाक्षी परिणतशरच्चन्द्रवदना
नतभ्रू बिम्बोष्ठी स्तननमितमध्या कृशतनुः।
सुनाभी रम्भोरु र्भुजयुगपरिष्वंग्यजघना
परं या मामित्थं व्यथयति च नाश्वासयति च ॥—२८।१५
४. पृ० २९
५. पृ० ४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का वर्णन नाट्य-शास्त्रियों ने उचित माना ही है। वैवाहिक क्रिया सम्पन्न हो जाने पर यह स्वीया नायिका बन ही जाती है। यद्यपि यह कन्या है, फिर भी आदर्शवाद का पूर्ण रूप नायिका में विद्यमान हैं। जिस भरत के प्रति उसका पूर्वानुराग हो चुका है, उसके साथ ही वैवाहिक संस्कार होना अपेक्षित है। इसलिए जब वह यह सुनती है कि उसके भाई ने चक्रवर्ती भरत के साथ सुभद्रा के विवाह का निश्चय किया है, तब भरत चक्रवर्ती को अपने अनुरागी व्यक्ति से भिन्न समझकर व्याकुल होकर मूर्छित हो जाती है। उस समय उसके मन में यह लोभ नहीं आता कि मेरे भाई ने चक्रवर्ती राजा के साथ मेरे विवाह का निश्चय किया है। उसके हृदय में तो वही व्यक्ति सब कुछ है, जिसके साथ एक बार हृदय लग गया है और चक्रवर्ती कुछ नहीं। यद्यपि यह वही व्यक्ति था, जिसके साथ उसके भाई ने विवाह का निश्चय किया था। इस प्रकार सुभद्रा विद्याधर जगत का एक सार तथा श्रेष्ठ रत्न है[1] और एक अच्छी नायिका के सब गुण उसमें विद्यमान हैं।

देवी वैलाती—नाटिका की सृष्टि के लिए कनिष्ठा तथा ज्येष्ठा, दो नायिकाएं अपेक्षित रहती हैं। कवि हस्तिमल्ल ने सुभद्रा को नायिका बनाया, यह तो पुराणों के अनुसार प्रख्यात राजा भरत की पट्टरानी है ही, किन्तु पुराणों में चक्रवर्ती भरत की ९६००० रानियों का सामान्य उल्लेख होते हुए भी उनके नामों का उल्लेख नहीं है। इस प्रकार देवी वैलाती का विशेष रूप कवि की कल्पना से प्रसूत समझना चाहिए। यह राजा विलात की पुत्री और युवराज चक्रसेन की बहन है। प्रथम अंक में जब राजा भरत विदूषक के साथ अपनी विजय यात्रा सम्बन्धी बातचीत कर रहे हैं, तब उन्होंने मेघमुख देवों की विजय तथा वहाँ विलातराज की पुत्री के प्राप्त होने का उल्लेख किया है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में पृष्ठ १३२ पर इस बात का उल्लेख है कि नागमुख जाति के देवों की विजय के पश्चात् म्लेच्छ राज चिलात ने कन्या भी उपहार में भरत को दी थी। इस प्रकार मेरी समझ में यह वैलाती नहीं, बल्कि चैलाती होनी चाहिए। आदिपुराण में भी मेघों के द्वारा घनघोर वर्षा करके भरत की विजय में बाधा उत्पन्न करने पर भी जब राजा भरत की विजय हुई, तब चिलात और आवर्त नामक राजाओं ने शरण में आकर अनेक उपहार चक्रवर्ती को भेंट किये। दिग्विजय में वर्षा के बाधक होने का उल्लेख सुभद्रा नाटिका में भी है और उसके पश्चात् ही विलातराज पुत्री की प्राप्ति का उल्लेख है।[2] अतएव यह आदिपुराण तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (जंबूदीव पण्णत्ति संगहो) से साम्य है। कवि द्वारा च को व पढ़ लेने से ऐसा रूप बन गया प्रतीत होता है।

---

१. प्रदीयते मया तुभ्यं सारी विद्याधरौकसः। —१०।३५
अपश्चिमं रतमियं तवानुजा
वयस्य लब्धा मम मातुलात्मजा। १०।३६

२. मेघमुखैरूपजनितां प्रावृषमापातुकामतिक्रम्य
शरदिव हंसेन मया विलावराजात्मजाप्राप्ता। —५।११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा भरत ज्येष्ठा पत्नी वैलाती से शंकित रहते हैं और उसके प्रसन्न होने पर उसके द्वारा ही राजा को सुभद्रा प्राप्त करा दी जाती है। देवी वैलाती मध्या नायिका की श्रेणी में आती हैं। देवी वैलाती राजा के प्रति बार-बार शंकित होती है कि राजा का मन अन्य स्त्रियों की ओर तो नहीं जाता है? उसे कुछ ऐसे अपुष्ट तथा पुष्ट प्रमाण भी मिलते हैं, जिनसे राजा का नवानुराग किसी विद्याधर सुन्दरी कन्या के प्रति व्यक्त होता है, इसलिए मान भी करती है, फिर भी उसके हृदय में राजा के प्रति वैसी ही सहृदयता है, जैसी सहृदयता राजा के हृदय में ज्येष्ठा देवी के प्रति है। देवी वैलाती अपने मन में बराबर यही सोचने लगती है कि मैंने अनुचित क्रोध कर आर्यपुत्र के हृदय को सन्तप्त किया है।[1]

दूसरे अंक में भी जब राजा को सुभद्रा का चित्र देखते हुए पा लेती हैं और विदूषक उस बात को युक्तिपूर्वक छिपाने की चेष्टा करता है, तब विदूषक के सम्बन्ध में भी अपनी सहृदयता के कारण यही कहती है कि उस बेचारे को छोड़ दो, क्योंकि राजा का मनोविनोद करना ही विदूषक का काम है।[2]

मध्या नायिकाओं में भी देवी वैलाती कोप की स्थिति में धीरा की श्रेणी में आती है, क्योंकि राजा की अनुराग चेष्टा को देख लेने पर राजा के प्रति कोप तो करती है, पर उसका कोप केवल वचनों तक सीमित रहता है। व्यंग्य में राजा से यही कहती है कि जो तुम्हारी हृदयगत प्रिया है, उसे तुम चित्र में चित्रित कर देख रहे हो; मैंने इस यथार्थता को न जानते हुए तुम्हारा अनुवर्तन किया, इसलिए मेरा हृदय लज्जित है।[3] नाटिका की ज्येष्ठा पत्नी को मानिनी तो होना ही चाहिए। वैलाती भी प्रारम्भ के तीनों अंकों में मानिनी के रूप में दर्शकों के समक्ष आती है। तीसरे अंक में तो मान के कारण राजा को प्रणाम करके चली जाती है। राजा शून्य में ही प्रणाम करता रह जाता है।

रानी वैलाती चतुर भी है, क्योंकि राजा की अनुराग चेष्टाओं को सहज ही पहचान जाती है तथा औचित्य का इतना ध्यान रखती है कि उसकी चेटी यदि उपयुक्त बात कहती है तो वैलाती अपनी चेटी की बात को बराबर मान लेती है। तीसरे अंक में चेटी रतिषेणा रानी को समझाती है कि राजा जब तुम्हारे प्रति अपना असाधारण अनुराग प्रदर्शित करते हैं, तब तुम्हारा यही वल्लभत्व है कि तुम प्रियतम के अपराधयुक्त होने पर भी उनके प्रति प्रसन्न रहो, क्योंकि पुरुषों की दृष्टि अनेक स्थानों पर जाती ही है, विशेषकर राजाओं की दृष्टि।[4] चेटी की इस बात को रानी तुरन्त स्वीकार कर लेती है और चेटी के संकेतानुसार राजा के पास चली जाती है।

---

१. पृ० २०
२. पृ० ४१
३. पृ० ४०
४. पृ० ६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दारिका—सुभद्रा की अनेक सखियां हैं, जो विजयार्ध पर्वत के विभिन्न स्थलों पर विहार करती रहती हैं। उनमें सुभद्रा की हृदयनिर्विशेषा सखी मन्दारिका है, जो सदैव सुभद्रा के साथ रहती है तथा उसके हृदय की प्रत्येक बात को जानती है। सुभद्रा ने बालाशोक का संवर्धन करके उसमें पुष्पोद्गम के लिए पाद-प्रहार सम्बन्धी दोहद किया था, तब मन्दारिका ने भी मालतीलता में असमय में पुष्पोद्गम वाला दोहद किया था। इस प्रकार मन्दारिका का स्वभाव भी सुभद्रा के स्वभाव से प्रकृति प्रेम आदि के सम्बन्ध में मिलता-जुलता है।

मन्दारिका बातचीत करने में बड़ी निपुण है। मन्दारिका की बातचीत में वह विदुषी प्रतीत होती है। शृङ्गारिक हास-परिहास और व्यंग्य विनोद के लिए द्व्यर्थक बात कहती है। द्व्यर्थक होने पर भी कहीं बातचीत में दुरूहता नहीं है। मन्दारिका के कथन की कुशलता को समझकर सुभद्रा भी अपने मन में कह उठती है कि इसके संभाषण में कैसा चातुर्य है[1] तथा राजा भी मन्दारिका द्वारा प्रयुक्त श्लेष की प्रशंसा करता है।[2]

मन्दारिका का शकुन आदि पर पूर्ण विश्वास है तथा उसमें कुछ ऐसी सूझबूझ है कि वह कुछ बातों को आधार बनाकर जो अनुमान लगाती है, वह सत्य ही होता है। वह सुभद्रा को राजा भरत की प्राप्ति में आश्वासन देती हुई यह कहती है कि जब तुमने बालाशोक में चरण दोहद का उत्सव किया था, तब तुम्हारे प्रिय व्यक्ति ने भी दर्शन का उत्सव प्रदान किया था और बालाशोक ने जैसे-जैसे मुकुलोद्भेद के द्वारा राग (लालिमा) दिखाया, वैसे-वैसे ही राजा भरत ने भी अनुराग दिखाया और अब ज्योंही बालाशोक की उद्वाह विधि मालतीलता के साथ सम्पन्न होती है, वही विधि राजा की तुम्हारे साथ होने वाली परिणय विधि की शुभ सूचिका है—ऐसा समझो।[3]

सुभद्रा राजा के वियोग में जब बेचैनी का अनुभव करती है, तब इसी प्रकार की बातों से बराबर उसका मनोविनोद करती रहती है। मन्दारिका द्वारा सुभद्रा का जो मनोविनोद कुशलतापूर्वक किया जाता है, उसे देखकर राजा भरत भी कह उठते हैं कि सखियों को कामिनी स्त्रियों का शरण कहना उचित ही है।[4]

मालतीलता की उद्वाह विधि जब बालाशोक के साथ सम्पन्न होती है, उस समय कन्यादान का अभिनय करती हुई मन्दारिका ऐसे शब्दों का प्रयोग करती है जिससे सुभद्रा के प्रेमी के लिए सुभद्रादान का अर्थ भी अभिव्यंजित होता है और उस अवसर का लाभ उठाकर राजा आकर अपनेको कृतकृत्य मानता है। मन्दारिका कई बार सुभद्रा के सामने परिहास के अवसर उपस्थित कर नाटिका में सरसता उत्पन्न करती है। मालतीलता की वैवाहिक क्रिया के पूर्ण होने पर जब राजा

---

१. पृ० ३०
२. पृ० ६०
३. पृ० ५८
४. स्थाने हि सख्यः कामिनीनां शरणम्। —पृ० ५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपस्थित होकर सुभद्रा से अपना हाथ का आलम्बन लेने को कहता है, तब सुभद्रा लज्जावश मन्दारिका का अवलम्बन लेती है। मन्दारिका सुभद्रा से कहती है—इन्हीं का अवलम्बन लो न! इसी प्रकार जब सुभद्रा कुपित होने का अभिनय करती है, तब राजा उसकी सखि मन्दारिका से उसको मनाने के लिए कहता है; तब मन्दारिका राजा से कहती है—आप स्वयं ग्रहण करके मना लीजिये न!

राजा लाक्षायुक्त पद की पंक्ति को देखता हुआ ही उस स्थान पर पहुँचा था, जहाँ सुभद्रा और मन्दारिका थीं। वह तुरंत भाँप जाती है कि राजा सुभद्रा के पद में लगे हुए अलक्तक के चिह्नों को देखता हुआ यहाँ आया होगा।

सुभद्रा अपने प्रियतम के विषय में चिन्तित है। मन्दारिका उसकी चिन्ता को भाँप कर तुरन्त उसका मन बातचीत के द्वारा बहलाने लगती है और बराबर उसे विश्वास दिला देती है कि निमित्त (शकुन) प्रतिदिन तुम्हारे अनुकूल हो रहे हैं; इसलिए तुम चिन्ता न करो।[1]

इस प्रकार मन्दारिका सुभद्रा के साथ रहती हुई कथानक में गति देती है। सुभद्रा के चरित्र पर प्रकाश डालती है तथा सुभद्रा के प्रणय कार्य में पूरा-पूरा योग देती है।

रतिषेणा—जैसी सुभद्रा की सखी मन्दारिका सुभद्रा की सहायिका है, उसी प्रकार देवी वैलाती की सहायिका रतिषेणा है। पर यह मन्दारिका जैसी रानी के निकट नहीं है। यह तो रानी वैलाती की चेटी है। वह रानी की आज्ञापालिका है और पुरुषों तथा स्त्रियों के स्वभाव से परिचित है और वह रानी को सदैव उचित सम्मति दिया करती है।

चेटी रतिषेणा के साथ जब रानी वैलाती आर्यपुत्र के दर्शनार्थ जाती है, तब मार्ग में अलक्तक रस से चिह्नित पदपंक्ति देखकर रानी असमय में मान करके लौटना चाहती है, तब रतिषेणा रानी से कहती है—यहाँ तो विद्याधरियाँ भ्रमण करती ही रहती हैं; इतने मात्र से राजा को क्यों अपराधी मान लेती हो?

तीसरे अंक में चेटी जब रानी के क्रोध को राजा के प्रति बढ़ा हुआ देखती है, तब रानी को उचित सम्मति देती है कि तुम्हारे प्रति असाधारण अनुराग दिखाने वाले राजा क्षमा के पात्र हैं, क्योंकि स्त्री की यही पतिप्रियता है कि अपराधी पति के प्रति भी प्रसन्नता व्यक्त करनी चाहिए।[2]

वह रानी को एक ओर नेक सलाह देती है, दूसरी ओर उसकी आज्ञापालिका होकर उसके कहने से विदूषक को पहले बाँधकर फिर रानी के कहने पर प्रसन्नता से छोड़ देती है। एक गुण उसमें यह है कि वह पुरुषों की आदत पहचानती है कि

---

१. पृ० ५१
२. पृ० ६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी दृष्टियाँ अनेक स्त्रियों के प्रति जाती हैं। विशेषकर राजाओं की दृष्टियाँ तो अनेक नायिकाओं के प्रति जाती ही हैं।[1]

मंजरिका—यह सुभद्रा की प्रथम चेटी है, जिसे राजकुमारी सुभद्रा ने बालाशोक और मालतीलता की उद्वाह विधि के लिए अपेक्षित अर्धकमलों के लाने का कार्य सौंपा है। वह उसका पालन करने जाती है। जाने के पूर्व तरंगिका के साथ उसकी कुतूहलपूर्ण स्वाभाविक बातचीत होती है; जिसका विषय है कि जब बालाशोक के पुष्पोद्गम से प्रसन्नता होनी चाहिए, सुभद्रा की आकृति मलीन क्यों हैं? इसके अतिरिक्त मन्दारिका तथा सुभद्रा को यह समाचार मंजरिका ने ही सुनाया था कि महाराज नमि राजकुमारी सुभद्रा को चक्रवर्ती भरत के लिए प्रदान करेंगे।[2]

उपर्युक्त कार्यों से मंजरिका प्रवेशक के पात्र के रूप में सुभद्रा के परिणय विधि की सूचना देती है तथा उसमें तरंगिका की अपेक्षा किसी रहस्य के गोपन की प्रवृत्ति अधिक है। इसके साथ ही उसमें इस बात की उत्सुकता है कि किसी प्रिय समाचार को जल्दी सुनाने का अवसर मैं प्राप्त करूँ। इसीलिए वह चक्रवर्ती भरत को सुभद्रा के दिये जाने का समाचार आगे पहुँच कर सुना देती है।

तरंगिका—यह सुभद्रा की दूसरी चेटी है, जो तृतीय अंक के प्रवेशक में मंजरिका के साथ बातचीत करती हुई दर्शकों के समक्ष आती है। तरंगिका को बालाशोक और मालतीलता की विवाह विधि के लिए सखियों को बुलाने का कार्य सौंपा गया है। मंजरिका के साथ तरंगिका की जो बातचीत हुई है, उससे ज्ञात होता है कि तरंगिका में मंजरिका की अपेक्षा कुछ चुलबुलापन है, जबकि मंजरिका में गंभीरता अधिक है। वह सुभद्रा की परिवर्तित शारीरिक अवस्था के सम्बन्ध में जिज्ञासु भी है और उसे इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी है।

इस प्रकार इन पात्रों का नाटिका में जैसा रूप अपेक्षित था, वैसा ही अल्प दर्शन इनका नाटिका में चित्रित है।

नाटकीय पात्रों के नाम

नाट्यदर्पण के चतुर्थ विवेक की २०६, २०७वीं कारिका में कल्पित पात्रों के नामों के सम्बन्ध में विधान बताया गया है। यद्यपि यह ऐसा कठोर नियम नहीं है कि कल्पित पात्रों के नाम इनसे भिन्न नहीं हो सकते हैं, फिर भी संस्कृत नाटककार प्रायः इनका पालन करते रहे हैं। हस्तिमल्ल की नाटिका सुभद्रा में नायिका का नाम सुभद्रा पौराणिक अतएव ऐतिहासिक नाम ही है; फिर भी कवि ने अपनी कथावस्तु के लिए ऐसी नायिका चुनी है, जिसका नाम संयोग से नाट्यदर्पण के

---

१. पृ० ६३
२. पृ० ६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुसार राजा की स्त्री का नाम शुभ या मंगलसूचक होना चाहिए। सुभद्रा ऐसा ही नाम है, जो राजा भरत की महिषी है।

इसी प्रकार राजा भरत का सेनापति भी ऐसा ही व्यक्ति है, जो शूरवीर है, क्योंकि राजा भरत ने केवल दो खण्ड ही जीते थे, पर अयोध्य सेनापति ने चार खण्ड विजित कर राजा को षट्खण्ड-विजयी बना दिया था। अयोध्य ऐसा नाम है जो पराक्रम सूचक है। इससे एक ओर यह विदित होता है कि पहले पौराणिक नाम इस प्रकार कुछ सार्थक से होते थे तथा इस प्रकार के नामों का प्रयोग पुराण इतिहास में देखकर ही नाट्यशास्त्र ने इस तरह के नामों की कल्पना का विधान किया है।

सुभद्रा नाटिका के विदूषक का नाम कात्यायिन है। नाट्यदर्पण के अनुसार विदूषक का नाम ब्राह्मण के गोत्र या कर्म के अनुरूप होना चाहिए। कात्यायिन नाम ब्राह्मण के गोत्र के अनुसार कवि ने कल्पित किया है।

सुभद्रा की चेटियों के नाम मंजरिका तथा तरंगिका भी कल्पित नामों के विधान के अनुकूल हैं। पुष्पलता या तरंगवाली शब्दों के अनुसार रखा जा सकता है।

वैसे प्रयोजन के अनुसार भी नाम रखने की स्वतंत्रता नाट्यशास्त्र के ग्रंथों ने नाटककारों को दी है। इसके अनुसार कंचुकी का नाम पुरुषदत्त तथा दूसरा नाम तार्द्यदत्त एवं सुभद्रा की सखी का नाम मन्दारिका रखा गया है। इन नामों के रखने में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि नामों के रखने में दृढ़ता से नियम पालन अपेक्षित नहीं है। नाट्यशास्त्र के आलोचना के शास्त्रीय सिद्धान्त निर्णयात्मक आलोचना में राजकीय नियम की तरह भले ही लागू होते हों, किन्तु व्याख्यात्मक आलोचना में इनका पालन अनिवार्य नहीं है। उसका कारण यह है कि इन नियमों को परिवर्तनशील माना जाता है।[१] यही प्रक्रिया अन्य नियमों पर चरितार्थ होती है।

कथोपकथन एवं भाषा

कथोपकथन का नाटक में अत्यधिक महत्त्व होने के कारण पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रियों ने इसे नाटक का एक पृथक् तत्व स्वीकार किया है। यद्यपि भारतीय साहित्यशास्त्र में या संस्कृत साहित्यशास्त्र में कथोपकथन को पृथक् तत्व नहीं माना है, फिर भी उसे महत्त्वपूर्ण माना गया है तथा उसका अन्तर्भाव वस्तु तत्व में किया गया है। सर्वश्राव्य अपवारित आत्मगत तथा आकाशभाषित कथोपकथन के ही रूप हैं। इनका प्रयोग हस्तिमल्ल ने किया है।

नाटकों का जो चार प्रकार का अभिनय बताया गया है, उसमें वाचिक अभिनय कथोपकथन का ही दूसरा रूप समझना चाहिए। कथोपकथन या संवाद की जो विशेषताएं संस्कृत के साहित्यशास्त्रियों तथा पाश्चात्य साहित्यशास्त्रियों ने स्वीकार की हैं, वे सभी हस्तिमल्ल की नाटिका सुभद्रा में प्राप्त होती हैं।

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० २९९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशरूपक, नाट्यदर्पण तथा साहित्यदर्पण[1] आदि नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों के अनुसार उत्तम तथा मध्य श्रेणी के पुरुष पात्रों का संवाद संस्कृत भाषा में होता है। सुभद्रा नाटिका में राजा भरत जो नायक उत्तम पात्र हैं, संस्कृत बोलते ही हैं। उनके अतिरिक्त उनके साले नमि, उनका सेनापति अयोध्य, सुभद्रा, आगमन समाचार प्रेषक दूतमुख्य तार्क्ष्यदत्त—ये मध्यम पुरुष पात्र भी संस्कृत बोलते हैं। कंचुकी पुरुषदत्त भी संस्कृत बोलता है। वह भी सांसारिक भोगों से उदास तथा तपस्या की ओर रुचि रखने वाला मध्यम पुरुष पात्र है।

विदूषक शौरसेनी प्राकृत भाषा बोलता है, क्योंकि नाटकों की परम्परा में राजा का सहायक अभिन्न मित्र विदूषक शौरसेनी प्राकृत-भाषी होता है।

स्त्रियों के लिए प्राकृत बोलने का विधान नाट्यशास्त्र के ग्रंथों में है।[2] सुभद्रा नाटिका में कनिष्ठ सुभद्रा तथा ज्येष्ठा रानी वैताली के अतिरिक्त जो भी अन्य स्त्री पात्र हैं, वे सभी मध्यम स्त्री पात्रों की श्रेणी में आते हैं। मध्यम स्त्री पात्रों के लिए भी शौरसेनी भाषा के प्रयोग का विधान नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में है। इसलिए सुभद्रा नाटिका के सभी स्त्री पात्र शौरसेनी प्राकृत भाषाभाषी हैं। सूत्रधार संस्कृत तथा नटी शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग करती है।

सम्बोधन—नाट्यशास्त्र में सम्बोधन के प्रकार भी बता दिये गये हैं। हस्तिमल्ल ने उन सम्बोधनों के प्रकारों का भी पात्रों के संवादों में पालन किया है।

दशरूपक के अनुसार सूत्रधार को नटी के लिए आर्ये तथा नटी को सूत्रधार के लिए आर्य शब्द से सम्बोधित करना चाहिए। सुभद्रा नाटिका की प्रस्तावना में ऐसा ही हुआ है।

अन्य सम्बोधन सुभद्रा नाटिका में निम्न प्रकार हैं और वे सम्बोधन नाट्यदर्पण[3] आदि नाट्यशास्त्रों में बताये अनुसार हैं। विदूषक राजा को वयस्य तथा राजन् शब्द से सम्बोधित करता है। विदूषक देवी को अत्रभवति शब्द से, तथा सुभद्रा कनिष्ठा नायिका को भवति शब्द से सम्बोधित करता है। ज्येष्ठा देवी आयु में बड़ी होगी, इसलिए उनके लिए अत्रभवति सम्बोधन उचित है। राजा विदूषक को वयस्य तथा सखे शब्द से, सुभद्रा को पूर्वराग की स्थिति के कारण सुन्दरि शब्द से, रानी वैलाती को देवि शब्द से, सुभद्रा की सखी मन्दारिका को भद्रे तथा अत्रभवती शब्दों से (नायिका सुभद्रा की सखी को भद्रा का प्रयोग अर्थ साम्य से भी अनुकूल है) अपने सेनापति को आर्य शब्द से तथा प्रतीहारी जित्वरिका को उसके नाम जित्वरिके शब्द से सम्बोधित करता है। सेनापति दूत तार्क्ष्यदत्त, विद्याधरराज नमि तथा वैतालिक राजा को देव शब्द से सम्बोधित करते हैं।

---

१. साहित्य दर्पण ६।१५८, नाट्य दर्पण ४।१९२ और दशरूपक २।६४

२. नाट्यशास्त्रम् १८।३९ (चौखम्बा संस्करण)

३. नाट्य दर्पण विवेक ४, कारिका १९६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिहारी और कंचुकी सेवक हैं, अतएव राजा को महाराज शब्द से सम्बोधित करते हैं। देवी वैलाती विदूषक को आर्य तथा कात्यायन राजा को आर्यपुत्र तथा चेटी रतिषेणा को हंजे तथा उचित परामर्श देने पर प्रिय सखि शब्द से सम्बोधित करती है। मन्दारिका सुभद्रा को प्रिय सखि शब्द से, विदूषक को आर्य शब्द से सम्बोधित करती है। मन्दारिका सुभद्रा से आयु में भी बड़ी होगी, तभी वह सुभद्रा की प्रिय सखि शब्द से सम्बोधित करती है तथा राजा भी उसे अत्रभवती शब्द से सम्बोधित करता था। चेटी देवी को भट्टिनी शब्द से सम्बोधित करती है तथा मंजरिका सुभद्रा को भर्तृदारिका शब्द से सम्बोधित करती है। मंजरिका और तरंगिका सखियों में तरंगिका छोटी होगी; इसीलिए मंजरिका तरंगिका का नाम लेकर सम्बोधित करती है तथा तरंगिका मंजरिका को हंजे शब्द से सम्बोधित करती है।

ये सभी सम्बोधन नाट्य नियमों के अनुकूल हैं। भाषा की दृष्टि से कुछ प्रयोग अपाणनीय भी हैं। जैसे रूच् धातु के योग में पाणिनीय नियम से रूच्यार्थानां प्रीयमाणः सूत्र के अनुसार रुच् धातु के प्रयोग में चतुर्थी विभक्ति होती है, किन्तु प्रियसख्याः रोचते का प्रयोग संस्कृत छाया में किया गया है।

आधुनिक आलोचक यह मानते हैं कि कथोपकथन सप्रयोजन होना चाहिए। संवादों की प्रयोजकता को ध्यान में रखते हुए भी सुभद्रा नाटिका के संवाद छोटे छोटे हैं जो नाटिका के और श्रृंगार रस के अनुकूल हैं। गंभीर हृदय विद्वान ही मितभाषी पात्रों की रचना कर सकते हैं। इस बात की पुष्टि स्वयं कवि ने सुभद्रा नाटिका में नमि के संवाद से करा दी है।[1] सुभद्रा के पात्र वावदूक नहीं हैं, इसलिए महान हैं, जो व्यर्थ की बातचीत नहीं करते हैं। ये संवाद या तो कथावस्तु को आगे बढ़ाते हैं या पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं तथा सजीवता लाकर सरसता पैदा करते हैं। ये संवाद के अपेक्षित गुण हैं।[2] छोटे संवादों के कारण इनमें माधुर्य तथा प्रसाद गुण हैं, जिससे दर्शक का मन ऊबता नहीं है। इन्हीं छोटे तथा सरल संवादों के कारण सुभद्रा नाटिका केवल पठनीय न होकर, दर्शनीय भी है।

चरित्रानुकूल—आधुनिक आलोचक विद्वान संवाद का एक गुण यह मानते हैं कि संवाद से या तो पात्र के स्वयं के चरित्र पर प्रकाश पड़ता हो या दूसरे पात्र के चरित्र का उद्घाटन होता हो। चूंकि सुभद्रा नाटिका के सभी संवाद सार्थक हैं, इसलिए उनमें यह गुण विद्यमान है।

तृतीय अंक के प्रवेशक में सुभद्रा की दोनों चेटियाँ परस्पर में बातचीत कर रही हैं। दूसरी चेटी तरंगिका कहती है—सखि, तुम रहस्य को छिपाना भलीभांति जानती हो, जो कि पूछे गये रहस्य को मुझसे ही पूछती हो; तो भी मैं तुम्हारी तरह अपना अभिप्राय छिपाने में समर्थ नहीं हूं।[3]

१. परिजनसुलभचापलं मां मुखरयति अथवा
कुतो हि मितभाषिता लघुचेतसाम्। (पृष्ठ ८६)

२. काव्य के रूप, पृष्ठ ४७

३. पृष्ठ ४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे विदित होता है कि मंजरिका गंभीर स्वभाव की है, जो रहस्य को जानते हुए भी शीघ्र प्रकट नहीं करती है और तरंगिका भाव छिपाने में असमर्थ है, वह हृदय की बात प्रकट कर देती है। इस तरह के अनेक संवाद सुभद्रा नाटिका में हैं, जो चरित्रों पर प्रकाश डालते हैं।

घटनानुकूल—संवादों की अन्य विशेषता उनका घटना के विकास में योग देना है।[1] कथावस्तु लिखते समय लिखा जा चुका है कि संवाद के कारण घटनाएँ विकसित हुई हैं। उदाहरण के लिए दूसरे अङ्क में राजा सुभद्रा का चित्र बनाकर जब विदूषक के साथ बातचीत कर रहा है, तब विदूषक चित्र की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि आलेख्य की दर्शनीयता आश्चर्यजनक है। ऐसा लगता है वही (सुभद्रा) स्वयं आकर उपस्थित हो गयी हो। विदूषक के ऐसा कहने पर राजा को पिछले दिन सुभद्रा की सखी द्वारा पुनः आने के किये गये प्रस्ताव का स्मरण हो जाता है तथा सुभद्रा और मन्दारिका उधर आ पहुँचती हैं। इस तरह अनेक संवाद घटनाओं को आगे बढ़ाने में अपना योग देते हैं।

सजीवता—कथोपकथन का एक गुण यह हो कि वे छोटे होकर भी शिथिल न हों, सजीव हों तथा अर्थपूर्ण हों। वैसे राजा जब अपने सजीव तथा सरस कथन से प्रथम अङ्क में सुभद्रा के चरण कमल से अर्चित वालाशोक की अशोकता को उचित बताता है और चरणार्चन के पूर्व की अशोकता को शोच्य बताता है, तभी सुभद्रा अपने हृदय में कह उठती है अरे इसके संभाषण में भी कुशलता है।[2] सुभद्रा की वस्तु का न्यास जहाँ कुशलता से हुआ है, वहाँ सुभद्रा के संवादों में भी कुशलता है। भाषा सौन्दर्य भी दर्शनीय है। भाषा की सरसता तथा सरलता का एक उदाहरण देखिये।[3] सरल श्लेष प्रयोगों के द्वारा पाठक की रुचि को बरावर जाग्रत रहने का अवसर मिलता रहता है।[4]

द्वितीय अङ्क में विदूषक राजा से कहता है कि समस्त भूमण्डल को जीतने वाले आप किसी अपरिचित स्त्री के द्वारा इस प्रकार (बिना किसी युद्धादि किये) जीत लिये गये, यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। राजा उत्तर देता है—इतना कहना ही पर्याप्त नहीं है, उस (सुभद्रा) ने स्वाभाविक सुन्दर शरीर से सम्पूर्ण वसुधा को यों ही जीत लिया है। इस तरह संभाषण में सरसता भी है।

---

१. सफल कथोपकथन वही होता है, जो कि या तो कथाक्रम के अग्रसर करने में सहायक हो या चरित्र पर प्रकाश डाले। (काव्य के रूप, पृष्ठ ४७)

२. अहोऽसंभाषणेऽपि कौशलम्। (पृष्ठ १५)

३. मन्दारिका—अथ च यथा त्वं तद्दर्शनात् प्रभूति उन्मनायमाना न तावद् रमणीयेरमसे न निशायामपि निद्रासुखमनुभवसि, शयनीयादपि शून्यशून्यमुत्तिष्ठसि न कुत्रापि मुहूर्तं सुस्थिता भवसि, पुनः पुनः वालाशोकवृतान्तच्छलेनोन्मत्तेव तद्दर्शनभूमिं स्मरसि। इत्यादि (पृष्ठ ३२)

४. पृष्ठ २९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अङ्क में विदूषक सुभद्रा से कहता है—जिस राजा के लिए चारों समुद्र पर्यन्त की पृथिवी समुचित कर (टैक्स) देती है, उसे तुम कर पात्र (हस्त) भी नहीं दे सकती हो ? इस तरह यमक का बड़ा सुन्दर तथा सरल प्रयोग भाषा की क्षमता को बढ़ा देता है।

तृतीय अङ्क में मन्दारिका मालतीलता रूपी कन्या का दान बालाशोक के लिए करती हुई कहती हैं—पार्थिवराज, यह अपनी प्रियसखी तुम्हें प्रदान की गयी है। पार्थिवराज शब्द वृक्ष तथा राजा, दोनों का वाचक होने से इसका प्रयोग तथा एषा सर्वनाम का प्रयोग बड़ा उपयुक्त हुआ है। इस श्लेषपूर्ण संवाद की प्रशंसा राजा भरत के शब्दों के साथ मैं भी कहूँगा कि यह बड़े सुन्दर श्लेष का प्रयोग किया गया है[1] तथा सुभद्रा द्वारा कहे गये शब्दों का समर्थन ही किया जायगा कि हस्तिमल्ल तथा उनके पात्रों का वाक् कौशल अद्‌भुत है।[2]

सुभद्रा के पात्र चर प्राणियों से ही नहीं, अचर प्राणियों से भी संलाप करते देखे जाते हैं। राजा अशोक वृक्ष से भी संवाद करता है। अशोक से राजा कहता है कि तुम्हारा कुसुमोद्‌भेद शोभनफल वाला है तथा संवाद में जहाँ अशोक को कान्ता (मालतीलता) की शीघ्र आराधना का अवसर मिलने वाला है, उसी कथन से राजा के लिए भी यह शुभ परिणाम का सूचक है कि राजा को भी विशेष सुन्दरी कान्ता (सुभद्रा) की आराधना का अवसर मिलने वाला है।[3]

द्वितीय अंक का सुभद्रा तथा मन्दारिका का संवाद भी बड़ा सरस तथा शब्दार्थों के उचित सामंजस्य वाला है। उसमें सुभद्रा ने स्वगत स्वीकार किया है कि इस मन्दारिका का वचन अर्थान्तर गर्भित-सा है।[4] आलोचकों को भी स्वीकार करना होगा कि इस नाटिका के संवाद कई स्थानों पर अर्थान्तर गर्भित हैं। इसी स्थान पर मन्दारिका का यह कथन कि प्रिय वह (बालाशोक, राजा) तुम्हारे लिए सर्वथा इस समय राग (लालिमा, अनुराग) दिखायेगा, जिससे शीघ्र उद्वाह विधि हो सके। इसी समय मन्दारिका यह भी कहती है कि हमारी भी (लता—सखी) अभी दिखायी गयी पाण्डिमा से रमणीय अपूर्व के समागम से दुगुनी शोभावाली प्रफुल्लित (विकसित—हर्षित) होती हुई इस (बालाशोक—राजा) के स्कन्ध (तने—कन्धे) से शीघ्र लगने वाली है। ऐसे संवादों को साधारण दर्शक समझ सकते हैं और सुभद्रा की तरह स्वीकार कर सकते हैं कि वक्र भाषण की चतुराई पात्रों तथा रचयिता में है।[5]

---

१. राजा—अहो अभिजातश्लेषोपन्यासः (पृष्ठ ६०)

२. सुभद्रा—अहो वाक्कौशलम्। (पृष्ठ ६०)

३. राजा—(अशोकं प्रति) शोभनफलश्च ते कुसुमोद्‌भेदः येन
वतंसयन्तीं सरसं प्रवालमुत्तसयन्तीं स्तवक विनिद्रम्।
विन्यस्तपुष्पाग्र विशेषकान्तामाराधयिष्यस्यचिरेण कान्ताम्। (९।२३)

४. अर्थान्तरगर्भितभिवास्या वचनम्। (पृष्ठ २९)

५. अहो वक्रभाषिते वैदग्ध्यम्। (पृष्ठ ३०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अंक में मन्दारिका द्वारा बालाशोक को मालतीलता के प्रदान कार्य के समय का कथोपकथन भी बड़ा कुशलतापूर्ण, रोचक, सजीव तथा सुन्दर शब्दार्थ सामञ्जस्य वाला है। इस प्रकार सुभद्रा नाटिका के संवाद सुन्दर हैं।

रसाभिव्यंजना तथा काव्य सौन्दर्य

काव्य का प्राण रस माना गया है। नाटिका में मुख्य रस शृङ्गार होता है। सुभद्रा नाटिका का मुख्य रस शृंगार है। दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में मन्दाकिनो विजयार्धं संगम पर राजा तथा विदूषक की प्रकृति के सुन्दर स्थलों के दृश्यों के सम्बन्ध में वार्ता चल रही है, किन्तु उस वार्ता में प्रकृति के उन-उन रूपों पर नायक नायिका का आरोप होता है तथा उन वर्णनों में शृंगार रस की अभिव्यंजना होती है।

राजा प्रकृति के उद्दीपन दृश्य देखकर विदूषक से कहता है कि अपरान्त की भूमि देखकर किसका चित्त कौतुक युक्त उत्कण्ठित न हो जायगा? मैं यह कहूँगा कि इन वर्णनों को पढ़कर किसका चित्त उत्कण्ठित न हो जायगा, यही कवि का संकेत है। उन्मग्नजला नदी तथा निमग्नजला नदी के संकट पार कर लेने की चर्चा भी विदूषक उसी प्रसंग में करता है। राजा को उनमें से उन्मग्नजला नदी नवीन प्रिया जिस प्रकार युवक के मन को उन्नमित करती है, उसी प्रकार जल को उन्नमित करती हुई तथा निमग्नजला नदी जल को वैसे ही नीचे गिराती हुई दिखती है, जैसे ज्येष्ठा नायिका युवक के मन को अवनमित कर देती है।[1]

वेदीवन में पहुँचने पर दक्षिण वायु आम्रयष्टि के स्तवक रूपी मुख का चुम्बन करती हुई (वायु शब्द संस्कृत में पुल्लिंग होने से नायक का व्यवहार हो जाता है) हठपूर्वक जिसके भ्रमररूपी बाल खींच लिये गये हैं, ऐसी आम्रयष्टि के पुष्प सम्बन्धी चूर्ण को बिखरा देती है; जिसके भीतर भ्रमरगण गुंजन कर रहे हैं—ऐसा पल्लव कल्पित हो रहा है तथा यह पल्लव ऐसा लगता है, जैसे उस आम्रयष्टि रूपी नायिका का फटकारा गया हाथ हो, जिसके पुष्परूपी अधर का दंशन किया गया हो।[2]

दक्षिण वायु में दक्षिण नायक की कल्पना सरलता से ही हो जाती है। रूपक द्वारा नायक नायिका की अभिव्यंजना करके नायिका आलम्बन, दक्षिण वायु उद्दीपन, चुम्बन आदि अनुभाव, औत्सुक्यादि आक्षिप्त संचारी भावों से संयोग शृंगार की व्यंजना की गयी है।

---

१. पृ० ५।१०

२. चुम्बन वायुः स्तबकवदनं दक्षिणश्चूतयष्ट्याः
पौष्पं चूर्णं विकिरति हठाकृष्टभृंगालकायाः
अन्तर्गुंजन्मधुपवलयः पल्लवो वेपतेऽसौ
हस्तस्तस्या धुत इव मुहुर्दष्टपुष्पाधरायाः॥ —(७।१६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम अंक में आरम्भ से ही संयोग शृंगार की व्यंजना है। सुभद्रा को देखकर विधाता के निर्माण कौशल की प्रशंसा करते हुए राजा ने यही शब्द कहे हैं कि सब रसों में शृंगार रस को मुख्य देखकर उस शृंगार रस के अनुकूल पात्र यह सुभद्रा विधाता द्वारा रची गयी है तथा इस सुभद्रा के विशिष्ट गुणों के कारण ही शृंगार नाम का रस रचित है।[1]

इसमें इस नाटिका के रचयिता के निर्माण कौशल के वैशिष्ट्य की व्यंजना है कि उसके शृंगार रस को मुख्य देखकर उस रस का आधार यह नाटिका रची है तथा इस नाटिका के माधुर्य और प्रसाद गुणों के कारण ही यहाँ शृंगार रस अभिव्यक्त हुआ है; क्योंकि माधुर्य गुण से शृङ्गार विशेष रूप से आस्वादजनक होता है।

संयोग शृङ्गार ही इस नाटिका का अंगीरस है, अतएव इसकी व्यंजना पूरी नाटिका में है। संयोग शृङ्गार के प्रमुख स्थल निम्न हैं।

जब राजा चित्रलेखन में सुभद्रा का चित्र देख रहा है, उसे उस समय ऐसा अनुभव हो रहा है जैसे साक्षात् सुभद्रा उसकी समीपवर्तिनी हो। राजा स्वयं कहता है कि उस मृगनैनी के प्रतिबिम्ब को स्वतंत्रता से देखते हुए मेरा मन उसी प्रकार प्रसन्न हो रहा है, जैसे मैं उसके समीप हूँ।[2] काव्यशास्त्र में संयोग शृंगार की स्थिति वहीं मानी गयी है, जहाँ नायक अपने को नायिका से संयुक्त अनुभव करे तथा एक आसन या स्थान पर नायक नायिका के रहते हुए भी यदि वे किसी ईर्ष्या भावादि से वियुक्त होने का अनुभव करें, तो विप्रलंभ शृङ्गार माना जाता है।[3]

सुभद्रा भी राजा को अपना चित्रदर्शन करती हुई देखती है और संयोग का अनुभव करती हुई स्वगत कहती है—हे हृदय, क्या अब भी सन्तोष का अनुभव नहीं करते हो? तथा अपनी सखी मन्दारिका से कहती है कि मैं इसकी गोद में अपना चित्र देखती हुई यहां रुकने में लज्जा का अनुभव करती हूं। स्पष्ट है कि उसे ऐसा भान हो रहा है कि इसकी उत्संग में मेरा चित्र क्या है, मैं ही होऊं और उसे इस प्रकार शृंगारजनित सुखानुभूति हो रही है।

द्वितीय अंक में ही जहां रानी के जाने के बाद पुनः राजा को सुभद्रा मिल जाती है और राजा सुभद्रा का कर-ग्रहण कर लेता है, तब भी वह अपना हाथ छुड़ाना चाहती है। राजा उसके हाथ न छोड़ने में युक्ति देता है कि जिस तुमने मेरे

---

१. शृङ्गारमालोक्य रसेषु मुख्यं तस्योचित्तं पात्रमियं नु सृष्टा।
अस्या विशिष्टान्नु गुणान् विलोक्य शृङ्गारनामा रस एष सृष्टः। (१२।२८)

२. पश्यतो मे प्रतिच्छन्दं स्वच्छन्दं हरिणीदृशः।
साक्षात् तत्पार्श्ववर्तीव, परं चेतः प्रसीदति॥ (३५।१६)

३. रस गंगाधर (प्रथम आनन), पृष्ठ १३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धैर्य सर्वस्व को मिटा कर मेरा मन चुरा लिया है, भाग्य से किसी प्रकार दिखाई दी; अब तुम्हें कैसे छोड़ा जाय ?[1]

तृतीय अंक में मन्दारिका द्वारा बालाशोक को मालतीलता के प्रदान किये जाने के पश्चात् राजा स्वयं पहुँच जाता है और कहता है कि जिस (राजा, बालाशोक) को तुमने यह (सुभद्रा, मालतीलता) प्रदान की है, वह (मैं, बालाशोक) अत्यन्त कृत-कृत्य है तथा इस (बालाशोक, मैं) ने भी इस (सुभद्रा, मालतीलता) को अपना समर्पण कर दिया है।[2] इसके बाद राजा सुभद्रा से कहते हैं कि मुरझाये मृणाल की तरह सुकुमार तुम्हारा शरीर अत्यन्त सन्तप्त हो रहा है; इसलिए हे नितम्बिनी, लज्जा को त्यागकर मेरे हाथ का अवलम्बन करो।[3] इसके बाद सुभद्रा के कर-ग्रहण का अवसर राजा प्राप्त करता है। सुभद्रा लज्जित होकर मन्दारिका को देखने लगती है।

यहां सुभद्रा श्रृंगार का आश्रय, राजा आलम्बन विभाव, शरीर का सन्तप्त होना अनुभाव तथा लज्जा व्यभिचारी भाव से श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति होती है। दर्शकों, पाठकों को भी साधारणीकरण द्वारा श्रृंगारानुभूति होना स्वाभाविक है।

तृतीय अंक में अन्त में जब सुभद्रा यह समाचार सुनकर मूर्च्छित हो जाती है कि मेरे भाई ने राजा को मुझे प्रदान करने का निश्चय किया है, तब मन्दारिका घबड़ाकर सुभद्रा को बचाने के लिए आक्रन्दन करने लगती है। आक्रन्दन सुनकर राजा वहां पहुँच जाता है। राजा के पहुँचने से उसकी मूर्च्छा दूर हो जाती है। राजा के इस सहर्ष कथन से संयोग श्रृंगार की व्यंजना होती है कि जब सुभद्रा मूर्च्छित थी, तब मुझे भी मूर्च्छा-सी आ रही थी तथा अब सुभद्रा के सचेत हो जाने से मैं तथा कामदेव दोनों ही समाश्वासन पा गये हैं।[4] जब सुभद्रा सखीजन की बात सुनकर चली जाती है, उसके पश्चात् के राजा के उत्कण्ठायुक्त कथन से ज्ञात होता है कि सुभद्रा के निश्वासों द्वारा राजा का पान भी किया गया था और कम्पन भी किया गया

---

१. उन्मूल्य धैर्यसर्वस्वं यया मे चोरितं मनः।
सैयं दैवान्मया दृष्टा कथमद्य विमुच्यसे ॥ —४४।२४

२. एषा तव प्रियसखि स्वयमेव दत्ता
यस्मै त्वया ननु स एव परं कृतार्थः
अभ्यर्थनं तु तव तत् पुनरुक्तमासी-
दस्यै यदित्थममुनाऽपि च दत्त आत्मा ॥ —६२।१६

३. इयं परिम्लानमृणालकोमला तवांगयष्टिर्भृशमद्य ताम्यति।
तदेहि लज्जाव्यसनं विमुंचती ममावलम्बस्व करं नितम्बिनि ॥ —६२।१७

४. जातश्चकोरदृशि मोहमुपागतायां
तीव्राभिषंगबहुलो मम कोऽपि मोहः।
लब्धं समाश्वासनमद्य समाश्वसंत्या
मस्यां मया च विधुरेण च मन्मथेन ॥ —७०।२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था।[१] राजा के कथन से तो उसे सुभद्रा को सान्त्वना देने के बहाने सुभद्रा का आलिंगन-सुख ही प्राप्त हो गया था।[२]

इस प्रकार संयोग शृंगार के अनेक स्थल तो हैं ही; नाटिका की समाप्ति राजा को सुभद्रा की स्थायी प्राप्ति के साथ होती है, जबकि राजा नमि से कहते हैं कि तुम्हारी इससे बड़ी भेंट क्या हो सकती है कि सर्वोत्तम रत्न तुम्हारी बहन सुभद्रा मैंने प्राप्त कर ली। इस प्रकार यह नाटिका आद्यन्त शृङ्गार रस की प्रमुखता से सुखमय है।

संयोग शृंगार की विशिष्ट सुखद अनुभूति कराने के लिए विप्रलंभ के अवसर लाये जाते हैं।[३] जैसे अंधेरे में प्रकाश अधिक चमकता है, वैसे ही विप्रलंभ की बीच की अभिव्यंजना से संयोग शृंगार और भी निखर आया है। दूसरे अंक के आरम्भ में राजा सुभद्रा के वियोग में बैठे हैं। राजा सुभद्रा की स्मृति से व्याकुल हो रहे हैं। राजा ने वैसा सौन्दर्य कहीं नहीं देखा था, वैसी चेष्टाएं राजा के लिए अज्ञात थीं तथा जिसके जन्म तथा निवास भूमि का भी राजा को पता नहीं, उसके सम्वन्ध में कामदेव राजा की विचित्र अवस्था कर रहा है। राजा का सुभद्रा-विरह में चित्त बिलकुल अस्थिर है। उनके नेत्र अन्यत्र जमते नहीं हैं, कान किसी गाने की ओर से भी परांगमुख तथा मन तो उसकी प्रिया ने दूर तक खींच लिया है। अतः कभी जमता ही नहीं है।[४] इस प्रकार स्मृत सुभद्रा आलम्बन, सुभद्रा की स्मृत चेष्टाएं उद्दीपन विभाव, नेत्रों का न जमना आदि अनुभाव, स्मृति आदि संचारी भावों से विप्रलम्भ शृंगार की ध्वनि है।

द्वितीय अंक में मन्दारिका के कथन से भी राजा के वियोग में सुभद्रा की दयनीय अवस्था का ज्ञान होता है कि जब से सुभद्रा ने राजा के दर्शन किये हैं, तबसे वह अन्य-मनस्क है। रमणीय पदार्थों में अब उसे आनन्द नहीं आता। रात में उसे नींद नहीं आती है। बिछौने से सूने में ही उठ जाती है।[५] इत्यादि। सुभद्रा भी मन्दारिका को इस विरहावस्था में सहायिका अथवा बन्धु, गुरु, हृदय सब कुछ समझती है। सुभद्रा ने स्वीकार किया कि जबसे मेरे चरण का अनुगमन करने वाले उस व्यक्ति के द्वारा हृदय से संश्लिष्ट कर ली गयो, तभी से अथवा सब कुछ तुम्हीं जानती हो।[६]

---

१. पृष्ठ ७३।२८

२. व्यत्यस्तांससमर्पिताननमुरः संघट्टमग्नस्तनम्
गण्डस्पृष्टकपोललेखमवशप्रत्यर्पितालिंगनम्।
दत्तोत्सगनीवेशितालसतनोस्तस्यां समाश्वासन-
व्याजेन प्रथमं मनोरथपदं प्राप्तं समाश्लेषणम्॥ —७३।२९

३. न बिना विप्रलम्भेन संयोगः पुष्टिमश्नुते। —शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ ३५

४. दृशौ ममान्यत्र सुदुःस्थिते कृते श्रुती च गानेऽपि परांगमुखी कृते।
मनोऽपि निष्ठा क्वचिदप्यनाप्नुवत् प्रसह्य दूरं प्रियया तया हृतम्॥ —२५।६

५. पृ० ३२

६. सुभद्रा (सलज्जं, वाष्पं संस्तम्य) प्रियसखि किमतः परं कथयिष्यामि, त्वं खलु मे सखी च दृष्टिश्च, बन्धुश्च गुरुश्च हृदयं च जीवितशरणं च। तस्मात् कस्य नामान्यस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार यह अनुराग नायक तथा नायिका, दोनों में विकसित हुआ है तथा एक दूसरे के आलम्बन विभाव से विप्रलम्भ की अभिव्यंजना है। द्वितीय अंक में अन्त में सखीजन के द्वारा बुलाये जाने से सुभद्रा के चले जाने पर राजा के लिए रात्रि जो क्षणदा कहलाती है; यदि राजा को स्वप्न में भी प्रिया का योग मिल जाता है, तो यथार्थ में क्षण (उत्सव) को देने के कारण यथार्थ रूप में क्षणदा होगी और क्षण भर में व्यतीत हो जायगी; किन्तु यदि स्वप्न में भी उसका वियोग बना रहा, तो फिर त्रियामा राजा के लिए सहस्रयामा बन जायगी।[1] इस तरह यहाँ शब्द शक्ति-मूलक ध्वनि का विप्रलम्भ शृंगार रस ध्वनि के साथ मिश्रण है। स्त्रियों के प्रसिद्ध अवयवों के अतिरिक्त उनमें शोभित होने वाले लावण्य की तरह यह व्यंजना भी अन्य प्रकार की ही (चमत्कारपूर्ण) है, जो महाकवियों की वाणी में होती है।[2]

तृतीय अंक में एक ओर राजा भी प्रिया वियोग में नेत्रों को आनन्ददायक वेदीवन को जीर्ण अरण्य समझ रहे हैं तथा वहीं प्रिया के आने की प्रतीक्षा में आत्म-विनोद का यत्न करते हैं; दूसरी ओर वहाँ सुभद्रा विरह से अत्यन्त पीड़ित है। उस वियोग-विधुरा की विरह-पीड़ित अवस्था का वर्णन बड़ा मार्मिक है और विप्रलंभ शृंगार की व्यंजना कराने में सक्षम होता हुआ कवि की व्यंजना शक्ति को उदात्त कोटि का सिद्ध करता है। सुभद्रा की कपोल लेखा विरह के कारण पाण्डुरा तो है ही, आँसुओं के गिरने के कारण तथा अंजन के सयोग से उसके कपोल की रेखा का रंग भिन्न (श्याम) हो गया है। बार-बार सुभद्रा कपोल प्रदेश पर अपना हाथ रखती हे; अतएव उसके रखने से कुछ लालिमा मुख पर आ गयी है। इन तीनों कारणों से उसकी कपोल रेखा प्रभात-कालीन कान्तिहीन चन्द्रलेखा की भाँति हे।[3]

सुभद्रा की सन्तापाग्नि आँसू रूप तैल तथा निश्वास की हवाओं से ऐसी संधुक्षित करके बढ़ा दी गयी है कि वह कठोरतापूर्वक सुभद्रा के हृदय को जला रही है, किन्तु शान्त नहीं हो रही है।[4] सुभद्रा का अंग इतना सन्तप्त है कि आँसू लगातार गिरते हैं, किन्तु वे उसी प्रकार सूख जाते हैं, जिस प्रकार कि अंतरंग में सन्तप्त काढ़े

जनस्य एतां मेऽस्वस्थतां कथयामि। प्रियसखि यदैवाहं पदानुसारिणात्र वने चरता तेन जनेन हृदये दृढं संश्लिष्टा ततः प्रभृति"......(निःश्वस्य सलज्जं) अथवा त्वमेव जानासि।

१. स्वप्नेऽपि दृश्येत यदि प्रियासौ क्षणेन तुल्या क्षणदाऽपि याति
स्वप्नेऽपि मे सम्प्रति दुर्लभा चेत् सहस्रयामा भवति त्रियामा॥ —४५।२६

२. प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु-ध्वन्यालोक, १।४, पृ० ९३

३. आपाण्डुरा भाति कपोललेखा विनिष्पतद्वाष्पविभिन्नवर्णा।
अजस्रहस्तार्पणबद्धरागा प्रभातदीनेव शशांकलेखा॥ —५६।८

४. पृ० ५७।१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की बाहर निकली भाप सूख जाती है।[1] यद्यपि हिन्दी के रीतिकालीन कवि विहारी का इसीसे मिलता-जुलता वर्णन ऊहात्मक है। इस वर्णन में अतिशयोक्ति भले ही हो, परन्तु ऊहात्मक नहीं है; बल्कि विप्रलंभ की अनुभूति को तीव्र कर देता है।

चतुर्थ अंक में भी राजा को विरह की अनुभूति हो रही है। राजा सुभद्रा से मिलने के लिए इतने आकुल हैं कि वे कहते हैं कि नमि अपनी बहिन सुभद्रा मुझे प्रदान करेंगे, यह सुनकर मेरा चित्त शान्त हुआ है; किन्तु काम चित्त को क्षुभित करता हुआ क्षण भर का भी बिलम्ब नहीं सहन कर रहा है।[2] बात यह है कि कान्ता-विरहियों के लिए एक वासर (दिन) भी वत्सर (वर्ष भर) की भाँति हो जाता है।[3] इस प्रकार संयोग-शृङ्गार के अंग रूप में विप्रलंभ शृंगार संयोग-शृंगार का पोषक है।

शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों की छाया भी सुभद्रा नाटिका में है; किन्तु ये रस अंग रूप होने से अस्थिर आभा दिखा कर शृङ्गार की धारा में निमग्न हो जाते हैं।

हास्य के सम्बन्ध में नाटिकात्व के अध्याय में लिखा गया है कि परिहासपूर्ण नर्म का प्रयोग करने के लिए हास है और उससे हास्य रस की अभिव्यक्ति होती है। हास शृङ्गार रस का अविरोधी भी है। द्वितीय अंक में जब राजा मन्दारिका से अपनी कुपित सखी सुभद्रा को समझा कर प्रसन्न करने के लिए कहते हैं, तब मन्दारिका कहती है—आप इनको स्वयं मना लीजिये न! तृतीय अंक में राजा देवी को प्रणाम करने के लिए जमीन पर शिर झुकाये रहते हैं, पर देवी अप्रसन्न होकर चली जाती है। तब विदूषक कहता है—राजा, क्या आकाश में ही प्रणाम कर रहे हो? राजा कहते हैं—क्या देवी अप्रसन्न होकर चली गयी? तब विदूषक उत्तर देता है, देवी का यही बड़ा उपकार समझो कि हम लोगों को जीवित छोड़ दिया! इस प्रकार हास्य के अनेक स्थल हैं; किन्तु ये हास्य स्मित की सीमा तक ही रह जाते हैं।

सुभद्रा के प्रथम दर्शन के अवसर पर सुभद्रा के अद्भुत सौन्दर्य को देख कर राजा भी विस्मय में पड़ जाता है और यही कह उठता है कि विधाता की कैसी विचित्र निर्माण-चतुराई है। विदूषक भी साश्चर्य यही कहता है कि अरे, ऐसा अद्भुत रूप भी इस संसार में सम्भव है? यह अद्भुत रस भी शृङ्गार रस का अविरोधी तथा अंग है।

चतुर्थ अंक में तार्क्ष्यदत्त दूत आकर विद्याधरों के सैन्य के आगमन की सूचना देता हुआ कहता है कि विद्याधर की सेना ने नभस्थल को व्याप्त कर, सूर्य की किरणों

---

१. अन्तस्तापक्वाथादुद्वान्तैरिव निरन्तरं वाष्पैः
अंगे पुनः कृशांग्याः सन्तप्ते निपतितैः शुष्कम्॥ —५७।१३

२. मह्यं प्रदास्यति नमिर्भगिनीं सुभद्रामित्यन्तरंकुरितनिवृति चेत एतत्।
कुर्वन् मनोरथगतक्षुभितं निकामं कामो मुहूर्तमपि न क्षमते विलम्बं॥ —७६।११

३. कान्ताविरहिणामेकं वासरं वत्सरायते। (धर्मशास्त्रद्वारा समर्थित) (हिन्दी, कामसूत्र, पृ० ७००)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में व्याघात उत्पन्न करके सभी दिशाओं में प्रतिरोध उत्पन्न करके, राजाओं के लिए असमय में अत्यन्त धूलि उड़ा कर प्रस्थान कर दिया है।[1] यहाँ भी अद्भुत रस की व्यंजना है।

प्रथम अंक में जब राजा सुभद्रा की पदपंक्ति का अनुसरण करते हुए मन्दार वृक्ष के पास पहुँचे थे, तब उसी सुभद्रा की पदपंक्ति को देखती हुई रानी वैलाती राजा के प्रति शङ्का करती हुई चली आ रही थी तथा उसके मुख से क्रोध की व्यंजना भी हो रही थी। तब राजा भयभीत होकर कहते हैं कि अब रानी के लिए क्या समाधान दिया जायेगा? विदूषक कहता है, मित्र भय मत करो, मैं तुम्हारा उद्धारक हूँ। इस तरह भय की व्यञ्जना है।

यद्यपि कुछ विद्वान परम अनर्थ विषयक विकलता को भय मानते हैं, उनकी दृष्टि से यहाँ भयानक रस न मानकर त्रास नामक व्यभिचारी भाव का उदय मानना चाहिए। जो लोग अपने अपराध से उत्पन्न विह्वलता को भय मानते हैं, उनकी दृष्टि से यहाँ भयानक रस की व्यञ्जना है।[2] भय या त्रास का आलम्वन रानी वैलाती हैं तथा शृङ्गार का आलम्वन राजकुमारी सुभद्रा है।

शान्त रस—चतुर्थ अंक के आरम्भ में वृद्ध कंचुकी आकर वृद्धावस्था को भी भला समझता है, क्योंकि अधीरता की अनुशासक वही वृद्धावस्था है तथा स्वयं कहता है कि दुःख का फल देने वाले सांसारिक भोगों में आसक्त मेरा चित्त अब पश्चातापयुक्त हो तपस्या करना चाहता है।[3] वह सेवा कार्य को पाप का द्वार समझता है और इस लोक तथा परलोक दोनों के सुख से वंचित करने वाली समझता है।[4] इस तरह निर्वेद की ध्वनि होने से शान्त रस की अभिव्यञ्जना मान सकते हैं। इसलिए राजा भरत के गुणगान में उन्हीं विशेषणों पर उसका ध्यान जाता है, जो मोक्षमार्ग के लिए साधक या उपयोगी हैं।[5]

रसों के अतिरिक्त अनेक स्थलों पर अनेक भाव-ध्वनियाँ हैं। व्यभिचारी भावों के व्यंग्य होने पर भाव-ध्वनि मानी जाती है। भाव-ध्वनियों में भी भावोदय, भाव शान्ति, भाव सन्धि तथा भाव शबलता आदि सभी सुभद्रा नाटिका में हैं।

रानी वैलाती जब राजा का अन्य नायिका के प्रति आकर्षण प्रत्यक्ष देख लेती है, तब उसका जो क्रोध राजा के प्रति है, वह स्थायित्व धारण नहीं कर पाता है।

---

१. पृष्ठ ७९।२१
२. रस गंगाधर (प्रथम आनन), पृष्ठ १३३-१३४
३. पृष्ठ ७३।१
४. सदा सेव्याद् भीतिः परपरिभवास्वादलघुता
परिक्लेशो भूयान् घनलवकृतोन्मादजडता।
अवृत्तिर्वृत्तेष्वनवसरलाभाद् विमुखता
विहन्त्येवं सेवा तदियमिह चामुत्र च सुखम्॥ —७४।२
५. पृष्ठ ७४।३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीच-बीच में पुनः राजा के प्रति चेटी रतिषेणा के समझाने से सहृदया हो जाती है। अतः ऐसे स्थल जहाँ रानी क्रोध को प्रकट करती है, यहाँ तक कि राजा के चरणों में प्रणाम करने पर भी चली जाती है, यह क्रोध परम अनर्थ का कारण न होने से तथा बाद में शान्त हो जाने से अमर्ष भाव-ध्वनि का उदाहरण है।

इसी प्रकार जब सुभद्रा यह समझ बैठती है कि मेरे प्रणयी व्यक्ति से भिन्न चक्रवर्ती भरत को देने का निश्चय मेरे भाई ने किया है, तब उसे शोक का अनुभव होने लगता है और मूर्च्छित भी हो जाती है, किन्तु यह शोक रस की स्थिति तक नहीं पहुँचता है। अतएव यहाँ शङ्का भाव-ध्वनि माननी चाहिए।

प्रथम अंक में सुभद्रा-दर्शन के पश्चात् राजा भरत विचार करते हैं कि यदि यह कन्या रत्न मेरे वक्षस्थल को सुशोभित नहीं करती है, तो षट् खण्ड पृथिवी का वैभव व्यर्थ है। आयु का यौवन व्यर्थ होने से करुणा का पात्र है तथा स्त्रियों को मनाने की कला भी शोचनीय है। इस तरह यहाँ वितर्क भाव-ध्वनि है।

भावोदय-भावशान्ति—प्रथम अंक में जब सखियों की नूपुर ध्वनि सुनकर मन्दारिका सुभद्रा से चलने को कहती है, तो उसमें चिन्ता का उदय होता है और सुभद्रा सखी से कहती है—क्या इस व्यक्ति के पुनः दर्शन होंगे ?

चित्र दर्शन करते-करते जब विदूषक बीच में ऐसे शब्द कह देता है, जिनसे राजा समझता है कि विदूषक यह कह रहा है कि ये देवी वैलाती हैं; तब राजा सहसा कह उठता है कि देवी वैलाती कहाँ है ? यहाँ राजा के हृदय में त्रास भाव का उदय हुआ है। उसके बाद विदूषक कहता है, मित्र, भय मत करो, मैंने तो यह कहा है कि यह चित्रलेखन कला की वेला है, न कि वैलाती। तब राजा के उस त्रास भाव की शान्ति हो जाती है और राजा कहता है, तब तो कुशलता है।

भावसन्धि—राजा जब सुभद्रा के चित्र को देख रहे हैं, तब विदूषक पूछता है, अब इस समय तुम्हारा हृदय शान्त हो गया है ? राजा उत्तर देता है, ऐसा मत कहो—क्योंकि, एक ओर यह चित्र मेरे नेत्रों को अत्यन्त आनंदित कर रहा है, किन्तु उस नायिका का स्मरण करने वाले हृदय को यही चित्र उसके संयोग के न मिलने से अत्यन्त अस्वस्थता प्रदान कर रहा है।[1] इस तरह यहां हर्ष तथा विषाद, दोनों भावों की सन्धि है; यद्यपि एक का आधार नेत्र है, दूसरे का हृदय, किन्तु एक काल में वर्णन होने से भाव-सन्धि का उदाहरण तथा आधार भिन्न होने से अविरोध मानना चाहिए। इसी तरह जब राजा ने दूत के मुख से सुभद्रा को लेकर आने वाले नमि का समाचार सुना, तब राजा अपने मन में कहते हैं—एक ओर प्रियतमा को आया हुआ सुनकर धैर्य को प्राप्त होती हुई, किन्तु दूसरी ओर देवी के प्रसन्न करने के विषय में मेरी बुद्धि चंचल हो रही है। इस प्रकार एक ओर हर्ष या धृति तथा दूसरी ओर चिन्ता नामक भावों की सन्धि है।

१. ददाति तत्प्रतिच्छन्दः प्रमोदं नेत्रयोः परम्।
हृदयस्य तु तामेव स्मरतः परमां रुजम्॥ –३७।१७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावशबलता—जब विद्याधर लोग राजा भरत के पास सेनापति के बुलाने पर आ रहे हैं, तब उनके आगमन के समाचार को सुनाता हुआ दूत कह रहा है कि राजा नमि की आज्ञा से सब विद्याधर चल पड़े। चलते समय उनके हृदय में अनेक भाव उठे। विद्याधर रभसपूर्वक, कौतुक-पूर्वक, नम्रता-पूर्वक भय-पूर्वक, तथा विस्मय-पूर्वक चल पड़े।[१] यहां अनेक भावों की शबलता माननी चाहिए। वैसे कुछ विद्वान भाव-शबलता वहां मानते हैं, जहां एक भाव को दबाता हुआ दूसरा भाव उदित हो। उस दृष्टि से इसे भाव-सन्धि का ही उदाहरण माना जायगा।[२]

विद्याधर नमि भी राजा के सम्बन्ध में कह रहे हैं कि राजा को देखकर मेरा मन अनेक रसों से भर रहा है। बचपन से साथ में पालन-पोषण होने से वे हमारे मित्र हैं, इसलिए प्रेम से (रतिभाव), ये लोकों के स्वामी आदिनाथ के पुत्र हैं, इसलिए गौरव से (गर्व), मेरे पिता के भानजे हैं, इसलिए आदर से (दैन्य), ये हमारे बहनोई हैं, इसलिए आनंद से (हर्ष भाव), तथा ये प्रथम चक्रवर्ती हैं, इसलिए भय से (त्रास)-इस प्रकार अनेक रसों से मेरा चित्त भर रहा है।[३]

रस ध्वनि के अतिरिक्त शब्दशक्तिमूलक ध्वनि के भी अनेक स्थलों पर दर्शन होते हैं।

द्वितीय अंक के अन्त में सुभद्रा के चले जाने के बाद जब सन्ध्या होने पर विदूषक चलने को राजा से कहता है, तब राजा कहते हैं कि यदि स्वप्न में भी प्रिया के दर्शन हो जाते हैं तो यह क्षणदा (रात्रि) क्षण भर के समान शीघ्र बीत जायगी और यदि वह स्वप्न में भी दुर्लभ रही तो त्रियामा (रात्रि) सहस्रयामा (हजार पहरों वाली) जायगी।[४]

यहां क्षणदा का अर्थ रूढ़ि से रात्रि है, क्योंकि योग से रूढ़ि बलवती होती है। उसके बाद उसका जो यौगिक अर्थ है—क्षण उत्सव को देने वाली तथा क्षण (पल) मात्र का समय देने वाली; यह अर्थ व्यंग्य होकर विप्रलंभ शृंगार ध्वनि का पोषक है। इसी प्रकार त्रियामा का रात्रि तथा तीन पहर वाला, अर्थ होने से यहां विरोधाभास अलंकार द्वारा विप्रलंभ शृंगार विशेष पुष्ट हो रहा है। क्षणदा तथा त्रियामा शब्द परिवर्तन सहन नहीं करते हैं, इसलिए शब्दशक्ति-मूलक ध्वनि है। त्रियामा शब्द से विरोधाभास अलंकार तथा क्षणदा शब्द से रात्रि सुखपूर्वक बीतेगी—यह वस्तु व्यंग्य है।

सुभद्रा वैलाती के द्वारा विघ्न की आशंका से दुःखी होकर आंसू गिरा रही है। राजा अपने प्रेम को सुभद्रा के प्रति विशेष बताता हुआ कहता है कि हे मुग्धे,

---

१. ७८।१९

२. रस गंगाधर (प्रथम आनन), पृष्ठ ३५१-३५२

३. ८५।२९

४. पृष्ठ ४५।२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहीं भी दाक्षिण्य छोड़ना उचित नहीं होता है; क्योंकि दाक्षिण्य वाले पुरुष की उत्सुकता एक स्थान पर लगी रहती है। हजारों अप्सराओं के समुदाय में इन्द्र का शचीपतित्व ही विशिष्ट समझा जाता है।[1] यहां दृष्टान्तालंकार द्वारा यह वस्तु व्यंग्य है कि सुभद्रा पट्टरानी होगी। अतएव यहां वक्ता की विशेषता से अलंकार द्वारा अर्थशक्तिमूलक व्यंग्य वस्तु ध्वनि समझनी चाहिए। प्रथम अंक में राजा अशोक को देखकर कहते हैं, पादपराज, तुम नितम्बिनी (सुभद्रा) के उस चरण से सत्कृत हो गये हो, अतएव सौभाग्यशाली हो, वह (नितम्बिनी का) चरण मस्तक झुकाकर प्रार्थनीय तथा रोमांच उत्पन्न करने वाला है।[2] यहां यह वस्तु व्यंग्य हो रही है कि अभी मैं उस चरण के सत्कार से वंचित हूँ, अतएव अभागा हूं। यह अर्थशक्तिमूलक वस्तु ध्वनि है।

नाटिकात्व वाले प्रकरण में नाटिका की कैशिकी वृत्ति पर प्रकाश डाला जा चुका है। भारती वृत्ति सभी रस और रचनाओं के अनुकूल होती है। इसमें प्रस्तावना में भारती वृत्ति के अंग प्ररोचना और आमुख को भी वस्तु-विवेचन नामक अध्याय में बताया जा चुका है।

सुभद्रा नाटिका में प्रसाद और माधुर्य गुण हैं। श्लेष के द्वारा भी प्रसाद गुण में बाधा नहीं आयी है। इस नाटिका के अधिकांश स्थल सामान्य संस्कृत जानने वाला भी समझ सकता है। सुभद्रा द्वारा लिखित अनंगलेख को जब मन्दारिका पढ़ती है, तब मन्दारिका पढ़ने के पश्चात् कहती है—सखि, तुम्हारी वचनयुक्ति गंभीर तथा मधुर है।[3] यही बात हस्तिमल्ल के वचन-प्रयोग या भाषा-प्रयोग में समझनी चाहिए।

अभिधा तथा व्यंजना के अतिरिक्त लक्षणा वृत्ति के भी कई सुन्दर प्रयोग सुभद्रा नाटिका में हैं।

बालाशोक और मालतीलता की उद्वाह विधि पूरी होने के बाद राजा को सुभद्रा के कर-ग्रहण का अवसर मिलता है; वह छुड़ाने का प्रयत्न करती है। राजा उत्तर देते हैं—जिसने मेरे धैर्य को फोड़कर मेरे मन को चुरा लिया है, ऐसी तुम भाग्य से आज दिखाई दी हो, तुम्हें अब कैसे छोड़ दूं?[4]

मूर्त वस्तु का ही उन्मूलन हो सकता है; धैर्य तो भावात्मक है; उसका उन्मूलन बाधित है। इसी प्रकार चुराना भी किसी मूर्त वस्तु का हो सकता है, मन का चुराना बाधित है। उन्मूलन नाश करने तथा चुराना आकर्षण के अर्थ में संक्रमित समझना चाहिए और उससे यह व्यंग्य हुआ कि राजा को पता नहीं चला कि उसका मन उधर

---

१. पृष्ठ ४३।२३

२.—शिरसा प्रार्थनीयेन पुलकोद्भवदायिना
संभावितो नितम्बिन्या पादेन सुकृती भवान् ॥ –१।२२

३. गभीरमधुरा वाचोयुक्तिः। –पृष्ठ ५२

४. पृष्ठ ४४।२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकर्षित हो रहा है; अब सुख-प्राप्ति के हेतु संयोग अपेक्षित है, आदि। लोक में भी चोरी करने के पहले दीवाल या द्वार के कपाटों का उन्मूलन करना पड़ता है, तब कोई वस्तु चुरायी जाती है। मालिक को चुराते समय भान नहीं होता है, पर चोर को खोजता रहता है; मिल जाने पर छोड़ता नहीं है। भरत वाक्य में पृथिवी सुख प्राप्त करे—इस वाक्य में पृथिवी का अर्थ निर्जीव होने से बाधित है; लक्षणा द्वारा पृथिवी-निवासियों का बोधक है।

अलंकार—हस्तिमल्ल संस्कृत साहित्य के उस काल में हुए थे, जबकि काव्य का हृदय पक्ष दुर्बल और कला पक्ष या अलंकरण पक्ष सबल होता जा रहा था। फिर भी जैसा कि हम देख चुके हैं, हस्तिमल्ल की नाट्य प्रतिभा सुभद्रा नाटिका में भाव व्यंजना में उतनी ही सक्षम है, जितनी कि शाब्दी अभिव्यंजना में।

जिस समय रानी ने राजा के उस चित्र को देख लिया, जिसमें सुभद्रा अंकित थी; पहले विदूषक ने उस चित्रफलक को सन्ध्योपासना का मंत्र लिखने को पटिया बताया था। जब वह रहस्य खुल गया, तब लतागुल्म में पाया हुआ बताया और कहा कि मैं कुछ जानता नहीं था, इसलिए इन मित्र को दिखाया तथा इन्होंने बताया कि यह कोई देवी विद्याधर ने प्रशंसार्थ चित्रित की है। जब रानी चित्र पर पतित राजा की अश्रुबिन्दु के विषय में पूछकर रहस्य प्रकट कर देती है, तब विदूषक युक्ति देता है कि मन्दार के पराग से दूषित चक्षु के कारण यह आँसू की बूँद गिर गयी थी। राजा विदूषक की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि यह प्रतिभा बड़ी उच्च है।[1] वास्तव में यह हस्तिमल्ल की प्रतिभा के लिए युक्ति चरितार्थ होती है। पाठक, दर्शक तथा आलोचक यही कहेगा कि रचयिता की प्रतिभा साध्वी है, जिसके कारण भाव तथा कला, शब्द तथा अर्थ, हृदय तथा शरीर का सुन्दर समन्वय है। रानी भी विदूषक से यही कहती है कि तुम संगत बात कहना जानते हो।[2] कवि भी सुसंगत कथन की क्षमता रखता है।

अलंकारों के प्रयोग में आधिक्य भले ही हो, पर उसके कारण कहीं भी भाव बाधित नहीं हुए हैं। इसलिए ये अलंकार नाटिका कामिनी की शोभा के उत्कर्षाधायक ही हैं।

सुभद्रा के अलंकरण के सम्बन्ध में चतुर्थ अंक में देवी ने मन्दारिका से पूछा है कि बताओ तो सही कि इस सुभद्रा का अलंकरण सुसंगत है या नहीं? क्योंकि मेरे स्नेह-पराधीन होने से मेरी वाष्पपूर्ण दृष्टि देख नहीं पाती है। सच पूछा जाय तो कवि की प्रतिभा सुभद्रा नाटिका का अलंकरण करने के पश्चात् दर्शक मण्डली या आलोचक मण्डली से प्रश्न कर रही है। मन्दारिका का उत्तर यही है कि अलंकरण के सामंजस्य के सम्बन्ध में क्या कहना, जहाँ स्वयं देवी वैलाती ने अलंकरण कार्य किया है। आलोचक की दृष्टि भी उत्तर दे सकती है कि नाटिका की अलंकरण संगति के संबंध

१. ४० साध्वी प्रतिभा
२. देवी—आर्य जानासि सुसंगतं भाषितुम्, पृ० ४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में क्या कहना है, जबकि हस्तिमल्ल की प्रतिभा देवी ने स्वयं नाटिका का अलंकरण किया है !

देवी ने सुभद्रा के अलंकरण में ऐसा कोई संकेत नहीं किया है कि वह अलंकार से लाद दी गयी हो, हाँ सुसंगत अलंकरण हुआ है; क्योंकि सुन्दर वनिता का भी मुख विना भूषण के सुशोभित नहीं होता है।[1] इसलिए उचित अलंकरण अपेक्षित भी है।

अनुप्रास अलंकार तो प्रायः सर्वत्र उपलब्ध होता है, किन्तु हस्तिमल्ल की इस नाटिका में ऐसे अनुप्रास नहीं हैं, जिनको प्रयत्नपूर्वक अलग से गढ़ गढ़कर रचा गया हो। जहाँ भी अनुप्रास हैं, सब स्वाभाविक रीति से ही निबद्ध हुए हैं।

तस्या वियोगे च समागमे च समं मनो मे मदनोधुनोति

यहाँ य, म, स, न इन वर्णों का स्वाभाविक अनुप्रास है। इसी तरह नमि राजा भरत से कह रहे हैं—

यदेव वृत्तं विजयार्ध-दर्शनं तदैव देवं न वयं यदागताः।
प्रमादजातं प्रणयादतिक्रमं क्षमाधनः क्षन्तुममुं ममार्हसि ॥ —८५।३०

इस प्रकार अनुप्रास तो न्यूनाधिक मात्रा में सर्वत्र पाया जाता है।

प्रथम अंक के तृतीय श्लोक में शब्द तथा अर्थ, दोनों प्रकार के श्लेषों का प्रयोग किया गया है। तृतीय अंक के तीसरे श्लोक में दक्षिण (दाहिने, चतुर) वामत्व (बायाँ, विपरीतता) अर्थों के कारण श्लेष से विरोधाभास तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार पुष्ट होते हैं।[2]

मन्दारिका ने सुभद्रा के साथ बातचीत में दो बार श्लेष के सुन्दर प्रयोग से सुभद्रा का अनुरंजन किया है। एक बार दोनों के विकास के सम्बन्ध को तथा दूसरी बार उद्वाह विधि को लेकर। उस श्लेष की प्रशंसा प्रकारान्तर से राजा के मुख से भी की गयी है।[3]

राजा देवी वैलाती को प्रसन्न करने के लिए कहते हैं—आपने यहाँ आकर कष्ट क्यों किया ? मुझे वहाँ ही क्यों न बुला लिया ? रानी कहती है—कार्यान्तर (अन्य नायिका के अनुराग) में तत्पर लोगों को कैसे बुलाया जाय ? रानी के कार्यान्तर के अभिप्राय को समझते हुए भी राजा जानबूझकर कहते हैं—राज्य के कार्यों की जल्दी नहीं है, क्योंकि प्रतिपक्षी योद्धाओं के अभाव में युद्ध नहीं है तथा सभी प्रजाएं रक्षित हैं। अतएव अब दूसरे किस कार्य की जल्दी है ?[4] इस प्रकार यहाँ वक्रोक्ति अलंकार है।

१. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्। —काव्यालंकार १।१३, पृ० २
२. तस्या गृहीत्वाऽपि करं विमुंचन्नदक्षिणोऽयं मम दक्षिणोऽपि
वामत्वमंगी कुरुते स हस्तो वामे विधौ भोः खलु को न वामः ॥—५४।३
३. अहो अभिजातश्लेषोपन्यासः। —पृ० ६०
४. पृ० १९।३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यमक—प्रथम अंक के २३वें श्लोक में कान्ता शब्द दो स्थानों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में है। तृतीय अंक में विदूषक सुभद्रा से कहता है कि जिस राजा को चार समुद्र पर्यन्त की भूमि कर (टैक्स) देती है, उसे तुम अपना कर (हाथ) भी नहीं दे सकती।

अर्थालंकार—शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का भाव सौन्दर्य के लिए अधिक महत्त्व है। अर्थालंकार के बिना तो शब्द का सौन्दर्य भी मनोहर नहीं होता है।[1] मैं कोरे शब्द सौन्दर्य को सुगन्धि से रहित पुष्प की भाँति समझता हूँ। अर्थालंकारों में उपमा का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। उसके बाद उत्प्रेक्षाओं की संख्या है।

उपमा अलंकार—प्रथम अंक के १०वें, ११वें, २९वें छन्दों में, द्वितीय अंक के प्रारम्भ में विदूषक की उक्ति के गद्य में तथा दूसरे छन्द में है। तृतीय अंक में ८वें, १३वें, और १५वें श्लोक में उपमा अलंकार है।

द्वितीय अंक के आरम्भ में विदूषक की गद्य में राजा के लिए अनेक उपमाओं का प्रयोग होने से मालोपमा है। राजा ध्यानाविष्ट की तरह निरुद्ध चित्त है। भूत द्वारा जकड़े हुए की तरह विवेक से शून्य हृदय वाला है। मूर्च्छित की तरह निश्चल सर्वांग वाला है, अन्धे की तरह कुछ भी देखता नहीं है, बहरे की भाँति कुछ भी सुनता नहीं है।[2] मूक की तरह कुछ कहता नहीं है और यह राजा रसायन की सेवा से सिद्धि प्राप्त कर लेने वाले योगी की भाँति बिना भोजन किये ही भोजन करना भूल जाता है; तथा यह भूख रूपी पत्नी पतिव्रता की भाँति केवल मुझे ही कण्ठ से आलिंगन करती है।[3]

राजा कहता है कि मेरा चित्त अन्यत्र न रमता हुआ केवल उसी सुभद्रा पर उसी भाँति जाता है, जैसे अन्य लताओं में रति को त्याग कर भौंरा पारिजात की मंजरी पर जाता है।[4]

विरह दुःख में सुभद्रा की पाण्डुरा कपोललेखा प्रभात के कारण दीन चन्द्रलेखा की भाँति बतायी गयी है।[5]

विरह-विधुरा सुभद्रा के वाष्प सन्तप्त अंग पर उसी प्रकार गिरकर सूख जाते हैं, जैसे भीतरी गर्मी से तपते हुए काढ़े से निकली हुई भाप गिरकर सूखती जाती है।[6]

---

१. अलंकरणमर्थानामर्थालंकार इष्यते।
तं बिना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम्॥ (३४४।१, पृ० ७०३, अग्निपुराण)

२. पृ० २३

३. पृ० २३

४. २४।२

५. ५६।८

६. ५७।१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुष्पित अशोक वृक्ष विकसित रक्त पुष्प वाली मालती से संयुक्त होकर उसी प्रकार सुशोभित है, जैसे नक्षत्र पंक्ति से संयुक्त सन्ध्याकालीन रक्त मेघ शोभित होता है। यहां समासोक्ति भी समान कार्य से मानी जा सकती है, क्योंकि स्मित नायिका से युक्त प्रसन्न नायक शोभित होता है।[१] ये उपमा के सुन्दर उदाहरण हैं।

नाटिका में सुन्दर उत्प्रेक्षाएँ भी उत्प्रेक्षित हैं। चित्रदर्शन करते-करते चित्र में लिखित सुभद्रा के स्तन पर राजा का वाष्पबिन्दु गिर पड़ता है। राजा कहता है—मित्र, देखो इसके स्तन पर मेरे नेत्र से गिरा हुआ अश्रुबिन्दु मेरी तीव्र अन्तर्व्यथा को सूचित करता हुआ—ऐसा प्रतीत होता है, मानों मेरी विरह के कारण शोचनीय अवस्था को करुणापूर्वक देखकर सुभद्रा के मुख से ही शोक के कारण अश्रुबिन्दु गिर पड़ी हो।[२] यह उत्प्रेक्षा राजा की विरह वेदना की तीव्र अनुभूति करा रही है। अश्रु गिरने का कारण राजा की शोचनीय अवस्था के कारण सुभद्रा को भी शोक हुआ और उसके कारण उसके मुख से अश्रुबिन्दु गिर पड़ी हो। यहाँ हेतु देने के कारण काव्यलिंग अलंकार भी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने अलंकारों का निवेश रस सिद्धि के अनुकूल किया है। काव्यशास्त्रियों का यही मत है कि काव्य रचना के समय रसाभिव्यक्ति और अलंकारों की सृष्टि एक ही प्रयास से निबद्ध होनी चाहिए, तभी अलंकार रस से अन्तरंग सम्बद्ध होकर व्यञ्जनक्षम हो सकता है।[३]

प्रथम अंक के अन्त में मध्याह्न का वर्णन है। शीतल, सुगन्धित तथा मन्द वायु बह रही है। इसमें कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मध्याह्न के सन्ताप से कमलों के आसव से सुवासित जलों में बार-बार अवगाहन करके मन्दाकिनी की हवाएँ मानों चारों ओर ठण्डक होने से धीमे-धीमे बह रही हैं।[४] कोई भी व्यक्ति चारों तरफ अत्यन्त शीत होने से ठिठुरकर अंगों को संकुचित करता हुआ धीमा चलता ही है।

राजा के हाथ में सात्विक भाव रोमांच हो आया है। राजा कहते हैं, इस सुभद्रा के हाथ को रोमांच पकड़े हुए था ; उसे छोड़ नहीं रहा था ; किन्तु उसके हाथ का स्पर्श करने वाले मेरे हाथ में वह रोमांच संक्रान्त-सा हो गया है।[५]

संक्रामक रोगों जैसी बात की उत्प्रेक्षा है कि दूसरे का स्पर्श करने पर उसका रोग स्पर्श करने वालों के अङ्ग में लग जाता है।

रक्ताशोक वृक्ष के प्रफुल्लित गुच्छे राजा की दृष्टि में ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानों कामदेव के शरपूर्ण तूणीर हों। तूणीर कामदेव के मित्र वसन्त से सज्जित हों

---

१. अशोकःपुष्पितो भाति मालत्या स्मेरपुष्पया
व्यतिकीर्ण इवाम्भोदः सान्ध्यो नक्षत्रमालया। –६०।१५

२. पृष्ठ ३८।१८

३. भारतीय साहित्य शास्त्र (त्र्यम्बक गणेश देश पाण्डे), पृष्ठ ३६६

४. २१।४१

५. तस्याः करं सरोमांचममुञ्चन्नेव तत्क्षणम्।
संक्रान्त इव रोमांचो मम संस्पृशतः करम्॥ –५४।३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा ये रक्ताशोक के पुष्पित स्तवक भी मधुरस से सज्जित हैं।[१] यहाँ उत्प्रेक्षा और उपमा की संसृष्टि है।

दोनों श्रेणियों के विद्याधरों की सेना राजा भरत की ओर प्रस्थान कर रही थी। ऐसा लगता था कि डर करके राजा को देखने के लिए उड़कर विजयार्घ पर्वत ही जाता हुआ दिखाई दे रहा हो।[२] इस उत्प्रेक्षा से सैन्य का आधिक्य व्यञ्जित है। इस प्रकार अलंकार से वस्तु व्यंजना का भी उदाहरण है।

अपह्नुति—राजा दिग्विजय करते-करते काण्डक प्रपात गुहा के पास मन्दाकिनी विजयार्घ संगम पर है। पूर्व में देखे हुए प्राकृत दृश्यों के सम्बन्ध में बातचीत हो रही है। राजा कहते हैं कि दिग्विजय यात्रा के बहाने लवणसमुद्र, हिमवान् पर्वत तथा विद्याधर निवास विजयार्घ पर्वत के दर्शनीय दृश्य देख लिये हैं।[३]

इसी प्रकार सुभद्रा की मूर्च्छा के समय मन्दारिका द्वारा पुकार होने पर सुभद्रा को सान्त्वना देने के बहाने राजा ने अपना मनोरथ का प्रमुख पद रूप उसका आलिंगन प्राप्त कर लिया।[४]

समासोक्ति—राजा गंगासागर के दृश्य का वर्णन कर रहे हैं। हिमवान् के कटक से आती हुई गंगा का दूर तक अपनी तरंगरूपी भुजा फैलाये हुए समुद्र आलिंगन-सा कर रहा है।[५] यहाँ उत्प्रेक्षा तो है ही; किन्तु समुद्र में नायक तथा गंगा में नायिका का आरोप हो सकने से समासोक्ति है तथा यह भविष्य की घटना की सूचक भी है।

मन्दारिका मालतीलता रूप कन्या का बालाशोक को दान करते हुए कहती है,—हे बालाशोक, जिससे यह दुखी न हो और दूसरी लताओं से भेद को प्राप्त न हो,—इसका वैसा समादर करना।[६] इसमें बालाशोक पर राजा का तथा लतान्तरों पर नायिकान्तरों के आरोप द्वारा राजा से यह कहा गया है कि यह पट्टरानी बनायी जाय, वैसा समादर करना। इस प्रकार समासोक्ति अंलकार है तथा आर्थी व्यंजना भी है।

विरोधाभास—राजा देखी हुई गंगा के सम्बन्ध में कह रहे हैं कि यह स्वयं पतित होती हुई दूसरे पतित को पवित्र करती है।[७] जो स्वयं पतित हो रही है, वह पतित को कैसे पवित्र करेगी ? इस विरोध का समाधान तुरन्त हो जाता है कि यह आकाश से पृथिवी पर नीचे की ओर गिरती (बहती हुई) दूसरों को पवित्र करती

---

१. ५५।७
२. ७९।२०
३. २।२४
४. ७३।२९
५. ३।६
६. पृष्ठ ६०
७ त्रिमार्गगां या विदुरापतन्तीं सुरालयाद् व्योम ततो धरित्रीम्
या पुण्यतोयेति जनस्य मान्या स्वयं पतन्ती पतितं पुनाति ॥ (६।१३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। यहां अपि शब्द न होने से विरोधाभास अलंकार व्यंग्य मानकर अलंकार ध्वनि मानी जा सकती है, पर वह भी गंगा के प्रति राजा के भक्ति भाव का अंग होकर गौण हो गयी है।

द्वितीय अंक के अन्त में सुभद्रा के चले जाने पर राजा कह रहे हैं कि यदि वह स्वप्न में भी दुर्लभ रही, तो त्रियामा भी सहस्रयामा हो जायगी।[१] तीन पहर वाली हजार प्रहर वाली कैसे हो सकती है—इस विरोध का समाधान यह है कि हजार पहरों की तरह विरह के कारण रात काटना कठिन हो जायगा। इस प्रकार विरोध तथा लक्षणा (क्योंकि सहस्रयामा का अर्थ दुःख के कारण विताने में कठिन) राजा की विरह की अनुभूति का तीव्रता से बोध कराते हैं।

तृतीय अंक में राजा सोचते हैं कि उस सुभद्रा के हाथ को छोड़कर मेरे हाथ ने अच्छा नहीं किया। मेरा यह दक्षिण हाथ उस सुभद्रा के हाथ को पकड़कर के छोड़ने के कारण अदक्षिण है।[२] एक ही हाथ का दक्षिण तथा अदक्षिण बताना विरोधयुक्त है। समाधान यह है कि दाहिना हाथ मेरा उसके हाथ को छोड़ देने के कारण चतुर नहीं है, जिसने अपने सुख की वस्तु को छोड़ दिया।

रूपक—दक्षिण वायु आम्रयष्टि के स्तवकरूपी वदन का चुम्बन करती हुई पुष्प संबंधी चूर्ण को विखरा रही है। उस आम्रयष्टि के भ्रमररूपी अलक हठपूर्वक हटा दिये गये हैं। जिस आम्रयष्टि के पुष्परूपी अधर का दर्शन किया गया है, उसका यह पल्लव हिल रहा है, जो उसके हिले हुए हाथ की भांति है, जिसमें भीतर गुंजन या ध्वनि करता हुआ भ्रमर रूपी वलय है अथवा भ्रमरों का वलय (समूह) है।[३]

राजा सुभद्रा की विरह से दयनीय अवस्था प्रत्यक्ष देखते हुए कह रहे हैं कि इस सुभद्रा के अत्यन्त सन्तप्त हृदय पर इसके आंसुओं का प्रवाह ही शिशिरोपचार (जल सिंचन) है तथा इसकी लम्बी श्वास ही पंखे की वायु है।[४] इसी प्रकार इसके हृदय पर रखी गयी इसकी हथेली ही प्रवाल का अर्पण है। यहां समारोप होने से रूपक अलंकार है।

आक्षेप—सुभद्रा की विरह-विधुरा अवस्था को जब मन्दारिका ताड़ जाती है और कहती है, सखीजन से भाव छिपाने के कारण चित्त को खेद होता है। सुभद्रा आंसू रोककर कहती है कि प्रियसखि, तुम्हीं मेरे लिए सब कुछ हो। तुम्हें छोड़कर और किससे अपनी अस्वस्थता कहूँगी? चरणयुगल का पीछा करके आने वाले उस व्यक्ति ने जबसे मुझे हृदय से लगाया है, तब से……अथवा तुम्हीं जानती हो।[५]

---

१. ४५।२६
२. ५४।३
३. ७।१६
४. तप्तस्य गाढं हृदयस्य मन्ये, वाष्पाम्बुपूरः शिशिरोपचारः।
   अयत्नलभ्यः पुनरायतोऽस्या निश्वास एव व्यजनानिलश्च॥ —५६।९
५. पृष्ठ ३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार कहकर फिर अपनी स्थिति की पूरी सूचना न देकर बता दिया कि अथवा तुम्हीं जानती हो। अतएव आक्षेप अलंकार है।

सहोक्ति—राजा विदूषक द्वारा मृग्यमाण कन्यारत्न के बताये जाने पर सुभद्रा के पास पहुँचता है। सुभद्रा को प्रत्युत्थान के शिष्टाचार से रोकते हुए राजा कहता है कि तुम्हारे गुरुत्तर स्तनभार से मेरे साथ साथ तुम्हारा मध्यभाग भी पीड़ित हो रहा है।[1] राजा के साथ सुभद्रा के मध्यभाग के क्लेशित होने का वर्णन होने से सहोक्ति अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास—सुभद्रा का हाथ ग्रहण करके छोड़ देने वाला दक्षिण हाथ भी अदक्षिण बन गया, इस विशेष बात के समर्थन में राजा कहता है कि विधि के वाम हो जाने पर कौन वाम (विपरीत) नहीं हो जाता है, अर्थात् सभी वाम हो जाते हैं।[2]

तुल्ययोगिता—सुभद्रा जब मूर्च्छावस्था से सचेत होकर आश्वस्त हुई, तब उसके समाश्वासित होने पर एक साथ राजा तथा कामदेव दोनों ने ही समाश्वासन प्राप्त कर लिया।[3] राजा तथा कामदेव, दोनों प्रस्तुतों का एक धर्म समाश्वासन से सम्बन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलंकार है।

अतिशयोक्ति—राजा ने जब सुभद्रा को नमि के यहाँ से अपने यहाँ आया हुआ तथा रानी वेलाती को भी प्रसन्न सुन लिया, तब वे कहते हैं कि इस दुर्लभ संयोग को पाकर हर्ष मेरे शरीर में नहीं समा रहा है।[4]

हर्ष के हृदय में समाने के सम्बन्ध का असम्बन्ध बताने के कारण अतिशयोक्ति अलंकार है।

इस प्रकार के अन्य अलंकार भी हैं। यह अलङ्कारों का दिग्दर्शन यह सिद्ध करता है कि ये सभी अलङ्कार स्वाभाविक होने के कारण नाटिका कामिनी की शोभा के उत्कर्षाधायक हैं।

सुभाषित प्रयोग—हस्तिमल्ल कवि के सुभाषित अत्यन्त सुन्दर हैं। इनके सुभाषितों के अध्ययन से तो यह स्पष्ट ही है कि इनके सुभाषित प्रयोग बेजोड़ हैं तथा इन्हीं सुभाषितों के सुन्दर प्रयोग के कारण इन्हें सूचित-रत्नाकर का विरुद प्राप्त था। सुभदा नाटिका के आरम्भ में सूत्रधार सुदुर्लभ परिषद के लाभ के कारण अपने मनोरथों को पूरा हुआ समझता है तथा स्पष्टीकरण करता हुआ परिषद के गुणों को बताता है कि यह परिषद सूक्ति के रसामृत का आस्वाद करना तथा सुन्दर सुभाषितों का प्रयोग करना एवं गुण दोषों का विवेचन करना या गुण ग्रहण तथा दोष के त्याग का विवेक जानती है।[5]

---

१. मध्यस्ते स्तनयोर्भरेण गुरुणा सार्थं मया क्लिश्यते। —४३।२१

२ ५४।३

३. ७०।२४

४. ८३।२३

५. अनुभवितुं सूक्तिरसान् वक्तुं च सुभाषितानि सुभगानि
गुणदोषांश्च विवेक्तुं व्यक्तं जानाति परिषदियम्॥ —१।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे सिद्ध होता है कि कवि की नाटिका में सुन्दर सूक्तियाँ हैं। उन सूक्तियों के रसास्वादन के अनुरूप दर्शकों की आवश्यकता थी तथा कहना चाहिए कि इस नाटिका में गुणों के सद्भाव तथा दोषों के अभाव के कारण ही सूत्रधार डंके की चोट यह कहते हुए प्रसन्न हो रहा है कि यह परिषद गुण दोष का विभाग करना जानती है। यदि किसी के माल में अच्छाई न हो, तो उसके पारखी ग्राहकों से दुकानदार को मनोरथ सिद्धि नहीं होती है।

सुभद्रा नाटिका के सभी सुभाषितों का संग्रह श्री वासुदेव पटवर्धन ने भूमिका-भाग में कर दिया है। उस संग्रह में पाँच सुभाषितों का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। मैं उनके उल्लिखित सुभाषितों सहित सभी को एक स्थान पर अङ्कित कर रहा हूँ।

पृष्ठ २ : नानादेशपरिभ्रमो नामैकं सौख्यं पुरुषस्य।

पृष्ठ १५ : साप्तपदीनं नाम सख्यम्।

पृष्ठ २०।३८ : व्यलीकसंकल्पनिरुत्सुके जने करोति शंका मनसः परां रुजम्।

पृष्ठ २३ : सर्वथा असंतुष्टाः खलु राजानः।

पृष्ठ २४।३ : अपि गाढमनोरथाकुलो विषमोपक्रम एष मन्मथः।

पृष्ठ २६ : न खलु साध्यसिद्धये भूर्योव्यापृतिमाकांक्षति साधनस्य प्रकृष्टगुणता।

पृष्ठ २६।९ : एकत्र वस्तुन्यसकृत्प्रहरानपेक्षते जातु न वज्रधारा।

पृष्ठ २८।१३ : अध्याते चालेख्ये दुःशकमालेखनं नाम।

पृष्ठ ३२ : समसुखदुःखे पुनः शरीरमात्रभिन्ने सखीजने भावनिगूहनं ददाति खेदं चित्तस्य वचर्न यतां स्नेहस्य।

पृष्ठ ३६ : ईदृशा महापुरुषा न कदापि दाक्षिण्यमुज्झन्ति।

पृष्ठ ४१ : राजानुवर्तनं खल्वेतादृशानां (विदूषकसदृशानां वराकाणां) युक्तम्।

पृष्ठ ४२ : तदेतदजा-कृपाणीयं नाम।

पृष्ठ ४३।२३ : अन्यत्र दाक्षिण्यवतोपि पुंसः संसक्तमेकत्र समुत्सुकत्वम्।
कामं हि सत्यप्सरसां सहस्रे विशिष्टमिन्द्रस्य शचीपतित्वम्॥

पृष्ठ ५१ : प्रियभाषिण्यः खलु सख्यः।

पृष्ठ ५१ : सर्वथा न विसंवदन्ति निमित्तानि।

पृष्ठ ५४।३ : वामे विधौ भोः खलु को न वामः।

पृष्ठ ५६।१० : स्त्रियः प्रकृत्या ननु कोमलाः।

पृष्ठ ५८ : स्थाने हि सख्यः कामिनीनां शरणम्।

पृष्ठ ६३ : अथवा सर्वतो निपतन्ति पुरुषाणां दृष्टयः। विशेषतः पुना राज्ञाम्। तस्मात्तदैव स्त्रिया वल्लभत्वं यापराद्धे च प्रसादं दर्शयति।.... अतिकोपनाया वल्लभा अपि उद्विजन्ते पुरुषाः।....कुपिताया वल्लभायाः स्वयमप्युपसर्पणमैव प्रसादः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ ६५ : दाक्षिण्यमेव शरणं मम शिष्टमास्ते।

पृष्ठ ६६।२१ : अतिक्रमं प्रेयसि बद्धकोपा विधाय पूर्वं विहितव्यलीके।
स्त्रियो हि किञ्चित्परिवृत्तकोपा भवन्ति जातानुशयाः क्रमेण ॥

पृष्ठ ६७ : एतत् खलु यद् आमंत्रणलालसया विमुक्तभिक्षापरिभ्रमणस्य आमंत्रणशालायां गलहस्तमम्।

पृष्ठ ७० : गतं गतम्। गन्तव्यमिदानीं चिन्त्यताम्।

पृष्ठ ७२ : आकाश एवोत्पन्नं रत्नम्।

पृष्ठ ७२ : संघटयति खलु सुसदृशं मिथुनं विधिः।

पृष्ठ ७२।२७ : प्रत्यक्षमन्मथार्तिप्रकाशनादपि मृगीदृशः प्रायः।
रमयत्यनंगलेखः समुत्सुकं कामिनश्चेतः।

पृष्ठ ७३ : वार्धकं च किंचिदनुशासकमनिसर्गधीराणाम्।

पृष्ठ ७४ : अथवा मनोरथैकविषय एव परपरिचरणपराधीनस्य मादृशो जनस्य नैराश्यसुखरसास्वादः। सर्वथा धिगेनामेनःप्रणालिकां सेवानियंत्रणाम्।

पृष्ठ ७४।२ : सदा सेव्याद्भीतिः परपरिभवास्वादलघुता, परिक्लेशो भूयान्धनलवकृतोन्मादजडता। अवृत्तिर्वृत्तेष्वप्यनवसरलाभाद्विमुखता, विहन्त्येयं सेवा तदियमिह चामुत्र च सुखम् ॥

पृष्ठ ८२ : स्वच्छन्दविधिना विधायिना विधिनैवापराद्धम्।

पृष्ठ ८३ : अथवायत्नान्तरनिरपेक्षैव महाभागानां समीहितसिद्धिः।

पृष्ठ ८३।२४ : स्वैरं फलानि वितरत्प्रविहाय दैवं यत्नान्तरं किमिति तत्र गवेषणीयम्।

पृष्ठ ८६ : अथवा कुतो मितभाषिता लघुचेतसाम्।

पृष्ठ ९० : सैषा स्नेहोद्रेकसुलभा कातरता।

इन सुभाषितों को पढ़ने से ऐसा अनुभव होने लगता है कि सुन्दर सुभाषित भी एक रत्न है।[1]

छन्द—नाटकों में सरसता लाने के लिए संस्कृत के कवियों ने गद्य के साथ पद्य का भी समावेश किया है। आधुनिक नाटककार जहाँ पहले के केवल पौराणिक विषयों को नाटक का आधार न मानकर अन्य विषयों का समावेश करने लगे हैं, वहाँ वे कविता को त्यागकर गद्य का प्रयोग अधिक करने लगे हैं। इस प्रकार आधुनिक नाटककारों ने जहाँ विषय विस्तार को चुना है, वहाँ पद्य का प्रयोग त्यागकर कुछ छोड़ा भी है; किन्तु इस परिवर्तन को आधुनिक नाटककार विकास समझते हैं।[2]

---

१. पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्, मूढः पाषाणखंडेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।
२।६ सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

२. आलोचना के सिद्धान्त, पृष्ठ १७१ (श्री ब्यौहार राजेन्द्रसिंह)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतनी बात अवश्य है कि संस्कृत के किन्हीं नाटकों में छन्दों का इतना बाहुल्य पाया जाता है कि उसे आलोचक अस्वाभाविक मानते हैं तथा आलोचक यह कहते हैं कि जिन पात्रों से छन्द में कथोपकथन कराया जाता है, क्या वे सभी ऐसे कवित्वप्रतिभा-सम्पन्न थे, जो कथोपकथन में भी छन्दों का प्रयोग करते हैं ?

मैं प्राचीन नाटककारों के समर्थन में यह कहना चाहता हूँ कि लोक व्यवहार में भले ही व्यक्ति पद्य का प्रयोग नहीं करते हैं, किन्तु नाटक तो कवि की अपनी सृष्टि होती है ; वह तो लोक के नीरस अंशों को छोड़कर अपनी कल्पना से पाठकों, दर्शकों के मनोरञ्जन तथा रस के लिए नया निर्माण करता है ; इसलिए पद्य प्रयोग को अनुचित नहीं मानना चाहिए। आनन्दवर्धनाचार्य के अनुसार कवि अपनी सृष्टि का प्रजापति है,[1] और मम्मट के काव्य प्रकाश के अनुसार उसकी सृष्टि नियति कृत नियम से परे है।

सुभद्रा नाटिका का मंगलाचरण शार्दूलविक्रीडित छन्द में है, जो कि मगण से आरम्भ होता है। मगण से आरम्भ करने से श्री (सफलता, लक्ष्मी, कल्याण) की प्राप्ति होती है—ऐसा छन्द शास्त्र में माना गया है तथा मगण का देवता भूमि माना गया है।[2] मङ्गलाचरण में तो संस्कृत के सभी कवि विश्वास करते थे, क्योंकि आस्तिक भावना वाले प्रायः मांगलिक कार्यों का ध्यान रखते थे। सुभद्रा नाटिका की शकुन मान्यता के सम्बन्ध में भी संकेत किया जा चुका है कि लोग मांगलिक कार्यों में विश्वास करते थे तथा निमित्त को मानते थे। हस्तिमल्ल ने विक्रान्त-कौरव नाटक को छोड़ तीन नाटकों का आरम्भिक मंगलाचरण मगण से आरम्भ किया है।

सुवृत्ततिलक[3] आदि कुछ ग्रन्थों में ऐसे निर्देश मिलते हैं कि अमुक रस के लिए अमुक छंद का प्रयोग अनुकूल रहता है; यद्यपि यह कोई कठोर नियम नहीं है। नाटिका शृंगार रस की है। उपजाति का प्रयोग कवि ने इसमें सर्वाधिक किया है। यह छन्द भी शृंगार रस की अभिव्यंजना के अनुरूप माना जाता है।[4]

पश्चिमी छन्द शास्त्र के पंडित ब्रेडेर महाशय का कथन है कि यदि कवि ने सुन्दर छन्द का चयन किया है तो वह उसकी अद्भुत सहायता करेगा, क्योंकि अभिव्यंजना में रूप और भाव साथ-साथ चलते हैं।[5] हस्तिमल्ल के छन्दों के पढ़ने से ऐसा लगता है कि हस्तिमल्ल नाटककार और कवि, दोनों की प्रतिभा लेकर उत्पन्न हुए थे।

---

१. अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।

२. भो भूमिः श्रियमातनोति। (छन्दोविज्ञानम्, पृ० १०)

३. सुवृत्ततिलक ३।१७ से ३।२२

४. (क) आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना (पृ० ४६)
(ख) शृङ्गारालम्बनोदार नायिकारूपवर्णनं वसन्तादि तदंगं च सच्छायमुपजातिभिः। (सुवृत्ततिलक, ३।१७)

५. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना (पृ० ४३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा नाटिका में कुल १३४ छन्दों का प्रयोग हुआ है, जो निम्न प्रकार है :—

२९ उपजाति[1], १९ वसन्ततिलका,[2] १८ अनुष्टुप,[3] १७ आर्या,[4] १३ वंशस्थ,[5] ११ शार्दूलविक्रीडित,[6] ५ हरिणी,[7] ५ इन्द्रवज्रा,[8] ५ मन्दाक्रान्ता,[9] ३ शिखरिणी,[10] ३ उपेन्द्रवज्रा,[11] २ वियोगिनी,[12] २ रथोद्धता,[13] १ स्रग्धरा[14] और १ औपच्छन्दसिक[15] है।

संस्कृति

काव्यों में पृथक् रूप से संस्कृति का विवेचन न होने पर भी उनमें ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनसे कुछ तो कवि-कालीन संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं तथा कुछ वर्णन काव्य की कथा वस्तु के युग की संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं; क्योंकि साहित्य व्यक्ति (या समाज) की अनुभूतियों, भावनाओं और कल्पनाओं का ही तो रूप है। इसी कारण साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है।[16] यहां सुभद्रा नाटिका में संस्कृति सम्बन्धी जिन रूपों का संकेत मिलता है, उनका दिग्दर्शन निम्न प्रकार है—

राज्य व्यवस्था—सुभद्रा नाटिका पौराणिक कथावस्तु की मूल भित्ति पर आधारित है, अतएव इसमें पौराणिक राज्य व्यवस्था सम्बन्धी संकेत मिलते हैं।

---

१. प्रथम अंक ७, ८, ९, १२, १३, १४, १७, १८, १९, २३, २७, २९, ३२, ४१, द्वितीय अंक ९, १०, २०, २३, २६, तृतीय अंक ३, ४, ८, ९, ११, २, चतुर्थ अंक ८, ९, २३, ३३ = २९

२. प्रथम अंक ५, ६, १५, २०, २१, द्वितीय अंक ७, १२, १८, तृतीय अंक १६, १८, २२, २४, चतुर्थ अंक ३, ११, १५, १९, २४, २८, ३७ = १९

३. प्रथम अंक २२, ३१, ३७, द्वितीय अंक ८, १६, १७, २४, तृतीय अंक ६ १५, चतुर्थ अंक ४, १०, १४, १६, १८, २५, २६, ३१, ३५ = १८

४. प्रथम अंक २, ३, १०, ११, ३६, द्वितीय अंक २, १३, १४, तृतीय अंक २, ५, ७, १३, १४, २३, २७, चतुर्थ अंक २२, २७ = १७

५. प्रथम अंक २६, ३८, द्वितीय अंक ४, ५, ६, ११, २२, तृतीय अंक १०, १७, चतुर्थ अंक ६, ३०, ३२, ३६ = १३

६. प्रथम अंक १, ४, ३०, ३५, द्वितीय अंक २१, तृतीय अंक २०, २८, २९, चतुर्थ अंक १७, २१, २९ = ११

७. प्रथम अंक ३३, ३४, तृतीय अंक १२, २५, २६ = ५

८. प्रथम अंक २८, द्वितीय अंक १, तृतीय अंक १, चतुर्थ अंक ५, २० = ५

९. प्रथम अंक १६, २५, ३९, ४०, चतुर्थ अंक १२ = ५

१०. द्वितीय अंक १५, २५, चतुर्थ अंक २ = ३

११. चतुर्थ अंक १, १३, ३४ = ३

१२ द्वितीय अंक ३, १९, = २

१३. प्रथम अंक २४, तृतीय अंक १९ = २

१४. द्वितीय अंक २७

१५. चतुर्थ अंक ७

१६. साहित्य विवेचन, पृष्ठ १७ (सुमन और मल्लिक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस काल की राज्य व्यवस्था सीमित प्रदेश तक सीमित नहीं थी, बल्कि राज्य का क्षेत्र बहुत व्यापक था। आधुनिक भूगोल के अनुसार छह महाद्वीपों में संसार को विभक्त मान सकते हैं, किन्तु भरत के काल में भरत खण्ड के छह भाग थे; उनमें एक आर्य खण्ड था और पांच म्लेच्छ खण्ड थे। इनमें भी अनेक जनपद थे[1], जिनमें अनेक राजा थे। राजा भरत दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में अनेक दर्शनीय जनपदों तक पहुँचे थे तथा उत्तर-भारत में विलात राजा की पुत्री को उपहार में प्राप्त किया था। राजा लोग दिग्विजय को निकला करते थे। उनकी सेना के साथ राजपरिवार के अन्य लोग भी जाते थे। सैन्य निवेश के लिए जो शिविर लगाये जाते थे, वहीं किसी सुरम्य स्थल में अतःपुर ठहराने की भी व्यवस्था रहती थी। महाराज भरत का सैन्य शिविर मन्दाकिनी तथा विजयार्घ पर्वत के संगम पर था तथा पास में जो वेदीवन था, वहीं अन्तःपुर का निवेश था और वह वेदीवन प्रमदवन बना लिया गया था।[2] मार्ग में उन्हें राजाओं द्वारा कन्याएं भी भेंट की जाती थीं। राजा भरत को उत्तरभरत प्रदेश में वर्षा करने वाले नागमुख जाति के देवों की वर्षा पर नियन्त्रण के बाद वहां के राजा विलात की पुत्री प्राप्त हुई थी। फिर उसके बाद वैलाती के साथ वैवाहिक विधि पूरी हुई थी।[3]

राजा के साथ प्रमुख सेनापति के अतिरिक्त अन्य सेनापति भी रहते थे; क्योंकि भरत का सेनापति अन्य सेनापतियों में प्रधान था।[4]

युद्ध सामग्री में उस समय हाथी सेना के अंग थे। सुभद्रा में ऐसे विजय हाथियों का वर्णन आया है, जो ठण्डे गंगा के जल में अवगाहन करते हुए दोपहर को जल पी रहे थे।[5] उस समय के शस्त्रास्त्रों में चक्र तथा तीर मुख्य अस्त्र थे। चक्रवर्ती भरत ने कुशलता से एक बाण ऐसा चलाया था, जिससे हिमवान् पर्वत तथा लवण समुद्र दोनों को लक्ष्य बनाया था।[6] विजय के बाद उपहार में अनेक रत्न, छत्र, चंवर तथा सिंहासन आदि उपकरण भेंट किये जाते थे। तार्क्ष्यदत्त दूत ने सेनापति का समाचार जब नमि को सुनाया तो उसने उल्लेख किया है कि विजयार्घ ने अंजलि जोड़कर राजा भरत के लिए छत्र सिंहासन तथा दो चंवर भेंट किये थे।[7]

युद्ध यात्रा में सम्पूर्ण सामग्री राजा के साथ रहती थी। उनके वैतालिक भी साथ रहते थे, जो प्रातः दोपहर आदि के समय राजा की स्तुतिपूर्वक राजा को करने योग्य कार्य की सूचना देते थे। प्रथम अंक के अन्त में दो वैतालिकों ने राजा भरत को दोपहर के समय की सूचना देकर राजा को स्नान के लिए प्रेरित किया है।

---

१. पृष्ठ २१५
२. पृ० ६, ७
३. पृ० ५
४. पृ० ७८
५. पृ० २०।३९
६. पृ० ७७।१६
७. पृ० ७७।१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजाओं के पास इतनी प्रचुर सामग्री तथा साधन थे कि विजय यात्रा के लिए जाते समय राजभवन जैसे उपकरण प्रवास में भी उनके पास रहते थे। प्रथम अंक के अन्त में राजा भरत के स्नान कार्य सम्पन्न करने के लिए स्नानागार अलग से बनाया गया है। उसमें राजा के स्नान के अनुरूप सैकड़ों उपकरण हैं तथा उनके नहाने के लिए वारमुख्यांगनाएं भी तत्पर हैं।[1] इससे यह बात भी प्रमाणित होती है कि राजाओं या वैभव-सम्पन्न लोगों के यहां वारांगनाएं रहती होंगी, जो स्नानादि कार्य सम्पन्न कराती होंगी। राजा स्वयं न्याय करने के लिए धर्मासन पर बैठा करते होंगे, तभी तो विदूषक राजा के सम्बन्ध में कहता है कि सुभद्रा के प्रति राजा की विशेष उत्कण्ठा होने से आजकल राजा धर्मासन पर नहीं बैठते हैं। विजित राजा लोग विजयी राजा की सेवा करते थे, क्योंकि विदूषक कहता है कि भरत इस समय राजाओं को अपनी सेवा का अवसर नहीं प्रदान करते हैं। जिस प्रकार राजाओं के पास दूत होते थे, उसी प्रकार रानियों के पास भी अनेक चेटियां रहती थीं। रानी वैलाती की चेटी रतिषेणा चेटीमुख्या थी। राजा अपने कर्मचारियों के कार्य से प्रसन्न होकर उन्हें पुरस्कार भी देता था तथा उनकी पदोन्नति भी करता था। राजा भरत ने तार्क्ष्यदत्त दूत को दश स्वर्णभार के पुरस्कार के साथ उसे मुख्यदूत का पद देने की घोषणा की थी। इससे सिद्ध होता है कि राजा के यहां अनेक दूत रहते थे।

इन सब गुणों के अतिरिक्त राजा धार्मिक प्रकृति के होते थे। वृद्ध कंचुकी जो यह अनुभव करता है कि सेवा कार्य अच्छा नहीं होता है, इसका कारण यह रहा होगा कि सेवकों पर शासकों का कड़ा नियंत्रण रहता होगा; किन्तु भरत एक ऐसा शासक था जो अनेक गुण-सम्पन्न था। आश्रित लोग तथा विजित राजा लोग अत्यन्त नम्रता से विजयी राजा का गुणानुवाद करते थे। वैसे राजा के अधीनस्थ सेवकों तथा राजाओं की नम्रता से हस्तिमल्ल के उस युग की स्थिति का भी चित्र समझा जा सकता है, जबकि अधीन लोग राजाओं की बड़ी से बड़ी आज्ञा शिर पर धारण करते थे, जैसी भरत की आज्ञा अयोध्य सेनापति शिर पर धारण करता था। विद्याधरराज नमि राजा भरत के पास पहुँचकर क्षमायाचना करते हुए अपने को सेवक से भिन्न नहीं समझते हैं तथा कुशलता पूछे जाने पर कहते हैं कि अब आपके दर्शन होने से कुशलता है। इसी प्रकार रानी ने विदूषक को बंधवाने के बाद मुक्त कर दिया था और कहा था कि राजा का अनुवर्तन करना ही इन जैसों का कार्य है, इस बेचारे को छोड़ दो। इससे यह प्रमाणित होता है कि अधीन लोग राजा का गुणानुवाद करते रहे होंगे। राज्य के अधिकारी का भी उसी प्रकार प्रभाव होता होगा, जैसी प्रभविष्णुता राजा के सेनापति अयोध्य की थी।[2] उस समय स्वर्णभार नामका सिक्का प्रचलित था। इसलिए दूत को दश स्वर्णभार भेंट किये गये थे।[3] राज्य

---

१. २०।३९, २१।४०
२. पृ० ७५, ७४
३. वैसे नाटककार के समय भी स्वर्ण के सिक्कों का प्रचलन था, जैसा कि राखालदास ने लिखा है। सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक दक्षिण पथ में सोने के सिक्के चलते थे। मैसूर के द्वारसमुद्र स्थान में भी सोने के और तांबे के सिक्के मिले हैं। (प्राचीन मुद्रा—पृ० २२९)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मचारियों में अक्षपटलिक भी होते थे। डा० मोतीचन्द ने अक्षपटलिक को कार्यालय का प्रधान अधिकारी माना है।[1] जब राजा भरत ने वैलाती देवी की प्रसन्नता सुनी तो उसको प्रसन्न करने के लिए उसके भाई चक्रसेन तथा पिता विलात को पश्चिम तथा मध्यमोत्तर खण्ड का स्वामी बनाने की घोषणा की थी। यह सूचना अक्षपटलिक के लिए दी गयी। राज्यों की व्यवस्था इन्हीं के अधिकार में होगी। इसी प्रकार कोषाध्यक्ष भी राज्य के कोष के अधिकारी थे। दूत को पुरस्कार देने के लिए कोषाध्यक्ष के पास समाचार भेजा गया था।

राजाओं के यहाँ सभाभूमि तथा अस्त्रशाला आदि की व्यवस्था होती थी। दूत तार्क्ष्यदत्त ने राजा नमि की सभाभूमि में जाकर सेनापति का सन्देश सुनाया था। राजा का चक्र स्वयं ही अस्त्रशाला में प्रविष्ट हो गया था।[2]

राजा लोग शिविरों में सब प्रकार की व्यवस्था कर लेते थे। प्रमदवन, हरिचंदनलतागृह आदि के वर्णन यह सूचित करते हैं कि उन उन प्राकृतिक स्थानों को समुचित व्यवस्था द्वारा उपयोगी बना लिया जाता था।

सामाजिक व्यवस्था—स्थिति तथा रीतिरिवाज

सुभद्रा नाटिका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोगों में दैव या भाग्य की मान्यता थी। सुभद्रा नाटिका के कई पात्रों ने अपने कथन में इस बात को पुष्ट किया है, जो तत्कालीन जनता की चित्तवृत्ति का सूचक है, क्योंकि साहित्य देश की तत्कालीन जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिम्ब होता है।[3] दूसरे अंक में जब सुभद्रा की सखी मन्दारिका सुभद्रा को यह कहकर बुला देती है कि सखियाँ बुला रही हैं, तब सुभद्रा कहती है, अरे दैव की असहनशीलता ! राजा अपने दक्षिण हाथ को सुभद्रा के ग्रहण करने के बाद छोड़ देने पर अदक्षिण कहता हुआ कहता है कि विधि के वाम हो जाने पर कौन वाम नहीं हो जाता है ? राजा के प्रणाम करने पर भी जब देवी अप्रसन्न होकर चली जाती है, तब तृतीय अंक में राजा कहता है—देवी के प्रसन्न होने के प्रति निराश हूँ, क्योंकि प्रणाम करने पर भी वह चली गयी है। अब तो दैव मात्र का अवलम्बन है। अन्त में जब देवी तथा सुभद्रा मिलती हैं तथा एक दूसरे से परिचित होती हैं, तब रानी सोचती है कि मैंने अपनी बहन सुभद्रा के प्रति जो अतिक्रम किया है, उसे आर्यपुत्र क्या समझेंगे ? तब मन्दारिका कहती है कि स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने वाले विधि का ही इसमें अपराध है। इस प्रकार प्रमुख पात्र भरत के मुख से दैव को दिया गया महत्त्व तात्कालिक सामाजिक मान्यता की पुष्टि करता है। भरत के सेनापति ने दैव को छोड़ अन्य यत्न की गवेषणा व्यर्थ मानी है।

युवावस्था में लोग सुख भोगा करते थे, यहाँ तक कि राजा के अन्तःपुर का सेवक कंचुकी स्वयं कहता है कि मेरा जो मन पहले दुःखपूर्ण या भविष्य में

१. काशी का इतिहास—पृ० १३४

२. पृ० ८३।२४

३. साहित्य समीक्षांजलि, पृ० ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःख देने वाले भोग-विलास के सुखों में आसक्त था, वह अब प्रायश्चित करता हुआ तपस्या करना चाहता है। इसके कथन से यह भी ध्वनित होता है कि लोग वृद्धावस्था में घबड़ाते नहीं थे, बल्कि वृद्धावस्था से यह शिक्षा लेते थे कि उनकी वृद्धावस्था उनकी अधीरता की नियंत्रक है और वे अब तपस्या आदि करके कल्याण कर सकते हैं। वे लोग ऐसे कामों को बुरा समझते थे, जो उनके परलोक के सुख में बाधक हों। कंचुकी स्वयं कहता है—उस सेवा के बंधन को धिक्कार है, जो कि पापों के आने की नली है। सेवा, इस लोक तथा परलोक, दोनों के सुख को नष्ट कर देती है। आधुनिक युग में भले ही लोग केवल सेवावृत्ति को सभी सुखों का साधन समझें, किन्तु उस समय सेवा को लोग विशेष अच्छा नहीं समझते थे।

राजा भरत स्वयं धार्मिक प्रकृति का था ही, उसका भाई वृषभसेन भगवान आदिनाथ का गणधर था। यह पद महाव्रतों के पालन के पश्चात् मिलता है तथा ज्ञान की विशेष प्रतिभा होने पर ही कोई गणधर बनता है। भरत का मित्र विदूषक कात्यायन भी धार्मिक क्रिया के चिह्न-स्वरूप यज्ञोपवीत को धारण किये हुए था। किन्तु विदूषक उस यज्ञोपवीत को पकड़ कर झूठी बात की पुष्टि के लिए शपथ भी खा लेता था, क्योंकि उसने रानी के सामने यज्ञोपवीत पकड़कर शपथ ली थी कि यहाँ कोई नायिका न देखी है, न बातचीत हुई है। इससे दो बातें समझी जा सकती हैं कि एक तो सेवक अपने सेव्य को प्रसन्न करने के लिए झूठ का आश्रय ले लेते थे तथा जनता में धर्म तथा शपथ के प्रति इतना विश्वास था कि धार्मिक चिह्न की शपथ को लोग प्रामाणिक मानकर विश्वास कर लेते थे। कुछ बातें ऐसी भी होती हैं कि कवि नाटिका को उसकी टेकनीक कला के अनुरूप ढालने के लिए अपनी कल्पना से ऐसे वर्णन कर देते हैं। विदूषक वहीं रानी से यह भी कहता है कि यह मेरी सन्ध्योपासना मंत्र लिखने की पटिया है तथा मैं जब आचमन के लिए गंगा किनारे गया था, तब इसे प्राप्त किया था। इससे सिद्ध होता है कि उस काल में ब्राह्मण लोग आचमन, सन्ध्योपासना आदि धार्मिक विधियाँ पूरी करते थे। गंगा को उस काल में भी पवित्र समझा जाता था। यद्यपि जैन धर्म में गंगा या अन्य नदी के जल में धार्मिक दृष्टि से कोई तात्विक अन्तर नहीं है, किन्तु जनसमुदाय की गंगा के प्रति जो मान्यता है कि वह पतित को पवित्र करती है, यह भरत के कथन से पुष्ट होती है।[1] लोग श्रुतियों को सुनते थे। राजा स्वयं पुराणपुरुष भगवान आदिनाथ की श्रुतियों का श्रोता था तथा भरत की प्रेरणा के अनुसार प्रजा वर्ण तथा आश्रम की व्यवस्था पर चलती थी। लोग भगवान का अभिषेक जैसी धार्मिक या शुभ क्रियाओं को करते थे, क्योंकि राजा ने विजयार्ध पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुए यह बताया है कि यह पर्वत भगवान के प्रथम अभिषेक के समय सुमेरु पर्वत पर जो दुग्ध-धारा गिरी थी और उससे जो शोभा सुमेरु पर्वत की हुई थी, वही शोभा इस समय विजयार्ध पर्वत की है।

सुभद्रा नाटिका के मंगलाचरण में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे सब धार्मिक मान्यताओं की पुष्टि करते हैं तथा अन्त में भरत वाक्य में भी योग्य पात्र में

---

१. पृष्ठ ६।१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दान देने तथा जिन शासन (धर्म) के कल्याण की आकांक्षा की गयी है। यह सब धार्मिक रुचि की ओर संकेत करते हैं। पुरुषों का अनुराग अनेक स्त्रियों की ओर हो सकता था। पुरुषों के अनेक स्त्रियों के प्रति अनुरागी होने में कोई सामाजिक बाधा न थी। रानी की चेटी रतिषेणा रानी को स्वयं समझाती है कि पुरुषों की दृष्टियाँ प्रायः सब ओर जाती हैं, विशेषकर राजाओं की। किन्तु स्त्रियों के लिए यही विधान था कि उनका प्रेम केवल एक के प्रति हो सकता था। तभी तो सुभद्रा यह सुनकर मूर्च्छित हो गयी थी कि कहीं मेरे भाई ने मुझे मेरे द्वारा एकवार अपनाये गये व्यक्ति से भिन्न के लिए तो प्रदान करने का निश्चय नहीं किया है ? वैवाहिक विधि को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। राजा तथा सुभद्रा का पारस्परिक अनुराग होने पर भी जब राजा नमि ने विधिपूर्वक राजा को कन्यादान कर दिया, तभी राजा ने उसे पूर्णरूप से प्राप्त कर पाया है। इसी बात की व्यञ्जना मालतीलता तथा बालाशोक की उद्वाह विधि के द्वारा की गयी है।

आजकल मामा की पुत्री को बहन माना जाता है और उसके साथ विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकता है, किन्तु उस समय मामा की पुत्री के साथ विवाह होने में कोई रुकावट नहीं थी। भरत का विवाह उनके मामा कच्छराज की पुत्री सुभद्रा के साथ हुआ था, बल्कि भरत ने यह स्वीकार किया कि बिना जाने उस कन्या के प्रति मुझे काम उत्पन्न हुआ था, उसके सम्बन्ध में जब यह जान लिया कि यह मामा की पुत्री है तब कामदेव विशेष रूप से उत्पन्न हुआ। वैसे तो आन्ध्र में मामा अथवा फूफा की लड़की से विवाह करने की छूट की प्रथा अब भी चली आ रही है।[1]

उस काल में मनुष्यों की अनेक सन्तानें होती थीं। भरत के सौ भाइयों के उल्लेख से यह व्यञ्जना होती है कि आदिनाथ के १०० पुत्र थे। इससे यह भी विदित होता है कि उस काल में मनुष्यों की आयु अधिक होती थी।

लोगों की मान्यता शकुन के सम्बन्ध में तत्कालीन समाज में थी। सुभद्रा को सन्तोष दिलाती हुई सखी मन्दारिका कहती है कि तुम अनिष्ट की आशंका क्यों करती हो ? प्रतिदिन निमित्त सिद्ध हो रहे हैं। जब सुभद्रा कहती है कि सखियाँ तो प्रियभाषिणी हुआ करती हैं, तब सुभद्रा उसी शकुन की बात पुष्ट करती हुई कहती है कि निमित्त किसी प्रकार विपरीत नहीं होते हैं। आगे इस शुभ निमित्त की बात को और भी स्पष्ट कर दिया गया है। जब तुमने बालाशोक को चरण-ताड़न का दोहद किया था, तभी उस सौभाग्यशाली ने दर्शनोत्सव दिया था। जैसे-जैसे इस बालाशोक ने प्रस्फुटन प्रकट किया, वैसे-वैसे उस राजा ने भी अनुराग प्रकट किया। अब मैं यही समर्थन कर रही हूँ कि ज्योंही इस बालाशोक की उद्वाह विधि पूरी होगी, इसके बाद उस राजा के समागम में भी विलम्ब न होगा। कन्यादान के अवसर पर नमि भी कहते हैं कि यही प्रदान विधि का शुभ समय है, इसलिए हे कार्त्यायन, सुभद्रा को यहाँ लाओ। इस प्रकार भाग्य, शकुन, मान्यता तथा ज्योतिष के समय के अनुसार कार्य करने की मान्यता तत्कालीन समाज में थी, यह प्रमाणित होता है।

१. भारतीय प्रदेश और उनके निवासी, पृष्ठ १७२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मण लोग शुभ अवसरों पर विशेषकर वैवाहिक अवसरों पर स्वस्तिवाचन किया करते थे और उन्हें उसके उपलक्ष्य में भेंट मिला करती थी। मिष्ट अन्न तो उन्हें दिया ही जाता था। विदूषक ने यह स्वीकार किया है कि जब राजा भरत को विलात-पुत्री प्राप्त हुई थी, तब विदूषक को स्वस्तिवाचनिक भेंट किया गया था। स्वस्तिवाचनिक वह मिष्टान्न आदि रूप उपहार है, जो समय समय पर ब्राह्मणों को दिया जाता था तथा जिसे पाकर ब्राह्मण दाता की मंगलकामना करते थे। दूसरी बार विदूषक मालतीलता तथा बालाशोक की उद्वाह विधि के अवसर पर पहुँच कर कहता है—आपका कल्याण हो। मैं गंगातीर का नियम व्रत करने वाला दीन ब्राह्मण हूँ। आपके उत्सव में स्वस्तिवाचनिक ग्रहण करने आया हूँ। पूछने पर भर पेट भोजन मात्र की इच्छा व्यक्त करता है। यह वाचनक बुन्देलखण्ड में वायने शब्द के नाम से अब भी चलता है, जिसमें लोग शुभ कार्यों के बाद परिचितों को मिष्टान्न भेजा करते हैं।

ब्राह्मण लोग उस काल में आशीर्वाद दिया करते थे। जनता का भी विश्वास इन आशीर्वादों में रहता था। तभी तो लोग ब्राह्मण को स्वस्तिवाचनिक देकर आशीर्वाद प्राप्त करते थे। विदूषक ने सुभद्रा को प्रथम अवसर पर ही 'चक्रवर्ती की वल्लभा बनो', ऐसा आशीर्वाद दिया था। राजा ने भी मन में सोचा था कि इसका यह आशीर्वाद सुप्रयुक्त है। दूसरी बार भी मालतीलता तथा बालाशोक की उद्वाह विधि पर जाकर—'आपका कल्याण हो', ऐसा आशीर्वाद दिया था। दोनों आशीर्वादों को पाठक फलीभूत भी हुआ देखते हैं। इसलिए इस मान्यता का अनुमान करना स्वाभाविक है। प्रजा की अपेक्षा राजा लोग अधिक विलासी रहते थे; क्योंकि राजा के अनेक स्त्रियों का होना तथा उपहार में कन्यारत्न स्वीकार करना, अनेक देशों की स्त्रियों को मनाने की कला का आना, यह सूचित करता है कि राजा भोग-विलास-प्रवण रहते थे। राजा भरत सुभद्रा के न मिलने पर अपना राज्य, यौवन तथा स्त्रियों को मनाने की कला, इन सबको व्यर्थ समझते हैं। विदूषक भी कहता है कि राजा लोग तो हर प्रकार असन्तुष्ट होते हैं। रानी की चेटी कहती है—पुरुषों की दृष्टियां सब ओर जाती हैं, विशेषकर राजाओं की। इस प्रकार समाज में अन्तिम अवस्था में जितना वैराग्य या धर्म का वातावरण रहता था, युवावस्था में उतना ही काम पुरुषार्थ का। इसमें कुछ झलक तो उस युग के विलासी जीवन की भी है, जिस युग में भारत में कवि हस्तिमल्ल थे।

विवाह विधि सम्पन्न करने तथा किसी को कोई वचन देने के पूर्व उसकी पुष्टि के लिए जल की धारा छोड़ी जाती थी। राजा को सुभद्रा प्रदान करते समय नमि ने राजा के हाथ में रत्नपात्र से जल-धारा छोड़ी थी। मालतीलता की उद्वाह विधि के समय भरपेट भोजन की स्वीकृति का निश्चय दिलाने के लिए विदूषक के कहने पर मन्दारिका ने जलधारा प्रदान की थी।

भिन्न भिन्न जनपदों में भिन्न भिन्न भाषाएं थीं तथा अपने अपने देश के अनुकूल पुरुषों के परिकर्म अर्थात् शरीर संस्कार की रीतियां उबटन आदि भिन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भिन्न थे। राजा भरत ने अपनी दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में जो भ्रमण किया था, उससे उन्हें यह अनुभव हुआ था।[1]

स्त्रियां, विशेषकर कन्याएं, अपने हाथ से पौधों का संवर्धन, सिंचन करती थीं। सुभद्रा ने अपने हाथ से संवर्धित बालाशोक में पुष्पोद्भव के लिए चरण-ताड़न का दोहद किया था। लोगों का प्रकृति के प्रति विशिष्ट प्रेम रहता था। कन्याओं तथा राजा के प्रकृति-प्रेम से यह बात सिद्ध हो जाती है।

सहकार के पल्लव से कन्याएं पसीने के पोंछने आदि का काम कर लेती थीं। राजा भरत ने ऐसे परिवर्तित रंग वाले सहकार पल्लव को देखकर जो अनुमान किया था कि सुभद्रा ने इस पल्लव को पसीना पोंछने के लिए हाथ में लेकर कपोल प्रदेश पर अर्पित किया था। मालतीलता और बालाशोक की उद्वाह विधि पूरने के लिए सलिल के साथ साथ भेंट करने के लिए या वैवाहिक विधि की पूर्ति के लिए मंजरिका चेटी के द्वारा गंगा से स्वच्छ विकसित तथा पवित्र अर्घदान के कमल मंगवाये गये थे। सुभद्रा का चक्रवर्ती के साथ विवाह कार्य संपन्न हो जाने पर विद्याधरों ने पुष्पवृष्टि की थी। प्रकृतिदत्त वस्तुओं से इन कार्यों का पूरा किया जाना जनमानस की मांगलिक कार्यों के प्रति उत्सुकता को व्यंजित करता है और प्रकृति की वस्तुओं को उपयोग में लाने की सामाजिक रीति का पता चलता है। अपना अनंग लेख तैयार करने के लिए सुभद्रा कागज के स्थान पर अशोक पल्लव को मंगवा लेती है तथा आँसू से भीगा हुआ स्तन पर अंगराग के रूप में लगा हुआ हरिचन्दन का रस ही उसे स्याही का काम देता है।

सुभद्रा के अनंगलेख के लिखने तथा उसकी सखी मन्दारिका द्वारा पढ़ने के बाद उसकी गंभीर वचनों की उक्ति की प्रशंसा से यह प्रमाणित होता है कि मनुष्यों के साथ साथ स्त्रियाँ भी शिक्षित होती थीं तथा वे लिखना पढ़ना जानती थीं। विदूषक ने भी चित्रफलक उल्टा रहने पर बहाना बनाया था कि मैं इस पर सन्ध्योपासना मंत्र लिखता हूँ, क्योंकि ब्राह्मण शिक्षित होते थे और उनके लिखने पढ़ने के सम्बन्ध में अविश्वास का स्थान नहीं था। दूतों के हाथ पत्र प्रेषण किया जाता था। सेनापति ने कंचुकी को आदेश दिया था कि महाराज विलात तथा युवराज चक्रसेन के पास लेखहस्त वाले दूतों को भेज दो। प्रसिद्ध वंशों का उस समय भी सम्मान था। इक्ष्वाकुवंश का विशेष नाम था। इसलिए किन्नर युगल के द्वारा नेपथ्य में जो भरत की कीर्ति गाथा गायी जाती है, उसमें भरत का विशेषण इक्ष्वाकुवंश-शिखामणि बताया गया है।

उस काल में आयुर्वेद का प्रचार था। भरत ने विदूषक से सुभद्रा की विरहावस्था की स्थिति का कथन करते हुए कहा है कि इसके अंग पर आँसू वैसे ही सूख जाता है, जैसे काढ़ा बनाने में निकलती हुई भाप सूख जाती है।

राजा भरत द्वारा सुभद्रा के चित्र बनाने का वर्णन तत्कालीन चित्रकला का सूचक है। राजा ने सुभद्रा से यह भी कहा था कि मुझे संवाहन की विदग्धता

१. पृष्ठ २।५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त है। ६४ कलाओं में संवाहन कला का ४४वाँ स्थान माना गया है।[1] प्राचीन काल में संवाहन अथवा मालिश मनोरंजन का बड़ा लोकप्रिय साधन था। प्राकृत ग्रन्थों का कथन है कि संवाहन द्वारा हड्डी, मांस, चाम और केश, चारों को सुख पहुँचता है।[2] भोजन पान के सम्बन्ध में संकेत मिलते हैं कि भोजन आदि का समय निश्चित-सा था। विदूषक दूसरे अंक में कहता है कि राजा अपने भोजन के समय को चुकाकर (बिताकर) अपने इस मित्र को भी सुखा रहे हैं। भोजन का ही नहीं, स्नान का भी समय निश्चित था। कात्यायिन राजा के सम्बन्ध में यह भी कहता है कि राजा मज्जन की वेला को भी यहाँ वहाँ बिता देते हैं। भिन्न-भिन्न देशों का खानपान भिन्न-भिन्न था। जैन आचार में चार प्रकार के भोजनों का उल्लेख है। विदूषक विभिन्न देशों में इन चार प्रकार के भोजनों का आनन्द उठा चुका है। वह कहता है कि मैंने अच्छा तैयार किया हुआ उन-उन देशों का भोजन खाया (यह खाद्य आहार है), उन-उन रसपूर्ण मानक रसों को पिया (यह पेय आहार है), अनेक प्रकार के लड्डू खाये (यह स्वाद्य आहार है), तथा दुर्लभ चटनी को भी चखा (यह लेह्य आहार है)।

अलंकार-परिधान—जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है, प्रकृतिदत्त वस्तुओं का भी उपयोग किया जाता था। संभव है कन्याएँ प्रवाल और स्तवक के उत्तंस तथा अवतंस बनाकर पहनती थीं। अभिधान चिन्तामणि के अनुसार ये कान पर लटकने वाली मालाएँ हैं। राजा ने अशोक के प्रति अपने कथन में ऐसी ही कान्ता को प्राप्त करने का संकेत किया है। स्त्रियाँ पैरों में नूपुर पहनती थीं। जब राजा भरत और विदूषक सुभद्रा की पद-पंक्ति का अनुसरण करते हुए जा रहे थे, तब विदूषक ने नूपुर की ध्वनि मन्दार वृक्ष के आसपास सुनी थी। सुभद्रा पैरों में नूपुर पहनती थी। सुभद्रा की सखियाँ भी नूपुर पहनती थीं। उनकी नूपुर ध्वनि को सुनकर ही मन्दारिका सुभद्रा को राजा के पास से हटा ले गयी थी। राजा विरह में सुभद्रा की भंगिमाओं के सम्बन्ध में अपने मित्र से कह रहा है कि उसके दाहिने स्तनतट से उत्तरीय खिसक गया था, उसे उसने दो अंगुलियों से ऊपर को चढ़ा दिया था। यह एक प्रकार की ओढ़ने की चादर थी। मध्य प्रदेश में तथा अन्य कुछ प्रदेशों में अब भी स्त्रियाँ चादर ओढ़ती हैं, वह बहुत ही छोटी होती है। उत्तरीय के ऊपर उसने हारावली को सटा दिया था, जिससे पुनः उत्तरीय जल्दी न खिसक सके। इस प्रकार हारावली के पहिनने के संकेत भी मिलते हैं। यह हार कई लड़ी का होने से इसे हारावली कहा गया है। हार में मोती लगे हुए थे। वह कान में कर्णोत्पल भी पहने हुई थी, जिसके व्यवस्थित होने पर भी सुभद्रा ने उस ओर हाथ बढ़ाकर व्यवस्थित करने का अभिनय किया था।

कन्याएँ बचपन में बहुत थोड़े आभरण पहनती थीं। पैरों में नूपुर, वक्षस्थल पर हार, कर्णों में कर्णोत्पल तथा हाथों में वलय (प्रथम अंक के १६वें श्लोक में वलय

१. हिन्दी कामसूत्र, पृष्ठ ८४
२. प्राचीन भारतीय मनोरंजन, पृष्ठ १५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द का प्रयोग हुआ है) पहनती थीं। विवाह के अवसर पर कन्याओं को विशेष आभरणों से अलंकृत किया जाता था। सुभद्रा को रानी ने कुछ अलंकार विवाह के अवसर पर पहनाये थे। पुरुषों में विदूषक भी उत्तरीय धारण करता था। ब्राह्मण लोग इस वस्त्र को विशेष रूप से धारण करते होंगे। विदूषक दर्भग्रन्थि नामक एक अलंकार हाथ की अंगुलि में पहनता था। संभवतः यह एक प्रकार की अंगूठी थी। रतिषेणा ने जब विदूषक को राजा के प्रति रानी के प्रसन्न होने की सारी कथा सुनायी, तब विदूषक ने उसे प्रसन्नतापूर्वक अंगुली से दर्भग्रन्थि निकाल कर प्रदान की थी।

इसके अतिरिक्त चरणों में कन्याएँ और स्त्रियाँ अलक्तक का प्रयोग करती थीं, सुभद्रा के पैरों में सरस अलक्तक लगा था, जो जमीन पर अपने चिह्न छोड़ता जाता था। उसीको देख कर राजा सुभद्रा के समीप पहुंचे थे। रानी ने इसी अलक्तकरस से चिह्नित पदपंक्ति को देखकर राजा के प्रति शंका की थी। विदूषक ने रानी से बहाना बनाया था कि आपकी पद-पंक्ति समझकर इसका अनुसरण किया है। इसका अर्थ यह है कि कन्याएँ तथा विवाहिता, दोनों प्रकार की स्त्रियाँ अलक्तक का प्रयोग करती थीं।

उस समय स्त्रियाँ गोरोचन का तिलक लगाया करती थीं; क्योंकि राजा ने सरस अलक्तक पंक्ति का वर्णन करते हुए प्रथम अंक के २१ वें श्लोक में गोरोचना के विशेषक का उल्लेख किया है।

स्त्रियाँ आँखों की शोभावृद्धि के लिए अञ्जन का प्रयोग भी करती थीं। सुभद्रा की आँखों में भी अञ्जन लगा हुआ था। जब उसकी आँखों से आँसू निकल आये, तब साथ में कज्जल भी अश्रुजल से छूट गया था। राजा ने सुभद्रा से प्रश्न किया था कि कपोल पर बिखरे हुए तुम्हारे बाल उन आँसुओं से क्यों गीले हैं, जिनने आँखों के अञ्जन को पोंछ दिया है। स्तन के ऊपर भी लेपन का प्रयोग स्त्रियाँ करती थीं। सुभद्रा ने स्तन पर हरिचन्दन के रस का अंगराग लगाया था। सुभद्रा ने अनंगलेख के लिए आँसू से गीले उसी हरिचन्दन रस से स्याही का काम लिया था। हरिचन्दन को तोते के पर के समान रंग वाला तथा विशेष प्रकार की सुगन्ध वाला बताया गया है।[1]

धार्मिक स्थिति तथा अन्य समृद्धि—तृतीय अंक में किन्नर युगल के द्वारा जो भरत का गुणगान किया गया है, उसमें भरत के अनेक गुणों के साथ नवनिधिपति भी बताया गया है। पुराणों में इन निधियों का वर्णन मिलता है। (१) काल निधि—ऋतु के अनुसार नाना प्रकार के पदार्थ प्रदान करती है, (२) महाकाल निधि—अनेक प्रकार के भोजन प्रदान करने वाली होती थी, (३) माणवक निधि—अनेक प्रकार के अस्त्र प्रदान करती थी—भरत के यहाँ पृथक् रूप से अस्त्रशाला थी। चतुर्थ अंक के २४ वें छन्द में उल्लेख है कि भरत का चक्र स्वयं अस्त्रशाला में प्रविष्ट हो गया था, (४) पिंगल निधि—अनेक प्रकार के आभूषण देने वाली, (५) नैसर्प

१. प्राचीन भारत के प्रसाधन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दिर प्रदात्री, (६) पद्म निधि—विविध प्रकार के वस्त्रों की प्रदात्री, (७) पाण्डु निधि—धान्य प्रदान करने वाली, (८) शंख निधि—वादित्र देने वाली और (९) सर्व रत्न निधि—नाना प्रकार के रत्न प्रदान करने वाली मानी गयी है।[1]

सुभद्रा नाटिका में राजा ने सुभद्रा को अपश्चिम (सर्वोत्तम) रत्न माना है। इससे यही प्रतीत होता है कि पुराणों में उल्लिखित दूसरे रत्न भी उनके पास थे, क्योंकि नव निधियों में रत्न प्रदात्री सर्वरत्न निधि उनके पास थी। रत्नों की संख्या तथा नाम निम्न प्रकार हैं—

चक्रं छत्रमसिर्दण्डो मणिश्च चर्म च काकिणी
गृहसेनापतिस्तक्षा पुरोधोश्वगजस्त्रियः।

इस प्रकार रत्नों में स्त्रीरत्न को प्रधानता देने के लिए संभवतः सबसे अन्तिम बताया गया है। सुभद्रा नाटिका में इनमें से कुछ रत्नों का उल्लेख मिलता भी है। सेनापति नामका भी एक रत्न चौदह रत्नों में माना गया है। राजा भरत के पास अयोध्य नाम का सेनापति था।

सुभद्रा नाटिका की रत्नावली नाटिका से तुलना

कवि हस्तिमल्ल के जीवन-परिचय में जैसा कि लिखा जा चुका है, उनका अध्ययन विशिष्ट था, धर्म तथा दर्शन के साथ-साथ प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थों का अध्ययन भी उन्होंने किया था। कवि की रचना का मौलिक निर्माण होते हुए भी उसमें कुछ छाया दूसरी रचनाओं की आ जाती है। हर्ष की रत्नावली नाटिका और सुभद्रा नाटिका में कुछ स्थानों पर तुलना करने पर साम्य दिखाई देता है।

हर्ष ने कनिष्ठा नायिका सागरिका के प्रति उदयन के क्रमशः प्रेम-विकास का चित्रण किया है। उसमें ज्येष्ठा नायिका वासवदत्ता विघ्न उपस्थित करती है तथा मन्त्री योगान्धरायण उदयन के साथ रत्नावली का सम्बन्ध कराने की योजना बनाता है। अन्त में वासवदत्ता के प्रसन्न होने पर सागरिका का विवाह उदयन के साथ हो जाता है।

सुभद्रा नाटिका में भी सुभद्रा के प्रति राजा भरत का अनुराग विकसित होता है। ज्येष्ठा पत्नी वैलाती उसमें बाधक बनती है। अयोध्य सेनापति विद्याधर-राज नमि को भरत के साथ सुभद्रा का सम्बन्ध करने के लिए बुलवाते हैं। रानी वैलाती के प्रसन्न होने पर राजा भरत के साथ सुभद्रा का विवाह हो जाता है। इस प्रकार दोनों नाटिकाओं की कथावस्तु एक ही सरणि को लेकर चलती है।

पात्रों की संख्या की दृष्टि से भी सुभद्रा के पुरुष तथा स्त्री पात्रों की समानता है। इसके साथ उनके पात्रों का कार्य भी समान है। राजा भरत का विदूषक तथा उदयन का विदूषक प्रायः कनिष्ठा नायिका के प्रति अनुराग में अपने मित्र के सहायक

१. त्रिकालवर्ती महापुरुष, पृष्ठ १८२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनकर एक-सा कार्य सम्पादित करते हैं। सुसंगता रत्नावली की सहायिका है। सुभद्रा में मन्दारिका सुभद्रा की सहायिका है। रत्नावली में वसुन्धरा प्रतीहारी है, सुभद्रा में जित्वरिका प्रतीहारी है। रत्नावली में वाभ्रव्य तथा सुभद्रा में पुरुषदत्त कञ्चुकी हैं; पर दोनों के कञ्चुकियों में भेद है। सुभद्रा में रानी वैलाती की सहायिका रतिषेणा चेटी है, उसे रानी कभी-कभी सखि शब्द से सम्बोधित करती है। रत्नावली में वासवदत्ता की सहचरी कांचनमाला है; ये दोनों अपनी स्वामिनी की सहायिका होकर भी राजा के प्रति अपनी-अपनी स्वामिनी को सहृदय बनी रहने के लिए प्रेरित करती हैं। सुभद्रा नाटिका में सुभद्रा के भाई नमि आकर कन्यादान की विधि पूरी करते हैं, रत्नावली नाटिका में रत्नावली के मायके से उसके पिता विक्रमबाहु का प्रधान मन्त्री वसुभूति जाता है; किन्तु उसके द्वारा कन्यादान की विधि पूरी नहीं की जाती है। रत्नावली नाटिका में एक ऐन्द्रजालिक भी आता है; वैसी योजना सुभद्रा में नहीं है। सुभद्रा नाटिका में अयोध्य सेनापति ने यद्यपि राजा की विजय यात्रा में चार खण्डों पर विजय प्राप्त करके राजा को षट् खण्ड विजयी बना दिया है, किन्तु अयोध्य को दिग्विजय में कुछ श्रम नहीं करना पड़ा, क्योंकि राजा के प्रभाव से वहाँ कोई शत्रु सामने ही नहीं आया; केवल अयोध्य सेनापति ने भ्रमण मात्र करके एक रीति का निर्वाह कर दिया है। रत्नावली में उदयन का मन्त्री योगन्धरायण विशिष्ट क्रियाशील है तथा ऐसा लगता है कि उसकी योजना से ही राजा उदयन को चक्रवर्ती पद तथा उनका राज्य उन्हें मिल सका है। इस दृष्टि से रत्नावली का मन्त्री योगन्धरायण कहीं उदयन से भी अधिक सक्रिय और दक्ष दिखाई देता है।

सुभद्रा नाटिका में तार्क्ष्यदत्त नामका एक दूत भी है, जो सेनापति का आदेश राजा नमि के पास ले जाकर नमि को सुनाता है और आकर उपहार समेत आने वाले विद्याधरों का समाचार राजा को सुनाकर पुरस्कार प्राप्त करता है। रत्नावली नाटिका में इस तार्क्ष्यदत्त दूत से मिलते-जुलते चरित्र वाला पात्र उदयन के प्रधान सेनापति रूमण्वान का भानजा है, जो राजा उदयन को सेनापति रूमण्वान द्वारा विजय किये गये कोसल देश के सम्बन्ध में समाचार सुनाता है। उसे भी राजा के द्वारा पारितोषिक दिलाने की व्यवस्था की गयी है।

वर्णन सम्बन्धी कुछ समानताएँ निम्न प्रकार हैं—रत्नावली में सूत्रधार ने प्रस्तावना में कहा है कि राजसमूह ने मुझे कहा है कि तुम अनुरूप प्रयोग द्वारा रत्नावली नाटिका का अभिनय करो।[1] सुभद्रा नाटिका में भी सूत्रधार नटी से अपनी ओर से कहता है कि अनुरूप प्रयोग के द्वारा हम इस परिषद् की आराधना करते हैं।[2]

रत्नावली के प्रथम अङ्क में सागरिका कामदेव पूजन के समय उदयन को कामदेव समझती है, उसकी ओर आकर्षित भी है, किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं है कि यही उदयन राजा है, जिसे मेरे पिता ने प्रदान किया है। नैपथ्य में वैतालिक लोग

१. रत्नावली—अस्मास्वनुग्रहबुद्धया यथावत्प्रयोगेण त्वया नाटयितव्येति।
२. यावदेनामनुरूपेण प्रयोगेणाराधयामः। (सुभद्रा, पृष्ठ १)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा उदयन की कीर्ति का गान करते हैं तथा कहते हैं कि राजा लोग उदयन के चरणों की आराधना के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन वैतालिकों के पठन के बाद रत्नावली को ज्ञात हुआ कि यह वही उदयन है, जिसे मेरे पिता ने प्रदान किया है। सुभद्रा नाटिका में सुभद्रा तृतीय अङ्क तक चक्रवर्ती राजा भरत से प्रेम करती रहती है, अभी उसके भाई ने किसी को प्रदान करने का निश्चय नहीं किया है। जब तीसरे अंक में सुभद्रा को ज्ञात होता है कि मेरे भाई ने चक्रवर्ती राजा भरत को देने का निश्चय किया है, तब वह दुःखी होती है। राजा आश्वासन देने सुभद्रा के पास पहुँचते हैं। इसी बीच किन्नर लोग चक्रवर्ती राजा भरत की यशोगाथा गा रहे हैं। तब सुभद्रा को यह ज्ञात होता है कि यह वही चक्रवर्ती भरत है, जिसे मेरे भाई ने मुझे देने का निश्चय किया है।

रत्नावली के तीसरे अंक में प्रवेशक की योजना है, जिसमें मदनिका तथा कांचनमाला का कथोपकथन है। सुभद्रा के भी तीसरे अंक में प्रवेशक की योजना है, जिसमें तरंगिका तथा मंजरिका का कथोपकथन है; किन्तु रत्नावली के प्रवेशक की अपेक्षा सुभद्रा के प्रवेशक की योजना शिथिल है।

रत्नावली तथा सुभद्रा, दोनों के दूसरे अंक में चित्र दर्शन की घटना को नियोजित किया गया है। रत्नावली में सागरिका द्वारा लिखित अपने चित्र को उदयन देख रहे हैं तथा सुभद्रा नाटिका में राजा भरत अपने द्वारा लिखित सुभद्रा के चित्र को देख रहे हैं। यही दोनों में वैषम्य है।

रत्नावली के दूसरे अंक में जब राजा उदयन रत्नावली के चित्र को देख रहे हैं, तब सुसंगता सागरिका से कहती है कि हम लोग कदली गुल्म की ओट में छिपकर यह दृश्य देखें तथा देखकर कहती है, सखि, भाग्य से बढ़ रही हो; यह तुम्हारा हृदय-वल्लभ तुम्हें ही देख रहा है। सुभद्रा नाटिका में भी द्वितीय अंक में मन्दारिका सुभद्रा से कहती है कि मैं इस मन्दार वृक्ष की ओट से छिपकर देखती हूँ तथा देख-कर कहती है, हे सखि भाग्य से बढ़ रही हो, यह तुम्हारा हृदयवल्लभ है।

रत्नावली में जब सागरिका राजा उदयन का अनुराग अपने चित्र के प्रति बढ़ा हुआ देखती है, तब सागरिका आत्मगत कहती है, हृदय, समाश्वासन प्राप्त करो, तुम्हारा मनोरथ भी इतना ऊंचा न था। सुभद्रा नाटिका में सुभद्रा भी राजा को अनुरागपूर्वक अपना चित्र देखते हुए देखती है, तब वह भी आत्मगत कहती है, हे हृदय, इस समय समाश्वासन प्राप्त करो, यह तुम्हारी मनोरथ भूमि वाला व्यक्ति है।

रत्नावली में चित्र देखते हुए राजा उदयन कह रहे हैं कि चित्र लिखते समय इस सागरिका की अश्रु बिन्दुएं चित्र पर गिर पड़ी हैं। बिन्दुएं मुझे ऐसी लगती हैं मानों उसके करतल के स्पर्श से मेरे शरीर में स्वेद उत्पन्न हो गया हो। सुभद्रा नाटिका में राजा की अश्रु-बिन्दु चित्रित सुभद्रा के स्तन पर गिर पड़ी है और उसे ऐसा लगता है जैसे मेरी करुण अवस्था के कारण सुभद्रा के मुख से आंसू शोक के कारण गिर पड़ा हो। इस प्रकार कुछ परिवर्तन के साथ इसमें मिलती-जुलती योजना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नावली नाटिका के द्वितीय अंक में चित्रफलक को रानी वासवदत्ता देख लेती है। राजा वासवदत्ता से कहते हैं—चित्र में यह नायिका अपने मन से मैंने लिखी है, कोई पहले देखी हुई नायिका नहीं है। विदूषक समर्थन में कहता है कि सत्य है, में ब्रह्मसूत्र की शपथ लेता हूँ जो हमने कभी भी इसे पहले देखा हो। सुभद्रा नाटिका में रानी जब विदूषक से कहती है कि मेरे प्रिय का अभिलषितजन के साथ समागम करा दिया ? तब विदूषक कहता है कि मैं ब्रह्मसूत्र की शपथ लेता हूं न तो यहां कोई दूसरी स्त्री देखी है और न उससे बातचीत ही हुई है। यह घटना प्रथम अंक में है। रत्नावली नाटिका में विदूषक की उक्त बात का समर्थन वासवदत्ता की सहचरी कांचनमाला कर देती है। तब रानी कांचनमाला से कहती है—अयि सरले, यह वसन्तक है, तुम इसकी कुटिल बातों को नहीं जानती हो। इधर सुभद्रा नाटिका में भी रानी की सहचरी रतिषेणा जब विदूषक की बात का समर्थन करती है, तब रानी कहती है—अयि सरले, तुम वास्तव में आर्यपुत्र को नहीं जानती हो।

रत्नावली के दूसरे अंक में सागरिका जब राजा के पास से जाने लगती है, तब सुसंगता राजा से कहती है, राजन, यह अति कोपना है। इसलिए इसे हाथ में पकड़कर प्रसन्न कर लो। सुभद्रा नाटिका में भी दूसरे अंक में जब सुभद्रा राजा के पास से जाने लगती है, तब राजा मन्दारिका से कहते हैं, भद्रे, तुम अपनी कोपना प्रिय सखि को क्यों नहीं प्रसन्न करती हो ? मन्दारिका राजा से कहती है, राजन, स्वयं ग्रहण करके इसे प्रसन्न कर लो।

रत्नावली के तीसरे अंक में राजा के पैरों में पड़ने पर भी जब रानी कुपित होकर चली जाती है, तब विदूषक राजा से कहता है कि अरे उठो, देवी तो गयी; तो फिर क्यों अरण्य रोदन कर रहे हो ? यह सुनकर मुख उठाकर तथा देखकर राजा कहते हैं—क्या देवी बिना प्रसन्न हुए चली गयी ? तब विदूषक कहता है—देवी ने प्रसाद क्यों न किया कहलाया, जबकि हम दोनों अक्षतशरीरी हैं। सुभद्रा के तीसरे अंक में भी राजा जब चरणों के पास भूमि पर प्रणाम करते हैं और रानी कुपित होकर चली जाती है, तब विदूषक कहता है, अरे मित्र, क्या आकाश में प्रणाम किया जा रहा है ? राजा उठकर कहते हैं, क्या देवी अप्रसन्न होकर चली गयी ? विदूषक उत्तर देता है—अरे, अकृतज्ञ यही देवी का महान् प्रसाद है कि हम लोग जीवित छोड़ दिये गये। इस प्रकार कुछ शब्द परिवर्तन के साथ वही भाव मिलता-जुलता है।

रत्नावली के दूसरे अंक में राजा सागरिका का हाथ पकड़कर मना रहे हैं, पर वह कोप नहीं छोड़ रही है। इतने में विदूषक कह देता है—यह दूसरी देवी वासवदत्ता है। राजा चकित होकर सागरिका का हाथ छोड़ देता है। सागरिका भी शंकित होकर सुसंगता के परामर्श के अनुसार तमालवीथी से होकर निकल जाती है। जब राजा कहता है—देवी वासवदत्ता कहाँ है ? तब विदूषक कहता है, मैंने तो सागरिका के अतिरोष स्वभाव के कारण यह कह दिया था कि यह (सागरिका) दूसरी वासवदत्ता है। सुभद्रा नाटिका के दूसरे अंक में जब राजा सुभद्रा का चित्र देख रहे हैं तथा सुभद्रा भी राजा को अपना चित्र-दर्शन करता हुआ देख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रही है; विदूषक इसी बीच कह देता है, यह वेला.......! राजा घबड़ा कर पूछता है—देवी वैलाती कहाँ है ? विदूषक कहता है—मित्र, डरो मत। मैं तो कह रहा था कि यह वेला (सीमा) दिखाई देती है आलेख्य विज्ञान की।

चतुर्थ अंक में रत्नावली नाटिका में देवी वासवदत्ता राजा से कहती है—हे आर्यपुत्र, इसका पितृकुल दूर है, इसलिए ऐसा करो जिससे यह अपने बन्धुजन का स्मरण न करे। सुभद्रा नाटिका के चतुर्थ अंक में रानी वैलाती भी राजा से कहती है—हे आर्यपुत्र, इसका नामिगृह विद्याधर लोक में है, आप लोग अयोध्यापुरी के हैं; इसलिए सावधान होकर इस प्रकार व्यवहार करो, जिससे यह अपने नैहर को स्मरण कर व्यथित न हो।

उपसंहार में रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण के यह कहने पर कि तुम्हारा पुनः क्या प्रिय उपकार करूँ ? राजा कहते हैं कि पृथिवी तल पर तत्वभूत यह सागरिका प्राप्त हुई तथा बहन की प्राप्ति से देवी वासवदत्ता भी प्रसन्न हुई, इत्यादि। सुभद्रा नाटिका में भी नमि के यह कहने पर कि पुनः तुम्हें क्या प्रिय उपहार दिया जाना चाहिए ? राजा कहते हैं कि उत्तम रत्न तुम्हारी अनुजा प्राप्त हुई तथा अपनी छोटी बहन को पाकर रानी भी शान्त हुई, इत्यादि।

नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन रत्नावली नाटिका की तरह सुभद्रा में भी होते हुए दोनों ही सुन्दर नाटिकाएँ हैं।

वैषम्य की दृष्टि से विचार करें तो दोनों में अनेक समानताओं के होते हुए अनेक विषमताए भी मिलेंगी। रत्नावली नाटिका में चतुर्थ अंक में यौगन्धरायण कहता है कि सिद्धों ने बताया था कि जो व्यक्ति इस सागरिका का पाणिग्रहण करेगा, वह चक्रवर्ती (सार्वभौम) राजा होना चाहिए; इसलिए इसका विवाह आपके साथ करने की योजना मैंने रची है अर्थात् रत्नावली नाटिका में सागरिका के पाने से उदयन को चक्रवर्ती की प्राप्ति होना है। राजा उपसंहार में सागरिका को ससागर पृथिवी की प्राप्ति का कारण मानते भी हैं। सुभद्रा नाटिका के चतुर्थ अंक में भी ज्ञात होता है कि नमि ने रानी के पास हंसदत्त कंचुकी के द्वारा समाचार भेजा था कि सिद्धों के आदेश के अनुसार सुभद्रा चक्रवर्ती की पटरानी होगी और उसी सम्बन्ध को कार्यरूप देने के लिए सेनापति अयोध्य द्वारा हम विद्याधर बुलाये गये हैं। इसका अर्थ यह है कि भरत स्वयं चक्रवर्ती है, जबकि उदयन को सागरिका की प्राप्ति से चक्रवर्तित्व की प्राप्ति हुई है।

रत्नावली नाटिका में कामदेव-पूजन के अवसर पर उदयन को देखकर पहले अनुराग का बीज सागरिका में अंकुरित हुआ है और बाद में राजा उदयन में, इसके साथ ही रत्नावली की सागरिका को उदयन के विरह में विशेषरूप से विरहाकुल देखते हैं, यहाँ तक कि वह राजा के प्राप्त होने पर तथा वासवदत्ता के द्वारा योजना विफल हो जाने पर फांसी लगा कर आत्महत्या करने पर उतारू हो जाती है। सुभद्रा नाटिका में राजा सुभद्रा की पदपंक्ति का अनुसरण करते हुए पास पहुँचकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा को देखकर पहले अनुरक्त होते हैं और विदूषक के कथन के अनुसार द्वितीय अंक के आरम्भ में राजा की विरहावस्था सुभद्रा की अपेक्षा गहरी दिखाई देती है; यहाँ तक कि राजा बिना भोजन किये ही रह जाते हैं। जबकि रत्नावली के द्वितीय अंक के आरम्भ में हम सागरिका को विरह से विशेष व्याकुल पाते हैं। वैसे दोनों नाटिकाओं में अनुरक्त नायक नायिका दोनों ही हैं, पर तारतम्य की दृष्टि से दोनों के अनुराग में वैषम्य है।

चित्र-लेखन के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है कि रत्नावली नाटिका में सागरिका ने उदयन का तथा उसकी सखी सुसंगता ने सागरिका का चित्र बनाया था। सुभद्रा नाटिका में सुभद्रा का चित्र राजा भरत ने ही बनाया है। सुभद्रा नाटिका में मालतीलता तथा बालाशोक के क्रमशः विकास तथा उद्वाह की विधि की योजना अच्छी है। रत्नावली नाटिका की वेषपरिवर्तन वाली घटना भी बड़ी कौतूहलजनक है। रत्नावली में अन्त में कुतूहल पैदा करने वाली अद्भुत घटना ऐन्द्र-जालिक की है, किन्तु इस घटना का अभिनय करना कठिन है। सभी पात्रों का अग्नि-प्रवेश का अभिनय कठिन ही नहीं, अनुचित भी है। जादू की इस घटना पर सहसा विश्वास होना भी आधुनिक दर्शक के लिए कठिन है। सुभद्रा नाटिका में सुभद्रा की मूर्च्छा सम्बन्धी योजना अच्छी है, जिसमें सुभद्रा को भ्रम हो गया था कि मेरे भाई ने कहीं मेरे प्रियतम से भिन्न चक्रवर्ती भरत को तो मुझे देने का निश्चय नहीं कर लिया है। इस घटना की योजना से कुतूहल भी जाग्रत होता है। राजा को सुभद्रा के समाश्वासन के बहाने एक बार संयोग का अवसर मिल जाता है और सुभद्रा की पातिव्रत धर्म की निष्ठा व्यक्त होती है; जबकि सागरिका कामदेव-पूजन मे कामदेव के प्रति सौन्दर्य से आकृष्ट होकर यह भूल जाती है कि मेरे पिता ने मुझे उदयन के लिए प्रदान किया है।

सुभद्रा नाटिका में राजा तथा सुभद्रा का प्रणय व्यापार प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में घटित होता है जबकि रत्नावली नाटिका में सागरिका तथा उदयन का प्रणय व्यापार राजधानी में चलता है।

रत्नावली और सुभद्रा, दोनों नाटिकाओं की सफलता शास्त्रीय टैकनीक के कारण न होकर घटनाओं की गति की स्वाभाविकता तथा वस्तु की चुस्ती के कारण है। सुभद्रा नाटिका में भाषा सम्बन्धी सरलता रत्नावली की अपेक्षा अधिक है तथा वस्तु की कुतूहल वृत्ति सुभद्रा की अपेक्षा रत्नावली में अधिक है।

एको हि दोषो गुण सन्निपाते

कवि कर्म बड़ा कठिन कार्य है, जिसमें एक ओर अनेक रसों, गुणों आदि के लिए द्वार खुला रहता है; उनके साथ कुछ दोष भी प्रविष्ट हो जाते हैं। यद्यपि दोष-दर्शन करना अच्छा नहीं है, किन्तु वर्तमान आलोचना में दोष-दर्शन का भी स्थान नियत हो गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रस की अभिव्यक्ति केवल व्यञ्जना द्वारा होनी चाहिए, जबकि सुभद्रा नाटिका में रस,[१] श्रृंगार,[२] भय[३] आदि शब्दों के प्रयोगों द्वारा वाच्य बना दिया गया है। उनका स्वशब्दों द्वारा कथन सदोष माना जाता है। इसी प्रकार संचारी भावों का कई स्थानों पर वाच्य वृत्ति से कथन किया गया है। इतना ही नहीं, श्लेष आदि की प्रशंसा करके स्फुट व्यंग्य को भी बाद में वाच्य बनाकर उसका चमत्कार समाप्त कर दिया है। नायक राजा भरत के जिन गुणों को एक बार सेनापति ने कहा[४], उन्हीं को नमि के द्वारा दुहराया गया है।[५] सेनापति अयोध्य के जिन गुणों को कंचुकी ने बताया[६], उन्हीं गुणों को ताद्र्यदत्त दूत ने दुहराया है।[७] इस प्रकार सुभद्रा नाटिका में कई स्थानों पर पुनरुक्ति दिखाई देती है।

सुभद्रा नाटिका के समय के संकेत शरद् ऋतु के अनुकूल हैं।[८] उसके प्रतिकूल वसन्त की प्रतीति भी वसन्त की मन्दानिल[९] का उल्लेख करके करा देने से व्याघात दिखने लगता है।

द्वितीय अंक की घटना प्रथम अंक की घटना से दूसरे दिन की होने पर भी विदूषक के द्वितीय अंक के प्रारम्भिक कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि राजा को सुभद्रा के दर्शन किये हुए कई दिन बीत गये हों और राजा की बेचैनी की चेष्टाएं कई दिन से चल रही हों। संगीत तथा नृत्य के प्रयोग उस समय के नाटकों के अंग नहीं थे, इसलिए सुभद्रा नाटिका में संगीत तथा नृत्य के प्रयोग नहीं हैं। पद्यों के प्रयोग की प्रचुरता भी सुभद्रा नाटिका में है, किन्तु यह दोष, दोष नहीं माना जा सकता है, क्योंकि तत्कालीन नाट्य रचनाओं में पद्य के प्रयोग बहुलता से होते थे। मंगलाचरण में वैराग्यधन के स्थान पर नैराश्यधन का प्रयोग अनुचितार्थ दोषयुक्त है। सुभद्रा नाटिका के नायक राजा भरत ने अशोक से कहा था कि तुम्हारी विदग्धता सापवाद है।[१०] यही बात नाटिका के सम्बन्ध में कही जा सकती है, किन्तु ये दोष नाटिका के गुणों को ध्यान में रखते हुए चन्द्रमा में उसके कलंक की तरह छिप जाते हैं।[११]

---

१. पृ० ८५।२९
२. पृ० १०।२७
३. पृ० ८५।२९
४. पृ० ७५।७
५. पृ० ८४।२७
६. पृ० ७४।४
७. पृ० ७८।१७
८. पृ० ७९।१ तथा ५।११
९. पृ० ५६।१०
१०. पृ० १०—सापवादं ते वैदग्ध्यम्
११. कुमारसंभव, १।३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसंहार

सुभद्रा नाटिका में अनेक विशेषताएँ होते हुए उसकी प्रमुख विशेषता अभिनय के योग्य हो सकना है। संस्कृत के बहुत से नाटक दृश्य न होकर श्रव्य तथा पाठ्य काव्य मात्र हैं। अभिनय के अनुकूल न होने से उन्हें दृश्य कहना उपयुक्त नहीं है। सुभद्रा नाटिका के आरम्भ में ही विदूषक ने संकेत किया है कि हम अनुरूप प्रयोग के द्वारा परिषद की आराधना करते हैं। यद्यपि दोष प्रकरण में दिखाये गये दोषों के अतिरिक्त अभिनय की व्यवस्था करते समय संस्कृत के प्राचीन नाटकों की भाँति सुभद्रा नाटिका में भी पात्रों की वेष सम्बन्धी सूचनाएँ न होने से कुछ पात्रों का वेष परिग्रह व्यवस्थापकों की सूझबूझ पर ही निर्भर करेगा।

सुभद्रा नाटिका के कई स्थलों पर दुहरे दृश्यों की योजना अपेक्षित है। एक ओर राजा तथा विदूषक की घटनाएँ तथा कथनोपकथन और दूसरी ओर सुभद्रा तथा मन्दारिका के कथनोपकथन, इस प्रकार दुहरे अभिनय चलते हैं। सुभद्रा नाटिका के अनुरूप अनेक प्राकृतिक दृश्यों के परदों की भी अपेक्षा रहेगी। पौराणिक नाटिका होने से एक दो स्थलों के अभिनय ठीक उसी रूप में न हो सकेंगे। उदाहरण के लिए विद्याधर दूत का उड़कर जाने का अभिनय। ढाई तीन घंटे के भीतर ही यह नाटिका अभिनीत हो सकती है तथा संस्कृत के साधारण ज्ञाता भी उसका आनन्द ले सकते हैं। इस प्रकार यह कृति सफल है।

नाटिका के पठन तथा दर्शन के पश्चात् पाठक या दर्शक केवल कोरा मनोरंजन लेकर नहीं आयेगा, बल्कि प्रकृति-प्रेम, भाग्य विश्वास पात्र दान की शिक्षा आदि सद्गुणों के साथ रसानुभूति प्राप्त करेगा, क्योंकि सुभद्रा का अभिनय ऐसी परिषद के समक्ष सूत्रधार ने करने का संकेत किया है, जो कि गुण तथा दोषों का विवेक करना जानती है।[1]

आलोचकों ने नाटककारों में हर्षवर्धन की शैली को प्रसाद गुण की शैली का अन्तिम रूप माना है।[2] मैं समझता हूँ कि सुभद्रा नाटिका अभी आलोचकों की दृष्टि से ओझल रही है, अन्यथा हस्तिमल्ल की नाटिका को भी विस्मरण नहीं किया गया होता।

---

१. पृ० ११२
२. संस्कृत कवि दर्शन, पृ० ३२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

संस्कृत साहित्य में अनेक प्रशस्त नाटककारों के बीच हस्तिमल्ल और अनेक नाटकों के मध्य उनके नाटक स्मरणीय रहेंगे। संस्कृत के सशक्त नाटककार दसवीं शताब्दी के पूर्व हुए हैं। मुरारि के वाद संस्कृत नाटक कमोवेश पांडित्य की प्रवृत्ति से आक्रान्त दिखाई पड़ते हैं।[1] उसका कारण यह है कि संस्कृत का कला पक्ष सबल होता जा रहा था, जो नाटक की अपेक्षा महाकाव्य के अनुकूल होता है। जयदेव का प्रसन्नराघव तेरहवीं शताव्दी का माना जाता है। उसमें भी नाटकीयत्व की अपेक्षा कवित्व की ही सत्ता विशेष है।[2] इस दृष्टि से तेरहवीं शती का यह सशक्त नाटककार संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

संस्कृत नाटककारों ने अपने नाटकों के लिए कथावस्तु का चुनाव रामायण, महाभारत तथा लौकिक कथाओं से किया है। हस्तिमल्ल ने अपने नाटकों की कथावस्तु को दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के पुराणों से चुना है, जिनको आधार बनाकर नाटक लिखने की ओर किसी का ध्यान नहीं था। इस दृष्टि से जैन समाज के ऊपर इनका विशेष ऋण है। नाटकों के लिए कथावस्तु का नवीन स्रोत जैन पुराणों को हस्तिमल्ल ने ही चुना है। अश्वघोष ने शारिपुत्र प्रकरण को लिखकर नाटक निर्माण के लिए बौद्ध धर्म की कथाओं को आधार बनाने का उपक्रम कर दिया था। इन पंक्तियों के लिखने से मेरा आशय यह नहीं है कि सम्प्रदाय विशेष की कथावस्तु को चुनने के कारण नाटककार का महत्त्व होना चाहिए, किन्तु सरस तथा उदात्त कथाएं चाहे लौकिक हों, चाहे किसी सम्प्रदाय विशेष के ग्रन्थों की हों, उनके द्वारा यदि काव्य रचना अपना स्वरूप सजा सकती है, तो उनका उपयोग करने वाला भी एक नवीन मार्ग का अन्वेषक है। शूद्रक का विशेष महत्त्व इसी कारण है कि उसने अपने मृच्छकटिक प्रकरण के लिए सामान्य जीवन की कथा को चुनकर नया मार्ग अपनाया था और विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के लिए राजनीति के दांवपेंच से संबंधित कथा चुनी थी। इन्हीं नवीनताओं के कारण ये नाटककार संस्कृत नाटककारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना सके हैं। स्व० मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत और द्वापर लिखने के साथ म० बुद्ध की सहचारिणी यशोधरा को चुनकर जो यशोधरा काव्य बनाया, उससे उनकी महिमा बढ़ी है। इस प्रकार जैन ऐतिहासिक कथाओं को आधार बनाकर लिखने के कारण हस्तिमल्ल का भी अपना विशिष्ट स्थान है। जिन कथाओं को आधार बनाकर कई नाटक या काव्य बन चुके हों, उन्हीं को न चुनकर

---

१. भारतीय साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ ५२

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास—बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ६०१-६०२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नयी कथाओं को चुनना विशेष महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि इन कथाओं को नाटक का आधार बनाने से हस्तिमल्ल का यश और नाम उतना व्यापक स्थान नहीं पा सका है, जितना व्यापक यश वे महाभारत, रामायण या अन्य लौकिक कथाओं की कथावस्तु चुनकर पा सकते थे। यही कारण है कि अधिकांश संस्कृत के इतिहास-लेखकों ने तो नाटककारों में उनके नाम का भी उल्लेख नहीं किया है और अनेक संस्कृत के विद्वान उनका नाम और काम जानते ही नहीं हैं।

दि० जैन साहित्य का पर्यालोचन करें, तो उसमें धर्म, दर्शन, न्याय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अतिरिक्त धर्मशर्माभ्युदय, चन्द्रप्रभ चरित आदि महाकाव्य, यशस्तिलक और जीवन्धर इत्यादि चम्पू काव्य, गद्यचिन्तामणि जैसे ग्रन्थ गद्य काव्य हैं, किन्तु नाटक लेखन की ओर जैन काव्यकारों का ध्यान नहीं था। उसकी पूर्ति के कारण हस्तिमल्ल दि० जैन समाज के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे।

संस्कृत नाटककार दक्षिण देश में नहीं के बराबर हुए हैं। दशम शताब्दी के शक्तिभद्र नाटककार का आश्चर्य चूडामणि नाटक है। उसमें सूत्रधार के मुख से नटी ने दक्षिण देश के नाटक के अभिनय की बात सुनकर कहा था कि यदि दक्षिण देश में नाटक का निर्माण हुआ है, तो समझो आकाश में फूल उग आये हैं और बालू से तेल निकल आया है।[1] इस प्रकार यदि दक्षिण को नाटककारों की उत्पत्ति के लिए मरुस्थल माना जाता है, तब हस्तिमल्ल का स्थान भी कम महत्त्व का नहीं है, क्योंकि ये दक्षिण के ही थे। इनके नाटकों की एक नवीनता यह है कि इन्होंने स्वयंवर की घटनाओं को अपने नाटकों में स्थान दिया है।

जहाँ तक नाट्यकला का सम्बन्ध है, इस दृष्टि से भी हस्तिमल्ल के नाटक, संस्कृत नाट्य साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना सकेंगे। केवल विद्वानों की दृष्टि में आने का विलम्ब है। भास और कालिदास के नाटक सरलता, सरसता के कारण संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान बना सके हैं। हर्ष वर्धन में भी हम सरसता और सरलता पाते हैं। उसके बाद संस्कृत साहित्य में सरलता का वह रूप नहीं दिखाई देता है। हस्तिमल्ल हर्षवर्धन के बहुत बाद हुए हैं, किन्तु उनकी सुभद्रा नाटिका और अञ्जना-पवनञ्जय नाटक में सरलता, सरसता और उदात्त भावभूमि के दर्शन होते हैं। इसीलिए वाचस्पति गोरैला ने लिखा है कि जैन साहित्य के क्षेत्र में हस्तिमल्ल का अनोखा व्यक्तित्व दृश्य काव्यों के प्रणयन में प्रकट हुआ है और उन्होंने तेरहवीं शताब्दी का सर्वाधिक प्रतिभाशाली नाटककार हस्तिमल्ल को माना है।[2]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नाटकीय शैली, भाव, भाषा, छन्द, अलंकार, चरित्रचित्रण, कथावस्तु आदि सभी दृष्टियों से परीक्षण करने पर हस्तिमल्ल

---

१. नटी—आर्य, अत्याहितं खल्वेतत् आकाशं प्रसूयते पुष्पं, सिक्ताः तेलमुत्पादयन्ति यदि दक्षिणस्याः दिशः आगतं नाटकम्।

—आचार्य चूड़ामणि (पुष्पिका भाग)

२. संस्कृत सहित्य-का इतिहास, पृष्ठ ३५९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के नाटक खरे उतरते हैं। उनके नाटकों का कवित्व, कल्पना की नवीन उद्भावनाएँ[1] और सुन्दर सूक्तियाँ तो सहृदयों को अवश्य आकर्षित करेंगी।[2]

हस्तिमल्ल के चारों नाटकों को एक तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो ऐसा प्रतीत होगा कि चारों नाटक एक-सी प्रक्रिया पर लिखे गये हों। चारों नाटकों में तीन का मङ्गलाचरण म गण से आरम्भ हुआ है, जो लक्ष्मी प्राप्ति के फल की लिप्सा और विक्रान्त-कौरव का मंगलाचरण न गण से आरम्भ हुआ है, जो आयुष्कामना का द्योतक है। इनके चारों नाटकों का मुख्य रस शृंगार है, जिनमें अन्तिम कार्य नायक नायिका का वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा स्थायी मिलन है। प्रत्येक नाटक वैवाहिक कार्य के बाद पूर्ण हो जाता है। केवल अञ्जना-पवनञ्जय नाटक में अञ्जना पवनञ्जय का विवाह प्रथम अङ्क में ही हो जाता है। उसमें उनका स्थायी मिलन हो जाने पर नाटक की समाप्ति होती है। उनमें भी विक्रान्त-कौरव में स्वयंवर विधि के पश्चात् विवाह होता है। अञ्जना-पवनञ्जय में स्वयंवर की सूचना है और स्वयंवर का अभिनय ही मुख्य स्वयंवर का प्रतीक है, क्योंकि पुराण के अनुसार अञ्जना का स्वयंवर नहीं हुआ था। मैथिली-कल्याण नाटक में धनुर्भंग का साहस दिखाने वाला सीता का पति होगा, इसे प्रकारान्तर से यों कह सकते हैं, सीता उस वर को वरण करेगी जो धनुर्भंग करके अपना शौर्य प्रकट करेगा। इस प्रकार उनके तीनों नाटक स्वयंवर से सम्बन्धित हैं। उनको स्वयंवर इतना प्रिय है कि वे स्वयंवर का सूत्रपात करने वाले महाराज अकम्पन की बुद्धि को विशिष्ट प्रतिभाशालिनी मानते हैं और अपने को सरस्वती द्वारा स्वयंवृत लिखते हैं।[3] सुभद्रा तो उनकी नाटिका लिखने की क्षमता की कसौटी है। सभी नाटकों में नायक नायिका परस्पर में एक दूसरे के प्रति अनुरक्त होते हैं। क्रमशः उनके अनुराग का विकास होता है। उनके परस्पर मिलन में कुछ बाधाएँ आती हैं, उन बाधाओं के दूर हो जाने पर नायक नायिका का स्थायी मिलन हो जाना, यही चारों नाटकों का क्रम है। फ्रांसीसी आलोचक ब्रूनेलरे के अनुसार नाटक का आधार दो इच्छाशक्तियों का द्वन्द्व है।[4] ये दो इच्छा शक्तियाँ दो प्रकार की हो सकती हैं। किसी एक व्यक्ति की दो इच्छाओं का द्वन्द्व हो सकता है, जैसे सुभद्रा नाटिका में राजा भरत रानी वैलाती को भी प्रसन्न रखना चाहते हैं और सुभद्रा से भी स्नेह करना चाहते हैं। विक्रान्त-कौरव में जयकुमार और अर्ककीर्ति

---

१. ख्यातः पूर्वं जगति समरो मत्कृते भूपतीनाम्
काञ्चित् कन्या प्रति रणमिदं तद्यशो मे प्रभाष्टि
इत्युद्भूतात् प्रकृतिसुलभात् स्त्रीषु सापत्न्यवैरात्
क्वाऽपि क्षोणीघनतमरजश्छद्मना गच्छतीव। (विक्रान्त-कौरव ८४।३२)

२. सरस्वत्या देव्या श्रुतियुगवतंसत्वमयते
सुधा सध्रीचीना त्रिजगति यदीया सुभणितिः
कवीन्द्राणां चेतः कुवलयसमुल्लासनविधौ
शरज्ज्योत्स्नालीलां कलयति मनोहारिरचना। (विक्रान्त-कौरव ३।५)

३. अस्तिकिल सरस्वती स्वयंवरवल्लभेन हस्तिमल्ल नाम्ना महाकवितल्लजेन विरचितं विक्रान्त कौरव नाम रूपकम्। —पृष्ठ ३

४. नाटक की परख, पृ० २१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों सुलोचना को चाहते हैं। यहाँ दो व्यक्तियों की एक वस्तु की इच्छाशक्ति के कारण द्वन्द्व है। अञ्जना-पवनञ्जय में पवनञ्जय एक ओर संग्राम का कर्तव्य भी पालन करना चाहते हैं, दूसरी ओर स्वयं तथा पत्नी अञ्जना के एक दूसरे से वियुक्त रहने के कष्ट का प्रतिकार करना चाहते हैं। इस प्रकार एक ही व्यक्ति की दो इच्छा-शक्तियों का द्वन्द्व है। मैथिली-कल्याण नाटक में राम सीता को शीघ्र पाना चाहते हैं और सीता राम को शीघ्र पाना चाहती है, जबकि पिता जनक सभाभूमि में धनुष के बल-परीक्षण के पश्चात् सीता प्रदान करने का नियम ले चुके हैं। इस प्रकार की अड़चन से टकरा कर घटना में द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। इस द्वन्द्व के केन्द्र पर पहुँचने पर सभी नाटकों में उन बाधाओं पर विजय प्राप्त हो जाती है और नायक नायिका का अभीष्ट मिलन हो जाता है। द्वन्द्व या विरोध को ऐसे ढंग से दिखलाना चाहिए जिसमें सद् के प्रति दर्शकों की श्रद्धा बढ़े, क्योंकि इसीसे नाटक का नैतिक महत्त्व सिद्ध होता है।[1] हस्तिमल्ल ने इस नैतिकता का ध्यान रखा है।

प्रेम सिद्धान्त की दृष्टि से भी यही सरणि इस प्रकार समझनी चाहिए कि प्रेमपरक या शृंगारपरक नाटकों में ऐसे दो पात्रों को जिन्हें आगे चलकर प्रेमी युगल बनाना अभिप्रेत होता है, प्रथम दर्शन में आकृष्ट दिखाया जाता है। इस प्रकार के अनुरागोदय का फल आधुनिक युग में मंगलमय और अमंगलमय दोनों तरह का माना जाता है, किन्तु आदर्शवादी विचारधारा यह है कि शुद्ध चरित्र वाला प्रेम जिसमें वासना की प्रबलता न समायी हो, पूर्व संस्कारों की आध्यात्मिक प्रेरणा हो, तो प्रथम दर्शन का प्रेम क्रमशः विकसित होकर बाधाओं पर विजय पाकर अन्त में मंगलमय ही होगा।[2] हस्तिमल्ल के चारों नाटकों में हम प्रेम के इसी उदय, विकास और मंगल को देखते हैं।

मैथिली-कल्याण में सीता और राम का अनुराग दोलागृह की भेंट में, विक्रांत-कौरव में सुलोचना और जयकुमार का प्रथम अनुराग नगरदेवता यात्रा या गंगातीरोद्यान में, सुभद्रा नाटिका में भरत और सुभद्रा का अनुराग वेदीवन के परस्पर दर्शन के बाद तथा अञ्जना-पवनञ्जय नाटक के नायक नायिका का अनुरागोदय विवाह के पूर्व मन्दार वन में परस्पर दर्शन से हुआ था। राम के मिलन में धनुभंग की घटना का निर्वाह, अञ्जना से मिलने में पवनञ्जय का रावण के सहायतार्थ युद्ध में व्यस्त रहना, युद्ध समाप्त हो जाने तक अञ्जना का निर्वासन, विक्रान्त-कौरव में सुलोचना के इच्छुक राजाओं द्वारा उपस्थित किये गये संग्राम और सुभद्रा नाटिका में देवी वैलाती की अनुकूलता का अभाव, ये नायिका नायक के मिलन की बाधाएँ थीं। उन नाटकों में नायक अपने कार्यों द्वारा या सहायकों द्वारा बाधाओं पर विजय पाकर अभीष्ट लाभ करते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म रीति से चारों नाटकों को एक मार्ग का अनुसरण करता हुआ पाते हैं।

---

१. साहित्यालोकन, पृ० १२९

२. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ २५९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैथिली-कल्याण नाटक के नायक राम, विक्रान्त-कौरव के कौरवेश्वर जयकुमार, सुभद्रा के नायक भरत और अंजना-पवनंजय के नायक पवनंजय में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव एक-सा पाते हैं। इसी प्रकार उनकी नायिकाओं सीता, सुलोचना, सुभद्रा और अंजना में भी चारित्रिक साम्य है। सीता की सखी विनीता, सुलोचना की सखी नवमालिका, सुभद्रा की सखि मन्दारिका और अञ्जना की सखि वसन्तमाला के कार्यों की तुलना भली प्रकार हो सकती है। मैथिली-कल्याण का विदूषक गार्ग्यायण, विक्रान्त-कौरव का विदूषक सौघातकि, सुभद्रा का विदूषक कार्त्यायन और अञ्जना-पवनञ्जय के विदूषक प्रहसित में भी साम्य देख सकते हैं। सुभद्रा और मैथिली-कल्याण के विदूषकों की कथन प्रणाली भी समान प्रतीत होती है।[1]

वियोग वर्णन के लिए प्रकृति के वर्णन में अंजना-पवनंजय (पृष्ठ ४१), विक्रान्त-कौरव (पंचम अंक) और मैथिली-कल्याण (चतुर्थ अंक) में चन्द्रोदय का वर्णन होने पर भी नवीन कल्पनाओं और नवीन शैली में है।

अंजना-पवनंजय नाटक में प्रथम अंक में मधुकरिका और वसन्तमाला भविष्य में होने वाले स्वयंवर का अभिनय करती हैं। इस प्रकार इसमें अभिनय के भीतर भी एक अभिनय है। इसी प्रकार मैथिली-कल्याण नाटक में सीता विनीता राम और विदूषक की भूतकाल की एक घटना का अभिनय करती हैं। सुभद्रा नाटिका में बालाशोक को मालतीलता प्रदान करने की घटना को भरत को सुभद्रा-दान का अभिनय समझना चाहिए।

विक्रान्त-कौरव और मैथिली-कल्याण, दोनों नाटकों के भरत वाक्य रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) धारण की प्रेरणा करते हैं। दूसरी ओर सुभद्रा नाटिका और विक्रान्त-कौरव, दोनों के मंगलाचरण में भगवान आदिनाथ को स्मरण किया गया है। चारों ही नाटकों में मनुष्यों के साथ विद्याधरों का भी उल्लेख है। इतना ही नहीं, कतिपय छंद एक दूसरे नाटकों में वे ही हैं।[2] ये समान छंद अपने अपने स्थान पर इस प्रकार के प्रसंगों में उल्लिखित हैं, जिससे ऐसा आभास नहीं होता है कि दूसरे नाटक से लेकर इसमें जोड़े गये हों।

---

१. इतः पुनर्यदा दोलागृहे दृष्टा तत्र भवती सीता तत आरभ्य अन्यादृशहृदयः-
चिन्तोपरागकलुषितनयनो न शयने निर्वृतिं लभते, न निशासु-
निद्रां प्रतिपद्यते। (मैथिली-कल्याण, द्वितीय अंक का आरम्भ)
सा पुनर्यदेवात्मनो धैर्यावस्कन्दनकरी दृष्टा सा दुष्टकन्यका तदा प्रभृति-
(राजा) न तावद्धर्मासन मारोहति""""अन्ध इव न किमपि प्रेक्षते
बधिर इव न किमपि शृणोति""""इत्यादि। (सुभद्रा, द्वितीय अंक का आरंभ)

२. (क) विक्रान्त-कौरव, १४२।७५, सुभद्रा, १५।३३
(ख) विक्रान्त-कौरव, १४१।७४, सुभद्रा, ६२।१७
(ग) विक्रान्त-कौरव, ६३।५३, सुभद्रा, ८४।२७
(घ) विक्रान्त-कौरव, १४०।७३, मैथिली-कल्याण, ११।२१
(ङ) विक्रान्त-कौरव, १९।३६, मैथिली-कल्याण, ३९।३८
(च) विक्रान्त-कौरव, ४६।६, मैथिली-कल्याण, ४५।१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभी नाटकों की कथावस्तु जैन पुराणों से उद्धृत है और इन सभी नाटकों की कथा चरित कथा के अन्तर्गत आती है।[1]

चारों नाटकों की इन अनेक पारस्परिक समानताओं के रहते हुए चारों की कथा वस्तु भिन्न-भिन्न है। उनकी घटनाएं भिन्न-भिन्न हैं और उनके क्रमिक विकास का ढंग अलग-अलग है। नाटकों के पढ़ते या देखते समय इन समानताओं की ओर ध्यान ही नहीं जाता है।

कवि हस्तिमल्ल की दृष्टि में भोग प्रेय अवश्य है, परन्तु श्रेय का मार्ग प्रेय की गली से होकर आगे बढ़ता है। धर्मविहित प्रेय वरेण्य है। काम धर्म के नियंत्रण में गतिशील होने पर जीवन को सुसंस्कृत बनाता है।[2] चारों नाटकों में नाटककार ने यही लक्ष्य सामने रखा है।

इनके नाटकों के अध्ययन से जैनधर्म के कतिपय सिद्धान्तों के परिचय के अतिरिक्त संस्कृति, इतिहास, भूगोल, संगीत, वनस्पति आदि अनेक विषयों की जानकारी मिलती है, क्योंकि नाटकों में विविध प्रकार की सामग्री होती है।[3] नाटक विविध प्रकार की सामग्री के कारण विविध प्रकार की रुचिवालों के लिए विनोदजनक होता ही है।[4] विश्वास है कि हस्तिमल्ल के नाटक भी रोचक कथावस्तु, प्रसादमयी भाषा, सरस शैली और काव्य-सौष्ठव के कारण भिन्न-भिन्न रुचि वालों के लिए अवश्य रुचिकर होंगे।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि जैन पुराणों की कथा को नाटकीय रूप देने वाले हस्तिमल्ल ने रूपक रचना का एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, जिसके कारण वे अमर हैं और रहेंगे। आकाश में उन्नमित होने वाले विधुबिम्ब की भाँति हस्तिमल्ल कवि का भी (संस्कृत नाटकों के प्रणयन के कारण) मुख सदैव ऊँचा रहेगा[5], क्योंकि उनके नाटकों में वे गुण विद्यमान हैं, जो नाटक प्रेक्षकों के लिए अपेक्षित होते हैं।[6]

---

१. साहित्य (बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना), वर्ष १२, अंक २, लेख—जैन आगमों में कथा साहित्य का वर्गीकरण, ले० श्री ज्ञानचन्द। कथाएँ दो प्रकार की बतायी गयी हैं—(१) चरित और (२) कल्पित। चरित से तात्पर्य सच्ची कहानियों से है।

२. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृ० ६२३-६२४

३. यानि शास्त्राणि ये धर्माः यानि शिल्पानि याः क्रियाः।
लोकधर्मप्रवृत्तानि नाट्यमित्यभिधीयते ॥ —नृत्यरत्नकोश, प्रथम उल्लास, १।३१२

४. नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्। —मालविकाग्निमित्र, १।४

५. उन्नमति विधोर्बिम्बं रदमुखमिव हस्तिमल्लस्य।
निहतरिपुहस्तिमस्तकसरुधिरमस्तिष्कपाटलितम् ॥ —अंजना-पवनंजय, ४०।३

६. मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं, जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
बहुतर रसमार्गं सन्धिसन्धानयुक्तं तद् भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्।
—नाट्यशास्त्र, १६।२१८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संदर्भ एवं सहायक ग्रंथों की सूची

ग्रन्थनाम	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
अग्नि पुराण	महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास	मनसुखराय	गुरुमण्डल ग्रंथमाला ५, क्लाइव रो कलकत्ता	—	संस्कृत	१२३, २५१
अग्नि पुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग	रामलाल वर्मा शास्त्री	—	नेशनल पब्लिशिंग हाउस देहली	१९६९	हिन्दी	१५४
अंजना पवनंजय नाटक	हस्तिमल्ल	श्री एम० वी० पटवर्धन	सेक्रेटरी मणिकचन्द ग्रन्थमाला बम्बई ४	वि. सं. २००६	संस्कृत-अंग्रेजी	२,८,२०,२२, २३,९१-१५५
अनगार धर्मामृत	पं० आशाधर	पं० मनोहरलाल शास्त्री	प्रकाशन वाला पृष्ठ फटा हुआ	वी.नि.सं. २४४५	संस्कृत-हिन्दी	५, ६
अभिज्ञान शाकुन्तल	कालिदास	भूमिका कान्तानाथ तैलंग	चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी	१९६४	संस्कृत-अंग्रेजी	१९८
अभिधान चिन्तामणि	हेमचन्द्राचार्य	हरगोविन्द शास्त्री	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी	१९६४	संस्कृत-हिन्दी	१३९, १६६
अभिधान अनुशीलन	डा० विद्याभूषण विभु	—	हिन्दुस्तानी एकेडेमी उ० प्र० इलाहाबाद	१९५८	हिन्दी	७
अभिनय दर्पण	नन्दिकेश्वर	मनमोहन घोष	फर्म के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता	१९५७	संस्कृत-हिन्दी	१५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थनाम	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
अभिनव नाट्यशास्त्र	सीताराम चतुर्वेदी	—	अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी	सं. २००८	हिन्दी	३६, ५०
अभिनव प्राकृत व्याकरण	डा० नेमिचन्द्र शास्त्री	—	तारा पब्लिकेशन वाराणसी	१९६३	हिन्दी-प्राकृत	१२८, १२९
अलंकार मंजूषा	भट्ट देवशंकर पुरोहित	सदाशिव लक्ष्मीधर	उज्जैन मेनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी	१९४०	संस्कृत	१२३
अश्वशास्त्र	नकुल	एस० गोपालन	सेक्रेटरी एडमिनिस्ट्रेटिव कमेटी टी० एम० एस० एस० एम० लायब्रेरी तंजौर	१९५२	संस्कृत अंग्रेजी	३०
आदिपुराण प्रथम-द्वितीय भाग	आचार्य जिनसेन	पं० पन्नालाल जैन	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९६३, ६५	संस्कृत-हिन्दी	१६, ४१, ४२, ४३, १९०
आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्दो योजना	डा० पुत्तूलाल शुक्ल	—	लखनऊ विश्वविद्यालय	वि.सं. २०१४	हिन्दी	२५८
आलोचना के सिद्धान्त	ब्यौहार राजेन्द्रसिंह	—	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९५५	हिन्दी	५०,१८४,२५७
आश्चर्य चूडामणि	शक्तिभद्र	रमाकान्त झा	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	१९६६	संस्कृत-हिन्दी	२७८
उज्ज्वलनीलमणि	रूपगोस्वामी	विश्वनाथ चक्रवर्ती	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९३२	संस्कृत	५६,५७,१०७, १६८
उत्तररामचरित	भवभूति	शेषराज शर्मा	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	१९५३	संस्कृत-हिन्दी	१०६,१४२,१४३
कवितावली	गोस्वामी तुलसीदास	फूलचन्द सारंग	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९५३	हिन्दी	५९
क्षत्रचूडामणि	श्रीमद् वादीभसिंह	मोहनलाल	पुरानी चरहाई, जबलपुर	वी.नि.सं. २४७१	संस्कृत-हिन्दी	८९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थकार	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
कातन्त्र (व्याकरण)	—	दुर्गासिंह	दी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता	१८७६	संस्कृत	५
(हिन्दी) कामसूत्र	वात्स्यायन	देवदत्तशास्त्री	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी,	१९६४	संस्कृत-हिन्दी	३१,३२,२४४, २६७
कामायनी	जयशंकर प्रसाद	—	भारती भंडार लीडर प्रेस इलाहाबाद	सं. २००९	हिन्दी	८५
कालिदास और भवभूति	स्व० द्विजेन्द्रलाल राय		हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई	१९५६	हिन्दी	१६५
कालिदास का भारत भाग १	भगवत शरण उपाध्याय	—	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९५४	हिन्दी	७६
कालिदास का भारत भाग २	,, ,, ,,	—	,, ,, ,,	१९५८	हिन्दी	७८
काव्य के रूप	गुलाबराय	—	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९५४	हिन्दी	८८,१५१,१७९ २१७,२३६,२३७
काव्य प्रकाश	मम्मट	भूलकीकर	भण्डारकर ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट पूना	१९५०	संस्कृत	१२५,१५०, १५२,१७९
(हिन्दी) काव्यादर्श	दण्डी	रणवीरसिंह	ओरिएण्टल बुक डिपो नई सड़क, दिल्ली	१९५८	संस्कृत-हिन्दी	२२
काव्यालंकार	आचार्य भामह	बटुकनाथ शर्मा	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	सं.१९८५	संस्कृत-हिन्दी	३३, २५०
काव्यालंकार सूत्रवृत्ति	वामन	नारायणनाथ कुलकर्णी	ओरिएण्टल बुक एजेंसी पूना	१९२७	संस्कृत	१४१
काशी का इतिहास	डा० मोतीचन्द	—	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर हीराबाग, बम्बई	१९६२	हिन्दी	२६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थनाम	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
किरातार्जुनीयम्	भारवि	—	चौखम्बा संस्कृत पुस्त-कालय वाराणसी	१९५२	संस्कृत	६५
कुमार संभव	कालिदास	शंकररामशास्त्री	श्री बालमनोरमा प्रेस महिलापुर मद्रास	१९५१	संस्कृत	४७१
गणिकावृत्त संग्रह	—	लुइविक स्टर्न	विश्वेश्वरानन्द संस्थान साधु आश्रम होशियारपुर	१९५३	संस्कृत-अंग्रेजी	५७
गद्य चिन्तामणि	वादीभसिंह	पन्नालाल जैन	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९६८	संस्कृत-हिन्दी	२६
गुजरात का इतिहास (रासमाला)	अलक् जेंडर किंदलक	—	गोपालनारायण बहुरा मंगल प्रकाशन, गोविन्द राजिओं का रास्ता, जयपुर	१९५८	हिन्दी	४
गुरुगोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ	पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री	—	भा० दि० जैन विद्वत् परिषद् सागर	१९६७	हिन्दी	२८२
गोभिल गृह्यसूत्र भाग१	नरेन्द्रचन्द्र वेदान्ततीर्थ	—	मेट्रापालिटन प्रिंटिंग हाऊस लि० कलकत्ता	१९३६	संस्कृत	२५
चन्द्रालोक	जयदेव	—	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	१९५०	संस्कृत	६८
छन्दोनुशासन	हेमचन्दसूरि	हा० दा० वेलणकर	अधिष्ठाता, जैन शास्त्र विद्यापीठ वम्बई	१९६१	संस्कृत-अंग्रेजी	७०, १७६
छन्दोमंजरी	गंगादास	हरिदत्त शास्त्री	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	१९५६	संस्कृत	१२५
छन्दो विज्ञानम्	स्वामी नारायणदास शास्त्री	—	शीतलादास का स्थान अस्सी वाराणसी	—	संस्कृत-हिन्दी	२५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जातकालंकार	गणेश दैवज्ञ	—	चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी	१९५०	संस्कृत	२६
जिनरत्न कोश भाग १	हरिदामोदर वेलंकर	—	भंडारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना	१९४४	अंग्रेजी	३५
जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज	डा० जगदीशचन्द	—	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	१९६५	हिन्दी	८३
जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार	फतेचन्द बेलानी	—	जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, बनारस	१९५०	हिन्दी	२, ३४
जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह भाग १	—	जुगल किशोर	वीर सेवा मन्दिर दरिया-गंज, दिल्ली	१९५४	संस्कृत	१,६,१४;२३
जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह भाग २	—	परमानन्द शास्त्री	वीर सेवा मन्दिर दरिया-गंज दिल्ली	१९६३	संस्कृत-हिन्दी	७३
जैन साहित्य और इतिहास	नाथूराम प्रेमी	—	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई	१९४२,१९५६	हिन्दी	२,९,१४,१५, १६,१८,२८, १३०,१९१
जैन साहित्य और इतिहास पर विशद् प्रकाश	जुगल किशोर मुख्तार	—	वीर शासन संघ २९ इन्द्र-विश्वास रोड कलकत्ता	१९५६	हिन्दी	२, १५
जैनेन्द्र व्याकरण	अभयनन्दी	—	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९५६	संस्कृत-हिन्दी	५
ज्ञाता धर्म कथा	—	अभयदेव सूरि	आनन्दचन्द ग्रन्थ रत्नाकर, भावनगर	१९५२	संस्कृत-हिन्दी	३०
तत्त्वार्थसार	अमृतचन्द्र सूरि	पन्नालाल जैन	गणेशवर्णी ग्रन्थमाला वाराणसी	१९७०	संस्कृत-हिन्दी	११०
तत्त्वार्थ सूत्र	उमा स्वामी	पन्नालाल जैन	मूलचन्द किशनदास काप-ड़िया सूरत	२४७६ वी. नि. सं.	संस्कृत-हिन्दी	८५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

ग्रन्थकार	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
तिलोय पण्णति	यतिवृषभाचार्य	डा० हीरालाल जैन	जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर	१९५१	प्राकृत-हिन्दी	१६८
त्रिकालवर्ती महापुरुष	आदिसागर	—	सभापति, दि० जैन पंचायत वारासिवनी (बालाघाट)	१९५९	हिन्दी	२०८, २०९, २६९
त्रिलोकसार	नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती	—	जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय हीराबाग वम्बई	१९१८	प्राकृत-हिन्दी	८३
दक्षिण भारत में जैनधर्म	कैलाशचन्द्र शास्त्री	—	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	—	हिन्दी	१
दशरूपक	धनञ्जय	भोलाशंकर व्यास	चौखम्वा विद्याभवन वाराणसी	—	संस्कृत-हिन्दी	४५, ४७, ४८, ४९, ५१, ९६, ९७, १००, १०२, १०३, १०४, १०६, १२७, १३०, १६१, १६७, १९१ इत्यादि
दैवज्ञ कल्पद्रुम	—	गंगाराम राज ज्योतिषी	भारत मार्तण्ड पंचांग कार्यालय धौलपुर	सं० २०१४	संस्कृत-हिन्दी	१३६
दैवज्ञ विनोद	—	मनीराम शर्मा	वेंकटेश्वर प्रेस वम्बई	सं० २००८	संस्कृत-हिन्दी	२७
द्रव्य-गुण-विज्ञान	—	प्रियव्रत शर्मा	चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी	१९५६	हिन्दी	२१, ७९
धर्म शर्माभ्युदय,	हरिचन्द	पं० दुर्गादास	निर्णय सागर प्रेस बम्बई	१९३३	संस्कृत	२१
ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धनाचार्य	एस० कुपुस्वामी	रिसर्च इन्स्टीट्यूट मद्रास	१९४४	संस्कृत	२४३

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटक की परख	डा० एस० पी० खत्री	—	साहित्य भवन, लि० इलाहाबाद	१९५१	हिन्दी	१००, २७९
नाट्यदर्पण	रामचन्द्र गुणचन्द्र	विश्वेश्वर	हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय	—	—	२३५
नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	केदारनाथ	निर्णय सागर प्रेस बम्बई	१९४३	संस्कृत	२५, ९०, २३५, २८२
नाट्यशास्त्र भाग २	भरतमुनि	—	ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा	१९३४	संस्कृत	१२५
नाट्यसंस्कृति सुधा	डा० रमेशचन्द्र शुक्ल	देवशंकर शुक्ल	कृष्णपुरी अलीगढ़	१९६८	हिन्दी	१६०
नृत्यरत्न कोश प्रथम भाग	कुंभकर्ण नृपति,	मुनि जिन विजय	राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर जयपुर	१९५७	संस्कृत	२८२
नैषध महाकाव्य	श्री हर्ष	हरगोविन्द शास्त्री	चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी	१९५४	संस्कृत-हिन्दी	८६, १७२
पउम चरियं	विमलसूरि	डा० हर्मन जैकोबी	प्राकृत ग्रन्थ परिषद् वाराणसी	१९६२	प्राकृत-हिन्दी	१६७
पद्म पुराण भाग १, २	रविषेणाचार्य	पं० पन्नालाल जैन	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९५८	संस्कृत-हिन्दी	१४४, १६७
पाइअ सद्द महण्णवो	पं० हरगोविन्द त्रिकमचन्द सेठ	—	प्राकृत ग्रन्थ परिषद् वाराणसी	१९६३	प्राकृत-हिन्दी	७३, ७४
प्रतिष्ठा तिलक	श्री मन्नेमिचंद देव	—	प्रकाशक का उल्लेख नहीं है	—	संस्कृत-मराठी	१३,१९,२३
प्रतिष्ठा सरोद्धार	ब्रह्मसूरि	हस्तलिखित	जैन सिद्धान्त भवन आरा में लिपि	वी.नि.सं. २४५२	संस्कृत	७,९,१०,११ १३,१४,१७
प्रशस्ति संग्रह	पं० के० भुजवली शास्त्री	—	जैन सिद्धान्त भवन, आरा	—	संस्कृत-हिन्दी	२०
प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन	डा० जगन्नाथ शर्मा	—	सरस्वती मंदिर वाराणसी	सं० २०१०	हिन्दी	१२७, २८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थनाम	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
प्राकृत पैंगलम	—	डा० भोलाशंकर व्यास	प्राकृत ग्रन्थ परिषद वाराणसी	१९६२	प्राकृत-हिन्दी	१२५
प्राकृत भाषाओं का व्याकरण	रिचर्ड पिशेल	हेमचन्द जोशी	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना	१९५८	हिन्दी-प्राकृत	७४
प्राकृत विमर्श	डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल	—	लखनऊ विश्वविद्यालय	सं० २००९	हिन्दी	७३
प्राकृत व्याकरण	मधुसूदन मिश्र	—	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९६०	हिन्दी	१२८, १२९
प्राचीन भारत	सी०एस० श्रीनिवासाचार्य	गोरखनाथ चौबे	रामनारायण लाल इलाहाबाद	१९५०	हिन्दी	१४
प्राचीन भारत की संग्रामिकता	पं० रामदीन पाण्डे	—	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना	—	हिन्दी	७५, ७६
प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद	हजारी प्रसाद द्विवेदी	—	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई ४	१९६३	हिन्दी	८१, १४०
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	—	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९५८	हिन्दी	७९, २६८
प्राचीन भारतीय मनोरंजन	मन्मथराय	—	भारतीय विद्याभवन इलाहाबाद	सं० २०१३	हिन्दी	१८०,२६७
प्राचीन भारतीय वेषभूषा	डा० मोतीचन्द	—	भारतीय भंडार प्रयाग	वि.सं. २००७	हिन्दी	७९, १८०
प्राचीन मुद्रा	राखलदास वन्द्योपाध्याय	—	काशी नागरी प्रचारिणी सभा	सं० १९९१	हिन्दी	२६१
बिहारी रत्नाकर (सतसई)	बिहारी	जगन्नाथ रत्नाकर	ग्रन्थकर प्रकाशन शिवाला वाराणसी	१९५१	हिन्दी	८१, १७३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारत का प्राचीन इतिहास भाग १	सत्यकेतु विद्यालंकार	—	सरस्वती सदन काशी	—	हिन्दी	८
भारतीय इतिहास एक दृष्टि	डा० ज्योति प्रसाद	—	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९६१	हिन्दी	३,१०,११, १३,१६,१३६
भारतीय चित्रकला	वाचस्पति गैरोला	श्री कृष्णदास	मित्र प्रकाशन लि० इलाहाबाद	१९६३	हिन्दी	३१
भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच	सीताराम चतुर्वेदी	—	हिन्दी समिति सूचना विभाग लखनऊ	१९६४	हिन्दी	१५१
भारतीय नाट्य परंपरा और अभिनय दर्पण	वाचस्पति गैरोला	—	संवर्तिका प्रकाशन इलाहाबाद	१९६७	हिन्दी	१५१
भारतीय प्रदेश और उनके निवासी	वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय	—	एन० डी० सहगल एण्ड सन्स दिल्ली	१९६१	हिन्दी	२६४
भारतीय वास्तुशास्त्र	द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल	—	वास्तुवाङ्मय प्रकाशन फैजाबाद रोड लखनऊ	१९५५	हिन्दी	७७,७९,१३२
भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान	डा० हीरालाल जैन	—	म० प्र० शासन, साहित्य परिषद् भोपाल	१९६२	हिन्दी	९,१०,१२,१४
भारतीय साहित्य की रूपरेखा	डा० भोलाशंकर व्यास	—	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९५३	हिन्दी	२७७
भारतीय साहित्य शास्त्र	गणेश त्र्यम्बक देशपाण्डे	—	पापुलर बुक डिपो बम्बई	१९६०	हिन्दी	२५२
भारतीय साहित्य शास्त्र प्रथम खण्ड	बलदेव उपाध्याय	—	प्रसाद परिषद् काशी	सं० २००७	हिन्दी	१४२
भाव प्रकाशन	शारदा तनय	यदुगिरिपति राजस्वामी	ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा	१९६८	संस्कृत	५७
भाव प्रकाश निघण्टु	भाव मिश्र	गंगासहाय पाण्डे	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	१९५६	संस्कृत-हिन्दी	२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थनाम	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
मनुस्मृति	मनु	रामस्वरूप	सनातनधर्मप्रेस मुरादाबाद	१९६७	संस्कृत	५४
महाभारतम्	व्यास	नीलकण्ठ	शंकर नरहरि चित्रशाला प्रेस पूना	१९२९	संस्कृत	२५
मानसोल्लास भाग २	सोमेश्वर	बी० जे० सन्देशर	गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरिज बड़ौदा	१९३९	संस्कृत	५२
मानसोल्लास भाग३	" " "	" "	" " "	१९६१	संस्कृत	१८०
मालती माधव	भवभूति	शेषराज शर्मा	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	१९५४	संस्कृत-हिन्दी	१४४, १४९, १५०
मालविकाग्निमित्र	कालिदास	रामचन्द्र मिश्र	चौखम्बा पुस्तकालय वाराणसी	१९५१	संस्कृत-हिन्दी	२५,३२,२८२
मुहूर्त चिन्तामणि	—	डा० मिश्र	हरिकृष्ण निबन्ध भवन बनारस—१	१९५४	संस्कृत	२७
मुहूर्त प्रकाश	चतुर्थीलाल शर्मा	—	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई	सं० २००८	संस्कृत	२७
मृच्छकटिक	शूद्रक	भूमिका कान्तानाथ तैलंग	चौखम्बा संस्कृत सीरिज बनारस	१९५४	संस्कृत-हिन्दी	१२९
मेघदूत	कालिदास	संसारचन्द्र	मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी	१९५१	संस्कृत-हिन्दी	१७३
मैथिलीकल्याण	हस्तिमल्ल	पं० मनोहरलाल	मणिकचन्दजैन ग्रन्थमाला बम्बई	सं० १९७३	संस्कृत	१५६-१८५.
रत्नकरण्ड श्रावकाचार	समन्तभद्राचार्य	पं० सदासुख	श्रुतभंडार ग्रन्थ प्रकाशन सतारा	२४८१वि.नि.सं.	संस्कृत-हिन्दी	२८
रत्नविज्ञान	पुरुषोत्तमदास स्वामी	—	किताव महल इलाहावाद		हिन्दी	८२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नावली नाटिका	हर्षवर्धन	रामचन्द्र	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी	१९५३	संस्कृत-हिन्दी	१३५, २७०
रसगंगाधर	पं० जगन्नाथ	झा बन्धु	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९५५	संस्कृत-हिन्दी	६४, २४०, २४५, २४७
राजनिघण्टु	धन्वन्तरीय निघण्टु	वैद्य नारायण शर्मा	आनन्द आश्रम मुद्रणालय पूना	१९२५	संस्कृत	२०
रामायण कालीन संस्कृति	शान्तिकुमार	नानूराम व्यास	सत् साहित्य मण्डल दिल्ली	१९५८	हिन्दी	८२
लघु पाराशरी	—	सीताराम शर्मा	मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स वाराणसी	१९५७	संस्कृत	२७
वाग्भटालंकार	वाग्भट	डा० सत्यव्रतसिंह	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९५७	संस्कृत	२२
वाराही बृहत्संहिता	वराह मिहिर	बलदेव प्रसाद मिश्र	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई	सं० २०१२	संस्कृत	३०
वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड	—	—	गुजराती प्रिंटिंग मुद्राणालय सासुन बिल्डिंग बम्बई	—	संस्कृत	८९
विक्रमोर्वशीयम्	कालिदास	रामचन्द्र मिश्र	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	१९६३	संस्कृत-हिन्दी	१३७, १४५, १४६, १४७, १४८,
विक्रान्त कौरव	हस्तिमल्ल	मनोहर लाल	माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला बम्बई	सं० १९७२	संस्कृत	१२, १४, १७, २०, २१, २२, ३७-९०
(बृहद्) विमान शास्त्र	महर्षि भारद्वाज	स्वामी ब्रह्ममुनि	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली	१९५९	संस्कृत-हिन्दी	१३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थनाम	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
विवाग सुयं (विपाक-सूत्र)	—	सम्पादक ह्वो० जे० चौकसी	शम्भूभाई जगशीशाह गुर्जर ग्रन्थ कार्यालय अहमदाबाद	१९३५	प्राकृत-अंग्रेजी	१३९
विश्वतीर्थ श्रवण वेल-गोला	सुमेरुचन्द दिवाकर	—	भा० दि० जैन तीर्थ कमेटी बम्बई	१९५३	हिन्दी	१३
वृत्तरत्नाकर,	भट्टकेदार	—	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	सं० १९४८	संस्कृत	१२५
वृहत् संहिता	वराहमिहिर	अच्युतानन्द शर्मा	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९५९	संस्कृत	३०
वृहदारण्यकोपनिषद्	रामचन्द्र शास्त्री	—	वाणी विलास संस्कृत पुस्तकालय काशी	सं० २०११	संस्कृत	८९
शब्दकल्पद्रुम	—	स्यार राजा राधाकान्त	मोतीलाल बनारसीदास बनारस	१९६१	संस्कृत	७८, १३२
शिशुपालवध	माघ	हरगोविन्द शास्त्री	चौखम्बा विद्याभवन बनारस	१९५५	संस्कृत-हिन्दी	२३, ८७
शृंगाररस का शास्त्रीय विवेचन	डा० राजेश्वर प्रसाद	—	सरस्वती पुस्तक सदन आगरा	१९६९	हिन्दी	२४२
श्रीमद् भागवत् का काव्यशास्त्रीय परिशीलन	डा० कृष्णमोहन अग्रवाल	—	(टंकित)	१९६७	हिन्दी	१४७
संगीत शास्त्र,	के० वासुदेव शास्त्री	—	प्रकाशन शाखा सूचना विभाग उ०प्र० लखनऊ	१९५८	हिन्दी	२९
संग्रह शिरोमणि	पं० सरयू प्रसाद	मुंशीलाल	नवलकिशोर पाषाण यंत्रालय लखनऊ	१८५७	संस्कृत	२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्यं शिवं सुन्दरम्	डा० रामानन्द तिवारी	—	भारती मंदिर भरतपुर	१९६३	हिन्दी	१८४
समरांगण सूत्रधार वास्तुशास्त्र भाग २ (यंत्रविज्ञान एवं चित्रकला)	डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल	—	वास्तु वाङ्मय प्रकाशन लखनऊ	१९६७	हिन्दी	१३२
समाज और साहित्य	अंचल	—	मातृभाषा मन्दिर प्रयाग	—	हिन्दी	१५५
समीक्षायण	कन्हैयालाल सहल	—	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९५०	हिन्दी	१२१
समीक्षा शास्त्र	सीताराम	—	अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी	सं० २०१०	हिन्दी	७१,७२,८९, १२५,१५१
संस्कृत आलोचना	बलदेव उपाध्याय	—	प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग लखनऊ	१९५७	हिन्दी	८३,१२७, १५४
संस्कृत कवि दर्शन	भोलाशंकर व्यास	—	चौखम्वा विद्याभवन वनारस	सं० २०१२	हिन्दी	६७,७२,२१६
संस्कृत काव्यकार	हरिदत्त शास्त्री	—	साहित्य भंडार मेरठ	१९६२	हिन्दी	७२
संस्कृत काव्य में शकुन	दीपचन्द शर्मा	—	साहित्य भंडार मेरठ	१९६६	हिन्दी	१३६
संस्कृत नाटक	कीथ	उदयभानु सिंह	मोतीलाल वनारसीदास	१९६५	हिन्दी	१४४
संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	—	शारदा मन्दिर वनारस	१९५३	हिन्दी	२५,२७७
संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास	कृष्ण चैतन्य	विनयकुमार राय	चौखम्वा विद्याभवन वनारस	१९६५	हिन्दी	१८५
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	चन्द्रशेखर पाण्डेय	—	साहित्य निकेतन कानपुर	१९५४	हिन्दी	१२२
संस्कृत साहित्य में मौलिकता एवं अनुकरण	डा० उमेश रस्तोगी	—	चौखम्वा विद्याभवन वाराणसी	१९६५	हिन्दी संस्कृत	१४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थनाम	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
संस्कृत सूक्ति सागर	नारायण स्वामी	—	अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी	सं० २०१४	संस्कृत	१७२
साकेत	मैथिलीशरण गुप्त	—	साहित्य सदन चिरगांव	सं० २०१०	हिन्दी	१५३,१८५
सागार धर्मामृत	आशाधर	लालाराम	मूलचन्द किसनदास कापडिया सूरत	२४४१ वी० नि० सं०	संस्कृत-हिन्दी	५
सामुद्रिक शास्त्र,	समुद्र	राधाकृष्ण मिश्र	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई	१९५६	संस्कृत	१३६
साहित्यदर्पण	विश्वनाथ	शालिग्राम शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास बनारस	१९५६	संस्कृत-हिन्दी	६१,६४,८८, १४२,१५२,२३५
साहित्य विवेचन	सुमन और मल्लिक	—	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९५५	हिन्दी	७१,१२६,१३०, १५४,२५९
साहित्य समीक्षांजलि	डॉ० सुधीन्द्र	—	विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा	१९५६	हिन्दी	१७६,२६२
साहित्यालोचन	श्यामसुन्दरदास	—	इंडियन प्रेस प्रयाग	१९६७	हिन्दी	२८०
सिद्धान्त और अध्ययन	गुलाबराय	—	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९५५	हिन्दी	६९,१८५,२३४
सिद्धान्त कौमुदी प्रथम खण्ड	भट्टोजी दीक्षित	श्रीशचन्दवसु	मोतीलाल बनारसीदास बनारस	—	संस्कृत-अंग्रेजी	५
सुभद्रा-नाटक	हस्तिमल्ल	पटवर्धन	मंत्री, माणिकचन्द जैन ग्रन्थमाला बम्बई	सं० २००६	संस्कृत-अंग्रेजी	२,१३,२२, १८६-२७५
सुभाषितरत्न भाण्डागारम्	नारायण आचार्य	—	निर्णयसागरप्रेस बम्बई	१९५२	संस्कृत	१३०,२५७
सुवृत्ततिलक	क्षेमेन्द्र	पं० व्रजमोहन झा	चौखम्बा संस्कृत सीरिज बनारस	१९६८	संस्कृत-हिन्दी	२५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुश्रुत संहिता	सुश्रुत	अत्रिदेव	मोतीलाल बनारसीदास बनारस	१९६०	संस्कृत	२०
स्वतन्त्र कला शास्त्र	डा० कान्तिचन्द्र पाण्डेय	—	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी	१९६७	हिन्दी	१७६
स्वप्नवासवदत्तम्	भास	पं० तारणीश झा	रामनारायणलाल इलाहाबाद	१९६८	संस्कृत-हिन्दी	१४९
हमारी नाट्य परंपरा	श्रीकृष्णदास	—	साहित्यकार संसद प्रयाग	१९५६	हिन्दी	३६
हरिवंश पुराण	जिनसेन	पं० पन्नालाल	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९६२	संस्कृत-हिन्दी	१८०
हरिहर चतुरंगकम्	गोदावर मिश्र	एस० के० रामनाथ	गवर्न० ओरिएण्टल मेन्यु-स्क्रिप्ट लायब्रेरी मद्रास	१९५०	संस्कृत	७६
हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन	वासुदेवशरण अग्रवाल	—	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना	१९५३	हिन्दी	१३१
हलायुध कोश (अभि-धान रत्नमाला)	—	जयशंकर जोशी	सरस्वती भवन वाराणसी, प्रकाशन ब्यूरो उ० प्र०	शकाब्द १८५७	हिन्दी	१३१,१३२
हिन्दी आलोचना की अर्वाचीन प्रवृत्तियां	संग्रह	—	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	—	—	१२२
हिन्दी विश्वकोश भाग ६, ७	नगेन्द्रनाथवसु	—	९ विश्वकोशलेन वादा बाजार कलकत्ता	१९२४	हिन्दी	७८
A History of Indian Literature II	Mouric Winternits.	—	University of Calcutta	1933	English	2, 32
A History of Sankrit Literature Vol I	S. N. Das Gupta	—	University of Calcutta	1947	English	18

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थकार	लेखक	सम्पादक/अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	भाषा	शोध प्रबन्ध का पृष्ठ
A Volume of Studies in Indology	Dr. A. N. Upadhye	—	Oriental Book Agency, Poona	1947	English	34
Catalogus Catalogorum Part I	Theodor Aufrecht	Frang Steiner	Verlag Gmfh	—	English	33, 35
Catalogus Catalogorum Part II	Theodor Aufrecht	—	Wiesbandch Germany	1962	English	34
History of Classical Sanskrit Literature	M. Krishna-macharya		Trumalai Tirupati Devasthan Press Madras	1937	English	1
Karnatak Darshan		Chief Editor Hukkerikar	Kaveren 21, Narayan Dafolkar Road Malfar Hill Bombay–6	1955	English	12
The Jain Sources of the History of Ancient India	Dr. J. P. Jain	—	Munshi Ram Manoharlal Delhi	1964	English	2, 32
The Hoyasal	J. Duncan	M. Darref	Oxford University Press Madras	1957	English	10

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्र-पत्रिकाओं की सूची

पत्रिका का नाम	प्रकाशक	शोध प्रवन्धं का पृष्ठ
अनेकान्त	वीर सेवा मन्दिर २१, दरियागंज दिल्ली	३
आजकल	पब्लिकेशन डिविजन सूचना प्रसारण मंत्रालय दिल्ली	७६
कल्याण	गीताप्रेस गोरखपुर	१३
त्रिपथगा (अस्त्रशास्त्र विशेषांक)	सूचना विभाग उत्तर प्रदेश	७७
धन्वन्तरि	धन्वन्तरि कार्यालय अलीगढ़	३१
नागरी प्रचारिणी पत्रिका	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	१३८
सन्मति सन्देश	५३५ गांधी नगर देहली	१०, १२
सम्मेलन पत्रिका	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	५६, ९०
साहित्य विहार	हिन्दी साहित्य सम्मेलन पटना	२८२
हिन्दुस्तानी	हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश इलाहाबाद	१८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुद्धि संशोधन पत्रकं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१	२७	कथितो यश्चैव	कथितो यश्चैक
२	१८	उनके	उनकी
२	३४	मुनियः	मुनिपः
५	३२	त्रिवर्गीजसि	त्रिवर्गौजसि
५	३४	वाक् व शास्त्र	वाक्शास्त्रे
६	८	इसमें	इसे
६	२०	कार्तिका	कार्तिके
६	२३	वरगुणो	वरगुणो
६	२५	कोविदेक	कोविदैक
६	२८	पादाम्बुरुहेक	पादाम्बुरुहैक
६	२९	करुणापरास्यः	करुणापराख्यः
६	३१	रासित	रासीत्
६	३२	स्याद्वयपार्य	स्यादय्यपार्य
६	३४	शाब्दे	शाकाब्दे
६	३४	विधुवार्थि	विधुवार्धि
६	३४	हिमगी	हिमगो
७	२६	वैजय्य जायाश्च	वैजय्य जीयाश्च
७	३०	जातमास्व	जातभास्व
९	२७	सर्वेष्वधिकं	सर्वेष्वधिकः
१०	३१	बभाति	बाभाति
१०	३२	विहंगैनैरश्च	विहगै र्नरैश्च
११	३	लड़के का	लड़के को
११	१४	अतीत	अतीव
११	३२	वुघौ	वुधो
११	३४	हैशलास्यें	ह्वैशलाख्यं
१२	२५	स्वर्णयी	स्वर्णयक्षी
१३	२६	हस्तिमल्लै	हस्तिमल्ल
१३	२८	परवाथादि	परवाद्यादि
१४	३३	प्रेमैकथाम	प्रेमैकधाम
१४	३३	क्लाम्वु	कलाम्वु
१४	३४	श्लोकः	श्लोकैः
१४	३४	शतः	शतैः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१५	२९	तच्छिव्या	तच्छिष्या
१७	१५	युपश्लोक्तिः	युपश्लोकितः
१७	२६	तत्नव	तत्सूनव
१८	३	हस्तिमल्ल के	हस्तिमल्ल ने
१८	१३	वादोमसिंह	वादीभसिंह
१९	३३	स्यादयपार्यं	स्यादव्ययपार्यं
२०	३४	दीप्ताग्नो	दीप्ताग्नौ
२०	३४	संतर्पंपां	संतर्पणं
२१	२५	तन्यभानासूया	तन्यमानासूया
२१	३४	मदध्वंसिता	मदध्वंसिना
२३	३६	जिनवाद	जिनपाद
२५	२१	नवमा चाफलरस	नवमोचाफलरसः
२५	२९	तज्ज्ञान	तज्ज्ञानं
२५	३८	अभुभास्कन्दतो	अमुमास्कन्दतो
३०	७	विद्वान ने	विद्वान से
३०	३१	दोष्हीनो	दोषहीनो
३२	२३	सुरतत्रान्ति	सुरतश्रान्ति
३४	१५	सुभदा	सुभद्रा
३६	१६	प्रतिमा	प्रतिभा
४०	१३	नन्द्यावत	नन्द्यावर्तं
४०	३५	सौघातकी	सौघातकी
४४	७	वरमाल	वरमाला
४५	३१	वैशवाट	वेशवाट
४५	३४	पताकायक	पताकानायक
४६	३४	अक	अंक
५१	३३	नोत्तमक्षत्रिया	नोत्तमक्षेत्रिया
५२	१०	श्रीयांस	श्रेयांस
५५	३१	सौघातकि	सौघातकि
५७	२४	हैं मांगद	हेमांगद
५९	२४	पुर्वानुरागिणि	पूर्वानुरागिणी
६०	३१	दुर्विनीति	दुर्विनीत
६२	२०	अंजुलि	अंजलि
६३	३१	चद्रग्श्मौ	चन्द्ररश्मौ
६५	२८	तथा	तया
६५	२९	भुयः	भूयः
६५	३०	कुलितोत्पलामे	कुलितोत्पलाभे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६	३१	कोदण्डदण्डै	कोदण्डदण्डौ
६८	२०	पोरवस्य	पौरवस्य
६८	२१	भरतसुतौ	भरतसुतो
७०	५	थत्ताषट्पदी	घत्ताषट्पदी
७२	३२	कदर्भ	कर्दम
७२	३३	नरवांकुराणीव	नखांकुराणीव
७३	१५	उत्पति	उत्पत्ति
७३	२५	शौरशेनी	शौरसेनी
७३	३३	चित्तै	चित्ते
८५	८	प्रतिभा	प्रतिमा
८७	२८	ह्रादपद्दत्तकांचय:	हारपददत्तकांचयः
८८	८	उपदेशवाग्मि	उपदेशवाग्भिः
८८	२९	पूरुषाणां	पुरुषाणां
८९	२६	स्थापनाये	स्थापनायै
८९	२८	मुग्धाभिमां	मुग्धामिमां
९१	१३	विजयार्घ	विजयार्ध
९१	२७	राजाओं को	राजाओं की
९२	३	शालमंजिकाओं	शालभंजिकाओं
९३	७	कुमुदती	कुमुद्वती
९५	२२	को प्रास	की प्राप्ति
९७	३३	पाने–लिए	पाने के लिए
९८	१४	अंक–४३वें	अंक के ४३वें
१०२	१	निवहण	निर्वहण
१०६	७	ध्यान कर	ध्यान न कर
१०७	४	नाटकों में	नाटकों के
१०७	२४	क्रीड़ा	क्रीडा
१०७	३५	वेषे हास्यकारी	वेषैर्हास्यकारी
११०	१३	एक प्रतिसूर्य	एक ओर प्रतिसूर्य
११०	१४	हितेषित्व	हितैषित्व
११०	३०	मैख	भैरव
१११	१०	क्रर	क्रूर
१११	११	कंक	कलंक
१११	२१	मैख	भैरव
११२	३२	अजना	अंजना
११३	१२	रुंघ	रुंधे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
११३	२५	अप्परा	अप्सरा
११५	१४	अंजना को	अंजना की
११५	१७	अजना का	अंजना का
११५	२९	सं-स्व	सर्वस्व
११६	९	उनको	उसको
११६	३३	धनुर्ग्रहिणी	धनुर्ग्राहिणी
१२०	३२	चारों और	चारों ओर
१२३	२१	नवजल रो	नवजलधरो
१२३	२२	निर्षीयमान	निपीयमान
१२३	२२	कैंकारव	केकारव
१२।	२४	सकलेनपि	सकलेनापि
१२३	२४	सम्भाविता	सम्भावितो
१२३	४०	बुधैः	बुधैः
१२५	४	पेंगलम्	पैंगलम्
१२६	६	ढग	ढंग
१२६	७	कथानायक	कथानक
१२९	२	प्रथमेक	प्रथमैक
१२९	४	प्रदेशे	प्रदेशः
१३२	२१	मंजिकाएँ	भंजिकाएं
१३२	२२	शालमंजिकाओं	शालभंजिकाओं
१३२	२७	शालमंजिका	शालभंजिका
१३३	९	शालमंजिकाओं	शालभंजिकाओं
१३६	३२	सौम्बुधिकांचर्भुवो	सोऽम्बुधिकांचेर्भुवो
१३८	८	शालमंजिकाएँ	शालभंजिकाएँ
१४४	२९	प्रवि	प्रति
१४४	३४	जमान्तर एवं	जन्मान्तर एव
१४६	१६	अलक्तांतिक	अलक्तांकित
१४७	१	अलोक्तांकित	अलक्तांकित
१४८	३	रसना	रशना
१४८	२८	वसनभिव	वसनमिव
१४९	२१	कीं	की
१४९	३१	विपिन	विपिने
१४९	३६	स्थित	स्थितं
१५०	७	महेन्द्रपुरभवगन्तुं	महेन्द्रपुरमवगन्तुं
१५०	१४	भक्तिव्यस्य	भवितव्यस्य
१५०	२५	आशातन्तु न	आशातन्तु र्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१५०	२५	कथम–	कथमपि
१५०	३१	सभागम	समागम
१५२	३४	सघः	सद्यः
१५२	३६	दिगघते	निगद्यते
१६०	१०	अर्थप्रक्रिया	अर्थप्रकृतियाँ
१६४	१६	आश्चय	आश्चर्य
१६६	८	ग ी	गयी
१७०	३४	पुष्पाणिते वर्षितुम	पुष्पाणि ते वर्षितुम्
१७१	५	दौला	दोला
१७१	९	पुष्यायुध	पुष्पायुध
१७१	३६	सार्घ	सार्धं
१७१	४०	शभदाननिर्दयमताः सुग्धा	शमदाननिर्दयमनाः मुग्धाः
१७२	२२	हितरुचि	हिमरुचि
१७३	२९	कष्ट मो	कष्टं भो
१७४	२३	मद्येन्न	मद्येन
१७५	८	तं न	तं च
१७८	२८	वद्धौ	बद्धो
१७९	२९	शयत्रं	शयनं
१८१	९	अर्धीरुक	अर्धोरुक
१८६	१३	विजयार्थ	विजयार्ध
१८९	२३	विजयार्थ	विजयार्घ
१८९	२८	घटना का	घटना को
१९०	८	विजयार्थ	विजयार्घ
१९०	२८	विजयार्थ	विजयार्ध
१९१	२०	प्रख्यात हुआ	प्रख्यात
१९१	३४	प्रख्यातवंशी	प्रख्यातवंशो
१९४	२०	साध्यपूर्वक	साध्वसपूर्वक
१९४	२१	वसु धा	वसुधा
१९४	२४	वैलातीं	वैलाती
१९४	२६	युक्तांकेखि	युक्तांकैरिव
१९४	२८	ततर्स्फिज	तत्स्फिज
१९४	२८	गर्भे	गर्भे
१९४	२९	प्रियोपच्छन्दनात्मक	प्रियोपच्छन्दनात्मकम्
१९४	३०	मयेन	भयेन
१९४	३१	त्रैधा	त्रेधा
१९६	२८	देवान्	दैवान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१९६	३२	अंगे	अंगैः
१९८	३०	स्वार्थी	स्वार्थो
२०१	१	सुभद्रा का	सुभद्रा के
२०१	३४	विधै	विधौ
२०२	३४	भाति	माति
२०५	३५	उच्छ्वास	उच्छ्वासि
२०६	१५	द्विगुण। शोभा	द्विगुणशोभा
२०६	१७	प्रेक्ष्य	पेक्ष्य
२०६	२६	नवलाभ्यति	न क्लाम्यति
२०७	६	विजयार्थ	विजयार्ध
२०८	१	राज्य का	राज्य के
२०८	३३	दिग्जैव यात्रा	दिग्जैत्रयात्रा
२१२	१६	वाभोरू	वामोरू
२१२	२२	नैपथ्य	नेपथ्य
२१२	३०	रमणाया ऽपि	रमणीया ऽपि
२१२	३०	सेव्यगुणोत्कर्षन्न	सेव्यगुणोत्कषन्नि
२१२	३२	वाभोरू	वामोरू
२१७	३१	विलोमनं	विलोभनं
२१८	२९	स्वामिनी	स्वामिनो
२१८	३५	क्षुदका	क्षुद्रका
२१९	२३	करते हैं	करता है
२१९	३५	तस्यायोध्य	तस्यायोध्य
२१९	३७	पुघ्यौ	पुट्यो
२२४	१६	विजयार्घ	विजयार्ध
२२६	३२	स्तनचूचुकै	स्तनचूचुके
२२७	३२	मुग्धत्वमैनां	मुग्धत्वमेनां
२२७	३४	पात्रभियम्भु	पात्रमियम्नु
२२८	९	आद्र	आर्द्र
२२९	३१	सारौ	सारो
२२९	३२	रतमियं	रत्नमियं
२३१	१	विजयार्वं	विजयार्ध
२३३	४	अर्घकमलो	अर्घकमलों
२३५	११	कनिष्ठ	कनिष्ठा
२३५	११	वैताली	वैलाती
२३५	३०	सार्क्ष्यदत्त	तार्क्ष्यदत्त
२३७	३०	अहो ऽसंभाषणे	अहो संभाषणे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
२३७	३३	मुहूर्त	मुहूर्तं
२३८	२	पात्र	मात्र
२३८	३४	गर्भितभिवास्या	गर्भितमिवास्या
२३९	२३	कल्पित	कम्पित
२३९	३१	चुम्बन	चुम्बन
२३९	३३	अन्तर्गुंजन	अन्तर्गुंजन्
२४०	२२	करते हों	करते हो
२४२	३०	दत्तोत्सगनीवेशितालस	दत्तोत्संगनिवेशितालस
२४२	३४	निष्ठा	निष्ठां
२४२	३६	संस्तम्य	संस्तभ्य
२४९	१२	लिखने को	लिखने का
२५०	३०	निर्मूषं	निर्भूषं
२५२	२३	सुभदा	सुभद्रा
२५२	३५	रोमांचौ	रोमांचो
२५३	४	विजयार्घं	विजयार्ध
२५३	८	विजयार्घं	विजयार्ध
२५३	१०	विजयार्घं	विजयार्ध
२५५	१६	वेलाती	वैलाती
२५५	३१	सार्थं	सार्धं
२५६	१५	भूर्यो	भूयो
२५६	१९	वचर्नयतां	वचनीयतां
२५६	३३	युपसर्पणमैंव	युपसर्पणमेव
२५७	५	गलहस्तमम्	गलहस्तनम्
२५७	३१	मूढः	मूढैः
२६०	१०	विजयार्घ	विजयार्ध
२६२	२४	देव	दैव
२६७	१२	मानक	पानक
२६९	२२	योगान्धरायण	यौगन्धरायण
२७०	१६	योगन्धरायण	यौगन्धरायण
२७०	१९	योगन्धरायण	यौगन्धरायण
२७३	७	नामिगृह	नाभिगृह
२७३	१९	विषमताए	विषमताएँ
२७३	३३	प्राप्त होने पर	प्राप्त न होने पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi